बौद्धभारतीग्रन्थमाला–२५

Bauddha Bharati Series–25

सुत्तपिटके

मज्झिमनिकायपालि

(२. मज्झिमपण्णासकस्स अवसिट्ठो भागो)

[हिन्दी-अनुवादसहितो]

प्रधानसम्पादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

Bauddha Bharati Series–25

The

MAJJHIMANIKĀYA

(1. Majjhima Paṇṇasaka)

[Raja Vagga & Brahman Vagga]

With

Hindi Translation

[Fourth Volume]

Editor & Translator

SWĀMĪ DWĀRIKĀDĀS SHĀSTRĪ

BAUDDHA BHARATI

VARANASI

B. E. 2534] 1991 [V. E. 2048

बौद्धभारतीग्रन्थमाला–२५

सुत्तपिटके

मज्झिमनिकायपालि

(२. मज्झिमपण्णासकं)

[राजवग्ग-ब्राह्मणवग्गा]

(हिन्दी-अनुवादसहितो)

[चतुत्थो भागो]

प्रधानसम्पादको, अनुवादको च

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

बौद्धभारती

२५३४ बुद्धाब्द]   वाराणसी   [१९९१ ख्रिस्टाब्द

प्रकाशक :
© बौद्धभारती,
पो० बॉ० १०४९, वाराणसी—१
पिन : २२१ ००१

Published by :
© BAUDDHA BHARATI
P. B. 1049, VARANASI-1
Pin : 221 001

प्रथम संस्करण : १९९१

First Edition : 1991

मूल्य : १००) रु०
(एक सौ रुपया)

Price : Rs. 100/
(One hundred Rs.)

मुद्रक :
साधना प्रेस
वाराणसी-२ (उ० प्र०)

Printed by :
Sadhana Press
VARANASI-2 (U.P.)

प्रकाशकीय वक्तव्य

"अनुजानामि, भिक्खवे, सकाय निरुत्तिया परियापुणितुं" ति।
—विनयपिटके भगवा बुद्धो।

हम हिन्दी-अनुवादसहित समग्र त्रिपिटिक के प्रकाशन का संकल्प इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में ले चुके हैं। तदनुसार, मज्झिमनिकाय का यह चतुर्थ भाग आपके सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है।

इसमें हमने पालि-पाठ के लिये बर्मा में हुए छट्ठ संगायन पर आधृत एवं श्रीलंका, स्याम (थाईलैण्ड) तथा पालिटैक्स्ट सोसाइटी, लन्दन के संस्करणों का सहयोग लेकर १९५६-६१ में 'पालि त्रिपिटिक प्रकाशन बोर्ड' नालन्दा से प्रकाशित एवं आदरणीय भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी-संस्करण को आदर्श रूप में रखा है। इसमें हमने बहुत कम परिवर्तन किया है। कहीं-कहीं मुद्रणजन्य अशुद्धियों के संशोधन के अतिरिक्त कुछ नहीं किया है।

साथ ही हमने उक्त सभी संस्करणों की पृष्ठ-संख्या रोमन अक्षरों में क्रमशः यथास्थान दे दी है, ताकि अनुसन्धाता, उन उन संस्करणों को देखकर, लाभान्वित हो सकें।

हिन्दी अनुवाद में हमने आचार्य श्रीबुद्धघोष की अट्ठकथा एवं महापण्डित श्रीराहुल सांकृत्यायन कृत हिन्दी अनुवाद को आदर्श माना है। उनके सहारे स्वतन्त्र अनुवाद कर उसे पालिपाठ के साथ नीचे दिया है। इससे पाठकों को पालि एवं उसकी हिन्दी दोनों ही अत्यन्त सरलता से हृदयंगम हो सकेंगी—ऐसा हमारा विश्वास है।

ज्ञातव्य है कि इस भाग के साथ मज्झिमनिकाय के दो खण्ड पूर्ण हो चुके हैं। अब पञ्चम भाग में इसी ग्रन्थ का तीसरा खण्ड (उपरिपण्णासक) प्रारम्भ होगा।

यहाँ हमें एक निवेदन अवश्य करना है कि विषय-वैशद्य (बात को समझाने) के लिये पालि विषय का अनुकूल-प्रतिकूल या आरोह-अवरोह—दोनों क्रमों से विस्तृत (अक्षरशः) वर्णन किया जाता है। इस शैली में भाषाच्छटा तो अवश्य आ जाती है, परन्तु इस शब्द-समूह में फँस कर पाठक से मूल विषय दूर-दूर सा होने लगता है। इसके लिये पालि-संग्रहकारों ने ऐसे

विशेष स्थानों (जहाँ पाठ पुनः पुनः आवृत्त हो) के लिये '...पे०...' की की परम्परा रखी है। इस परम्परा का इससे पहले के संस्करणों में भी निर्भयता से उपयोग हुआ है। अतः इसे हमने भी अपने हिन्दी-अनुवाद में अपना लिया है। परन्तु '...पे०...' का अनुवाद हमने '...पूर्ववत्...' करके दिया है, या प्रायः '...' इस चिह्न का प्रयोग किया है, ताकि पाठक उस प्रसङ्ग के प्रधान विषय से दूर न हो जाँय।

यों हमने एक अभिनव पद्धति में बुद्ध-वचन (त्रिपिटिक) का प्रकाशन प्रारम्भ किया है। यदि विद्वानों को यह पद्धति रुचिकर व अनुकूल प्रतीत हुई तो हम आगामी काल में त्रिपिटिक के समग्र ग्रन्थों का प्रकाशन भी इसी पद्धति में करेंगे।

एक कार्य हमने इस प्रसंग में और किया है। ग्रन्थ में वर्णित सूत्रों का संक्षेप, हिन्दी भाषा, में ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही दे दिया है। जिससे पाठक को सूत्रों का वर्ण्य विषय एक ही दृष्टि में हृदयंगम हो सके।

इस तरह हम इस ग्रन्थमाला को पालि व हिन्दी—दोनों ही भाषाओं के विद्वानों के लिये उपयोगी बना रहे हैं—ऐसा हमारा विश्वास है।

विजयदशमी, २०४८ वि०
वाराणसी

अध्यक्ष
बौद्धभारतीपरिषद्

मज्झिमनिकाय के
मज्झिमपण्णासक का
विषय-वस्तुसंक्षेप

सुत्तपिटकान्तर्गत मज्झिमनिकाय के इस मज्झिमपण्णासक (मध्यमपर्णासक) में भी मध्यम आकार वाले पचास (५०) सूत्र हैं, जो कि १०-१० सूत्रों के पाँच वर्गों में विभक्त है। इन पाँचों वर्गों के नाम क्रमशः ये हैं—१. गहपतिवग्ग, २. भिक्खुवग्ग, ३. परिब्बाजकवग्ग, ४. राजवग्ग एवं ५. ब्राह्मणवग्ग। गहपतिवग्ग में सभी १० सूत्र गृहपतियों से सम्बद्ध हैं, इसी तरह भिक्खुवग्ग में भिक्षुओं से सम्बद्ध, परिब्बाजकवग्ग में परिव्राजकों से सम्बद्ध, राजवग्ग में राजाओं से सम्बद्ध एवं ब्राह्मणवग्ग में ब्राह्मणों से सम्बद्ध सूत्रों का समावेश है।

१. गहपतिवग्ग—

प्रथम गहपतिवग्ग में दस सूत्र हैं—१. कन्दरकसुत्त, २. अट्ठकनागरसुत्त, ३. सेखसुत्त, ४. पोतलियसुत्त, ५. जीवकसुत्त, ६. उपालिसुत्त, ७. कुक्कुरवतिकसुत्त, ८. अभयराजकुमारसुत्त, ९. बहुवेदनियसुत्त एवं १०. अवण्णकसुत्त।

१. कन्दरकसुत्त—इस सूत्र में, जब भगवान् चम्पानगरी में गग्गरा नदी के किनारे विशाल भिक्षुसङ्घ के साथ साधनाहेतु विराजमान थे, उस समय का वर्णन है। सर्वप्रथम कन्दरक परिव्राजक द्वारा, भिक्षुसङ्घ में सम्मिलित भिक्षुओं के रहन-सहन, उनकी जीवनचर्या एवं साधना का प्रशंसात्मक वर्णन है। भगवान् ने इसका उपदेश किया। कन्दरक परिव्राजक के साथी महावतपुत्र पेस्स ने इस प्रसङ्ग में हाथियों का उदाहरण देते हुए पशुओं के सीधे-सादे जीवन की प्रशंसा कर, मनुष्यों के कुटिल व्यवहार की भर्त्सना की। तब भगवान् ने उससे सहमत होते हुए मनुष्यों के चार भेद कर उनमें अन्तिम प्रकार के मनुष्य (पुद्गल) का महत्त्व ख्यापित किया। वे चार प्रकार के पुद्गल ये हैं—१. आत्मन्तप, २. परन्तप, ३. आत्मन्तप परन्तप एवं ४. न आत्मन्तप न परन्तप। भगवान् ने इन चतुर्विध पुद्गलों का विस्तार से वर्णन करते हुए इनमें चतुर्थ 'न आत्मन्तप न परन्तप' पुद्गल के चरित्र को आदर्श एवं अनुकरणीय बताया। यह चतुर्थ प्रकार का पुद्गल ही भगवदुपदिष्ट साधना का यथाविधि आराधन कर अर्हत्त्व पा सकता है॥

२. अट्ठकनागरसुत्त—इस सूत्र में वैशालीस्थित वेणुग्राम में साधना करते समय, आयुष्मान् आनन्द द्वारा दशम गृहपति अष्टक नागर के धार्मिक प्रश्नों का

उत्तर दिया गया है। अट्ठक नागर का प्रश्न था कि भगवान् ने साधना का ऐसा कौन सा सरलतम उपाय बताया है जिससे साधक भिक्षु का दोषों से अविमुक्त चित्त विमुक्त हो जाय व उसके अक्षीण आस्रव (चित्तमल) क्षीण हो जाँय और वह निर्वाण प्राप्त कर ले ? आयुष्मान् आनन्द ने प्रश्नो का उत्तर देते हुए बताया कि प्रथम, द्वितीय, तृतीय एव चतुर्थ ध्यान तथा मैत्री-करुणा-मुदिता उपेक्षा-सहगत चित्त की भावना; आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन एवं आकिञ्चन्यायतन के साधक के आस्रव क्षीण हो जाते हैं, चित्त विमुक्त हो जाता है; यों वह निर्वाण-प्राप्ति का अधिकारी हो जाता है। आयुष्मान् आनन्द द्वारा बताये गये निर्वाण-प्राप्ति के इन एकादस (११) उपायों को सुनकर अट्ठक नागर बहुत सन्तुष्ट हुआ ॥

३. सेक्खसुत्त--इस सूत्र का उपदेश भी कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम के समीप शाक्यों के सन्थागार में भगवान् के आदेश से आयुष्मान् आनन्द द्वारा किया गया था। आयुष्मान् आनन्द ने शाक्यों को बताया कि भगवदुपदिष्ट साधनाक्रम में कोई भी आर्यश्रावक शील, संयम तथा भोजन की मात्रा में सदा सावधान रहता हुआ, सात धर्मों (श्रद्धा, लज्जा, दुष्कर्मों से घृणा आदि) से संयुक्त होकर चारों चैतसिक ध्यानों की भावना एवं विद्या तथा चरण से सम्पन्न रहता हुआ सद्यः फलप्रद निर्वाण प्राप्त कर सकता है ॥

४. पोतलियसुत्त—इसमें अंगुत्तराप देश के आपण नामक कस्बे के गृहपति पोतलिय आदि व्यापारियों को भगवान् ने व्यवहारसमुच्छेद का अत्यन्त सूक्ष्मता से उपदेश किया है। यह व्यवहार-समुच्छेद आर्यविनयसम्मत तभी बन सकता है, जब कोई साधक १. प्राणातिपात, २. अदत्तादान, ३. मृषावाद, ४. चुगलखोरी, ५. लोभ-लालच, ६. परनिन्दा, ७. क्रोध एवं ८. वृथाभिमान का समग्रतया त्याग कर दे और संसार के सभी विषयभोगों को अस्थिकङ्काल, मांसपेशी, शुष्क तृण, अग्नि, स्वप्न, उधार मांगी वस्तु एवं वृक्ष के सड़े-गले फलों की तरह त्याज्य व हेय समझे ॥

जीवकसुत्त—भगवान् ने राजगृह के प्रसिद्ध वैद्य जीवक के आम्रवन में जीवक को ही इस सूत्र का उपदेश किया था। इसमें 'भिक्षु शास्ता द्वारा अनुमोदित एवं त्रिकोटिपरिशुद्ध अतएव अनिन्द्य आहार का ही ग्रहण करे'--यह उपदेश है। भगवान् कहते हैं--"तीन बातों से युक्त आहार को मैं 'भोज्य' मानता हूँ, भले ही वह मांस ही क्यों न हो। वे तीन बातें कौन सी हैं ? पहली--उसे कटते हुए देखा न हो, दूसरी—उसके बारे में सुना न हो, तीसरी—उसे शङ्का न हो कि यह सब उसके लिए काटा या बनाया गया है। जो भिक्षु मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा चित्त से समग्र संसार मे व्यवहार करता हो, उसके लिए यह त्रिकोटिपरिशुद्ध भोज्य (मांस आदि) आनन्दय ही है। प्रसङ्गवश भगवान् बताते हैं कि यहाँ पाँच तरह के व्यक्तियों को

अपुण्य का भागी होना पड़ता है; जैसे—१. जो वध के लिए प्राणी लाने की आज्ञा देने वाला हो, २. प्राणी को वधस्थान तक ले जाने वाला हो, ३. प्राणिवध की आज्ञा देने वाला हो, ४. मरते हुए प्राणी का क्रन्दन, एवं ५. इस प्राणिवध द्वारा पकाया मांस तथागत या तथागतश्रावक को परोसने वाला। इन पाँचों ही बातों में यदि भिक्षु कहीं से भी सम्पृक्त नहीं है, तो वह अपुण्य का भागी क्यों कर होगा! ॥

६. उपालिसुत्त—इस सूत्र का नालन्दा के प्रावारिकाम्रवन में भगवान् द्वारा उपालि को उपदेश किया गया है। इसमें उपालिभिक्षु की भिक्षु-भाव से पूर्व तथा बाद की जीवनगाथा वर्णित है। गृहपति उपालि पहले जैन उपासक थे। वे कभी दीर्घ तपस्वी जैन के कहने से वे भगवान् से शास्त्रार्थ करने पहुँचे। वहाँ उनपर भगवान् के उपदेश का अैसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने जैन धर्म छोड़ भगवान् से प्रव्रज्या-उपसम्पदा की दीक्षा ले ली और भिक्षु बन गये। साधना करते-करते अन्त में उन्होंने अर्हत् पद को पा लिया ॥

७. कुक्कुरवतिकसुत्त—इस सूत्र का उपदेश भगवान् ने हरिद्रवसन नामक कौलिय कस्बे में सेनिय कुक्कुरव्रतिक एवं पूर्ण गोव्रतिक को लक्ष्य कर किया था। प्रसङ्गवश भगवान् ने पहले कुक्कुरव्रत (कुत्ते की तरह आचरण करते हुए साधना) एवं गोव्रत (गौ की तरह आचरण करते हुए साधना) की बुराइयाँ बतायीं। फिर उनको १. कृष्ण कर्म, २. शुक्ल कर्म, ३. कृष्ण-शुक्ल कर्म एवं ४. अकृष्ण-अशुक्ल कर्म का पृथक्-पृथक् महत्त्व बताया। अन्त में सेनिय कुक्कुरव्रतिक ने भगवान् से प्रव्रज्या ली, और उसने यथासमय अर्हत् पद भी पा लिया ॥

८. अभयराजकुमारसुत—इस सूत्र का भगवान् ने राजगृह के वेणुवन में अभयराजकुमार को उपदेश किया है। अभय राजकुमार निगण्ठ नाटपुत्त के कहने से भगवान् से धर्मचर्चा करने आया। वहाँ भगवान् ने बताया कि तथागत को शिष्य पर अनुकम्पा करते हुए कभी वचन भी अप्रिय बोलना पड़ता है। तथागत प्रश्न किये जाने पर, इसके बाद ही, सोचकर उत्तर देते हैं; पहले से सोचे-विचारे उत्तरों से उसे नहीं बहकाते ॥

९. बहुवेदनियसुत्त—इस सूत्र का भगवान् ने श्रावस्ती के जेतवनाराम में आयुष्मान् उदायी एवं आनन्द को उपदेश किया है। इसमें वेदनाओं एवं लौकिक व आध्यात्मिक सुखों का विभागशः वर्णन किया गया है ॥

१०. अपण्णकसुत्त—यह सूत्र कौसल देश के शाला नामक ब्राह्मणग्राम में भगवान् द्वारा शालेय-ब्राह्मणों उपदिष्ट हुआ है! इसमें अन्य आचार्यों के मतों का खण्डन करते हुए अपने अपर्णक (संशय या द्विविधा रहित) धर्मों का उपदेश किया गया है। अन्त में आत्मन्तप आदि चतुर्विध पुद्गलों का भी विस्तृत वर्णन है ॥

२. भिक्खुवग्ग—

२. इस मज्झिमपण्णासक का दूसरा वग्ग है—भिक्खुवग्ग। इसमें भी दस (१०) सूत्र हैं। जैसे--११. अम्बलट्ठिकराहुलोवाद, १२. महाराहुलोवाद, १३. चूळमालुक्य, १४. महामालुक्य, १५. भद्दालि, १६. लटुकिकोपम, १७. चातुमा, १८. नळकपान, १९. गोलियानि, एवं २०. कीटागिरि सुत्त। इन सभी सूत्रों का किसी न किसी भिक्षु को ही उपदेश किया गया है॥

११. अम्बलट्ठिकराहुलोवादसुत्त--इस सूत्र का भगवान् ने राजगृह के अम्बलट्ठिका ग्राम में आयुष्मान् राहुल को उपदेश किया था। इसमें मृषावादी की नाली में फैंके फालतू जल से उपमा देकर भगवान् ने विवेकपूर्वक कर्म करने की शिक्षा देते हुए बताया कि सभी काय-वाक् मनः कर्म इस तरह करने चाहिये जो न स्व, न पर, न उभय-किसी को भी कष्टप्रद हों॥

१२. महाराहुलोवादसुत्त—यह सूत्र भी भगवान् द्वारा जेतवन में आयुष्मान् राहुल को ही उपदिष्ट किया है। इसमें कहा गया है कि रूप-वेदना आदि पांचों स्कन्धों में, पाँचों धातुओं में अनात्मभावना करनी चाहिये। भिक्षु को चारों ब्रह्मविहारों (मैत्री करुणा आदि) तथा आनापानस्मृति की भावना करनी चाहिये॥

१३. चूळमालुक्यसुत्त—श्रावस्ती के जेतवन में मालुक्यपुत्र को उपदेश करते हुए भगवान् ने इस सूत्र के माध्यम से 'यह लोक शाश्वत है' आदि प्रसिद्ध दश प्रश्नों का व्याकरण न करने की बात शल्यविद्ध की उपमा के सहारे समझायी है॥

१४. महामालुक्यसुत्त—श्रावस्ती के जेतबन में ही भगवान् द्वारा मालुक्यपुत्र-प्रमुख भिक्षुओं को उपदिष्ट इस सूत्र में पाँच अवरभागीय संयोजन, उनके प्रहाण का मार्ग एवं चेतोविमुक्ति तथा प्रज्ञाविमुक्ति का भेद बताया गया है॥

१५. भद्दालिसुत्त—श्रावस्ती के जेतवनराम में भिक्षुओं को उपदिष्ट इस सूत्र में भगवान्, एक समय के भोजन का माहात्म्य बताते हुए उस पर दृढ़तापूर्वक डटे रहने की भिक्षुओं को आज्ञा देते हैं। प्रसङ्गवश इसमें अच्छी नस्ल के घोड़े के दृष्टान्त के सहारे अच्छे-बुरे, दोषी निर्दोष भिक्षुओं का भी वर्णन हुआ है॥

१६. लटुकिकोपमसुत्त—सूत्र का उपदेश-स्थल है अङ्गुत्तराप देश का आपण ग्राम, उपदेष्टा हैं भगवान् बुद्ध और उपदेश्य है आयुष्मान् उदायी। इस सूत्र में--उदायी भिक्षु का भगवान् के प्रति श्रद्धा प्रकट करना, भगवान् द्वारा मूर्ख और जिज्ञासु का भेद बताना, एवं प्रसङ्गवश चार प्रकार के पुद्गलों का वर्णन, तथा सर्वसंयोजनप्रहाण का उपाय--इन बातों का विशदीकरण है॥

१७. चातुमसुत्त--भगवान् कभी चातुमा के आमलकीबन में विहार कर रहे

थे। उस समय कहीं से चारिका करते हुए आयुष्मान् सारिपुत्र मोग्गल्लायन आदि के साथ कुछ भिक्षु विहार में आये, वे अपना आसन आदि बिछाते हुए जोर-जोर से बातें करने लगे। भगवान् को यह कोलाहल पसन्द नहीं आया। भिक्षुचर्या के विरुद्ध होने के कारण, दण्डस्वरूप भगवान् ने भिक्षुओं को बिहार छोड़ देने का आदेश दिया। भिक्षु, विहार छोड़, बाहर चल दिये। परन्तु चातुमावासी शाक्यों की प्रार्थना पर भगवान् ने उन्हें क्षमा कर वापस बुला लिया और उन्हें जल की तरंगों, मगरमच्छों, गहरे भ्रमरों एवं नरभक्षी मत्स्यों के दृष्टान्तों से १. क्रोध एवं परेशानी, २. पेटूपन, ३. पाँच कामभोग एवं ४. नारी के प्रति राग से दूर रहने का उपदेश किया।

१८. नळकपानसुत्त--भगवान् ने इस सूत्र का उपदेश करते हुए कौसलदेश-स्थित नळकपान ग्राम के पलासवन में अनुरुद्ध आदि भिक्षुओं को स्वकर्तव्य-बोध कराया था। प्रसङ्गवश उन्होंने यह भी समझाया कि वे मृत पुरुष का पुनर्जन्म-विषयक व्याकरण क्यों करते हैं॥

१९. गोलियानिसुत्त--इसमें राजगृह के कलन्दकनिवाप में आयुष्मान् सारिपुत्र द्वारा आरण्यक भिक्षु गोलियानि को सङ्घ में रहते समय का आचार-व्यवहार बताया है। वे कहते हैं कि आरण्यक भिक्षु को सङ्घ में रहते समय बैठने-उठने में कुशलता, साथियों का सम्मान, शिष्टता, बिहार में समय से आना-जाना, गृहस्थ के घर में बार बार न आना-जाना, वहाँ विनीत रहना, अधिक न बोलना, मधुरभाषी होना, इन्द्रियों पर संयम रखना, भोजन-मात्रा का ज्ञान, जागरण में तत्परता, उद्योगसम्पन्नता, उपस्थित-स्मृति, समाहित एवं प्रज्ञावान् होना, धर्म और बुद्धोपदेश तथा आरूप्यध्यान में मन लगाना एवं लोकोत्तर शक्ति-प्राप्ति में ध्यान--आदि बातों पर सतर्क रहना चाहिए॥

२०. कीटागिरिसुत्त--इस सूत्र के उपदेश का स्थान काशी जनपद, उपदेष्टा भगवान् बुद्ध, तथा उपदेश्य भिक्षुसङ्घ है। इसमें भगवान् ने रात्रिभोजन के त्याग की महत्ता बतायी है। साथ ही उन्होंने प्रमादरहित हो कर्तव्य या अकर्तव्य की पूर्ति व त्याग का उपदेश करते हुए ज्ञान की क्रमशः आराधना का उपाय बताया है।

३. परिब्बाजकवग्ग--

इस तृतीय वर्ग में भी १० सूत्र परिगणित हैं, यथा--

२१. तेविज्जवच्छ, २२. अग्गिवच्छगोत्त, २३. महावच्छगोत्त, २४. दीघनख, २५. मागण्डिय, २६. सन्दकसुत्त, २७. महासकुलुदायी, २८. समणमुण्डिक, २९. चूळ-सकुलुदायी एवं ३०. वेखनख सुत्त। इन सभी सूत्रों में किसी न किसी परिव्राजक को ही उपदेश किया गया है। इन सूत्रों के संक्षेप में वर्ण्य विषय ये है--

२१. तेविज्जवच्छसुत्त—भगवान् द्वारा वैशाली की कूटागारशाला में वत्सगोत्र परिव्राजक को उपदिष्ट इस सूत्र में भगवान् की सर्वज्ञता, उनका त्रैविद्य होना और प्रसङ्गवश अन्य सम्प्रदायों के साधकों विशेषतः आजीवकों की दुर्गति का वर्णन किया गया है ॥

२२. अग्गिवच्छगोत्तसुत्त--श्रावस्ती के जेतवन में विराजमान भगवान् द्वारा यह सूत्र भी वत्सगोत्र परिव्राजक को ही सम्बोधित किया गया है। इसमें भगवान् कहते हैं--१. तथागत 'लोक शाश्वत है'-आदि मतवादों से दूर हैं; क्योंकि लोक-प्रचलित मतवादों से दूर रहकर ही साधक दोषविमुक्तचित्त हो सकता है। २. तथागत ज्ञानियों में सर्व श्रेष्ठ हैं। ३. तथागत के धर्मोपदेश में सार (तत्त्वमात्र) रहता है, व्यर्थ का वितण्डावाद नहीं ॥

२३. महावच्छगोत्तसुत्त--राजगृह के कलन्दकनिवाप में भगवान् द्वारा वत्स-गोत्र परिव्राजक को उपदिष्ट इस सूत्र में कुशल-अकुशल धर्मों का उपदेश एवं श्रावक-श्राविकाओं की आराधना-विधि की प्रशंसा की गयी है। उपदेश से प्रभावित हो वत्सगोत्र परिव्राजक द्वारा भगवान् का शिष्यत्व ग्रहण करने के बाद, वह भगवदुपदिष्ट साधनाक्रम से साधना करता हुआ एकदिन अर्हत्त्व पा लेता है ॥

२४. दीघनखसुत्त—भगवान् द्वारा यह सूत्र राजगृहस्थ गृध्रकूट पर्वत की शूकरखात में दीघनख परिव्राजक को उपदिष्ट हुआ है। इस सूत्र में सभी साम्प्रदायिक व दार्शनिक मतों के विषय में विवेकपूर्वक निर्णय हेतु परामर्श देते हुए भगवान् द्वारा धर्मों की अनित्यदेशना एवं धर्मों की अभिज्ञा का प्रहाण बताया गया है ॥

२५. मागण्डियसुत्त--कुरुदेशस्थ कम्मासदम्म-ग्राम वासी भारद्वाजगोत्र की अग्निशाला में विराजमान भगवान् द्वारा मागण्डिय परिव्राजक को इस सूत्र का उपदेश हुआ है। इसमें मागण्डिय परिव्राजक द्वारा भगवान् पर लगाये भ्रूणघ्नता के आरोप का खण्डन करते हुए आध्यात्मिक रूप से शान्तचित्त भिक्षु के कर्मों का विस्तृत वर्णन, एवं आरोग्य व निर्वाण सुख की प्रशंसा की है ॥

२६. सन्दकसुत्त--यह सूत्र भी कौशाम्बी के घोषिताराम में भगवान् द्वारा मागण्डिय परिव्राजक को ही उपदिष्ट हुआ है। सूत्र के पूर्वभाग में आयुष्मान् आनन्द ने मागण्डिय को भगवदुपदिष्ट चार प्रकार की मिथ्या साधनाओं तथा चार प्रकार की सम्यक्साधनाओं का विस्तृत विवरण दिया और बताया कि कुशलधर्मों की प्राप्ति करने में असमर्थ होने के कारण मिथ्यासाधनाओं में समय नष्ट न कर सम्यक्साधनाओं के अभ्यास में ही मन लगाना चाहिए। अन्त में आयुष्मान् आनन्द ने तथागतसम्मत दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन भी किया है ॥

२७. महासकुलुदायीसुत्त--एक समय भगवान् राजगृह के 'मयूरनिवाप' नामक परिव्राजकाराम में पधारे। वहाँ परिव्राजकों ने यह प्रसङ्ग उठा दिया कि वर्तमान में उपलब्ध पूरण काश्यप आदि गणाचार्यों में कौन अपनी साधना व आचार के कारण, श्रावकों में सत्कृत एवं सम्मानित है? काफी विचार-विमर्श के बाद यही सर्वसम्मत निश्चय हुआ कि वर्तमान में उपलब्ध गणाचार्यों में भगवान् बुद्ध ही इदानीन्तन समाज में अत्यन्त सत्कृत व सम्मानित हैं। भगवान् ने अपने इस सत्कार-सम्मान का कारण अपनी पाँच विशेषताएँ बतायीं। जैसे--१. तथागत की उत्तम शीलस्कन्धसम्पन्नता, २. उनके द्वारा स्वयं साक्षात्कृत धर्मों का उपदेश, ३. उनकी परमप्रज्ञासम्पन्नता, ४. उनके द्वारा विहित आर्यसत्यदेशना, एवं ५. उनके प्रायः सभी श्रावकों का अभिज्ञापारमिता प्राप्त होकर 'अर्हत्' पद तक पहुँचना ।।

२८. समणमुण्डिकसुत्त--यह सूत्र श्रावस्ती के जेतवनाराम में भगवान् द्वारा पञ्चकाङ्गस्थपति को उपदिष्ट हुआ है। इसमें भगवान् ने कुशल धर्मों पर आचरण करने वाले पुद्गल की दस विशेषताओं (धर्मों) का विस्तृत वर्णन किया है।

२९. चूलसकुलुदायिसुत्त—यह सूत्र भी राजगृह के मयूरनिवाप परिव्राजकाराम में सकुलउदायी परिव्राजक को भगवान् द्वारा उपदिष्ट हुआ था। इसमें भगवान् ने अपने क्रियाकलाप की विशेषताएँ बतायी है। १. तथागत पूर्वापरजन्मविषयक सभी छोटे बड़े प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ हैं, २. उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म सर्वश्रेष्ठ है; उन्होंने ऐकान्तिक सुखमय लोक का साक्षात्कार किया है। भगवान् की इन विशेषताओं से प्रभावित हो सकुलउदायी परिव्राजक ने उनसे दीक्षा लेने का मन बनाया ।।

३०. वेखनससुत्त—इसमें श्रावस्ती के जेतवनाराम में वेखनस परिव्राजक के इस मत का खण्डन किया है कि आत्मा उत्तम वर्णवाला है, या आत्मा वैदूर्यमणि-सदृश वर्ण वाला है। प्रसङ्गवश कामगुणों से प्राप्त साधारण कामसुख से अपेक्षाकृत उत्तम कामसुख की भी श्रेष्ठता सिद्ध की है ।।

४. राजवग्ग—

चतुर्थ राजवग्ग में भी १० सूत्र हैं, जैसे—३१. घटिकारसुत्त, ३२. रट्ठपालसुत्त, ३३. मखादेवसुत, ३४. मधुरसुत्त, ३५. बोधिराजकुमारसुत्त, ३६. अंगुलिमालसुत्त, ३७. पियजातिकसुत्त, ३८. बाहितिकसुत्त, ३९. धम्मचेतियसुत्त, एवं ४०. कण्णकत्थल-सुत्त। ये सभी सूत्र यथाप्रसङ्ग किसी न किसी राजा या राजकुलोत्पन्न व्यक्ति को ही उपदिष्ट हुए हैं।

३१. **घटिकारसुत्त**—भगवान् ने, कौसल प्रदेश के वेगलिङ्ग ग्राम में चारिका करते हुए, आयुष्मान् आनन्द को इस सूत्र का उपदेश किया है। इसमें भगवान् ने बताया है कि कैसे पूर्वकाल में हुए तथागत काश्यप ने अपने उपासक घटिकार कुम्भकार को काशिराज किकी से अधिक महत्त्व दिया। उस घटिकार ने अपना जीवन-सर्वस्व भगवान् तथागत को समर्पित कर उनकी उपासना की थी॥

३२. **रट्ठपालसुत्त**—इस सूत्र का उपदेश भगवान् ने कुरु प्रदेश के थुल्लकोट्ठिक ग्राम में राष्ट्रपाल कुलपुत्र को किया था। इसमें बताया गया है कि कैसे राष्ट्रपाल ने अपने माता-पिता को विवश कर उनसे भगवान् के द्वारा उपदिष्ट धर्म में प्रव्रजित होने की स्वीकृति ली। प्रव्रज्या लेकर उसने अर्हत्त्व प्राप्त किया। अर्हत्त्व-प्राप्ति के बाद वह कभी अपने माता-पिता को दर्शन देने हेतु अपने ग्राम गया। ग्राम में उसके माता-पिता तथा उसकी स्त्री ने उसको सब तरह से बाध्य किया कि वह प्रव्रज्या छोड़, पुनः गृहस्थ धर्म स्वीकार कर ले। परन्तु वह गृहस्थ धर्म के प्रति पूर्ण उपेक्षा दिखाते हुए समीप के ही, राजा कौरव्य द्वारा निर्मापित, मिगचीर उद्यान में जाकर ध्यानभावनारत हो गया। उसी समय राजा कौरव्य उनके दर्शन हेतु मिगचीर उद्यान गये। आयुष्मान् राष्ट्रपाल राजा कौरव्य द्वारा संकेतित गृहस्थ धर्म की चार कमजोरियों (१. बुढ़ापा, २. रोग, एवं ३. कामभोग और ४. नाते रिश्तेदारों की कमी) का खण्डन करते हुए भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्माराधना के चार प्रयोजन बताये—१. यह संसार विनाशी है, २. यह संसार अरक्षित (त्राणशून्य) है, ३. इस संसार में अपना कहने लायक कुछ नहीं है, एवं ४. कितना कुछ पाने पर भी यहाँ असन्तोष (अतृप्ति) ही बना रहता है। इन्हीं कारणों से गृहस्थ धर्म से प्रव्रज्या श्रेष्ठ है॥

३३. **मखादेवसुत्त**--मिथिला के मखादेव-आम्रवन में साधना हेतु बिराजमान भगवान् की अचानक मुस्कराहट से आश्चर्यचकित आनन्द के पूछने पर भगवान् ने बताया--पूर्वकाल में इसी मिथिला में मखादेव नामक धार्मिक राजा, धर्म में स्थित हो, राज्य करते थे। उन्होंने बुढ़ापा आने पर, अपने शिर पर सफेद बाल दिखायी देने पर, वे अपने पुत्र को राज्यभार सौंप, तथागतोपदिष्ट धर्म की प्रव्रज्या ले ली। जाते समय उन्होंने अपने पुत्र को भी यह आदेश दिया कि बुढ़ापा आने पर तुम भी अपने पुत्र को राज्यभार सौंप प्रव्रजित हो जाना, ताकि अपना यह राजवंश निरन्तर वृद्धिङ्गत ही रहे, कभी विनष्ट न हो। यों, उस राजा मखादेव द्वारा स्थापित यह परम्परा उनके वंश में हजारों वर्ष चली। राजा निमि, उस परम्परा में, अन्तिम राजा हुआ, जिसने इस परम्परा का निर्वाह किया। उसने धर्मपूर्वक राज्य करने से प्राप्त आनन्द के कारण, स्वर्ग में रहने के इन्द्र के आमन्त्रण को भी ठुकरा दिया। परन्तु

राजा निमि के पुत्र कडारजनक ने यह परम्परा उच्छिन्न कर दी। वह मृत्युपर्यन्त राज्यसुख ही भोगता रहा। उसने प्रव्रज्या नहीं ली। यों राजा मखादेव का वह वंश, कुलक्रमागत परम्परा के उच्छिन्न होने कारण, कुछ ही समय में नामशेष रह गया। भगवान् ने भिक्षुओं को उपदेश किया कि वंशपरम्परा का पालन ही कल्याणपरम्परा का जनक है॥

३४. मधुरसुत्त—यह सूत्र मथुरा (मधुरा) के गुन्दावन में राजा अवन्तिपुत्र को आयुष्मान् महाकच्चान द्वारा उपदिष्ट हुआ है। इसमें आयुष्मान् महाकच्चान ने ब्राह्मणों द्वारा स्थापित जातिवाद का प्रबल तर्कों से खण्डन किया है। और भगवान् बुद्ध द्वारा अनुमोदित कर्मवाद का सिद्धान्त परिपुष्ट किया है॥

३५. बोधिराजकुमारसुत्त—यह सूत्र भर्ग प्रदेश के सुंसुमार गिरि पर्वत के भेषकडावन में साधना कर रहे भगवान् द्वारा बोधि राजकुमार को उपदिष्ट है। इसमें भगवान् ने बताया है कि सुखमय साधनों से कठिन कार्य (निर्वाण) प्राप्त नहीं किये जा सकते। इसी बात को सिद्ध करने के लिए भगवान् ने अपने बुद्धत्व काल से पूर्व की दुष्करचर्या का तथा साथ ही आळार कालाम एवं उद्दक रामपुत्र से प्राप्त शिक्षा का और स्वयं साक्षात्कृत धर्मों का विस्तृत वर्णन किया है।

३६. अंगुलिमालसुत्त—श्रावस्तीस्थित जेतवनराम में साधना हेतु विराजमान भगवान् ने इस सूत्र का उपदेश किया है। इसमें अंगुलिमाल के प्रारम्भिक पापमय जीवन, फिर भगवान् के उपदेश से प्रव्रज्या, उसके द्वारा दिखायी गयी ऋद्धि, उस पर राजा प्रसेनजित् कौसल का अनुकूल होना और उसके द्वारा अर्हत्त्व की प्राप्ति एवं तत्कृत भगवान् की स्तुति का वर्णन है॥

३७. पियजातिकसुत्त—श्रावस्ती के जेतवनराम में विहार करते हुए भगवान् ने राजा प्रसेनजित् कौसल की रानी मल्लिका को उपदेश करते हुए प्रिय लगने वाले इस सूत्र में सांसारिक सुखों की अप्राप्ति से होने वाले दुःख के उत्पाद से ही मनुष्य को शोक, परिदेव, दुःख दौर्मनस्य आदि अनुभूत होते हैं—यह बताया है॥

३८. वाहितिकसुत्त—यह सूत्र भी श्रावस्ती के जेतबनराम में विहार करते हुए भगवान् द्वारा आयुष्मान् आनन्द के माध्यम से राजा प्रसेनजित् कौसल को उपदिष्ट हुआ है। इसमें लोक-निन्दा की ओर ढकेलने वाले कायिक वाचिक एवं मानसिक कर्मों के सम्पादन का निषेध किया है और लोक में अभिनन्दनीय कायिक मानसिक कर्मों के सम्पादन हेतु प्रोत्साहित किया गया है॥

३९. धम्मचेतियसुत्त—यह सूत्र शाक्य प्रदेश के मेदळुम्प ग्राम में साधना करते समय भगवान् द्वारा राजा प्रसेनजित् कौशल को उपदिष्ट हुआ है। इसमें—राजा प्रसेनजित् द्वारा बुद्ध-धर्म-सङ्घ का अत्यधिक श्रद्धाभाव से गौरवगान करने पर, भगवान्

ने राजा से पूछा कि उसका इस त्रिशरणगमन के प्रति इतना आदर क्यों है ? राजा ने इसके छह कारण बताये। जैसे—१. भगवान् की धर्मव्याख्यान की विशिष्ट शैली, २. भिक्षुओं में एकता, ३. भिक्षुओं का सब स्थितियों में सन्तुष्ट रहना, ४. धर्मानुशिष्ट भिक्षुपरिषद् एवं ५. वाद-विवाद की इच्छा लेकर आने वाले पण्डित जनों का भी भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्म से प्रभावित हो उसके धर्म में प्रव्रज्या ग्रहण कर लेना, यहां तक कि ६. राजभृत्यों का भी, जिनका समस्त जीवनयापन राज्याश्रित है, राजा की अपेक्षा भगवान् के प्रति ही अधिक श्रद्धा रखना। भगवान् ने भी इन अच्छाइयों का अनुमोदन किया ॥

४०. कण्णकत्थलसत्त—यह सूत्र उरुञ्ञा देश के कर्णकस्थल के मृगवन में साधना हेतु विराजमान भगवान् द्वारा राजा प्रसेनजित् कौशल को ही उपदिष्ट हुआ है। इसमें भगवान् ने राजा के १. चतुर्वर्ण (क्षत्रिय-ब्राह्मण-वैश्य-शूद्र) विषयक शुद्धि एवं २. ब्रह्मा (देवताओं) के इस लोक में जन्म विषयक प्रश्नों का उत्तर विस्तार से से दिया गया है ॥

५. ब्राह्मणवर्ग—

इस वर्ग में भी दस सूत्रों (के माध्यम से धर्म) का व्याख्यान है। वे दस सूत्र ये हैं—४१. ब्रह्मायु ४३. शैल, ४२. आश्वलायन, ४४. घोटमुख, ४५. एसुकारी ४६. चङ्की, ४७. धनञ्जानि, ४८. वाशिष्ठ, ४९. शुभ एवं ५०. सङ्गारव सूत्र। इन दश सूत्रों में भी किसी न किसी ब्राह्मण को ही उपदेश हुआ है। इन दसों सूत्रों का क्रमिक संक्षेप यह है—

४१. ब्रह्मायुसुत्त —इस सूत्र में, जब भगवान् विदेह प्रदेश में चारिका कर रहे थे तब, ब्रह्मायु ब्राह्मण द्वारा भगवान् के शरीर में स्थित बत्तीस (३२) महापुरुषत्वबोधक लक्षणों का तथा भगवान् की दैनिक क्रियाओं की उत्तमता का वर्णन है। भगवान् की इन अच्छाइयों से प्रभावित हो ब्रह्मायु ब्राह्मण भगवान् का उपासक बन गया। भगवान् ने उस ब्राह्मण को आर्यसत्यचतुष्टय का उपदेश किया। इस उपदेश के प्रभाव से धर्म की आराधना करते-करते वह ब्राह्मण देहपात के बाद अनागामित्व को प्राप्त हुआ ॥

४२. सेलसुत्त— यह सूत्र अंगुत्तराप देश के आपण निगम में भगवान् द्वारा शैल नामक ब्राह्मण को उपदिष्ट हुआ है। शैल ब्राह्मण भगवान् के शरीर में बत्तीस महापुरुष-लक्षणों को देखकर अत्यन्त श्रद्धावान् हो उठा। और उसने भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्म में अपने सभी शिष्यों सहित प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। अन्त में वह धर्म की आराधना करते-करते 'अर्हत्' बन गया ॥

४३. अस्सलायनसुत्त—इस सूत्र में श्रावस्ती के जेतवनाराम में भगवान् ने आश्वलायन ब्राह्मण को उपदेश किया है। इसमें उन्होंने आश्वलायन ब्राह्मण द्वारा स्थापित जातिवाद का प्रबल युक्तियों से खण्डन किया है। प्रसङ्गवश भगवान् ने जातिवाद सिद्धान्त के विरोधी असित देवल ऋषि के साथ सप्तर्षियों का उपाख्यान भी प्रस्तुत किया है॥

४४. घोटमुखसुत्त—यह सूत्र वाराणसी के खेमीय आम्रवन में आयुष्मान् उदयन द्वारा घोटमुख ब्राह्मण को उपदिष्ट हुआ है। इसमें उन्हीं आत्मन्तप आदि चतुर्विध पुद्गलों का विस्तृत वर्णन है, जो पीछे कन्दरकसुत्त में बताये जा चुके हैं। साथ ही साथ दो प्रकार की परिषदों (मानवसमूहों) का भी वर्णन है। घोटमुख ब्राह्मण इस उपदेश से बहुत प्रभावित हुआ और उसने त्रिशरणगमन स्वीकार किया। उसने आयुष्मान् उदयन के आदेश से पाटलिपुत्र नगर में 'घोटमुखी' नामक उपस्थान-शाला भिक्षुओं के लिए बनवायी॥

४५. चङ्कीसुत्त—इस सूत्र में कौसल देश के ओपसाद ग्राम में चङ्की ब्राह्मण, एवं कापटिक भारद्वाज का भगवान् से वेदों की सत्यता विषयक संवाद वर्णित है। अन्त में भगवान् ने सत्य की रक्षा, एवं सत्यानुबोध, व सत्यप्राप्ति के उपाय विस्तार से बताये हैं॥

४६. एसुकारी सुत्त—इस सूत्र में श्रावस्ती-जेतवन में विराजे भगवान् बुद्ध ने एसुकारी ब्राह्मण को चार प्रकार के सेवा-धर्मों (परिचर्याओं) की वास्तविकता का उपदेश किया है। साथ ही ब्राह्मण आदि चारों वर्णों का तथा ब्राह्मणों द्वारा प्रव्रज्या के सहारे निर्वाणाधिगति को ही प्रधान कर्तव्य बताया है॥

४७. धनञ्जानिसुत्त—इस सूत्र में आयुष्मान् सारिपुत्र ने धनञ्जानि ब्राह्मण को कुपथ (अधर्माचरण) से दूर हट, अष्टाङ्गिक मार्ग के सहारे, सत्पथ पर चलने का उपदेश देते हुए ब्रह्मलोक पहुँचने का वहाँ रहकर सुखोपभोग का उपाय बताया है। यह सूत्र राजगृह के कलन्दक निवाप में उपदिष्ट हुआ था॥

४८. वासेट्ठसुत्त—इस सूत्र में भगवान् ने इच्छानङ्गल वनखण्ड में विहार करते समय, वासिष्ठ एवं भारद्वाज शिष्यों का 'जन्मना जाति' व 'कर्मणा जाति' का विवाद सुलझाते हुए कर्मणा जाति का महत्त्व समझाया है। भगवान् ने बताया कि जब संसार के अन्य जलचर, स्थलचर जीवों में, पशु-पक्षियों में, कीट-पतङ्गों में किसी प्रकार की 'जन्मना जाति' का विवाद नहीं है तो मनुष्यों में यह विवाद क्यों? जब कि उनमें हाथ पैर, नाक-कान आदि सभी अवयव समान रूप से एक जैसे ही पाये जाते हों। अतः मनुष्यों में जो जैसा कर्म करता हो उसकी वही जाति माननी चाहिए।

हमारे मत में ब्राह्मण वही है जो सर्वसंयोजन प्रहाण कर क्षीणास्रव होते हुए सम्यग्ज्ञान को प्राप्त हो चुका हो ॥

४९. सुभसुत्त—यह सूत्र श्रावस्ती के जेतवनाराम में भगवान् द्वारा तौदेयपुत्र माणव को उपदिष्ट है। इसमें तौदेयपुत्र माणव द्वारा किये गये प्रश्न के उत्तर में भगवान् ने गृहस्थ और प्रव्रजितों के दैनिक कर्मों का कुशल-अकुशल भेद से विभाजन कर कुशल कर्मकारी को ही श्रेष्ठ बताया है। प्रसङ्गवश रूढिवादी ब्राह्मणों के कथन को अन्धपरम्परा की उपमा देते हुए उनका खण्डन कर लोकोत्तर मानवधर्म के साक्षात्कर्ता श्रमणों की ही श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। तौदेयपुत्र पर अनुकम्पा कर उसे ब्रह्मलोक तक पहुँचने का उपाय बताया है ॥

५०. सङ्गारवसुत्त—इस सूत्र का कौसल देश में चारिका करते हुए भगवान् ने चञ्चलिकल्प ग्राम में सङ्गारव माणवक को उपदेश किया है। इसमें भगवान् ने दृष्टधर्माभिज्ञावसानपारमिताप्राप्त ज्ञानियों का त्रिधा बिभाग कर उनमें स्वयं को श्रेष्ठ बताया है। साथ ही माणवक के कुशल कर्मों में उत्साहवर्धनार्थ उसे इसी जन्म में स्वकृत पूर्व की बोधिसत्त्वचर्या भी विस्तार से सुनायी है ॥

मज्झिमनिकाये

मज्झिमपण्णासकस्स

राजवग्ग-ब्राह्मणवग्गानं

विषयानुक्कमो

५. ब्राह्मणवग्गो १२४०-१३६६

सुत्तपिटके

मज्झिमनिकायपालि

(२. मज्झिमपण्णासकस्स अवसिट्ठो भागो)

[हिन्दी-अनुवादसहितो]

३१. घटिकारसुत्तं

१. वेगळिङ्गे भगवा कस्सपो

१. एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा [N. 271, B. 236, R. 45] कोसलेसु चारिकं चरति महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं । अथ खो भगवा मग्गा ओक्कम्म अञ्ञतरस्मिं पदेसे सितं पात्वाकासि । अथ खो आयस्मतो आनन्दस्स एतदहोसि—"को नु खो हेतु, को पच्चयो भगवतो सितस्स पातुकम्माय ? न अकारणेन तथागता सितं पातुकरोन्ती" ति । अथ खो आयस्मा आनन्दो एकंसं चीवरं कत्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु, को पच्चयो भगवतो सितस्स पातुकम्माय ? न अकारणेन तथागता सितं पातुकरोन्ती" ति ।

"भूतपुब्बं, आनन्द, इमस्मिं पदेसे वेगळिङ्गं नाम गामनिगमो अहोसि इद्धो चेव फीतो च बहुजनो आकिण्णमनुस्सो । वेगळिङ्गं खो, आनन्द, गामनिगमं कस्सपो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो उपनिस्साय विहासि । इध सुदं, आनन्द, कस्सपस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स आरामो अहोसि । इध सुदं, आनन्द, कस्सपो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो निसिन्नो भिक्खुसङ्घं ओवदती"

---

३१. घटिकारसुत्त

१. वेगलिङ्ग में भगवान् काश्यप

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) कौसल प्रदेश में अपने विशाल भिक्षुसङ्घ के साथ चारिका कर रहे थे । तब भगवान् ने मार्ग से हट, एक स्थान की ओर संकेत कर स्मित (मन्द हास्य=मुस्कान) प्रकट किया । तब (भगवान् के पीछे चल रहे) आयुष्मान् आनन्द को यह (विचार) हुआ— 'भगवान् की इस मुस्कुराहट का क्या कारण है, क्या प्रत्यय (आलम्बन) है ? (क्योंकि) तथागत विना कारण नहीं मुस्कुराया करते !" इसके बाद आयुष्मान् आनन्द ने चीवर को एक कन्धे पर कर, जिधर भगवान् थे उधर प्रणाम कर, भगवान् से यों पूछा—"भन्ते ! आपकी इस मुस्कुराहट का क्या कारण है, क्या प्रत्यय है ! (क्योंकि) तथागत विना कारण नहीं मुस्कुराया करते !"

"आनन्द ! पहले कभी इस प्रदेश में वेगलिङ्ग नामक ग्राम-निगम था, जो समृद्ध, धन-धान्यसम्पन्न, तथा बहुजनाकीर्ण था । आनन्द ! (एक समय) अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् काश्यप (इसी) वेगलिङ्ग ग्राम के पास साधनाहेतु विराजमान हुए थे । आनन्द ! यहाँ अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् काश्यप का आराम (साधना-विहार) था । आनन्द ! यहाँ बैठकर, अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् काश्यप भिक्षुसङ्घ को धर्मोपदेश करते थे । तब आयुष्मान् आनन्द ने अपनी सङ्घाटी चौहरी

ति। अथ खो आयस्मा आनन्दो चतुग्गुणं सङ्घाटिं पञ्ञापेत्वा भगवन्तं एतदवोच—"तेन हि, भन्ते, भगवा निसीदतु एत्थ। अयं भूमिपदेसो द्वीहि अरहन्तेहि सम्मासम्बुद्धेहि परिभुत्तो भविस्सती" ति। निसीदि भगवा पञ्ञत्ते आसने। निसज्ज खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—

"भूतपुब्बं, आनन्द, इमस्मिं पदेसे वेगळिङ्गं नाम गामनिगमो अहोसि इद्धो चेव फीतो च बहुजनो आकिण्णमनुस्सो। वेगळिङ्गं खो, आनन्द, गामनिगमं कस्सपो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो उपनिस्साय विहासि। इध सुदं, [N. 272] आनन्द, कस्सपस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स आरामो अहोसि। इध सुदं, आनन्द, कस्सपो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो निसिन्नो [R. 46] भिक्खुसङ्घं ओवदति।

२. "वेगळिङ्गे खो, आनन्द, गामनिगमे घटिकारो नाम कुम्भकारो [B. 237] कस्सपस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स उपट्ठाको अहोसि अग्गुपट्ठाको। घटिकारस्स खो, आनन्द, कुम्भकारस्स जोतिपालो नाम माणवो सहायो अहोसि पियसहायो। अथ खो, आनन्द, घटिकारो कुम्भकारो जोतिपालं माणवं आमन्तेसि—'आयाम, सम्म जोतिपाल, कस्सपं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं दस्सनाय उपसङ्कमिस्साम। साधुसम्मतं हि मे तस्स भगवतो दस्सनं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्सा' ति। एवं वुत्ते, आनन्द, जोतिपालो

कर, एक ओर बिछा, भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! भगवान् यहाँ विराजें, यों यह भूमिप्रदेश दो अर्हत् सम्यक्सम्बुद्धों द्वारा उपभोग का सौभाग्य पा सकेगा।" भगवान् बिछे आसन पर विराजे। विराज कर, भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से यों कहा—

"आनन्द! पहले कभी इस प्रदेश में समृद्ध, धन-धान्यसम्पन्न, तथा बहुजनाकीर्ण वेगलिङ्ग नामक एक ग्रामनिगम था। आनन्द! अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् काश्यप इस वेगलिङ्ग ग्राम के पास साधनाहेतु विराजमान हुए थे। आनन्द! यहाँ...भगवान् काश्यप का आराम था। आनन्द! यहाँ बैठकर...भगवान् काश्यप भिक्षुसङ्घ को धर्मोपदेश करते थे।

२. "आनन्द! इस वेगलिङ्ग ग्राम में घटिकार नामक कुम्भकार (कुम्हार) ...भगवान् काश्यप का सेवक रहता था, जो कि भगवान् के तत्कालीन सेवकों में श्रेष्ठ था। आनन्द! उस घटिकार कुम्भकार का जोतिपाल नामक माणवक (तरुण या युवक) एक साथी था, जो उसे सर्वप्रिय था। आनन्द! तब घटिकार कुम्भकार ने जोतिपाल माणवक से यों कहा—'आओ, सौम्य जोतिपाल! ...भगवान् काश्यप के दर्शनहेतु चलें। उन अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् काश्यप का दर्शन

माणवो घटिकारं कुम्भकारं एतदवोच—'अलं, सम्म घटिकार ! किं पन तेन मुण्डकेन समणकेन दिट्ठेना' ति ? दुतियं पि खो, आनन्द...पे०...ततियं पि खो, आनन्द, घटिकारो कुम्भकारो जोतिपालं माणवं एतदवोच—'आयाम, सम्म जोतिपाल, कस्सपं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं दस्सनाय उपसङ्कमिस्साम। साधुसम्मतं हि मे तस्स भगवतो दस्सनं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्सा' ति। ततियं पि खो, आनन्द, जोतिपालो माणवो घटिकारं कुम्भकारं एतदवोच—'अलं, सम्म घटिकार ! किं पन तेन मुण्डकेन समणकेन दिट्ठेना' ति ?

" 'तेन हि, सम्म जोतिपाल, सोत्तिसिनानिं आदाय नदिं गमिस्साम सिनायितुं' ति।

" 'एवं सम्मा' ति खो, आनन्द, जोतिपालो माणवो घटिकारस्स कुम्भकारस्स पच्चस्सोसि। अथ खो, आनन्द, घटिकारो च कुम्भकारो जोतिपालो च माणवो सोत्तिसिनानिं आदाय नदिं अगमंसु सिनायितुं।

३. "अथ खो, आनन्द, घटिकारो कुम्भकारो जोतिपालं माणवं आमन्तेसि—'अयं, सम्म जोतिपाल, कस्सपस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स अविदूरे आरामो। आयाम, सम्म जोतिपाल, कस्सपं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं दस्सनाय उपसङ्कमिस्साम। साधुसम्मतं हि मे तस्स [N. 273] भगवतो दस्सनं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्सा' ति। एवं वुत्ते, आनन्द, जोति-

---

सज्जनानुमोदित है।' ऐसा कहे जाने पर, जोतिपाल माणवक घटिकार कुम्भकार से यों बोला—'छोड़ो, सौम्य घटिकार ! उस श्रमण मुण्डक के दर्शन से क्या लाभ है ?' आनन्द ! दूसरी बार भी···पूर्ववत्···आनन्द ! तीसरी बार भी घटिकार कुम्भकार ने जोतिपाल माणवक से यह कहा—'आओ सौम्य जोतिपाल !··· दर्शन सज्जनानुमोदित है।' आनन्द ! तीसरी बार भी जोतिपाल माणवक ने घटिकार कुम्भकार से यों कहा—'छोड़ो, सौम्य घटिकार ! उस श्रमण मुण्डक के दर्शन से क्या लाभ है ?"

"तो सौम्य जोतिपाल ! साबुन-गमछा (आदि स्नान की सामग्री) लेकर नहाने के लिये नदी की ओर चलें।"

"आनन्द ! 'यही ठीक है'—ऐसा कहकर जोतिपाल माणवक ने घटिकार कुम्भकार को उत्तर दिया। तब आनन्द ! घटिकार कुम्भकार एवं जोतिपाल माणवक साबुन-गमछा आदि ले स्नानहेतु नदी की ओर चले गये।

३. "आनन्द ! तब घटिकार कुम्भकार ने जोतिपाल माणवक से यों कहा—'सौम्य जोतिपाल ! यह समीप ही···भगवान् काश्यप का आश्रम है। सौम्य जोतिपाल ! आओ, ···भगवान् काश्यप···का दर्शन सज्जनानुमोदित है।' ऐसा कहे

पालो माणवो घटिकारं कुम्भकारं एतदवोच—'अलं, सम्म घटिकार। किं [R. 47] पन तेन मुण्डकेन समणकेन दिट्ठेना' ति ! दुतियं पि खो, आनन्द, ···पे०···ततियं पि खो, आनन्द, घटिकारो कुम्भकारो जोतिपालं माणवं एतदवोच--'अयं, सम्म जोतिपाल, कस्सपस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स अविदूरे आरामो। आयाम, सम्म जोतिपाल, कस्सपं भगवन्तं अरहन्तं [B. 238] सम्मासम्बुद्धं दस्सनाय उपसङ्कमिस्साम। साधुसम्मतं हि मे तस्स भगवतो दस्सनं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्सा' ति। ततियं पि खो, आनन्द, जोतिपालो माणवो घटिकारं कुम्भकारं एतदवोच—'अलं सम्म घटिकार। किं पन तेन मुण्डकेन समणकेन दिट्ठेना' ति ! अथ खो, आनन्द, घटिकारो कुम्भकारो जोतिपालं माणवं ओवट्टिकायं परामसित्वा एतदवोच--'अयं, सम्म जोतिपाल, कस्सपस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स अविदूरे आरामो। आयाम, सम्म जोतिपाल, कस्सपं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं दस्सनाय उपसङ्कमिस्साम। साधुसम्मतं हि मे तस्स भगवतो दस्सनं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्सा' ति। अथ खो, आनन्द, जोतिपालो माणवो ओवट्टिकं विनिवेठेत्वा घटिकारं कुम्भकारं एतदवोच--'अलं, सम्म घटिकार। किं पन तेन मुण्डकेन समणकेन दिट्ठेना' ति ! अथ खो, आनन्द, घटिकारो कुम्भकारो जोतिपालं माणवं सीसंन्हातं केसेसु परामसित्वा एतदवोच--'अयं, सम्म जोतिपाल, कस्सपस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स अविदूरे आरामो। आयाम, सम्म जोतिपाल, कस्सपं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं दस्सनाय उपसङ्कमिस्साम। साधुसम्मतं हि मे तस्स भगवतो दस्सनं अरहतो

जाने पर, आनन्द ! जोतिपाल माणवक ने घटिकार कुम्भकार से यह कहा—'छोड़ो, सौम्य घटिकार··· क्या लाभ है ?' आनन्द ! दूसरी बार भी···पूर्ववत्··· आनन्द ! तीसरी बार भी घटिकार कुम्भकार ने जोतिपाल माणवक से यों कहा---'सौम्य जोतिपाल ! यह समीप ही···सज्जनानुमोदित है।' आनन्द ! तीसरी बार भी जोतिपाल माणवक ने घटिकार कुम्भकार से यह कहा---'छोड़ो, सौम्य घटिकार··· क्या लाभ है ?' आनन्द ! तब घटिकार कुम्भकार ने जोतिपाल माणवक के शरीर पर पहना कपड़ा खींचकर यह कहा---'सौम्य जोतिपाल ! समीप ही···सज्जनानुमोदित है।' आनन्द ! तब जोतिपाल माणवक ने अपना कपड़ा छुड़ाकर, घटिकार कुम्भकार से यह कहा---'छोड़ो सौम्य घटिकार !···क्या लाभ है ?' आनन्द ! तब घटिकार कुम्भकार ने शिर तक (पूरी तरह) नहाये जोतिपाल माणवक के बालों पर हाथ फेरकर यह कहा---'सौम्य जोतिपाल ! समीप ही··· सज्जनानुमोदित है।' आनन्द ! तब जोतिपाल माणवक को यह हुआ---'अरे यह

सम्मासम्बुद्धस्सा' ति। अथ खो, आनन्द, जोतिपालस्स माणवस्स एतदहोसि--'अच्छरियं वत, भो, अब्भुतं वत, भो! यत्र हि नामाय घटिकारो कुम्भकारो इत्तरजच्चो समानो अम्हाकं सीसंन्हातानं केसेसु परामसितब्बं मञ्ञिस्सति; न वतिदं किर ओरकं मञ्ञे भविस्सती' ति घटिकारं कुम्भकारं एतदवोच--'यावता दोहि पि, सम्म घटिकारा' ति?

'यावता दोहि पि, सम्म जोतिपाल। तथा हि पन [N. 274, R. 48] मे साधुसम्मतं तस्स भगवतो दस्सनं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्सा' ति।

'तेन हि सम्म घटिकार, मुञ्च; गमिस्सामा' ति।

४. "अथ खो, आनन्द, घटिकारो च कुम्भकारो जोतिपालो च माणवो येन कस्सपो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा घटिकारो कुम्भकारो कस्सपं भगवन्तं अरहन्तं समासम्बुद्धं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। जोतिपालो पन माणवो कस्सपेन भगवता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा [B. 239] एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो, आनन्द, घटिकारो कुम्भकारो कस्सपं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं एतदवोच—'अयं मे, भन्ते, जोतिपालो माणवो सहायो पियसहायो। इमस्स भगवा धम्मं देसेतू' ति। अथ खो,

---

बहुत आश्चर्य एवं खेद की बात है कि यह घटिकार कुम्भकार नीच जाति का होते हुए भी मेरे जैसे शुद्ध सद्यःस्नात माणवक के शिर के बालों पर हाथ रखना उचित समझे; क्या यह (सामाजिक दृष्टि से मेरे लिये) गयी-गुजरी बात नहीं होगी!' (यह सोचकर वह) घटिकार कुम्भकार से यह बोला----'क्या सौम्य घटिकार! विरुद्ध (मत वाला) होने पर भी?'

"ठीक है, सौम्य जोतिपाल! भले ही वे विरुद्धमत रखते हों तो भी मेरे लिये उन अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् का दर्शन सज्जनानुमोदित है।'

'तो, सौम्य घटिकार! छोड़ो; चलेंगे।'

४. "आनन्द! तब घटिकार कुम्भकार एवं जोतिपाल माणवक जहाँ...भगवान् काश्यप विराजमान थे, वहाँ पहुँचे; पहुँचकर, घटिकार कुम्भकार ने...भगवान् काश्यप को प्रणामकर एक ओर बैठ गया और जोतिपाल माणवक ने---भगवान् काश्यप से कुशल-मङ्गल पूछा। कुशल-मङ्गल पूछ, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे घटिकार कुम्भकार...भगवान् काश्यप से यों बोला----'भन्ते! यह जोतिपाल माणवक मेरा बहुत प्रिय साथी है, बहुत अच्छा साथी है। भगवान् इसे धर्मोपदेश करें।' आनन्द! तब...भगवान् काश्यप ने घटिकार कुम्भकार एवं जोतिपाल

आनन्द, कस्सपो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो घटिकारं च कुम्भकारं जोतिपालं च माणवं धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि। अथ खो, आनन्द, घटिकारो च कुम्भकारो जोतिपालो च माणवो कस्सपेन भगवता अरहता सम्मासम्बुद्धेन धम्मिया कथाय सन्दस्सिता समादपिता समुत्तेजिता सम्पहंसिता कस्सपस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना कस्सपं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कमिंसु।

५. "अथ खो, आनन्द, जोतिपालो माणवो घटिकारं कुम्भकारं एतदवोच—'इमं नु त्वं, सम्म घटिकार, धम्मं सुणन्तो अथ च पन अगारस्मा अनगारियं न पब्बजिस्ससी" ति ?

'ननु मं, सम्म जोतिपाल, जानासि, अन्धे जिण्णे मातापितरो पोसेमी' ति ?

'तेन हि, सम्म घटिकार, अहं अगारस्मा अनगारियं पब्बजिस्सामी' ति।

"अथ खो, आनन्द, घटिकारो च कुम्भकारो जोतिपालो च माणवो येन [R. 49] कस्सपो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा कस्सपं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। [N. 275] एकमन्तं निसिन्नो खो, आनन्द, घटिकारो कुम्भकारो कस्सपं

माणवक को धार्मिक प्रवचन से (उनका चित्त) निगृहीत, उत्साहित, समुत्तेजित तथा सम्प्रहृष्ट किया। तब आनन्द! घटिकार कुम्भकार एवं जोतिपाल माणवक··· भगवान् काश्यप के धर्मप्रवचन से निगृहीत उत्साहित समुत्तेजित तथा सम्प्रहृष्ट हो,···भगवान् काश्यप के कथन का अभिनन्दन एवं अनुमोदन कर, आसन से उठ,···भगवान् काश्यप को प्रणाम एवं प्रदक्षिणा कर एक ओर चले गये।

५. "आनन्द! तब (रास्ते में चलते) जोतिपाल माणवक ने घटिकार कुम्भकार से यह पूछा----'सौम्य घटिकार! यह धार्मिक प्रवचन सुनकर भी आप घर छोड़, बेघर हो क्यों नहीं प्रव्रज्या ग्रहण कर लेते?'

"सौम्य जोतिपाल! तुम तो जानते हो, मैं अन्धे एवं कमजोर माता-पिता को पोसता हूँ।"

'तो सौम्य घटिकार! मैं घर छोड़, बेघर हो प्रव्रजित होऊँगा।'

"आनन्द! तब घटिकार कुम्भकार एवं जोतिपाल माणवक जहाँ···भगवान् काश्यप थे, वहाँ पहुँचे; पहुँचकर,···भगवान् काश्यप को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गये। आनन्द! एक ओर बैठे घटिकार कुम्भकार ने···भगवान् काश्यप से यों निवेदन किया----'भन्ते! यह जोतिपाल माणवक मेरा बहुत प्रिय एवं

भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं एतदवोच—'अयं मे, भन्ते, जोतिपालो माणवो सहायो पियसहायो। इमं भगवा पब्बाजेतू' ति। अलत्थ खो, आनन्द, जोतिपालो माणवो कस्सपस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं।

२. बाराणसियं भगवा कस्सपो

६. "अथ खो, आनन्द, कस्सपो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो अचिरूपसम्पन्ने जोतिपाले माणवे अड्ढमासुपसम्पन्ने वेगळिगे यथाभिरन्तं विहरित्वा येन वाराणसी तेन चारिकं पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन बाराणसी तदवसरि। तत्र सुदं, आनन्द, कस्सपो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो बाराणसियं विहरति इसिपतने मिगदाये। अस्सोसि खो, आनन्द, किकी कासिराजा--'कस्सपो किर भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो [B. 240] बाराणसिं अनुप्पत्तो बाराणसियं विहरति इसिपतने मिगदाये' ति। अथ खो, आनन्द, किकी कासिराजा भद्रानि भद्रानि यानानि योजापेत्वा भद्रं यानं अभिरुहित्वा भद्रेहि भद्रेहि यानानि बाराणसिया निय्यासि महच्चा राजानुभावेन कस्सपं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं दस्सनाय। यावतिका यानस्स भूमि यानेन गन्त्वा याना पच्चोरोहित्वा पत्तिको व येन कस्सपो भगवा

अच्छा साथी है। भगवान् इसे प्रव्रजित करें।' आनन्द! तब जोतिपाल माणवक ने··· भगवान् काश्यप से प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा प्राप्त की।

२. वाराणसी में भगवान् काश्यप

६. "आनन्द! तदनन्तर ··· ··· भगवान् काश्यप, जब कि जोतिपाल माणवक को उपसम्पन्न हुए आधा महीना (एक पक्ष) ही बीता था, बेगलिङ्ग में यथाभिरुचि साधना कर, वाराणसी की ओर चारिका करते हुए चल पड़े। क्रमशः चारिका करते हुए जहाँ वाराणसी थी, वहाँ पहुँचे। आनन्द! वहाँ··भगवान् काश्यप वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाव में साधना कर रहे थे। (उसी समय) आनन्द! काशिराज किकी ने यह सुना—'अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् काश्यप वाराणसी पधारें हैं, जो कि वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाव में साधनाहेतु ठहरे हुए हैं।' तब आनन्द! काशिराज किकी अच्छे-अच्छे यान (रथ) जुतवाकर, उनमें से एक सुन्दरतम यान पर बैठ, उन सभी सुन्दर यानों के साथ बड़ी भारी राजकीय सज-धज के साथ··· भगवान् काश्यप के दर्शनहेतु वाराणसी से निकला। वह जहाँ तक यान जा सकता था, वहाँ तक यान से जाकर, (फिर) यान से उतर कर पैदल ही ··· भगवान् काश्यप के पास पहुँचा; पहुँच कर उन ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् काश्यप को प्रणाम

अरहं सम्मासम्बुद्धो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा कस्सपं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो, आनन्द, किकिं कासिराजानं कस्सपो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि। अथ खो, आनन्द, किकी कासिराजा कस्सपेन भगवता अरहता सम्मासम्बुद्धेन धम्मिया कथाय सन्दस्सितो समादपितो समुत्तेजितो सम्पहंसितो कस्सपं भगवन्तं अरहन्तं [R. 50] सम्मासम्बुद्धं एतदवोच—'अधिवासेतु मे, भन्ते, भगवा स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना' ति। अधिवासेसि खो, आनन्द, कस्सपो [N. 276] भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो तुण्हीभावेन। अथ खो, आनन्द, किकी कासिराजा कस्सपस्स भगवतो सम्मासम्बुद्धस्स अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना कस्सपं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो, आनन्द, किकी कासिराजा तस्सा रत्तिया अच्चयेन सके निवेसने पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा पण्डुपुटकस्स सालिनो विगतकाळकं अनेकसूपं अनेकब्यञ्जनं, कस्सपस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स कालं आरोचापेसि—'कालो, भन्ते, निट्ठितं भत्तं' ति।

७. अथ खो, आनन्द, कस्सपो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन किकिस्स कासिरञ्ञो निवेसनं तेनुपस-

---

कर एक ओर बैठ गया। आनन्द! एक ओर बैठे उस काशिराज किकी को भगवान् काश्यप ने धार्मिक कथाओं का प्रवचन किया। उससे उसको (धर्म की ओर) समुत्तेजित एवं सम्प्रहर्षित किया। इसके बाद आनन्द वह काशिराज किकी भगवान् द्वारा कही गयी धार्मिक कथाओं से धर्म की ओर समुत्तेजित एवं सम्प्रहर्षित हो यों बोला—"भन्ते! भगवान् कल अपने भिक्षुसंघ के साथ मेरे यहाँ भोजन का निमंत्रण स्वीकार करें। आनन्द! उन भगवान् काश्यप ने मौन रह कर काशिराज का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। तब आनन्द! काशिराज किकी भगवान् की स्वीकृति जान कर, आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम व प्रदक्षिणा कर (अपने घर की ओर वापस) चल दिया। फिर आनन्द! काशिराज किकी ने, उस रात्रि के बीत जाने पर, प्रातः अपने घर पर अनेकविध सुन्दर एवं रुचिकर भोजन, जिसमें लाल धान वाले चावल का भात, काले छिलकों से रहित दाल एवं नाना प्रकार के अन्य खाद्य-भोज्य सम्मिलित थे, तैयार करवाकर भगवान् के सम्मुख जा कर निवेदन किया—'भन्ते! भोजन तैयार हो गया है, अब आप जैसा उचित समझें'।

७. तब, आनन्द! वे ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् काश्यप पूर्वाह्ण समय बिता कर

ङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि सद्धिं भिक्खुसङ्घेन। अथ खो, आनन्द, किकी कासिराजा बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि सम्पवारेसि। अथ खो, आनन्द, [B. 241] किकी कासिराजा कस्सपं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो, आनन्द, किकी कासिराजा कस्सपं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं एतदवोच—'अधिवासेतु मे, भन्ते, भगवा बाराणसियं वस्सावासं; एवरूपं सङ्घस्स उपट्ठानं भविस्सति' ति।

'अलं, महाराज ! अधिवुत्थो मे वस्सावासो' ति। दुतियं पि खो, आनन्द...पे०...ततियं पि खो, आनन्द, कासिराजा कस्सपं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं एतदवोच—'अधिवासेतु मे, भन्ते, भगवा बाराणसियं वस्सावासं; एवरूपं सङ्घस्स उपट्ठानं भविस्सती' ति।

'अलं, महाराज ! अधिवुत्थो मे वस्सावासो' ति।

"अथ खो, आनन्द, किकिस्स कासिरञ्ञो 'न मे कस्सपो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो अधिवासेति बाराणसियं वस्सावासं' ति अहुदेव [R. 51] अञ्ञथत्तं, अहु दोमनस्सं। अथ खो, आनन्द, किकी कासिराजा कस्सपं

पात्र-चीवर ले, जहाँ काशिराज किकी का वासस्थान था, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर, भिक्षुसङ्घ के साथ, बिछे आसन पर विराजे। तब, आनन्द ! काशिराज किकी ने भगवान् बुद्ध सहित समग्र भिक्षुसङ्घ को अपने हाथ से नाना प्रकार के सुन्दर एवं रुचिकर खाद्य भोज्य व्यञ्जन परोस कर, उन्हें सम्मानपूर्वक खिला कर, सन्तुष्ट एवं तृप्त किया। उसके बाद काशिराज किकी भगवान् को भोजन कर चुकने के बाद पात्र से हाथ खींचा हुआ देखकर एक दूसरा नीचा आसन लेकर एक ओर बैठ गया। आनन्द ! एक ओर बैठे उस काशिराज किकी ने भगवान् काश्यप से यों निवेदन किया—'भन्ते ! भगवान् आगामी वर्षावास वाराणसी में मेरे वासस्थान पर सङ्घ-सहित करने का सङ्कल्प करें; यों सङ्घ का सत्कार भी हो जायगा'।

(भगवान् ने कहा-) 'रहने दे काशिराज। मैं तो (किसी दूसरे के यहाँ) वर्षावास स्वीकार कर चुका हूँ। आनन्द ! दूसरी बार भी···पूर्ववत्···। तीसरी बार भी काशिराज किकी ने···सङ्घसहित करने का संकल्प करें'।

'रहने दो काशिराज ! मैं तो वर्षावास स्वीकार कर चुका हूँ'।

तब आनन्द ! काशिराज किकी को 'भगवान् काश्यप वाराणसी में मेरे यहाँ वर्षावास करना स्वीकार नहीं कर रहे'—यह सोच कर बहुत दुःख हुआ, बहुत वैमनस्य

[N. 277] भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं एतदवोच—'अत्थि नु खो, भन्ते, अञ्ञो कोचि मया उपट्ठाकतरो' ति ?

३. घटिकारस्स कुम्भकारस्स गुणा

८. 'अत्थि, महाराज, वेगळिङ्गं नाम गामनिगमो। तत्थ घटिकारो नाम कुम्भकारो; सो मे उपट्ठाको अग्गुपट्ठाको। तुय्हं खो पन, महाराज, न मे कस्सपो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो अधिवासेति बाराणसियं वस्सावासं ति अत्थेव अञ्ञथत्तं, अत्थि दोमनस्सं। तयिदं घटिकारस्स कुम्भकारस्स नत्थि च न च भविस्सति। घटिकारो खो, महाराज, कुम्भकारो बुद्धं सरणं गतो, धम्मं सरणं गतो, सङ्घं सरणं गतो। घटिकारो खो, महाराज, कुम्भकारो पाणातिपाता पटिविरतो, अदिन्नादाना पटिविरतो, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो, मुसावादा पटिविरतो, सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरतो। घटिकारो खो, महाराज, कुम्भकारो बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतो, धम्मे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतो, सङ्घे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतो, अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागतो। घटिकारो खो, महाराज, कुम्भकारो दुक्खे निक्कङ्खो, दुक्खसमुदये निक्कङ्खो, दुक्खनिरोधे निक्कङ्खो, दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय

(हैरानी) हुआ। तब आनन्द ! काशिराज किकी ने भगवान् काश्यप को यों निवेदन किया—"भन्ते ! क्या आपका कोई मेरे से अच्छा उपस्थापक (सेवक) भी है' ?

३. भगवान् द्वारा घटिकार कुम्भकार की प्रशंसा

८. 'हाँ, महाराज ! वेगलिङ्ग नामक एक बड़ा ग्राम है। वहाँ घटिकार नामक एक कुम्भकार रहता है। वह मेरा सेवक ही क्या, श्रेष्ठ सेवक है। महाराज ! आप को तो यह सुनकर ही दुःख और हैरानी हो गयी कि भगवान् काश्यप मेरे वाराणसी के वासस्थान पर वर्षावास नहीं कर रहे; परन्तु घटिकार कुम्भकार को यह जान कर भी न कोई दुःख होगा, न कोई दौर्मनस्य (हैरानी)। महाराज ! घटिकार कुम्भकार तो बुद्ध की शरण में जा चुका है, धर्म की शरण में जा चुका है, सङ्घ की शरण में जा चुका है। महाराज ! घटिकार कुम्भकार प्राणातिपात से, अदत्तादान से, काम-भोगों में मिथ्याचार से, मृषावाद से, सुरामैरेयमद्यपान आदि दुर्गुणों से दूर हो चुका है। महाराज ! घटिकार कुम्भकार बुद्ध, धर्म और सङ्घ में अत्यन्त श्रद्धा से युक्त है। आर्यजनों को प्रिय लगने वाले सदाचारों में अत्यन्त श्रद्धावान् है। महाराज ! घटिकार कुम्भकार दुःख के, दुःखसमुदय के, दुःखनिरोध के एवं दुःखनिरोधगामी मार्ग के विषय में संशयरहित है। महाराज ! वह घटिकार तो एक समय भोजन करता (एकभत्तिक) है, ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला एवं शीलवान् व सत्कर्म-

निक्कङ्खो। घटिकारो खो, महाराज, कुम्भकारो एकभत्तिको ब्रह्मचारी सीलवा कल्याणधम्मो। घटिकारो खो, महाराज, कुम्भकारो निक्खित्तमणि-सुवण्णो अपेतजातरूपरजतो। घटिकारो खो, महाराज कुम्भकारो [B. 242] न मुसलेन न सहत्था पठविं खणति। यं होति कूलपलुग्गं वा मूसिकुक्करो वा तं काजेन आहरित्वा भाजनं करित्वा एवमाह—एत्थ यो इच्छति तण्डुलपटिभस्तानि वा मुग्गपटिभस्तानि वा कळायपटिभस्तानि वा निक्खिपित्वा यं इच्छति हरतू ति। घटिकारो खो, महाराज, कुम्भकारो अन्धे जिण्णे मातापितरो पोसेति। घटिकारो खो, महाराज, [R. 52] कुम्भकारो पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको तत्थ परिनिब्बायी अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। [N. 278]

९. 'एकमिदाहं महाराज, समयं वेगळिङ्गं नाम गामनिगमे विहरामि। अथ ख्वाहं, महाराज, पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन घटिकारस्स कुम्भकारस्स मातापितरो तेनुपसङ्कमिं, उपसङ्कमित्वा घटिकारस्स कुम्भकारस्स मातापितरो एतदवोचं—हन्द, को नु खो अयं भग्गवो गतो ति?

निक्खन्तो खो ते, भन्ते, उपट्ठाको; अन्तोकुम्भिया ओदनं गहेत्वा, परियोगा सूपं गहेत्वा परिभुञ्जा ति।

युक्त (पुण्यात्मा) है। महाराज! वह घटिकार न मणि-हिरण्यादिक का ही ग्रहण करता है, न सोना-चाँदी को ही छूता है। वह न मूसल से और न अपने हाथ से पृथ्वी को खोदता है। जो भी (नदी के) किनारा आदि टूटने से या चूहे कुत्तों आदि द्वारा खोद कर छोड़ी गयी मिट्टी हो उसे ला कर, उससे पात्र बना कर (लोगों से) यों कहता है---'भाइयो! जिस किसी को भी पात्र की चाह हो वह यहाँ उसके बदले चावल, मूंग या मटर रख कर अपना मनचाहा पात्र ले जाय। महाराज! घटिकार कुम्भकार अपने अन्धे वृद्ध माता-पिता का पालन-पोषण करता है। महाराज! घटिकार कुम्भकार पाँचों अवरभागीय संयोजनों का क्षय हो जाने से उस लोक में देवत्व प्राप्त कर परिनिर्वृत होने वाला है। वह उस लोक से वापस नहीं लौटने का।

९. 'महाराज! एक समय मैं चारिका करता हुआ उस वेगलिङ्ग नामक ग्राम में गया। महाराज! तब मैं पूर्वाह्न समय बिता कर, पात्र-चीवर ले, जहाँ घटिकार कुम्भकार का घर था, वहाँ पहुँचा। पहुँच कर कुम्भकार के माता-पिता को मैं यों बोला---महोदय! यह भार्गव कहाँ गया है?

भन्ते! आप का सेवक तो बाहर गया है। आप इस हँडिया (=कुम्भी) से भात और परियोग (दाल का बर्त्तन) से दाल निकाल लें, एवं यथेच्छ भोजन कर लें।

'अथ ख्वाहं, महाराज, कुम्भिया ओदनं गहेत्वा परियोगा सूपं गहेत्वा परिभुञ्जित्वा उट्ठायासना पक्कमिं। अथ खो, महाराज, घटिकारो कुम्भकारो येन मातापितरो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मातापितरो एतदवोच—को कुम्भिया ओदनं गहेत्वा, परियोगा सूपं गहेत्वा परिभुञ्जित्वा उट्ठायासना पक्कन्तो ति ?

कस्सपो, तात, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो कुम्भिया ओदनं गहेत्वा, परियोगा सूपं गहेत्वा परिभुञ्जित्वा उट्ठायासना पक्कन्तो ति।

'अथ खो, महाराज, घटिकारस्स कुम्भकारस्स एतदहोसि—लाभा वत मे, सुलद्धं वत मे, यस्स मे कस्सपो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो एवं अभिविस्सत्थो ति। अथ खो, महाराज, घटिकारं कुम्भकारं अड्ढमासं पीतिसुखं न विजहति, सत्ताहं मातापितूनं।

१०. 'एकमिदाहं, महाराज, समयं तत्थेव वेगळिङ्गे नाम गामनिगमे विहरामि। अथ ख्वाहं, महाराज, पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय [B. 243] येन घटिकारस्स कुम्भकारस्स मातापितरो तेनुपसङ्कमिं; उपसङ्कमित्वा घटिकारस्स कुम्भकारस्स मातापितरो एतदवोचं—हन्द, को नु खो अयं भग्गवो गतो ति ?

निक्खन्तो खो ते, भन्ते, उपट्ठाको; अन्तो कळोपिया कुम्मासं गहेत्वा परियोगा सूपं गहेत्वा परिभुञ्जा ति।

'महाराज ! तब मैं कुम्भी से भात एवं परियोग से (दाल=सूप) लेकर, यथेच्छ भोजन कर चल दिया। पीछे से (मेरे चले जाने के बाद), घटिकार कुम्भकार अपने माता-पिता के पास आया, आकर उसने माता-पिता से पूछा—"कौन कुम्भी से भात एवं परियोग से दाल निकाल कर खा कर चला गया ?'

(पिता ने कहा)—तात ! भगवान् काश्यप दाल भात खा कर गये हैं।

'तब महाराज ! घटिकार कुम्भकार के मन में यह हुआ—'मेरा अहोभाग्य है ! मैंने बहुत कुछ (पुण्य) अर्जित कर लिया कि भगवान् काश्यप का मुझ पर इतना विश्वास है !' महाराज ! घटिकार कुम्भकार इस प्रीतिमय सुख से आधे महीने तक प्रमुदित रहा। और सप्ताह भर उसके माता-पिता को भी यह प्रीति-सुख प्रमुदित करता रहा।

१०. 'महाराज ! एक समय मैं फिर (चारिका करता हुआ) उसी बेगलिङ्ग ग्राम में पहुँचा। पहुँच कर प्रातः काल का समय बिताकर, पात्र-चीवर ले, मैंने घटिकार कुम्भकार के माता-पिता के घर जाकर उनसे पूछा—'अरे यह भार्गव कहाँ गया है ?'

भन्ते ! आप का सेवक तो...पूर्ववत्...चल दिया।...माता-पिता को भी यह प्रीति-सुख सप्ताह भर प्रमुदित करता रहा।

'अथ ख्वाहं, महाराज, कळोपिया कुम्मासं गहेत्वा, [N. 279] परियोगा सूपं गहेत्वा परिभुञ्जित्वा उट्ठायासना पक्कमिं। [R. 53] अथ खो, महाराज, घटिकारो कुम्भकारो येन मातापितरो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मातापितरो एतदवोच—को कळोपियो कुम्मासं गहेत्वा, परियोगा सूपं गहेत्वा परिभुञ्जित्वा उट्ठायासना पक्कन्तो ति ?

कस्सपो, तात, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो कळोपिया कुम्मासं गहेत्वा परियोगा सूपं गहेत्वा, परिभुञ्जित्वा बुट्ठायासना पक्कन्तो ति।

'अथ खो, महाराज, घटिकारस्स कुम्भकारस्स एतदहोसि—लाभा वत मे, सुलद्धं वत मे, यस्स मे कस्सपो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो एवं अभिविस्सथो ति। अथ खो, महाराज, घटिकारं कुम्भकारं अड्ढमासं पीतिसुखं न विजहति, सत्ताहं मातापितूनं।

११. 'एकमिदाहं, महाराज, समयं तत्थेव वेगळिङ्गे नाम गामनिगमे विहरामि। तेन खो पन समयेन कुटि ओवस्सति। अथ ख्वाहं, महाराज, भिक्खू आमन्तेसिं--गच्छथ, भिक्खवे, घटिकारस्स कुम्भकारस्स निवेसने तिणं जानाथा ति। एवं वुत्ते, महाराज, ते भिक्खू मं एतदवोचुं—नत्थि खो, भन्ते, घटिकारस्स कुम्भकारस्स निवेसने तिणं, अत्थि च ख्वास्स आवेसने तिणच्छदनं ति।

गच्छथ, भिक्खवे, घटिकारस्स कुम्भकारस्स आवेसनं उत्तिणं करोथा ति।

'अथ खो ते महाराज, भिक्खू घटिकारस्स कुम्भकारस्स आवेसनं उत्तिणमकंसु। अथ खो महाराज, घटिकारस्स कुम्भकारस्स मातापितरो ते भिक्खू एतदवोचुं--के आवेसनं उत्तिणं करोन्ती ति ?

---

११. 'महाराज ! एक समय मैं उसी वेगलिङ्ग ग्राम में साधनाहेतु विचरण कर रहा था। उस समय मेरी कुटिया में पानी चूने लगा। तब महाराज ! मैंने भिक्षुओं से कहा---भिक्षुओ ! घटिकार कुम्भकार के घर जाओ, और घास-तृण माँगो। ऐसा कहे जाने पर महाराज ! वे भिक्षु मुझसे यों बोले---भन्ते ! घटिकार कुम्भकार के पास घास-तृण नहीं होगा; क्योंकि अभी-अब उसने अपना नया घर छवाया है।

(तब मैंने कहा)---जाओ भिक्षुओ ! घटिकार कुम्भकार के नये छवाये घर का घास-तण उजाड़ लाओ।

'तब महाराज ! भिक्षुओं ने जाकर घटिकार कुम्भकार के घर का घास-फूस

भिक्खू, भगिनि; कस्सपस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स कुटि ओवस्सती ति।

हरथ, भन्ते, हरथ, भद्रमुखा ति।

'अथ खो, महाराज, घटिकारो कुम्भकारो येन मातापितरो तेनुप-[N. 280] सङ्कमि ; उपसङ्कमित्वा मातापितरो एतदवोच—के आवेसनं उत्तिणमकंसू ति ?

[B. 244] भिक्खू, तात; कस्सपस्स किर भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स कुटि ओवस्सती ति।

'अथ खो, महाराज, घटिकारस्स कुम्भकारस्स एतदहोसि—लाभा वत मे, [R. 54] सुलद्धं वत मे, यस्स मे कस्सपो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो एवं अभिविस्सत्थो ति। अथ खो, महाराज घटिकारं कुम्भकारं अड्ढमासं पीतिसुखं न विजहति, सत्ताहं मातापितूनं। अथ खो, महाराज, आवेसनं सब्बन्तं तेमासं आकासच्छदनं अट्ठासि, न देवोतिवस्सि। एवरूपो च महाराज, घटिकारो कुम्भकारो' ति।

उतार लिया। तब महाराज ! उस घटिकार कुम्भकार के माता-पिता उन भिक्षुओं से बोले--'कौन हमारे नये छवाए घर का घास-फूस उतार रहा है ?

बहन ! भिक्षु उतार रहे हैं; क्योंकि भगवान् काश्यप की गन्धकुटी से पानी चू रहा है। (उसी में यह घास-फूस काम आएगा।)

(माता-पिता ने कहा—) ले जाओ भन्ते ! ले जाओ भद्रमुखो !

'महाराज ! बाद में घटिकार कुम्भकार माता-पिता के पास पहुंचा। और अपने घर की यह हालत देखकर उनसे पूछा--किसने हमारा यह घर उजाड़ दिया है ?

भिक्षुओं ने तात ! (क्यों कि भगवान् काश्यप की गन्धकुटी से पानी चूने लगा था। उसे छवाना आवश्यक था।)

'तब महाराज ! घटिकार कुम्भकार ने मन में यों विचारा—अरे हमारा अहोभाग्य है ! हमने बहुत पुण्य अर्जित कर लिया है (कि हमारे नये छवाए घर का घास-फूस भगवान् की गन्धकुटी की मरम्मत में काम आया।) भगवान् का हम पर इतना विश्वास है। तब महाराज ! घटिकार कुम्भकार का वह प्रीति-सुख आधे मास तक उसको प्रमुदित करता रहा उसके माता-पिता को सप्ताह भर। घटिकार कुम्भकार का वह आवास बिना छवाये ही पड़ा रहा और तीन मास खुले आकाश के नीचे काम चलता रहा, वर्षा भी ज्यादा नहीं बरसी। ऐसा है महाराज ! घटिकार कुम्भकार। (जो मेरे लिये अपना भोजन और घर त्याग कर भी प्रीति-सुख अनुभव करता है।

'लाभा, भन्ते, घटिकारस्स कुम्भकारस्स, सुलद्धा, भन्ते घटिकारस्स कुम्भकारस्स यस्स भगवा एवं अभिविस्सत्थो' ति ।

१२. "अथ खो, आनन्द, किकी कासिराजा घटिकारस्स कुम्भकारस्स पञ्चमत्तानि तण्डुलवाहसतानि पाहेसि पण्डुपुटकस्स सालिनो तदुपियं च सूपेय्यं । अथ खो ते, आनन्द, राजपुरिसा घटिकारं कुम्भकारं उपसङ्कमित्वा एतदवोचुं—'इमानि खो, भन्ते, पञ्चमत्तानि तण्डुलवाहसतानि किकिना कासिराजेन पहितानि पण्डुपुटकस्स सालिनो तदुपियं च सूपेय्यं । तानि, भन्ते, पटिग्गण्हथा' ति ।

'राजा खो बहुकिच्चो बहुकरणीयो । अलं मे ! रञ्ञो व होतू" ति ।

"सिया खो पन ते, आनन्द, एवमस्स—'अञ्ञो नून तेन समयेन जोतिपालो माणवो अहोसी' ति । न खो पनेतं, आनन्द, एवं दट्ठब्बं । अहं तेन समयेन जोतिपालो माणवो अहोसिं" ति ।

१३. इदमवोच भगवा । अत्तमनो आयस्मा आनन्दो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति ।

●

'भन्ते ! घटिकार कुम्भकार का अहोभाग्य है ! उसने बहुत पुण्य अर्जित किया है । जिस पर भगवान् का इतना विश्वास है' ।

१२. "तब आनन्द ! काशिराज किकी ने घटिकार कुम्भकार के पास पाँच सौ सौ गाड़ी लाल तिन्नी वाले शाली चावल, और उसके योग्य दाल (सूप) भेजी । तब आनन्द ! राजकर्मचारियों ने वह सामान घटिकार कुम्भकार के घर ले जा कर उससे कहा—'भन्ते ! ये पाँच सौ गाड़ी...चावल और उसके योग्य दाल काशिराज किकी ने आप के पास भेजी हैं । इन्हें आप स्वीकार करें' ।

(परन्तु घटिकार कुम्भकार ने कहा)—'काशिराज किकी बहुत काम वाले हैं; अतः ये चीजें उनके किसी और काम आ जायगीं । मुझे इनकी जरूरत नहीं है । इन्हें वापस ले जा कर उन्हें ही सौंप दो' । (और घटिकार कुम्भकार ने उन चीजों को लेना तो दूर, उनको छूआ तक नहीं ।)

"हो सकता है आनन्द ! तुम्हारे मन में यह हो कि उस समय ज्योतिपाल माणवक कोई और था ! परन्तु तुम को ऐसा नहीं सोचना चाहिये । (क्योंकि) मैं ही उस समय ज्योतिपाल माणवक था ।

१३. भगवान् यों बोले । प्रसन्नमना आनन्द ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया ॥

घटिकारसुत्त समाप्त ॥

●

३२. रट्ठपालसुत्तं

१. रट्ठपालपब्बज्जा

[N. 281] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कुरुसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं येन थुल्लकोट्ठिकं नाम कुरूनं निगमो [B. 245] तदवसरि। अस्सोसुं खो थुल्लकोट्ठिका ब्राह्मणगहपतिका—[R. 55] "समणो खलु, भो, गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो कुरूसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं थुल्लकोट्ठिकं अनुप्पत्तो। तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति। सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति। साधु खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं होती" ति। अथ खो पन थुल्लकोट्ठिका ब्राह्मणगहपतिका येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा अप्पेकच्चे भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु; अप्पेकच्चे भगवता सद्धिं सम्मोदिंसु, सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु; अप्पेकच्चे येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु; अप्पेकच्चे भगवतो सन्तिके नामगोत्तं सावेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु; अप्पेकच्चे तुण्हीभूता एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ने खो थुल्लकोट्ठिके ब्राह्मणगहपतिके भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि।

---

३२. राष्ट्रपालसूत्र

१. राष्ट्रपाल प्रव्रज्या

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् बुद्ध महान् भिक्षुसङ्घ के साथ कुरुदेश में चारिका करते हुए, जहाँ स्थूलकोष्ठिक नामक कुरुजनों का कस्बा था वहाँ, पहुँचे।

स्थूलकोष्ठिकवासी ब्राह्मण गृहपतियों ने सुना—'शाक्यपुत्र···पूर्ववत्··· स्थूलकोष्ठिक में पधारे हैं। इस प्रकार के ज्ञानियों का दर्शन अत्यन्त पुण्यप्रद होता है।' तब स्थूलकोष्ठिकवासी ब्राह्मण जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ गये। जाकर उनमें से कोई उन्हें अभिवादन कर एक तरफ बैठ गये···कोई चुप-चाप ही एक तरफ बैठ गये। एक तरफ बैठे उन स्थूलकोष्ठिकवासी ब्राह्मण गृहपतियों को भगवान् ने धार्मिक कथाओं द्वारा उत्साहित, प्रेरित, समुत्तेजित एवं सम्प्रहर्षित किया।

२. तेन खो पन समयेन रट्ठपालो नाम कुलपुत्तो तस्मियेव थुल्लकोट्ठिके अग्गकुलस्स पुत्तो तस्सं परिसायं निसिन्नो होति। अथ खो रट्ठपालस्य कुलपुत्तस्स एतदहोसि--"यथा ख्वाहं भगवता धम्मं देसितं [N. 282] आजानामि, नयिदं सुकरं अगारं अज्झावसता एकन्तपरिसुद्धं सङ्खलिखितं ब्रह्मचरियं चरितुं। यन्नूनाहं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्यं" ति। अथ खो थुल्लकोट्ठिका ब्राह्मणगहपतिका भगवता धम्मिया कथाय सन्दस्सिता समादपिता समुत्तेजिता सम्पहंसिता भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कमिंसु। अथ खो रट्ठपालो [R. 56] कुलपुत्तो अचिरपक्कन्तेसु थुल्लकोट्ठिकेसु ब्राह्मणगहपतिकेसु [B. 246] येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो रट्ठपालो कुलपुत्तो भगवन्तं एतदवोच-- "यथा यथाहं, भन्ते, भगवता धम्मं देसितं आजानामि, नयिदं सुकरं अगारं अज्झावसता एकन्तपरिपुण्णं एकन्तपरिसुद्धं सङ्खलिखितं ब्रह्मचरियं चरितुं। इच्छामहं, भन्ते, केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितुं। लभेय्याहं भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पदं। पब्बाजेतु मं भगवा" ति।

---

२. उस समय उसी स्थूलकोष्ठिक ग्राम के अग्रकुलिक (=प्रधान) का पुत्र राष्ट्रपाल उस परिषद् में बैठा था। (भगवान् द्वारा कथित धार्मिक कथाएँ सुन कर) राष्ट्रपाल को मन में ऐसा हुआ—'भगवान् जैसे धर्म का उपदेश कर रहे हैं, उस अत्यन्त परिशुद्ध, शङ्ख की तरह श्वेत (निष्कलङ्क) ब्रह्मचर्य (=धर्मसाधना) का पालन गृहस्थ में रहते सुलभ नहीं है। क्यों न मैं दाढी-मूंछ (केश-श्मश्रु) मुण्डा कर, काषाय वस्त्र पहन, घर से बेघर हो, प्रव्रजित हो जाऊँ।' तब स्थूलकोष्ठिकवासी ब्राह्मणगृहपति भगवान् द्वारा उपदिष्ट धार्मिक कथाओं से समुत्तेजित, प्रेरित, तृप्त एवं सन्तुष्ट हो, भगवान् के भाषण का अभिनन्दन-अनुमोदन कर आसन से उठ, भगवान् को अभिवादन-प्रदक्षिणा कर चले गये। तब राष्ट्रपाल कुलपुत्र···ब्राह्मण-गृहपतियों के चले जाने के कुछ समय बाद भगवान् के पास गया। जा कर भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे राष्ट्रपाल कुलपुत्र ने भगवान् से यों निवेदन किया—

"भन्ते ! भगवान् के कहे धर्म का जैसा मैंने तात्पर्य समझा है, वह···ब्रह्मचर्य-पालन गृहस्थ कर्म मे रहते सुलभ नहीं हो सकता, अतः भन्ते ! मेरी इच्छा है कि मैं भगवान् से प्रव्रज्या पाऊँ, उपसम्पदा पाऊँ।"

"अनुञ्ञातोसि पन त्वं, रट्ठपाल, मातापितूहि अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जाया" ति ?

"न खोहं, भन्ते, अनुञ्ञातो मातापितूहि अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जाया" ति ।

"न खो, रट्ठपाल, तथागता अननुञ्ञातं मातापितूहि पुत्तं पब्बाजेन्ती" ति ।

"स्वाहं, भन्ते, तथा करिस्सामि यथा मं मातापितरो अनुजानिस्सन्ति अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जाया" ति ।

३. अथ खो रट्ठपालो कुलपुत्तो उट्ठायसना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा येन मातापितरो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मातापितरो एतदवोच—"अम्मताता, यथा यथाहं भगवता धम्मं देसितं आजानामि, नयिदं सुकरं अगारं अज्झावसता एकन्तपरिपुण्णं एकन्तपरिसुद्धं सङ्ख-
[N. 283] लिखितं ब्रह्मचरियं चरितुं ; इच्छामहं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितुं । अनुजानाथ मं अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जाया" ति ।

एवं वुत्ते, रट्ठपालस्स कुलपुत्तस्स मातापितरो रट्ठपालं कुलपुत्तं एतदवोचुं—"त्वं खोसि, तात रट्ठपाल, अम्हाकं एकपुत्तको पियो मनापो

"राष्ट्रपाल ! क्या तूँ ने अपने माता-पिता से अपने घर से बेघर हो प्रव्रज्या लेने की आज्ञा प्राप्त कर ली है ?"

"भन्ते !... आज्ञा तो प्राप्त नहीं की ।"

"राष्ट्रपाल ! माता-पिता से विना आज्ञा प्राप्त किये व्यक्ति को तथागत प्रव्रज्या, उपसम्पदा नहीं देते ।'

"तो भन्ते ! मैं ऐसा कुछ करूँगा, जिससे मेरे माता-पिता मुझे घर से बेघर हो हो प्रव्रज्या लेने की अनुमति दे दें ।"

३. तब राष्ट्रपाल कुलपुत्र आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर, जहाँ उसके माता-पिता थे वहाँ, पहुँचा । पहुँच कर अपने माता-पिता से वह यों बोला—"हे माता जी तथा पिता जी ! भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्म को मैंने जैसे-जैसे सुना, वैसे-वैसे मैं उस विषय में यही समझ पाया हूँ कि घर में रहते इस शङ्खधौत, एकान्तपरिशुद्ध धर्मसाधना का आचरण सरल नहीं है । मैं चाहता हूँ कि दाढ़ी-मूछ मुँडा, काषाय वस्त्र पहन, घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाऊं । मुझे इस तरह प्रव्रजित होने की अनुमति प्रदान करें" ।

ऐसा कहे जाने पर, राष्ट्रपाल कुलपुत्र के माता-पिता उसे यों बोले—"तात

सुखेधितो सुखपरिभतो। न त्वं, तात रट्ठपाल, कस्सचि दुक्खस्स जानासि! एहि त्वं, तात रट्ठपाल, भुञ्ज च पिव च परिचारेहि च; [R. 57] भुञ्जन्तो पिवन्तो परिचारेन्तो कामे परिभुञ्जन्तो पुञ्ञानि करोन्तो अभिरमस्सु। न तं मयं अनुजानाम अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जाय। मरणेन पि ते मयं अकामका विना भविस्साम! किं पन मयं तं जीवन्तं अनुजानिस्साम अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जाया" ति! [B. 247]

दुतियं पि खो रट्ठपालो कुलपुत्तो...पे०...ततियं पि खो रट्ठपालो कुलपुत्तो मातापितरो एतदवोच—"अम्मताता, यथा यथाहं भगवता धम्मं देसितं आजानामि, नयिदं सुकरं अगारं अज्झावसता एकन्तपरिपुण्णं एकन्तपरिसुद्धं सङ्खलिखितं ब्रह्मचरियं चरितुं। इच्छामहं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितुं। अनुजानाथ मं अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जाया" ति। ततियं पि खो रट्ठपालस्य कुलपुत्तस्स मातापितरो रट्ठपालं कुलपुत्तं एतदवोचुं—"त्वं खोसि, तात रट्ठपाल, अम्हाकं एकपुत्तको पियो मनापो सुखेधितो सुखपरिभतो। न त्वं, तात रट्ठपाल, कस्सचि दुक्खस्स जानासि। मरणेन पि ते मयं अकामका विना भविस्साम! किं पन मयं तं जीवन्तं अनुजानिस्साम अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जाया" ति!

४. अथ खो रट्ठपालो कुलपुत्तो—"न मं मातापितरो अनुजानन्ति अगा-

राष्ट्रपाल! तुम हमारे बहुत ही स्नेह से पाले-पोसे, प्रिय एवं एकमात्र पुत्र हो। तात राष्ट्रपाल! तुम अभी व्यावहारिक दुःखों से अनभिज्ञ ही हो! अच्छा हो कि तात राष्ट्रपाल! कि तुम यहीं रह कर सुख से खाओ, पीओ, मौज-मस्ती से रहो। और सुख से खाते-पीते, मौज-मस्ती से रहते, पुण्य (कुशल) कर्म करते जीवन बिताओ। हम तुम्हें घर से बेघर हो प्रव्रजित होने की अनुमति नहीं देंगे। मरने पर भी भूल नहीं पायेंगे फिर हम तुम्हें जीते-जी कैसे घर से बेघर हो प्रव्रजित होने की अनुमति दे सकते हैं!"

दूसरी बार भी...पूर्ववत्...तीसरी बार भी राष्ट्रपाल कुलपुत्र ने अपने माता-पिता से यों कहा—"हे माता जी! एवं पिता जी! भगवदुपदिष्ट धर्म को मैंने...पूर्ववत्...प्रव्रज्या के लिये अनुमति प्रदान करें।" तीसरी बार भी राष्ट्रपाल कुलपुत्र के माता-पिता ने उससे यों कहा—"तात राष्ट्रपाल! तुम हमारे बहुत ही स्नेह से पाले-पोसे...कैसे घर से बेघर हो प्रव्रजित होने की अनुमति दे सकते हैं?"

४. इसके बाद राष्ट्रपाल कुलपुत्र—'मुझे मेरे ये माता-पिता घर से बेघर हो

रस्मा अनगारियं पब्बज्जाया" ति तत्थेव अनन्तरहिताय भूमिया निपज्जि— "इधेव मे मरणं भविस्सति पब्बज्जा वा" ति। अथ खो रट्ठपालो कुलपुत्तो एकं पि भत्तं न भुञ्जि, द्वे पि भत्तानि न भुञ्जि, तीणि पि भत्तानि न भुञ्जि, चत्तारि पि भत्तानि न भुञ्जि, पञ्च पि भत्तानि न भुञ्जि, छ पि भत्तानि [N. 284, R. 58] न भुञ्जि, सत्त पि भत्तानि न भुञ्जि। अथ खो रट्ठपालस्स कुलपुत्तस्स मातापितरो रट्ठपालं कुलपुत्तं एतदवोचुं—"त्वं खोसि, तात रट्ठपाल, अम्हाकं एकपुत्तको पियो मनापो सुखेधितो सुखपरि-भतो। न त्वं, तात रट्ठपाल, कस्सचि दुक्खस्स जानासि। उट्ठेहि, तात रट्ठपाल, भुञ्ज च पिव च परिचारेहि च; भुञ्जन्तो पिवन्तो परिचारेन्तो कामे परिभुञ्जन्तो पुञ्ञानि करोन्तो अभिरमस्सु। न तं मयं अनुजानाम अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जाय। मरणेन पि ते मयं अकामका विना भविस्साम! किं पन मयं ते जीवन्तं अनुजानिस्साम अगारस्मा अनगारियं [B. 248] पब्बज्जाया" ति! एवं वुत्ते, रट्ठपालो कुलपुत्तो तुण्ही अहोसि। दुतियं पि खो रट्ठपालस्स कुलपुत्तस्स मातापितरो रट्ठपालं कुलपुत्तं एतदवोचुं …पे०…दुतियं पि खो रट्ठपालो कुलपुत्तो तुण्ही अहोसि। ततियं पि खो रट्ठपालस्स कुलपुत्तस्स मातापितरो रट्ठपालं कुलपुत्तं एतदवोचुं—"त्वं खोसि, तात रट्ठपाल, अम्हाकं एकपुत्तको पियो मनापो सुखेधितो सुखपरिभतो। न त्वं, तात रट्ठपाल, कस्सचि दुक्खस्स जानासि। उट्ठेहि, तात रट्ठपाल, भुञ्ज च पिव च परिचारेहि च; भुञ्जन्तो पिवन्तो परिचारेन्तो कामे परिभुञ्जन्तो पुञ्ञानि करोन्तो अभिरमस्सु। न तं मयं अनुजानाम अगा-रस्मा अनगारियं पब्बज्जाय। मरणेन पि ते मयं अकामका विना भविस्साम!

प्रव्रजित होने की अनुमति नहीं देंगे'—यह सोच कर वहीं नंगी जमीन पर लेट गया कि 'या तो अब मुझे मेरे माता-पिता प्रव्रज्या को अनुमति दे देंगे, या फिर मेरा यहीं अन्त (मृत्यु) हो जायगा'। यह दृढ़ निश्चय कर राष्ट्रपाल कुलपुत्र ने न एक समय भोजन (अन्न-जल) किया, न दूसरे समय, न तीसरे, न चौथे, न पाँचवें, न छठे, न सातवें समय भोजन किया। तब राष्ट्रपाल कुलपुत्र के माता-पिता उससे यों बोले— "तात राष्ट्रपाल! तुम हमारे बहुत ही स्नेह से पाले-पोसे…पूर्ववत्…जीवित रहते हम तुम्हें कैसे घर से बेघर हो प्रव्रज्या की अनुमति देंगे?" ऐसा कहे जाने पर राष्ट्रपाल कुलपुत्र चुप ही रहा।

दूसरी बार भी राष्ट्रपाल कुलपुत्र के माता-पिता उससे यों बोले…। परन्तु दूसरी बार भी राष्ट्रपाल कुलपुत्र चुप ही रहा। तीसरी बार भी राष्ट्रपाल कुलपुत्र के…कैसे

किं पन मयं तं जीवन्तं अनुजानिस्साम अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जाया" ति ! ततियं पि खो रट्ठपालो कुलपुत्तो तुण्ही अहोसि।

५. अथ खो रट्ठपालस्स कुलपुत्तस्स सहायका येन रट्ठपालो [R. 59] कुलपुत्तो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा रट्ठपालं कुलपुत्तं एतदवोचुं—"त्वं खोसि, सम्म रट्ठपाल, मातापितूनं एकपुत्तको पियो मनापो सुखेधितो सुखपरिभतो। न त्वं, सम्म रट्ठपाल, कस्सचि दुक्खस्स जानासि। उट्ठेहि, सम्म रट्ठपाल, भुञ्ज च पिव च परिचारेहि च; भुञ्जन्तो पिवन्तो परिचारेन्तो कामे परिभुञ्जन्तो पुञ्ञानि करोन्तो अभिरमस्सु। न तं मातापितरो अनुजानिस्सन्ति अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जाय। मरणेन पि ते मातापितरो अकामका विना भविस्सन्ति। किं पन ते तं जीवन्तं अनुजानिस्सन्ति अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जाया" ति ! एवं वुत्ते, रट्ठपालो कुल- [N. 285] पुत्तो तुण्ही अहोसि। दुतियं पि खो···पे०···ततियं पि···पे०···[B. 249] ततियं पि खो रट्ठपालो कुलपुत्तो तुण्ही अहोसि।

६. अथ खो रट्ठपालस्स कुलपुत्तस्स सहायका येन रट्ठपालस्स कुलपुत्तस्स मातापितरो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा रट्ठपालस्स कुलपुत्तस्स मातापितरो एतदवोचुं—"अम्मताता, एसो रट्ठपालो कुलपुत्तो तत्थेव अनन्तरहिताय भूमिया निपन्नो--'इधेव मे मरणं भविस्सति पब्बज्जा वा' ति।

अनुमति दे सकते हैं !" तीसरी बार भी राष्ट्रपाल कुलपुत्र चुप ही रहा। (कुछ न बोला।)

५. तब उस राष्ट्रपाल कुलपुत्र के साथी राष्ट्रपाल के पास पहुँचे और यो बोले—"सौम्य राष्ट्रपाल ! तुम अपने माता-पिता के एकमात्र पुत्र हो, तुम उनके द्वारा अत्यन्त स्नेह से पाले-पोसे गये हो। तुम अभी किसी सांसारिक दुःख की परेशानी नहीं समझते हो। उठो, सौम्य राष्ट्रपाल ! खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ और ऐसे ही रहते जो हो सकें वे पुण्य कर्म करो। तुम को तुम्हारे माता-पिता घर से बेघर होने की अनुमति नहीं देंगे। तुम्हारे ये माता-पिता तुम्हारे मरने पर भी तुम्हारे प्रति निष्काम नहीं होंगे; फिर ये तुम्हारे जीते जी तुम्हें कैसे प्रव्रज्या की अनुमति प्रदान कर सकते हैं !" ऐसा कहे जाने पर राष्ट्रपाल चुप ही रहा। दूसरी बार भी···तीसरी बार भी ···राष्ट्रपाल कुलपुत्र चुप ही रहा।

६. तब राष्ट्रपाल कुलपुत्र के वे सहायक (साथी) उसके माता-पिता के पास गये। जाकर उन्होंने उसके माता-पिता को यों समझाया--"माताजी ! और पिता जी ! यह राष्ट्रपाल वहीं नंगी जमीन पर पड़ा हुआ है और जिद्द किये हुए है कि या तो मेरी मृत्यु ही हो जायगी, या माता-पिता की आज्ञा से मुझे प्रव्रज्या मिल जायगी।

[R. 60] सचे तुम्हे रट्ठपालं कुलपुत्तं नानुजानिस्सथ अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जाय, तत्थेव मरणं आगमिस्सति। सचे पन तुम्हे रट्ठपालं कुलपुत्तं अनुजानिस्सथ अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जाय, पब्बजितं पि नं दक्खिस्सथ। सचे रट्ठपालो कुलपुत्तो नाभिरमिस्सति अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जाय, का तस्स अञ्ञा गति भविस्सति ! इधेव पच्चागमिस्सति ! अनुजानाथ रट्ठपालं कुलपुत्तं अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जाया" ति।

"अनुजानाम, ताता, रट्ठपालं कुलपुत्तं अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जाय। पब्बजितेन च पन मातापितरो उद्दस्सेतब्बा" ति।

अथ खो रट्ठपालस्स कुलपुत्तस्स सहायका येन रट्ठपालो कुलपुत्तो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा रट्ठपालं कुलपुत्तं एतदवोचुं—"उट्ठेहि, सम्म रट्ठपाल, अनुञ्ञातोसि मातापितूहि अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जाय। पब्बजितेन च पन ते मातापितरो उद्दस्सेतब्बा" ति।

७. अथ खो रट्ठपालो कुलपत्तो उट्ठहित्वा बलं गाहेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो रट्ठपालो कुलपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—"अनुञ्ञातो

यदि आप लोग इस राष्ट्रपाल कुलपुत्र को घर से बेघर हो प्रव्रजित होने की अनुमति नहीं देंगे तो वह वहीं मृत्यु का ग्रास बन जायगा। यदि आप उसे घर से बेघर हो प्रव्रजित होने की अनुमति दे देंगे तो हो सकता है कि कभी-कदाचित् उसे आप लोग प्रव्रजित को भी देख पायेंगे। और यह भी हो सकता है कि राष्ट्रपाल का वहाँ प्रव्रज्या में मन न लगे तो फिर उसके पास क्या रास्ता रह जायगा ! वापस आप लोगों के पास आकर रहने लगेगा। अतः हमारी सलाह तो यही है कि आप उसे घर से बेघर हो प्रव्रजित होने के अनुमति प्रन्न कर दें।:'

"पुत्र ! हम राष्ट्रपाल कुलपुत्र को घर से बेघर हो प्रव्रजित होने की अनुमति देते हैं। (परन्तु उसे) प्रव्रजित हो कर भी कभी-कभी माता-पिता को दर्शन देने आना पड़ेगा।"

तब वे राष्ट्रपाल के साथी, जहाँ राष्ट्रपाल था वहाँ, पहुँचे। पहुँच कर उसे यों बोले—"उठो ! सौम्य राष्ट्रपाल ! तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हें घर से बेघर हो प्रव्रजित होने की अनुमति दे दी है। परन्तु उनकी एक ही शर्त है कि प्रव्रजित हो कर भी तुम्हें कभी-कभी उनको दर्शन देने आना पड़ेगा।"

७. तब राष्ट्रपाल कुलपुत्र (अपना आग्रह छोड़) वहाँ से उठ, शरीर में कुछ शक्ति आने पर, जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा। पहुँच कर, भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस राष्ट्रपाल कुलपुत्र ने भगवान् से यों निवेदन

अहं, भन्ते, मातापितूहि अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जाय। पब्बाजेतु मं भगवा" ति। अलत्थ खो रट्ठपालो कुलपुत्तो भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं। अथ खो भगवा अचिरूपसम्पन्ने आयस्मन्ते [B. 250] रट्ठपाले अड्ढमासूपसम्पन्ने थुल्लकोट्ठिके यथाभिरन्तं विहरित्वा येन सावत्थि तेन चारिकं पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो [N. 286, R. 61] येन सावत्थि तदवसरि। तत्र सुदं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो आयस्मा रट्ठपालो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव आतापी पहितत्तो अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो खो पनायस्मा रट्ठपालो अरहतं अहोसि।

२. रट्ठपालेन मातापितुन्नं उद्दस्सनं

८. अथ खो आयस्मा रट्ठपालो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा

किया—"भन्ते ! मुझे (मेरे) माता-पिता ने घर से बेघर हो प्रव्रजित होने की अनुमति दे दी है। अब भगवान् मुझे प्रव्रज्या की दीक्षा दें।" तब राष्ट्रपाल कुलपुत्र ने भगवान् से प्रव्रज्या (दीक्षा) प्राप्त की, उपसम्पदा (धर्माचरण की शिक्षा) प्राप्त की। इसके बाद भगवान्, जब कि राष्ट्रपाल कुलपुत्र को प्रव्रज्या लिये आधा महीना ही बीता था, स्थूलकोष्ठिक ग्राम से यथेच्छ चारिका करते हुए जहाँ श्रावस्ती नगरी थी, उस ओर चल दिये। वे क्रमशः चारिका करते हुए श्रावस्ती पहुँच गये। और वहाँ वे अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनारत हो गये। उधर आयुष्मान् राष्ट्रपाल उपसम्पदा प्राप्त कर एकाकी, तन्मय, उत्साही हो कर इन्द्रिय-संयम द्वारा साधना करते हुए शीघ्र ही उस अवस्था में पहुँच गये जिस के लिये कुलपुत्रजन घर से बेघर हो प्रव्रज्या लेकर, धर्मसाधना करते हुए, इसी जन्म में स्वयं धर्मतत्त्व जान, उसका साक्षात्कार कर प्राप्त कर लेते हैं। उसने यह समझ लिया कि 'मेरी जन्म-मरणपरम्परा समाप्त हो चुकी है, मेरी साधना पूर्ण हो चुकी है, मैं अपना कर्तव्य पूरा कर चुका हूँ, अब मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है'। यों आयुष्मान् राष्ट्रपाल अर्हतों में एक हो गये।

२. राष्ट्रपाल द्वारा माता-पिता को दर्शन

८. तब फिर किसी समय आयुष्मान् राष्ट्रपाल जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ

रट्ठपालो भगवन्तं एतदवोच—"इच्छामहं, भन्ते, मातापितरो उद्दस्सेतुं, सचे मं भगवा अनुजानाती" ति। अथ खो भगवा आयस्मतो रट्ठपालस्स चेतसा चेतो परिच्च मनसाकासि। यथा भगवा अञ्ञासि—"अभब्बो खो रट्ठपालो कुलपुत्तो सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तितुं" ति, अथ खो भगवा आयस्मन्तं रट्ठपालं एतदवोच—"यस्स दानि त्वं, रट्ठपाल, कालं मञ्ञसी" ति। अथ खो आयस्मा रट्ठपालो उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा, पदक्खिणं कत्वा, सेनासनं संसामेत्वा, पत्तचीवरमादाय येन थुल्लकोट्ठिकं तेन चारिकं पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन थुल्लकोट्ठिको तदवसरि। तत्र सुदं आयस्मा रट्ठपालो थुल्लकोट्ठिके विहरति रञ्ञो कोरब्यस्स मिगचीरे। अथ खो आयस्मा रट्ठपालो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय थुल्लकोट्ठिकं पिण्डाय पाविसि। थुल्लकोट्ठिके सपदानं पिण्डाय चरमानो येन सकपितु निवेसनं तेनुपसङ्कमि। तेन खो पन समयेन आयस्मतो रट्ठपालस्स पिता मज्झिमाय द्वारसालाय उल्लिखापेति। अद्दसा खो आयस्मतो रट्ठपालस्स पिता आयस्मन्तं रट्ठपालं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान एतदवोच—"इमेहि मुण्डकेहि समणकेहि अम्हाकं एकपुत्तको पियो मनापो पब्बाजितो" ति। अथ खो आयस्मा रट्ठपालो सकपितु निवेसने नेव दानं अलत्थ न पच्चक्खानं;

पहुँचे। पहुँच कर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् राष्ट्रपाल ने भगवान् से यों निवेदन किया--"भन्ते! मैं चाहता हूँ कि यदि आपकी अनुमति हो तो मैं अपने माता-पिता को दर्शन दे आऊं।" जब भगवान् ने अपने चित्त से राष्ट्रपाल के चित्त को जान लिया कि आयुष्मान् राष्ट्रपाल का गृहस्थ धर्म में अब पुनः पतन (गमन) असम्भव है तो भगवान् ने आयुष्मान् राष्ट्रपाल को यों कहा--"राष्ट्रपाल! जैसा तुम उचित समझो।" तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल ने आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर, अपना शयनासन (विस्तर) समेट, पात्र-चीवर ले स्थूलकोष्ठिक ग्राम की ओर चारिका प्रारम्भ की। यों क्रमशः चारिका करते हुए आयुष्मान् राष्ट्रपाल स्थूलकोष्ठिक ग्राम पहुँच गये। वहाँ आयुष्मान् राष्ट्रपाल ने उस स्थूलकोष्ठिक ग्राम के बाहर राजा कौरव्य के (मृगबहुल) उद्यान में ठहर कर साधना प्रारम्भ की। तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल ने पूर्वाह्न समय बिता, पात्र-चीवर ले, स्थूलकोष्ठिक ग्राम में भिक्षाहेतु प्रवेश किया। स्थूलकोष्ठिक में बिना रुके, (सपदान) भिक्षाचार करते हुए, जहाँ उसके पिता का घर था वहाँ, पहुँचा। उस समय राष्ट्रपाल का पिता अपने घर के बिचले प्रकोष्ठ (कमरा) में बैठा बाल बनवा रहा था। आयुष्मान् राष्ट्रपाल के पिता ने दूर से ही उसे आते हुए देख लिया। देख कर वह उसे बिना पहचाने यों बोला—"इन श्रमण मुण्डकों ने मेरे एकमात्र प्रिय

अञ्ञदत्थु अक्कोसमेव अलत्थ। तेन खो [N. 287, R. 62, B. 251] पन समयेन आयस्मतो रट्ठपालस्स ञातिदासी आभिदोसिकं कुम्मासं छड्डेतु-कामा होति। अथ खो आयस्मा रट्ठपालो तं ञातिदासिं एतदवोच—"सचेतं, भगिनि, छड्डनीयधम्मं, इध मे पत्ते आकिरा" ति। अथ खो आयस्मतो रट्ठपालस्स ञातिदासी तं आभिदोसिकं कुम्मासं आयस्मतो रट्ठपालस्स पत्ते आकिरन्ती हत्थानं च पादानं च सरस्स च निमित्तं अग्गहेसि।

९. अथ खो आयस्मतो रट्ठपालस्य ञातिदासी येनायस्मतो रट्ठपालस्स माता तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मतो रट्ठपालस्स मातरं एतदवोच-"यग्घेय्ये, जानेय्यासि—'अय्यपुत्तो रट्ठपालो अनुप्पत्तो' " ति।

"सचे, जे, सच्चं भणसि, अदासिं तं करोमी" ति।

अथ खो आयस्मतो रट्ठपालस्स माता येनायस्मतो रट्ठपालस्स पिता तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मतो रट्ठपालस्स पितरं एतदवोच--"यग्घे, गहपति, जानेय्यासि--'रट्ठपालो किर कुलपुत्तो अनुप्पत्तो'" ति? तेन खो पन समयेन आयस्मा रट्ठपालो तं आभिदोसिकं कुम्मासं अञ्ञतरं कुट्टमूलं निस्साय परिभुञ्जति। अथ खो आयस्मतो रट्ठपालस्स पिता येनायस्मा रट्ठपालो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं रट्ठपालं एतदवोच—"अत्थि

पुत्र को प्रव्रजित कर लिया।" तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल ने अपने पिता के घर से न दान (भिक्षा) पाया, न निषेध पाया; केवल बदले में उसने फटकार (आक्रोश) ही पायी। उस समय आयुष्मान् राष्ट्रपाल के घर की नौकरानी रात के बने बासी कुल्माष (दाल) को बाहर फेंकने जा रही थी। तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल ने नौकरानी से कहा—"बहन! यदि तुम इसे फैंकने ही जा रही हो तो इसे मेरे पात्र में ही डाल दो।" (ऐसा सुनते हुए) उस घर की नौकरानी ने उस बासी दाल को आयुष्मान् राष्ट्रपाल के पात्र में डालते समय उसके हाथ-पैर और बोलने की आवाज (स्वर) को पहचान लिया।

९. तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल के घर की वह नौकरानी आयुष्मान् राष्ट्रपाल की माता के पास गयी, वहाँ जा कर उसने कहा—"माता जी! आप जानती हैं, आयुष्मान् राष्ट्रपाल आये हैं।"

(माता बोली—) "यदि तूँ यह सच कह रही है तो आज से तुझ को मैंने दासत्वबन्धन से मुक्त कर दिया!"

फिर वह आयुष्मान् राष्ट्रपाल की माता, जहाँ आयुष्मान् राष्ट्रपाल के पिता थे वहाँ, पहुँची। पहुँच कर पिता से बोली—"अरे गृहपति! जानते हो, तुम्हारा कुलपुत्र राष्ट्रपाल आया हुआ है?" उस समय आयुष्मान् राष्ट्रपाल एक दीवाल के सहारे बैठे

नाम, तात रट्ठपाल, आभिदोसिकं कुम्मासं परिभुञ्जिस्ससि ? ननु, तात रट्ठपाल, सकं गेहं गन्तब्बं" ति ?

"कुतो नो, गहपति, अम्हाकं गेहं अगारस्मा अनगारियं पब्बजितानं ? अनगारा मयं, गहपति। अगमम्ह खो ते, गहपति, गेहं, तत्थ नेव दानं [R.63] अलत्थम्ह न पच्चक्खानं; अञ्ञदत्थु अक्कोसमेव अलत्थम्हा" ति।

"एहि, तात रट्ठपाल, घरं गमिस्सामा" ति।

"अलं, गहपति, कतं मे अज्ज भत्तकिच्चं"।

[N. 288] "तेन हि, तात रट्ठपाल, अधिवासेहि स्वातनाय भत्तं" ति। अधिवासेसि खो आयस्मा रट्ठपालो तुण्हीभावेन। अथ खो आयस्मतो रट्ठपालस्स पिता आयस्मतो रट्ठपालस्स अधिवासनं विदित्वा येन सकं निवेसनं [B. 252] तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा महन्तं हिरञ्ञसुवण्णस्स पुञ्जं कारापेत्वा किलञ्जेहि पटिच्छादेत्वा आयस्मतो रट्ठपालस्स पुराणदुतियिका आमन्तेसि--"एथ तुम्हे, वधुयो, येन अलङ्कारेन अलङ्कता पुब्बे रट्ठपालस्स कुलपुत्तस्स पिया होथ मनापा तेन अलङ्कारेन अलङ्करोथा" ति।

१०. अथ खो आयस्मतो रट्ठपालस्स पिता तस्सा रत्तिया अच्चयेन

नौकरानी द्वारा दी गयी बासी दाल खा रहे थे। तब उसका पिता उसके पास गया। जा कर राष्ट्रपाल को यों बोला—"तात राष्ट्रपाल! क्या बासी दाल खा रहे हो ? तुम्हें तो अपने घर चलना चाहिये !"

गृहपति ! अब हम घर से बेघर हो प्रव्रजित हुए भिक्षुओं का घर कहाँ है ? गृहपति ! हम तो बेघर हो चुके हैं। हाँ, गृहपति ! अभी हम आपके घर अवश्य गये थे, वहाँ हमें न (भिक्षा-) दान मिला, न इन्कार ही। मिली केवल फटकार (झिड़कन) !

"आओ पुत्र ! घर चलें (कुछ खा-पी लो)।"

"रहने दो गृहपति ! आज की भिक्षा (भत्तकिच्च) कर ली है।"

"तो तात राष्ट्रपाल ! कल की ही भिक्षा का निमन्त्रण स्वीकार कर लो।" आयुष्मान् राष्ट्रपाल ने मौन रहते हुए यह बात स्वीकार कर ली। आयुष्मान् राष्ट्रपाल के पिता ने उसकी स्वीकृति जान, वापस अपने घर की राह ली। जा कर, उसने वहाँ एक विशाल सुवर्णराशि एकत्र करवा कर, उसे चटाई से ढक कर, आयुष्मान् राष्ट्रपाल की बहुओं को बुला कर यह आदेश दिया—"जाओ, बहुओ ! जिन अलङ्कारों को पहनने से तुम आयुष्मान् राष्ट्रपाल को अच्छी व सुन्दर लगती थीं, वही अलङ्कार पहन कर अपने को सुसज्जित कर लो।"

१०. एतदनन्तर, आयुष्मान् राष्ट्रपाल के पिता ने, उस रात्रि के बीत जाने पर,

सके निवेसने पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा आयस्मतो रट्ठपालस्स कालं आरोचेसि--"कालो, तात रट्ठपाल, निट्ठितं भत्तं" ति। अथ खो आयस्मा रट्ठपालो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन सकपितु निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो आयस्मतो रट्ठपालस्स पिता तं हिरञ्ञसुवण्णस्स पुञ्जं विवरापेत्वा आयस्मन्तं रट्ठपालं एतदवोच--"इदं ते, तात रट्ठपाल, मत्तिकं धनं, अञ्ञं पेत्तिकं, अञ्ञं पेतामहं। सक्का, तात रट्ठपाल, भोगे च भुञ्जितुं पुञ्ञानि च कातुं। एहि त्वं, तात रट्ठपाल, सिक्खं पच्चक्खाय हीनाया- [R. 64] वत्तित्वा भोगे च भुञ्जस्सु पुञ्ञानि च करोही" ति।

"सचे मे त्वं, गहपति, वचनं करेय्यासि, इमं हिरञ्ञसुवण्णस्स पुञ्जं सकटेसु आरोपेत्वा निब्बाहापेत्वा मज्झेगङ्गाय नदिया सोते ओपिलापेय्यासि। तं किस्स हेतु? उप्पज्जिस्सन्ति हि ते, गहपति, ततोनिदानं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा" ति!

अथ खो आयस्मतो रट्ठपालस्स पुराणदुतियिका पच्चेकं पादेसु गहेत्वा आयस्मन्तं रट्ठपालं एतदवोचुं--"कीदिसा नाम ता, अय्यपुत्त, अच्छरायो यासं त्वं हेतु ब्रह्मचरियं चरसी" ति?

अपने घर पर सुन्दर-सुन्दर रुचिकर खाद्य-भोज्य पदार्थ बनवा कर, आयुष्मान् राष्ट्रपाल को समय पर बुलाया--"तात राष्ट्रपाल! भोजन तय्यार है, भिक्षा का समय हो गया है।" तब राष्ट्रपाल पूर्वाह्ण काल बिता कर, पात्र-चीवर ले जहाँ अपने पिता का घर था वहाँ पहुँचे। पहुँच कर बिछे आसन पर बैठ गये। तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल के पिता ने उस हिरण्य (सुवर्ण) राशि से चादर हटवा कर आयुष्मान् राष्ट्रपाल से यह कहा--"तात राष्ट्रपाल! धन का यह भाग तुम्हारे पिता की ओर से (तुम्हारे लिये) है, दूसरा तुम्हारी माता की ओर से, और यह इससे अलग तुम्हारे पितामह की तरफ से। आओ! राष्ट्रपाल! तुम (भगवदुपदिष्ट) धर्मशिक्षा (प्रव्रज्या) त्याग कर, वापस गृहस्थ धर्म को स्वीकार कर यथेच्छ कामभोगों को भोगो और साथ ही दान-आदि पुण्यकार्य भी करते रहो।"

"गृहपति! यदि तुम मेरी बात मानो तो इस सुवर्णराशि को गाड़ियों पर लदवा कर गङ्गा की मध्य धारा के किसी गहरे स्रोत में फिकवा दो। वह किस लिये? (वह इस लिये कि) गृहपति! इसके कारण तुम्हें आगे चल कर नाना प्रकार के शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य एवं कई तरह की परेशानियाँ उठानी पड़ सकती हैं"।

तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल की सभी बहुओं ने उसके पैर पकड़ कर उससे यों निवेदन किया--"आर्यपुत्र! वे अप्सराएँ कैसी (सुन्दर) होंगी, जिनकी (प्राप्ति) के लिये तुमने यह ब्रह्मचर्य (तपःसाधना) स्वीकार किया है?"

"न खो मयं, भगिनी, अच्छरानं हेतु ब्रह्मचरियं चरामा" ति।
[N. 289] "भगिनिवादेन नो अय्यपुत्तो रट्ठपालो समुदाचरती" ति ता तत्थेव मुच्छिता पपतिंसु। अथ खो आयस्मा रट्ठपालो पितरं एतदवोच– "सचे, गहपति, भोजनं दातब्बं, देथ; मा नो विहेठेथा" ति।

"भुञ्ज, तात रट्ठपाल, निट्ठितं भत्तं" ति।

अथ खो आयस्मतो रट्ठपालस्स पिता आयस्मन्तं रट्ठपालं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि सम्पवारेसि। अथ खो आयस्मा रट्ठपालो भुत्तावी ओनीतपत्तपाणि ठितको व इमा गाथा अभासि—

"पस्स चित्तकतं बिम्बं, अरुकायं समुस्सितं।
[B. 253] आतुरं बहुसङ्कप्पं, यस्स नत्थि धुवं ठिति॥
"पस्स चित्तकतं रूपं, मणिना कुण्डलेन च।
अट्ठित्तचेन ओनद्धं, सह वत्थेभि सोभति॥
"अलत्तककता पादा, मुखं चुण्णकमक्खितं।
अलं बालस्स मोहाय, नो च पारगवेसिनो॥

"बहन! हमने यह ब्रह्मचर्यव्रत अप्सराओं की प्राप्ति हेतु नहीं स्वीकार किया है।"

"अरे! हमारा आर्यपुत्र (पति) तो हमें 'बहन' कह कर हमसे संवाद कर रहा है! यह सोच वे वहीं मूर्छित हो गिर पड़ीं। तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल ने अपने पिता से यों कहा––"गृहपति! यदि मुझे भोजन देना हो तो दो, परेशान मत करो!"

"तात राष्ट्रपाल! भोजन तय्यार है। भिक्षाकर्म कर लो।"

तब आ॰ राष्ट्रपाल के पिता ने उसको अपने हाथ से सुन्दर-सुन्दर रुचिकर भोजन परोसा, तृप्त किया। तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल ने भोजन कर, पात्र से हाथ खींच कर, वहीं बैठे ही बैठे ये गाथायें कहीं—

"देखो इस चित्र-विचित्र बने आकार (शरीर) को, जो व्रणपूर्ण (होते हुए भी) ऊपरी साज-सज्जा से सज्जित किया गया है। जो सतत रोग (आधि-व्याधि) से घिरा हुआ है। जिसमें हमने नाना प्रकार की इच्छाओं को सँजो रखा है। इसकी स्थिति भी ध्रुव (शाश्वत) नहीं है।

"देखो इस चित्र-विचित्र बने रूप (काय) को, जो मणि-कुण्डल के साथ हड्डी और मज्जा के साथ आबद्ध हो नाना वस्त्रों के सहारे सुन्दर लगता है।

"ये महावर (अलक्तक) लगे पैर और चूर्णक (पाउडर) से पुता मुख केवल मूर्खों को ही मुग्ध कर सकता है, पार (निर्वाण) की खोज करने वाले को नहीं।

"अट्ठपादकता केसा, नेत्ता अञ्जनमक्खिता। [R. 65]
अलं बालस्स मोहाय, नो च पारगवेसिनो॥
"अञ्जनीवण्णवा चित्ता, पूतिकायो अलङ्कतो।
अलं बालस्स मोहाय, नो च पारगवेसिनो॥
"ओदहि मिगवो पासं, नासादा वाकरं मिगो।
भुत्वा निवापं गच्छामि, कन्दन्ते मिगबन्धके" ति॥

अथ खो आयस्मा रट्ठपालो, ठितको व इमा गाथा भासित्वा, येन रञ्ञो कोरब्यस्स मिगचीरं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहारं निसीदि।

३. चत्तारि पारिजुञ्ञानि

११. अथ खो राजा कोरब्यो मिगवं आमन्तेसि—"सोधेहि, सम्म मिगव, मिगचीरं उय्यानभूमिं; गच्छाम सुभूमिं दस्सनाया" ति। "एवं, देवा" ति खो मिगवो रञ्ञो कोरब्यस्स पटिस्सुत्वा मिगचीरं [N. 290] सोधेन्तो अद्दस आयस्मन्तं रट्ठपालं अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहारं निसिन्नं। दिस्वान येन राजा कोरब्यो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा राजानं कोरब्यं एतदवोच—"सुद्धं खो ते, देव, मिगचीरं। अत्थि चेत्थ रट्ठपालो

("इनके) ये घुँघराले बाल या आँजन से आँजी गयी आँखें केवल मूर्खों को ही मोह सकती हैं, पारगवेषी को नहीं॥

"नयी विचित्र अञ्जन-नाड़ी तरह यह सड़ा-गला शरीर केवल मूर्खों को ही···॥

"पिता रूपी व्याध ने जाल फैलाया, परन्तु मृगरूपी मैं जाल में नहीं फँसा। चारा (भोज्य) खा कर मैं तो अपने रहने के स्थान पर, इन व्याधों को रोते-कलपते छोड़ कर वापस जा रहा हूँ॥"

तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल ने बैठे ही बैठे ये गाथायें कहकर, जहाँ राजा कौरव्य का मृगाचीर उद्यान था वहाँ, वे वापस चल दिये। वहाँ आ कर किसी वृक्षमूल में बैठ कर दिन की साधना में लग गये।

चार नाशक कमजोरियाँ

११. उसी समय राजा कौरव्य ने मिगव (मृगयु नामक माली) को आज्ञा दी—"सौम्य मिगव ! तुम मृगाचीर की उदयानभूमि को झाड़बुहार कर साफ करो। आज उस सुभूमि को देखन की इच्छा है"। "ठीक है, देव"—यों राजा कौरव्य को उत्तर दे उस मिगव ने मृगाचीर की सफाई करते हुए आयुष्मान् राष्ट्रपाल को किसी वृक्ष के नीचे दिन की साधना मे लगे देखा। देखकर वह उलटे पैरों राजा

नाम कुलपुत्तो इमस्मिं येव थुल्लकोट्ठिके अग्गकुलस्स पुत्तो अस्स त्वं अभिण्हं कित्तयमानो अहोसि, सो अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहारं निसिन्नो" ति।

"तेन हि, सम्म मिगव, अलं दानज्ज उय्यानभूमिया। तमेव दानि मयं भवन्तं रट्ठपालं पयिरुपासिस्सामा" ति।

अथ खो राजा कोरब्यो "यं तत्थ खादनीयं भोजनीयं पटियत्तं तं सब्बं विस्सज्जेथा" ति वत्वा भद्रानि भद्रानि यानानि योजापेत्वा भद्रं यानं अभि- [B. 254] रुहित्वा भद्रेहि भद्रेहि यानेहि थुल्लकोट्ठिकम्हा निय्यासि महच्चा राजानुभावेन आयस्मन्तं रट्ठपालं दस्सनाय। यावतिका यानस्स भूमि यानेन गन्त्वा याना पच्चोरोहित्वा पत्तिको व उस्सटाय उस्सटाय [R. 66] परिसाय येनायस्मा रट्ठपालो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता रट्ठपालेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो राजा कोरब्यो आयस्मन्तं रट्ठपालं एतदवोच—"इध भवं रट्ठपालो हत्थत्थरे निसीदतू" ति।

"अलं, महाराज, निसीद त्वं; निसिन्नो अहं सके आसने" ति। निसीदि

कौरव्य के पास आया, और बोला—देव ! मृगाचीर को तो मैंने झाड़-बुहार दिया। हाँ, मैंने राष्ट्रपाल नामक कुलपुत्र को, जो इसी स्थूलकोष्ठिक ग्राम के प्रधान का पुत्र है, और जिसकी आप प्रायः प्रशंसा करते रहते हैं वह, उदयान में किसी वृक्ष के नीचे बैठा दिन की साधना में लगा हुआ है।"

"तो सौम्य भिगव। आज उदयानभूमि देखने की बात रहने दो। अब तो हम उसी पूज्य राष्ट्रपाल की पर्युपासना (सेवा-सत्सङ्ग) करेंगे।"

तब राजा कौरव्य "जो कुछ भी खादय-भोज्य साथ में ले चलने के लिए तय्यार किया गया है, उस सब को यहीं छोड़ दो"—ऐसी आज्ञा दे, अच्छे से अच्छे यान (रथ) जुतवा कर, एक अच्छे यान पर बैठ, बड़े ठाट-बाट से आयुष्मान् राष्ट्रपाल के दर्शनहेतु स्थूलकोष्ठिक से निकला। जहाँ तक यान से जाने का मार्ग था वहाँ तक यान से ही जाकर, (बाकी को) यान से उतर कर पैदल पार कर, परिषद् के प्रायः सभी आदमियों को कम कर, कुछ ही आदमियों के साथ, जहाँ आयुष्मान् राष्ट्रपाल थे वहाँ, पहुँच कर आयुष्मान् राष्ट्रपाल से सम्मोदन (कुशल-मङ्गल) किया। वह सम्मोदन योग्य बातें कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे राजा कौरव्य ने आयुष्मान् राष्ट्रपाल से यों निवेदन किया—"माननीय राष्ट्रपाल ! इस गलीचे (हस्तस्तर) पर विराजें"।

"रहने दें, महाराज ! आप ही इस पर बैठें ! मैं तो अपने आसन पर बैठा ही

राजा कोरब्यो पञ्ञत्ते आसने। निसज्ज खो राजा कोरब्यो आयस्मन्तं रट्ठपालं एतदवोच--

१२. "चत्तारिमानि, भो रट्ठपाल, पारिजुञ्ञानि, येहि पारिजुञ्ञेहि समन्नागता इधेकच्चे केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति। कतमानि चत्तारि? जरापारिजुञ्ञं, ब्याधिपारिजुञ्ञं, भोगपारिजुञ्ञं, ञातिपारिजुञ्ञं।

कतमं च, भो रट्ठपाल, जरापारिजुञ्ञं? इध, भो रट्ठपाल, एकच्चो जिण्णो होति बुड्ढो महल्लको अद्धगतो वयोअनुप्पत्तो। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं खोम्हि एतरहि जिण्णो वुड्ढो महल्लको अद्धगतो वयोअनुप्पत्तो। न खो पन मया सुकरं अनधिगतं वा भोगं अधिगन्तुं अधिगतं [N. 291] वा भोगं फातिं कातुं। यन्नूनाहं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्यं' ति। सो तेन जरापारिजुञ्ञेन समन्नागतो केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजति। इदं वुच्चति, भो रट्ठपाल, जरापारिजुञ्ञं। भवं खो पन रट्ठपालो एतरहि दहरो युवा सुसुकाळकेसो भद्रेन योब्बनेन समन्नागतो पठमेन वयसा। तं भोतो रट्ठपालस्स जरापारिजुञ्ञं नत्थि। किं भवं रट्ठपालो ञत्वा वा दिस्वा वा सुत्वा वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो! (क)

हूँ।" तब राजा (उस) बिछे आसन पर बैठ गया। बैठकर राजा कौरव्य ने आयुष्मान् राष्ट्रपाल से यों निवेदन किया—

१२. भो राष्ट्रपाल! आदमियों में ये चार कमजोरियाँ (हानियाँ) होती हैं; जिन से घिरे हुए कुछ लोग बाल-दाढ़ी कटवा कर, काषाय वस्त्र पहन, घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाते हैं। कौन सी चार? १. बुढ़ापे की कमजोरी, (२) रोग से कमजोरी, ३. भोग की कमजारी, एवं ४. नाते रिश्तेदारों की कमजोरी।

"भो राष्ट्रपाल! बुढ़ापे की कमजोरी क्या होती है? भो! राष्ट्रपाल! यहाँ कोई पुरुष जीर्ण, वृद्ध, अतिवृद्ध, मृत्यु के किनारे पहुँचा हुआ, या बहुत आयु पाया हुआ हो। वह यों सोचे—'मैं अब बहुत जीर्ण-शीर्ण वृद्ध हो चला हूँ, मैं अब अप्राप्त भोगों की किसी तरह प्राप्ति या प्राप्त भोगों को यथेच्छ उपभोग करने में समर्थ नहीं रहा। क्यों न मैं दाढ़ी-मूछ कटवा कर... प्रव्रजित हो जाऊँ। यों वह आदमी बुढ़ापे की इस कमजोरी से घिरा हुआ दाढ़ी-मूछ मुँडवा कर प्रव्रजित हो जाय। भो राष्ट्रपाल! इसे कहते हैं बुढ़ापे की कमजोरी। आप तो राष्ट्रपाल! इस समय चढ़ती जवानी के युवक हैं, आपके बाल भी काले-घुँघराले हैं कद्दावर जवान हैं। आप राष्ट्रपाल को तो यह बुढ़ापा की कमजोरी कहने को भी नहीं है। तो फिर आप

"कतमं च, भो रट्ठ ाल, ब्याधिपारिजुञ्ञं ? इध, भो रट्ठपाल, एकच्चो आबाधिको होति दुक्खितो बाळ्हगिलानो। सो इति पटिसञ्चिक्खति— [B. 255] 'अहं खोम्हि एतरहि आबाधिको दुक्खितो बाळ्हगिलानो। न खो पन मया सुकरं अनधिगतं वा भोगं अधिगन्तुं अधिगतं वा भोगं फातिं [R. 67] कातुं। यन्नूनाहं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्यं' ति। सो तेन ब्याधिपारिजुञ्ञेन समन्नागतो केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजति। इदं वुच्चति, भो रट्ठपाल, ब्याधिपारिजुञ्ञं। भवं खो पन रट्ठपालो एतरहि अप्पाबाधो अप्पातङ्को समवेपाकिनिया गहणिया समन्नागतो नातिसीताय नाच्चुण्हाय। तं भोतो रट्ठपालस्स ब्याधिपारिजुञ्ञं नत्थि। किं भवं रट्ठपालो ञत्वा वा दिस्वा वा सुत्वा वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो ! (ख)

"कतमं च, भो रट्ठपाल, भोगपारिजुञ्ञं ? इध, भो रट्ठपाल, एकच्चो अड्ढो होति महद्धनो महाभोगो। तस्स ते भोगा अनुपुब्बेन परिक्खयं गच्छन्ति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं खो पुब्बे अड्ढो अहोसिं महद्धनो महाभोगो। तस्स मे ते भोगा अनुपुब्बेन परिक्खयं गता। न खो पन मया [N. 292] सुकरं अनधिगतं वा भोगं अधिगन्तुं अधिगतं वा भोगं फातिं

राष्ट्रपाल ने क्या जानकर, क्या देखकर, क्या सुनकर, घर से बेघर हो प्रव्रज्या ले ली ! (क)

"और भो राष्ट्रपाल ! व्याधि से आयी कमजोरी क्या कहलाती है ? राष्ट्रपाल ! यहाँ कोई पुरुष बहुत अधिक रोगी हो, उससे दुःखी हो, बराबर बीमार रहता हो। वह कभी यों सोचने लगे—'मैं अब बराबर रोगग्रस्त रहने लग गया हूँ। मैं अब अप्राप्त भोगों को··· उपरिवत्·· प्रव्रजित हो जाऊँ। वह व्याधि से आयी कमजोरी से से पराभूत हो ··· प्रव्रजित हो जाय। राष्ट्रपाल ! यह व्याधि से आयी कमजोरी कहलाती है। आप तो राष्ट्रपाल ! अभी नीरोग, स्वस्थ, निरातङ्क हैं, आपकी पाचनशक्ति ग्रहणी भी ठीक लगती है, न कमजोर है न तेज। अतः यह लगता है कि आपको व्याधि से आने वाली कमजोरी भी नहीं है। तो आप राष्ट्रपाल ने क्या जानकर··· प्रव्रज्या ली ! (ख)

"राष्ट्रपाल भोग की कमजोरी क्या है ? राष्ट्रपाल यहाँ कोई पुरुष पहले काफी सम्पत्तिवाला, महाधनी, महाभोगवान् हो, उसके वे भोग क्रमशः क्षीण हो जाँय। तब वह सोचने लगे—'मैं पहले काफी सम्पत्ति वाला...था अब मेरी वे भोग्य वस्तुएँ धीरे-धीरे क्षीण हो चुकी हैं। और अब आगे मैं अप्राप्त···पूर्ववत्···प्रव्रजित हो जाऊँ'।

कातुं। यन्नूनाहं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्यं' ति। सो तेन भोगपारिजुञ्ञेन समन्नागतो केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजति। इदं वुच्चति, भो रट्ठपाल, भोगपारिजुञ्ञं। भवं खो पन रट्ठपालो इमस्मिं येव थुल्लकोट्ठिके अग्गकुलस्स पुत्तो। तं भोतो रट्ठपालस्स भोगपारिजुञ्ञं नत्थि। किं भवं रट्ठपालो ञत्वा वा दिस्वा वा सुत्वा वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो ! (ग)

"कतमं च, भो रट्ठपाल, ञातिपारिजुञ्ञं ? इध, भो रट्ठपाल, एकच्चस्स बहू होन्ति मित्तामच्चा ञातसालोहिता। तस्स ते ञातका अनुपुब्बेन परिक्खयं गच्छति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'ममं खो पुब्बे अहेसुं मित्तामच्चा ञातिसालोहिता। तस्स मे ते अनुपुब्बेन परिक्खयं गता। न खो पन मया सुकरं अनधिगतं वा भोगं अधिगन्तुं, अधिगतं वा भोगं [R. 68] फातिं कातुं। यन्नूनाहं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्यं' ति। सो तेन ञातिपारिजुञ्ञेन [B. 256] समन्नागतो केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजति। इदं वुच्चति, भो रट्ठपाल, ञातिपारिजुञ्ञं। भोतो खो पन रट्ठपालस्स इमस्मिं येव थुल्लकोट्ठिके बहू मित्तामच्चा ञातिसालोहिता। तं भोतो रट्ठपालस्स ञातिपारिजुञ्ञं नत्थि। किं भवं रट्ठपालो ञत्वा वा दिस्वा वा सुत्वा वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो ! (घ)

यह सोच कर वह...प्रव्रजित हो जाता है। राष्ट्रपाल ! यह कहलाती है भोग से होने वाली कमजोरी। पर आप तो राष्ट्रपाल ! इसी स्थूलकोष्ठिक के प्रधान के घर पैदा हुए हैं, आप को राष्ट्रपाल ! भोग्यवस्तुओं की कोई कमी नहीं है। तो फिर आप क्या जान कर, क्या देख कर...प्रव्रजित हुए !

"और राष्ट्रपाल ! नाते-रिश्तेदारों की तरफ से प्राप्त होने वाली कमजोरी क्या है ? भो राष्ट्रपाल ! यहाँ किसी पुरुष के पहले बहुत ज्यादा मित्र, साथी या नाते-रिश्तेदार हों, बाद में उसके वे नाते-रिश्तेदार क्रमशः कम होते चले जाँय। तब वह यों सोचने लगे—'पहले मेरे बहुत ज्यादा मित्र...प्रव्रजित हो जाऊँ।' वह उस नाते-रिश्तेदारों की कमी से परेशान हो प्रव्रजित हो जाय। भो राष्ट्रपाल ! यह कहलाती है नाते रिश्तेदारों से होनेवाली कमजोरी। पर माननीय राष्ट्रपाल ! आप को तो नाते-रिश्तेदारों की भी कोई कमी नहीं है। क्योंकि आप के तो इस स्थूलकोष्ठिक में ही बहुत अधिक मित्र, साथी, नाते-रिश्तेदार हैं। तो फिर क्या जान कर...आप प्रव्रजित हुए !

"इमानि खो, रट्ठपाल, चत्तारि पारिजुञ्ञानि, इमेहि पारिजुञ्ञेहि समन्नागता इधेकच्चे केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति। तानि भोतो रट्ठपालस्स नत्थि। किं भवं रट्ठपालो ञत्वा वा दिस्वा वा सुत्वा वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो" ति?

४. भगवता उद्दिट्ठा चत्तारो धम्मुद्देसा

१३. "अत्थि खो, महाराज, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन चत्तारो धम्मुद्देसा उद्दिट्ठा, ये अहं ञत्वा च दिस्वा च सुत्वा च [N. 293] अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो। कतमे चत्तारो? (१) 'उपनिय्यति लोको अद्धुवो' ति खो, महाराज, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन पठमो धम्मुद्देसो उद्दिट्ठो, यमहं ञत्वा च दिस्वा च सुत्वा च अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो। (२) 'अताणो लोको अनभिस्सरो' ति खो, महाराज, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन दुतियो धम्मुद्देसो उद्दिट्ठो, यमहं ञत्वा च दिस्वा च सुत्वा च अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो। (३) 'अस्सको लोको, सब्बं पहाय गमनीयं' ति खो, महाराज, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन ततियो धम्मुद्देसो उद्दिट्ठो, यमहं ञत्वा···अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो। (४) 'ऊनो लोको, अतित्तो तण्हादासो' ति खो, महाराज, तेन भगवता

"माननीय राष्ट्रपाल! साधारणतः पुरुषों की ये चार कमजोरियाँ हैं जिनसे विवश हो वे···प्रव्रजित हो जाते हैं। आप राष्ट्रपाल में तो इन में से कोई भी कमजोरी नहीं है, फिर राष्ट्रपाल आप क्या जानकर, क्या देखकर, क्या सुन कर घर से बेघर हो प्रव्रजित हुए?"

४. भगवदुपदिष्ट धर्माराधन के चार प्रयोजन

१३. महाराज! उस ज्ञानी, सर्वद्रष्टा, अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध ने इस धर्मसाधना के चार उद्देश्य बताये हैं, जिनको मैं जानकर, देखकर, सुनकर घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ हूँ। कौन से चार? (१) यह संसार (क्रमशः) क्षीण हो रहा है, क्योंकि यह 'अध्रुव' (विनाशी) है। उस भगवान् ज्ञानी···सम्यक्सम्बुद्ध ने धर्मसाधना का यह प्रथम प्रयोजन बताया है, जिसे जान···मैं प्रव्रजित हुआ हूँ। (२) यह संसार त्राणरहित है (अर्थात् इस लोक में कोई सुरक्षित नहीं है); क्योंकि यह आश्वासनरहित है'—उस भगवान् ज्ञानी···द्वितीय···हुआ हूँ। (३) 'इस लोक में कुछ भी अपना नहीं है; क्योंकि एक दिन सबको छोड़कर जाना है'—महाराज!

जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन चतुत्थो धम्मुद्देसो उद्दिट्ठो, यमहं ञत्वा च दिस्वा च सुत्वा च अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो। इमे खो, महाराज, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन चत्तारो धम्मुद्देसा उद्दिट्ठा, ये अहं ञत्वा च दिस्वा च सुत्वा च अगारस्मा [R. 69] अनगारियं पब्बजितो" ति।

१४. " 'उपनिय्यति लोको अद्धुवो' ति—भवं रट्ठपालो [B. 257] आह। इमस्स, भो रट्ठपाल, भासितस्स कथं अत्थो दट्ठब्बो" ति ?

"तं किं मञ्ञसि, महाराज—अहोसि त्वं वीसतिवस्सुद्देसिको पि पण्णवीसतिवस्सुद्देसिको पि हत्थिस्मिं पि कतावी अस्सस्मिं पि कतावी रथस्मिं पि कतावी धनुस्मिं पि कतावी थरुस्मिं पि कतावी ऊरुबली बाहुबली अलमत्तो सङ्गामावचरो" ति ?

"अहोसिं अहं, भो रट्ठपाल, वीसतिवस्सुद्देसिको पि पण्णवसतिवस्सुद्देसिको पि हत्थिस्मिं पि कतावी अस्सस्मिं पि कतावी रथस्मिं पि कतावी धनुस्मिं पि कतावी थरुस्मिं पि कतावी ऊरुबली बाहुबली अलमत्तो सङ्गामावचरो। अप्पेकदाहं, भो रट्ठपाल, इद्धिमा व मञ्ञे न अत्तनो बलेन समसमं समनुपस्सामी" ति।

उस भगवान् ज्ञानी…तृतीय…हुआ हूँ। (४) 'इस लोक में हम कितना भी पा जाँय, फिर भी हमें कमी ही अनुभव होगी; क्योंकि यह संसार अतृप्त है, तृष्णा का दास (अधीन) है'—महाराज ! उस भगवान्…चतुर्थ…हुआ हूँ। महाराज ! उस भगवान् ज्ञानी, सर्वद्रष्टा, सम्यक्सबुद्ध ने धर्मसाधना के ये चार प्रयोजन बताये है, जिन्हें जान कर, देख कर, सुनकर, मैं घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ हूं।"

१४. "आप राष्ट्रपाल कहते हैं कि यह संसार (क्रमशः) क्षीण हो रहा है, क्योंकि यह अध्रुव (विनाशी) है'। भो राष्ट्रपाल ! आप के इस कथन का हमें कैसे ठीक अर्थ समझना चाहिये ?"

"तो क्या मानते हो महाराज ! जब आप की आयु २० या २५ वर्ष के आस-पास थी तब भी आप हाथी की सवारी में, घोड़े की सवारी में, रथ-सञ्चालन में, धनुर्विद्या में, या तलवार चलाने में इसी तरह निपुण थे और हाथ-पैरों से इतने ही बलिष्ठ थे, और युद्धकला-प्रदर्शन में इसी उत्साह से उतरते थे ?"

"हाँ, भो राष्ट्रपाल ! जब मेरी आयु २० वर्ष या २५ वर्ष…पूर्ववत्…युद्ध कला-प्रदर्शन में इसी उत्साह से उतरता था। अपि तु एक समय तो ऐसा भी था राष्ट्रपाल ! कि मैं बल में किसी भी अन्य को अपने बराबर नहीं समझता था।

[N. 294] "तं किं मञ्ञसि, महाराज, एवमेव त्वं एतरहि ऊरुबली बाहुबली अलमत्तो सङ्गामावचारो" ति ?

"नो हिदं, भो रट्ठपाल। एतरहि जिण्णो वुड्ढो महल्लको अद्धगतो वयोअनुप्पत्तो आसीतिको मे वयो वत्तति। अप्पेकदाहं, भो रट्ठपाल, 'इध पादं करिस्सामी' ति अञ्ञेनेव पादं करोमी" ति।

"इदं खो तं, महाराज, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सन्धाय भासितं—'उपनिय्यति लोको अद्धुवो' ति, यमहं ञत्वा च दिस्वा च सुत्वा च अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो" ति।

"अच्छरियं, भो रट्ठपाल, अब्भुतं, भो रट्ठपाल ! याव सुभासितं चिदं तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन—'उपनिय्यति लोको अद्धुवो' ति। उपनिय्यति हि, भो रट्ठपाल, लोको अद्धुवो।

"संविज्जन्ते खो, भो रट्ठपाल, इमस्मिं राजकुले हत्थिकाया पि अस्सकाया पि रथकाया पि पत्तिकाया पि, ये अम्हाकं आपदासु परियोधाय [R. 70] वत्तिस्सन्ति। 'अताणो लोको अनभिस्सरो' ति--भवं रट्ठपालो आह। इमस्स पन, भो रट्ठपाल, भासितस्स कथं अत्थो दट्ठब्बो" ति ?

"तो क्या मानते हो, महाराज ! कि आप उस समय की तरह आज भी की तरह हाथ-पैरों से बलिष्ठ या युद्धकला-प्रदर्शन में तथैव उत्साहसम्पन्न हैं ?"

नहीं, भो राष्ट्रपाल ! अब तो मैं जीर्ण-शीर्ण, वृद्ध अत्यधिक आयु (८० वर्ष) तक पहुँचा हुआ हो चुका हूँ। अब तो राष्ट्रपाल मेरी स्थिति ऐसी हो गयी है कि मैं अपना पैर रखना चाहता हूँ कहीं, और रखा जाता है कहीं !"

"महाराज ! इसी तरह की बदलती स्थिति को ध्यान में रख कर उस भगवान् ज्ञानी, सर्वद्रष्टा, अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध ने कहा है—'यह संसार अदल बदल होता रहता है, क्योंकि यह विनाशी है।' यही सोच कर, यही सुनकर...मैं घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ हू"

"आश्चर्य है, भो राष्ट्रपाल ! अद्भुत है, भो राष्ट्रपाल ! उस ज्ञानी...सम्यक्सम्बुद्ध ने कितना सही कहा है—'यह संसार अदलता-बदलता रहता है, क्योंकि यह विनाशी है'। राष्ट्रपाल ! इस परिवर्तनशील संसार को तो अध्रुव ही मानना पड़ेगा।

"भो राष्ट्रपाल ! (अब यह बताइये कि) हमारे इस राजकुल के पास हाथियों के समूह (काय) भी हैं, घोड़ों के समूह भी हैं, रथों के समूह भी हैं, असंख्य पैदल सेना भी--ये सभी हमारी विपत्ति के समय हमारे काम आते हैं, तब आपने यह कैसे कह दिया कि 'मनुष्य इस संसार में असुरक्षित है, आश्वासनरहित (बेसहारा) है।, आप के इस कथन का हम क्या अर्थ लगायें ?"

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, अत्थि ते कोचि अनुसायिको आबाधो" ति ?

"अत्थि मे, भो रट्ठपाल, अनुसायिको आबाधो ! अप्पेकदा मं, भो रट्ठपाल, मित्तामच्चा ञातिसालोहिता परिवारेत्वा ठिता होन्ति—'इदानि राजा कोरब्यो कालं करिस्सति, इदानि राजा कोरब्यो कालं करिस्सती' " ति ।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, लभसि त्वं ते मित्तामच्चे [B. 258] ञातिसालोहिते—'आयन्तु मे भोन्तो मित्तामच्चा ञातिसालोहिता, सब्बेव सन्ता इमं वेदनं संविभजथ, यथाहं लहुकतरिकं वेदनं वेदियेय्यं' ति—उदाहु त्वं येव तं वेदनं वेदियसी" ति ?

"नाहं, भो रट्ठपाल, लभामि ते मित्तामच्चे ञातिसालो- [N. 295] हिते—'आयन्तु मे भोन्तो मित्तामच्चा ञातिसालोहिता, सब्बेव सन्ता इमं वेदनं संविभजथ, यथाहं लहुकतरिकं वेदनं वेदियेय्यं' ति । अथ खो अहमेव तं वेदनं वेदियामी" ति ।

"इदं खो तं, महाराज, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सन्धाय भासितं—'अताणो लोको अनभिस्सरो' ति, यमहं ञत्वा च दिस्वा च सुत्वा च अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो" ति ।

"अच्छरियं, भो रट्ठपाल, अब्भुतं, भो रट्ठपाल ! याव सुभासितं चिदं

"तो क्या मानते हो, महाराज ! आप को कोई ऐसा असाध्य रोग है जो आप के शरीर के साथ ही निवृत्त होगा ?" "हाँ, भो राष्ट्रपाल ! मुझे असाध्य (अचिकित्स्य) वायुरोग (दमा) है, जो मेरे शरीर के साथ ही मुझ से पृथक् होगा । राष्ट्रपाल ! एक बार तो ऐसा समय भी आ गया था कि जब मेरे रोग के आक्रमण से भयभीत हो पास खड़े मेरे अमात्य व सहायक या ज्ञातिजन--स ी एक साथ बोल उठे थे कि 'अब राजा कौरव्य मरेंगे, अब राजा कौरव्य बचेंगे नहीं' !"

"तो क्या मानते, हो महाराज ! उस समय आपने अपने उन अमात्यों, सहायकों या ज्ञातिजनों में से किसी एक को भी पाया जिससे यह कहा हो कि 'आओ तुम सब मिलकर मेरे इस कष्ट को थोड़ा-थोड़ा परस्पर बाँट लो, ताकि मैं इस रोग के कारण कम से कम कष्ट पाऊँ' या आपने अकेले ही उस कष्ट को सहा ।

" नहीं, भो राष्ट्रपाल ! उस समय मैंने अपने उन अमात्यों, सहायकों, ज्ञातिजनों में से किसी को नहीं पाया जिसको···मैंने एकाकी ही उस रोग-कष्ट को सहा ।"

"महाराज ! यही सोचकर, यही समझकर उस ज्ञानी···सम्यक्सम्बुद्ध ने कहा था कि 'मनुष्य इस संसार में असुरक्षित है, इसका कोई दूसरा सहारा (साथी) नहीं है ।' इसको यों जानकर, देखकर···प्रव्रजित हुआ हूं ॥"

तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन—'अताणो लोको अनभिस्सर ' ति। अताणो हि, भो रट्ठपाल, लोको अनभिस्सरो।

"संविज्जति खो, भो रट्ठपाल, इमस्मिं राजकुले पहूतं हिरञ्ञसुवण्णं भूमिगतं च वेहासगतं च। 'अस्सको लोको, सब्बं पहाय गमनीयं' ति—भवं रट्ठपालो आह। इमस्स पन, भो रट्ठपाल, भासितस्स कथं अत्थो दट्ठब्बो" ति?

'तं किं मञ्ञसि, महाराज, यथा त्वं एतरहि पञ्चहि कामगुणेहि [R. 71] समप्पितो समङ्गीभूतो परिचारेसि, लच्छसि त्वं परत्था पि—'एवमेवाहं इमेहेव पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितो समङ्गीभूतो परिचारेमी' ति, उदाहु अञ्ञे इमं भोगं पटिपज्जिस्सन्ति, त्वं पन यथाकम्मं गमिस्ससी" ति?

"यथाहं, भो रट्ठपाल, एतरहि पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितो समङ्गीभूतो परिचारेमि, नाहं लच्छामि परत्था पि—'एवमेव इमेहेव पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितो समङ्गीभूतो परिचारेमी' ति। अथ खो अञ्ञे इमं भोगं पटिपज्जिस्सन्ति; अहं पन यथाकम्मं गमिस्सामी" ति।

"इदं खो तं, महाराज, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सन्धाय भासितं—'अस्सको लोको, सब्बं पहाय गमनीयं' ति, यमहं

"आश्चर्य है भो राष्ट्रपाल !··· पूर्ववत्···कोई सहारा (आश्वासन) नहीं है।"

"भो राष्ट्रपाल ! मेरे इस राजकुल के पास बहुत सी सोने की मोहरें (हिरण्य) हैं, सोना है जो जमीन में भी (गड़ा) है और आकाश (सामने) में भी है। फिर आपने यह कैसे कह दिया कि "इस संसार में अपना कहने लायक कुछ नहीं है'। भो राष्ट्रपाल ! आपके इस कथन का हम अब क्या अर्थ लगावें ?"

"तो क्या मानते हो, महाराज ! जैसे आप इस समय इन पाँच कामगुणों (इन्द्रियविषयों) से युक्त हैं, घुले-मिले हैं, समङ्गीभूत हैं, क्या आप चाहेंगे कि बाद (जन्मान्तर) में भी आप इनसे इसी तरह घुले-मिले रहें, (ये इसी प्रभूत मात्रा में आपको मिलते रहें, या फिर यह चाहेंगे कि आपके इन कामभोगों को दूसरे ही कोई भोगें और आप अपने प्रारब्धानुसार यथास्थान चले जाँय।

"भो राष्ट्रपाल ! मैं जैसे इस समय इन पाँच कामगुणों से घुला-मिला हूँ, आगे (जन्मान्तर में) भी इनसे इसी तरह घुला-मिला रहूँ—यह नहीं हो सकता। तब तो इसे कोई दूसरे ही भोगेंगे और मैं स्वप्रारब्धानुसार (किसी अन्य योनि में) चला जाऊँगा।

"हाँ महाराज ! यही जानकर उस ज्ञानी···सम्यक्सम्बुद्ध ने यह कहा है—"इस

ञत्वा च दिस्वा च सुत्वा च अगारस्मा अनगारियं पब्ब- [N. 296] जितो" ति ।

"अच्छरियं, भो रट्ठपाल ! अब्भुतं, भो रट्ठपाल ! याव सुभासितं चिदं तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन—'अस्सको लोको, सब्बं पहाय गमनीयं' ति। अस्सको हि, भो रट्ठपाल, लोको [B. 259] सब्बं पहाय गमनीयं ।

"ऊनो लोको अतित्तो तण्हादासो' ति—भवं रट्ठपालो आह । इमस्स, भो रट्ठपाल, भासितस्स कथं अत्थो दट्ठब्बो" ति ?

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, फीतं कुरुं अज्झावससी'' ति ?

"एवं, भो रट्ठपाल, फीतं कुरुं अज्झावसामी" ति ।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, इध ते पुरिसो आगच्छेय्य पुरत्थिमाय दिसाय सद्धायिको पच्चयिको । सो तं उपसङ्कमित्वा एवं वदेय्य—'यग्घे महाराज, जानेय्यासि, अहं आगच्छामि पुरत्थिमाय दिसाय ? तत्थद्दसं महन्तं जनपदं इद्धं चेव फीतं च बहुजनं आकिण्णमनुस्सं । बहू तत्थ हत्थि-काया अस्सकाया रथकाया पत्तिकाया; बहु तत्थ धनधञ्ञं ; बहु तत्थ हिरञ्ञ-सुवण्णं अकतं चेव कतं च; बहु तत्थ इत्थिपरिग्गहो । सक्का च तावतकेनेव बलमत्तेन अभिविजिनितुं । अभिविजिन, महाराजा' ति, किन्ति नं करे-य्यासी" ति ?

संसार में अपना कुछ नहीं है, सब कुछ छोड़कर (एक दिन) चले जाना है ।' इसी को जानकर...मैंने प्रव्रज्या ली है ।"

"आश्चर्य है, भो राष्ट्रपाल ! भगवान् ज्ञानी...ने कितना सही कहा है—'संसार में अपना कुछ नहीं है, सब कुछ छोड़कर (एक दिन) जाना पड़ेगा" ।

"'यह संसार का विषयभोग कितना भी मिल जाय कम ही है, इसमें उलझा हुआ प्राणी अतृप्त ही रहता है, यह अपनी तृष्णा का दास (गुलाम) बनकर रह गया है'—आप राष्ट्रपाल ने यह जो कहा, इसका हम क्या अर्थ निकालें ?"

"तो क्या मानते हो राजन् ! आप समृद्ध कुरुदेश पर अपना स्वामित्व बनाये हुए हैं ।

"हाँ, राष्ट्रपाल ! मैं समृद्ध कुरुदेश पर अपना स्वामित्व बनाये हुए हूँ ।

"तो क्या मानते हो महाराज ! यहाँ तुम्हारा कोई विश्वासपात्र अनुचर पूर्व दिशा से आवे और तुम्हारे पास आकर यों कहे—'आप जानते हैं महाराज ! मैं पूर्व दिशा से आ रहा हूँ । वहाँ मैंने एक अतीव समृद्ध, बहुजनाकीर्ण एवं नाना प्रकार के मनुष्यों से भरा-पूरा जनपद देखा है ! वहाँ हाथी, घोड़े, रथ, पैदल सेना, प्रभूत धन-धान्य, हिरण्य (सोने की मुहरें), सोना, चाँदी, चल-अचल सम्पत्ति और सुन्दर

[R. 72] "तं पि मयं, भो रट्ठपाल, अभिविजय अज्झावसेय्यामा" ति।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, इध पुरिसो आगच्छेय्य पच्छिमाय दिसाय ...उत्तराय दिसाय...दक्खिणाय दिसाय...परसमुद्दतो सद्धायिको पच्चयिको। सो तं उपसङ्कमित्वा एवं वदेय्य—'यग्घे, महाराज, जानेय्यासि, अहं आगच्छामि परसमुद्दतो ? तत्थद्दसं महन्तं जनपदं इद्धं चेव फीतं च बहुजनं आकिण्णमनुस्सं। बहू तत्थ हत्थिकाया अस्सकाया रथकाया पत्तिकाया; बहु तत्थ धनधञ्ञं; बहु तत्थ हिरञ्ञसुवण्णं अकतं चेव कतं च, बहु तत्थ इत्थिपरिग्गहो। सक्का च तावतकेनेव बलमत्तेन अभिविजिनितुं। अभिविजिन, महाराजा' ति, किन्ति नं करेय्यासी" ति ?

[N. 297] "तं पि मयं, भो रट्ठपाल, अभिविजिय अज्झावसेय्यामा" ति।

"इदं खो तं, महाराज, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सन्धाय भासितं—'ऊनो लोको अतित्तो तण्हादासो' ति, यमहं ञत्वा च दिस्वा च सुत्वा च अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो" ति।

"अच्छरियं, भो रट्ठपाल, अब्भुतं, भो रट्ठपाल! याव सुभासितं चिदं तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन—'ऊनो लोको अतित्तो तण्हादासो' ति। ऊनो हि, भो रट्ठपाल, लोको अतित्तो तण्हादासो" ति।

युवतियाँ स-ी कुछ अत्यधिक मात्रा में है। वह जनपद थोड़े ही बलप्रयोग से अपने अधीन किया जा सकता है। महाराज! उसे आप जीत लें'। महाराज तब आप क्या करेंगे ?

"हाँ, राष्ट्रपाल ! मैं उस देश को अवश्य जीत लूँगा।"

"तो क्या मानते हो महाराज! यहाँ तुम्हारा कोई विश्वासपात्र आप में श्रद्धायुक्त अनुचर पश्चिम दिशा से... उत्तर दिशा से...दक्षिण दिशा से... समुद्र पार से आपके पास आकर यों कहे— 'पूर्ववत्...। तब महाराज आप क्या करेंगे ?"

"भो राष्ट्रपाल ! उसे भी जीतकर हम अपने अधीन कर लेंगे"।

"महाराज! उन भगवान्...ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध ने यह सोच-विचार कर ही कहा है—'कितना भी पा जाओ, फिर भी संसार कमी वाला ही दिखायी देता है, इसमें प्राणी अतृप्त ही रहता है। यहाँ वह अपनी तृष्णा का दास बना हुआ है।' यही समझ कर, देख कर, सुन कर मैं घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ हूँ।"

आश्चर्य है, भो राष्ट्रपाल! अद्भुत है, भो राष्ट्रपाल! उस भगवान् ज्ञानी सर्वद्रष्टा सम्यक्सम्बुद्ध ने कितना सही कहा है—'संसार कमी वाला ही है, यहाँ सभी अतृप्त रहते हैं, अपनी तृष्णाओं के दास बने हुए हैं।' क्योंकि राष्ट्रपाल! यह संसार सचमुच कमी वाला ही है, यहाँ कितने भी भोग भोगने को मिलें, फिर भी प्राणी

१५. इदमवोच आयस्मा रट्ठपालो। इदं वत्वा अथापरं [B. 250] एतदवोच–

"पस्सामि लोके सधने मनुस्से, लद्धान वित्तं न ददन्ति मोहा।
लुद्धा धनं सन्निचयं करोन्ति, भिय्यो व कामे अभिपत्थयन्ति ॥ १ ॥
"राजा पसय्हा पठविं विजित्वा, ससागरन्तं महिमावसन्तो।
ओरं समुद्दस्स अतित्तरूपो, पारं समुद्दस्स पि पत्थयेथ ॥ २ ॥
"राजा च अञ्ञे च बहू मनुस्सा, अतित्ततण्हा मरणं उपेन्ति।
[R. 72]
ऊना व हुत्वान जहन्ति देहं, कामेहि लोकम्हि न हत्थि तित्ति ॥ ३ ॥
"कन्दन्ति नं ञाती पकिरिय केसे, अहो वता नो अमरा ति चाहु।
वत्थेन नं पारुतं नीहरित्वा, चितं समादाय ततो डहन्ति ॥ ४ ॥
[N. 298]
"सो डय्हति सूलेहि तुज्जमानो, एकेन वत्थेन पहाय भोगे।
न मीयमानस्स भवन्ति ताणा, ञातीध मित्ता अथ वा सहाया ॥ ५ ॥
"दायादका तस्स धनं हरन्ति, सत्तो पन गच्छति येन कम्मं।

उनसे अतृप्त ही रहता है। उसने अपने को अपनी तृष्णाओं का दास (गुलाम) बना डाला है।

१५. आयुष्मान् राष्ट्रपाल ने (राजा को) यह उपदेश दिया। यह उपदेश देकर फिर वे उनसे यों बोले—

"संसार में मैं ऐसे धनवान् पुरुषों को जानता हूँ जो प्रभूत धन पा कर भी मोहवश दूसरों को उसमें से कुछ भी अंश देना नहीं चाहते। वे धन के लोभी उस धन का सञ्चय करते रहते हैं, तथा उससे और भी अधिक भोग की चाह करते हैं" ॥ १ ॥

"राजा लोग भी बलपूर्वक राज्य पर राज्य जीत कर, सागरपर्यन्त पृथ्वी पर शासन करते हैं, वे समुद्र के इस पार से तृप्त न हो, उसके उस पार को भी अपने अधीन करने की इच्छा करते हैं ॥ २ ॥

"ऐसे राजा ही क्या, और भी बहुत से मनुष्य अपनी तृष्णा-पूर्ति से अतृप्त रहते ही मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं। वे यहाँ (बहुत कुछ पा कर भी उनकी) कमी महसूस करते हुए अपना शरीर त्याग देते हैं। इस लोक में कामभोगों से किसी को तृप्ति (सन्तोष) नहीं हुई।

"उसके (मरने पर) नाते-रिश्तेदार अपने बाल बिखेर कर क्रन्दन (विलाप) करते हैं—'हाय ! हमारा (वह) मर गया। (फिर) कपड़ा (कफन) उढ़ा कर- (अर्थी पर रख) चिता में जला देते हैं ॥ ४ ॥

(वहाँ) वह शूल से कूचा जाता, भोगों को छोड़, एक ही वस्त्र में रख, जला

न मीयमानं धनमन्वेति किञ्चि, पुत्ता च दारा च धनं च रट्ठं ॥ ६ ॥
[B. 261] "न दीघमायुं लभते धनेन, न चा पि वित्तेन जरं विहन्ति।
अप्पं हिदं जीवितमाहु धीरा, असस्सतं विप्परिणामधम्मं ॥ ७ ॥
"अड्ढा दळिद्दा च फुसन्ति फस्सं, बालो च धीरो च तथेव फुट्ठो।
बालो च बाल्या वधितो व सेति, धीरो च न वेधति फस्सफुट्ठो ॥ ८ ॥
"तस्मा हि पञ्ञा व धनेन सेय्यो, याय वोसानमिधाधिगच्छति।
अब्योसितत्ता हि भवाभवेसु, पापानि कम्मानि करोन्ति मोहा ॥ ९ ॥
"उपेति गब्भं च परं च लोकं, संसारमापज्ज परम्पराय।
तस्सप्पपञ्ञो अभिसद्दहन्तो, उपेति गब्भं च परं च लोकं ॥ १० ॥
"चोरो यथा सन्धिमुखे गहीतो, सकम्मुना हञ्ञति पापधम्मो।
एवं पजा पेच्च परम्हि लोके, सकम्मुना हञ्ञति पापधम्मो ॥ ११ ॥
[N. 299, R. 74]

दिया जाता है। (उस) मरने वाले की उसके नाते-रिश्तेदार, मित्र अथवा साथी कुछ भी रक्षा (त्राण) नहीं कर पाते ॥ ५ ॥

उसके पुत्र-पौत्र (=दायाद) उसकी धन-सम्पत्ति हर लेते हैं। उस मरने वाले के साथ न उसका धन जाता है, न पुत्र, न स्त्री, न जायदाद, न साम्राज्य—कुछ भी नहीं जाता ॥ ६ ॥

"वह अपने धन से न लम्बी आयु खरीद सकता है, न अपना बुढापा रोक सकता है। इसी लिये धीर (ज्ञानी) पुरुषों ने इस जीवन को स्वल्प, अशाश्वत (अनित्य) एवं विनाशी कहा है ॥ ७ ॥

"धनवान् एवं दरिद्र—सभी को विषयस्पर्श सताता ही है। मूर्ख और ज्ञानी—सभी उन बिषयों के चंगुल में फँसते रहते हैं। अन्तर इतना ही है कि जहाँ मूर्ख, अपनी मूर्खता के कारण, उन विषयों के द्वारा विचलित होता रहता है; परन्तु वहीं ज्ञानी (धीर) उन विषयों से स्पृष्ट होकर भी विचलित नहीं होता ॥ ८ ॥

"इसलिये प्रज्ञा ही धन से श्रेष्ठ है, जिसके सहारे यहाँ संसार का अन्त (तत्त्व-निश्चय) जाना जा सकता है। इस प्रज्ञा के विना अमुक्त (बद्ध) प्राणी मोहवश आवागमन में पड़ बड़े-बड़े पाप कर्म करता रहता है ॥ ९ ॥

("वह) निरन्तर संसार (=भवसागर) में पड़ कर, गर्भ (=इस लोक) तथा परलोक को प्राप्त होता रहता है। वह अल्पप्रज्ञ उस पर श्रद्धा-विश्वास कर गर्भ और परलोक को पाता रहता है ॥ १० ॥

"जैसे सेंध में पकड़ा गया पापी चौर अपने पापकर्म से ही दण्ड पाता है, इसी तरह पापी प्राणी (प्रजा) मर कर परलोक में अपने पापकर्मों से कष्ट पाता है ॥११॥

"कामा हि चित्रा मधुरा मनोरमा, विरूपरूपेन मथेन्ति चित्तं।
आदीनवं कामगुणेसु दिस्वा, तस्मा अहं पब्बजितोम्हि राज ! ॥ १२ ॥
"दुमप्फलानीव पतन्ति माणवा, दहरा च वुड्ढा च सरीरभेदा।
एतं पि दिस्वा पब्बजितोम्हि राज, अपण्णकं सामञ्ञमेव सेय्यो" ति
॥ १३ ॥

●

ये चित्र-विचित्र मधुर-मनोहर कामभोग नाना प्रकार के (भले या बुरे) रूपों से प्राणी के चित्त को कुरेदते रहते हैं। राजन् ! इसीलिये मैंने, इन कामभोगों में दोष देख कर, प्रव्रज्या ग्रहण कर ली ॥ १२ ॥

"राजन् ! जैसे वृक्ष से कच्चे-पके फल समय-बेसमय गिरते रहते हैं; उसी तरह संसार के बच्चे-बूढे प्राणी शरीर-भेद से मरते-खपते रहते हैं। यह देख (समझ) कर भी मैं प्रव्रजित हुआ हूँ; क्योंकि संसार में बराबर आवागमन से तो कभी भी क्षय (पतन) न होने वाला यह श्रामण्य (भिक्षुभाव) ही श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥

रट्ठपालसुत्त समाप्त ॥

❀

३३. मखादेवसुत्तं

१. मिथिलायं राजा मखादेवो

[N. 300, B. 262] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा मिथिलायं विहरति मखादेवम्बवने। अथ खो भगवा अञ्ञतरस्मिं पदेसे सितं पात्वाकासि। अथ खो आयस्मतो आनन्दस्स एतदहोसि--"को नु खो हेतु, को पच्चयो भगवतो सितस्स पातुकम्माय? न अकारणेन तथागता सितं पातुकरोन्ती" ति। अथ खो आयस्मा आनन्दो एकंसं चीवरं कत्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच--"को नु खो, भन्ते, हेतु, को पच्चयो भगवतो सितस्स पातुकम्माय? न अकारणेन तथागता सितं पातुकरोन्ती" ति।

"भूतपुब्बं, आनन्द, इमिस्सा येव मिथिलायं राजा अहोसि मखादेवो नाम धम्मिको धम्मराजा धम्मे ठितो महाराजा; धम्मं चरति ब्राह्मणगहपतिकेसु नेगमेसु चेव जानपदेसु च; उपोसथं च उपवसति चातुद्दसिं पञ्चदसिं अट्ठमिं च [R. 75] पक्खस्स। अथ खो, आनन्द, राजा मखादेवो बहूनं वस्सानं बहूनं वस्ससतानं बहूनं बस्ससहस्सानं अच्चयेन कप्पकं आमन्तेसि--'यदा मे, सम्म कप्पक, पस्सेय्यासि सिरस्मिं पलितानि जातानि, अथ मे आरो-

---

३३. मखादेवसूत्र

१. मिथिला में राजा मखादेव

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) मिथिला में मखादेव आम्रवन में साधना कर रहे थे। उस समय कभी भगवान् (विना किसी प्रसङ्ग के) मुस्कुरा उठे। तब आयुष्मान् आनन्द को मन में यह हुआ--"भगवान् के मुस्कुराने का क्या कारण है? क्या प्रत्यय है? तथागत तो कभी बिना कारण मुस्कुराते नहीं?" इसके बाद आयुष्मान् आनन्द (अपने) चीवर को एक कन्धे पर कर, जिधर भगवान् (विराजमान) थे, उधर हाथ जोड़, प्रणाम कर भगवान् से यों बोले—"भन्ते! भगवान् के मुस्कुराने का क्या कारण है! क्या प्रत्यय है? (क्योंकि) तथागत तो कभी अकारण मुस्कुराते नहीं?"

"आनन्द! पूर्वकाल में इसी मिथिला में एक मखादेव नामक धार्मिक, धर्मराज एवं धर्म में स्थित महाराजा हुआ था, जो धर्म में विश्वास कर, ब्राह्मणों, गृहपतियों, निगमों (कस्बों, नगरों) जनपदों (देहातों) में धर्मपूर्वक व्यवहार करता था; प्रत्येक पक्ष की चतुर्दशी, पञ्चदशी (पूर्णिमा) एवं अष्टमी (तिथि) को उपवास व्रत (उपोसथ) रखता था। इसके बाद, आनन्द! राजा मखादेव ने बहुत वर्ष, अर्थात् सैंकड़ों-हजारों वर्ष, बीतने के बाद (किसी दिन) नाई (कल्पक)

चेय्यासी' ति। 'एवं, देवा' ति खो, आनन्द, कप्पको रञ्ञो मखादेवस्स पच्चस्सोसि। अद्दसा खो, आनन्द, कप्पको बहूनं वस्सानं बहूनं वस्ससतानं बहूनं वस्ससहस्सानं अच्चयेन रञ्ञो मखादेवस्स सिरस्मिं पलितानि जातानि। दिस्वान राजानं मखादेवं एतदवोच--'पातुभूता खो देवस्स देवदूता, दिस्सन्ति सिरस्मिं पलितानि जातानी' ति।

'तेन हि, सम्म कप्पक, तानि पलितानि साधुकं सण्डासेन उद्धरित्वा मम अञ्जलिस्मिं पतिट्ठापेही' ति।

' "एवं, देवा' ति खो, आनन्द, कप्पको, रञ्ञो मखादेवस्स [N. 301] पटिस्सुत्वा तानि पलितानि साधुकं सण्डासेन उद्धरित्वा रञ्ञो मखादेवस्स अञ्जलिस्मिं पतिट्ठापेसि।

२. "अथ खो, आनन्द, राजा मखादेवो कप्पकस्स गामवरं दत्वा जेट्ठपुत्तं कुमारं आमन्तापेत्वा एतदवोच --'पातुभूता खो मे, तात कुमार, देवदूता, दिस्सन्ति सिरस्मिं पलितानि जातानि; भुत्ता खो पन मे मानुसका कामा; समयो दिब्बे कामे परियेसितुं। एहि त्वं, तात कुमार, इमं रज्जं पटिपज्ज। अहं पन केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा [B. 263] अगारस्मा अनगारियं पब्बजिस्सामि। तेन हि, तात कुमार, यदा त्वं पि

को बुलाया और कहा—'कल्पक ! जब कभी मेरे सिर में कोई सफेद बाल दिखायी दे तो मुझे बताना। 'ठीक है देव !' कहकर कल्पक ने राजा मखादेव को उत्तर दिया। आनन्द ! उस कल्पक को, बहुत वर्षों, सैंकड़ों हजारों वर्षों बाद, राजा मखादेव के के सिर पर सफेद बाल दिखायी दिये। देख कर वह राजा मखादेव से यों बोला—'मालूम पड़ता है आप के सिर पर देवदूत मँडरा रहे हैं; क्यों कि आप के सिर पर सफेद बाल दिखायी देने लगे हैं !'

'तो सौम्य कल्पक ! उन सफेद बालों को सण्डसी से उखाड़ कर मेरी हथेली पर रख।'

"तब आनन्द ! कल्पक ने 'ठीक है देव !'--कह कर वे सफेद बाल सरलतया सण्डसी से उखाड़ कर राजा मखादेव की हथेली पर रख दिये।

२. "फिर आनन्द ! राजा मखादेव ने उस कल्पक को अच्छी आमदनी वाला एक ग्राम इनाम में दे कर, अपने ज्येष्ठ पुत्र राजकुमार को बुलाकर यों कहा--'तात मेरे देवदूत प्रकट हो गये हैं (मुझे मृत्यु का बुलावा आ गया है), मेरे सिर पर सफेद बाल उगने शुरू हो गये हैं (जो निकट भविष्य में मेरी मृत्यु के चिह्न हैं)। मैंने इस लोक के सभी सुख भोग लिये हैं, अब परलोक की चिन्ता करने का समय आ गया है। आओ, पुत्र राजकुमार ! अब तुम इस राज्य को सम्हालो। मैं तो अब

पस्सेय्यासि सिरस्मिं पलितानि जातानि, अथ कप्पकस्स गामवरं दत्वा जेट्ठपुत्तं कुमारं साधुकं रज्जे समनुसासित्वा केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्यासि। येन मे इदं कल्याणं वत्तं निहितं अनुप्पवत्तेय्यासि, मा खो मे त्वं अन्तिमपुरिसो अहोसि। यस्मिं खो, तात कुमार, पुरिसयुगे वत्तमाने एवरूपस्स कल्याणस्स वत्तस्स समुच्छेदो होति सो तेसं अन्तिमपुरिसो होति। तं ताहं, तात कुमार, एवं वदामि—येन मे इदं कल्याणं वत्तं निहितं अनुप्पवत्तेय्यासि, मा खो मे त्वं अन्तिमपुरिसो [R. 76] अहोसी' ति।

"अथ खो, आनन्द, राजा मखादेवो कप्पकस्स गामवरं दत्वा जेट्ठपुत्तं कुमारं साधुकं रज्जे समनुसासित्वा इमस्मिं येव मखादेवम्बवने केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजि। सो मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहासि, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं; इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेग अप्पमाणेन अवेरेन अब्याबज्झेन फरित्वा विहासि। करुणासहगतेन चेतसा...मुदितासहगतेन चेतसा... उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहासि, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं; इति उद्धमधो तिरयं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं [N. 302] लोकं उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्याबज्झेन फरित्वा विहासि।

दाढ़ी-मूँछ मुंडवा, काषाय बस्त्र पहन, घर से वेघर हो प्रव्रजित होऊँगा। और राजकुमार! जब तू भी अपने सिर पर पके सफेद बाल देखे तो कल्पक (सफेद बाल की सूचना देने वाले) को एक अच्छा ग्राम इनाम में दे, अपने ज्येष्ठ पुत्र राजकुमार को राज्यभार सौंप, दाढ़ी-मूंछ मुंडवा, काषाय वस्त्र पहन, घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाना। जिससे मेरे द्वारा स्थापित यह कल्याण-मार्ग बराबर चलता रहे और तुम मेरे वंश में अन्तिम पुरुष न बन जाओ। तात कुमार! जिस पुरुषयुगल के रहते इस प्रकार के कल्याणवर्त्म (मार्ग) उच्छिन्न हो जाते हैं, वह उस वंश का अन्तिम पुरुष होता है'। (अर्थात् वह राज्य व वंश विनष्ट हो जाता है)।"

"तब आनन्द! राजा मखादेव कल्पक को एक अच्छा ग्राम इनाम में दे, बड़े राजकुमार को राजगद्दी सौप, उसे शिक्षा दे इसी मखादेव-आम्रवन में दाढ़ी-मूँछ...प्रव्रजित हुआ था। उसने मैत्रीसहगत चित्त से[1]...मैत्रीभावना की साधना की;

---

१. द्र०—पीछे पृष्ठ ७७ (वत्थसुत्त ७)।

"राजा खो पनानन्द, मखादेवो चतुरासीतिवस्ससहस्सानि कुमारकीळितं कीळि, चतुरासीतिवस्ससहस्सानि ओपरज्जं कारेसि, चतुरासीतिवस्ससहस्सानि रज्जं कारेसि, चतुरासीतिवस्ससहस्सानि इमस्मिं येव मखादेवम्बवने अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो ब्रह्मचरियमचरि । सो चत्तारो ब्रह्मविहारे भावेत्वा कायस्स भेदा परं मरणा ब्रह्मलोकूपगो अहोसि ।

२. रञ्ञो मखादेवस्स पुत्तपपुत्तका

३. "अथ खो रञ्ञो, आनन्द, मखादेवस्स पुत्तो बहूनं [B. 264] वस्सानं बहूनं वस्ससतानं बहूनं वस्ससहस्सानं अच्चयेन कप्पकं आमन्तेसि— 'यदा मे, सम्म कप्पक, पस्सेय्यासि सिरस्मिं पलितानि जातानि, अथ खो आरोचेय्यासी' ति । 'एवं, देवा' ति खो, आनन्द, कप्पको रञ्ञो मखादेवस्स पुत्तस्स पच्चस्सोसि । अद्दसा खो, आनन्द, कप्पको बहूनं वस्सानं बहूनं वस्ससतानं बहूनं वस्ससहस्सानं अच्चयेन रञ्ञो मखादेवस्स पुत्तस्स सिरस्मिं पलितानि जातानि । दिस्वान रञ्ञो मखादेवस्स पुत्तं एतदवोच--'पातुभूता खो देवस्स देवदूता, दिस्सन्ति सिरस्मिं पलितानि जातानी' ति । [R. 77]

'तेन हि, सम्म कप्पक, तानि पलितानि साधुकं सण्डासेन उद्धरित्वा मम अञ्जलिस्मिं पतिट्ठापेही' ति । 'एवं, देवा' ति खो, आनन्द, कप्पको रञ्ञो मखादेवस्स पुत्तस्स पटिस्सुत्वा तानि पालितानि साधुकं सण्डासेन उद्धरित्वा रञ्ञो मखदेवस्स पुत्तस्स अञ्ञलिस्मिं पतिट्ठापेसि ।

करुणासहगत चित्त से···मुदितासहगत चित्त से···उपेक्षासहगत चित्त से उपेक्षा-भावना की साधना की ।

"आनन्द ! उस राजा मखादेव ने चौरासी हजार वर्ष तक बाल-क्रीड़ा की; चौरासी हजार वर्ष तक वह युवराज रहा; फिर चौरासी हजार वर्ष तक उसने स्वयं राज्य किया; और चौरासी हजार वर्ष तक उसने इस मखादेव-आम्रवन में घर से बेघर हो प्रव्रजित होते हुए धर्मसाधना की । उसने चारों ब्रह्मविहारों (मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा) की साधना कर देहपात के बाद ब्रह्मलोक की ओर प्रयाण किया ।

२. राजा मखादेव के पुत्र-पौत्र

३. "इसके बाद, आनन्द ! राजा मखादेव के पुत्र ने भी बहुत से वर्ष, यहाँ तक कि सैंकड़ों हजारों वर्ष, वीतने के बाद कल्पक को बुलाया और आज्ञा दी कि जब सौम्य कल्पक! मेरे सिर पर सफेद बाल···पूर्ववत्···सफेद बाल दिखायी दे गये हैं ।

तो सौम्य कल्पक !······सफेद बाल उसकी हथेली पर रख दिये ।

"अथ खो, आनन्द, रञ्ञो मखादेवस्स पुत्तो कप्पकस्स गामवरं दत्वा जेट्ठपुत्तं कुमारं आमन्तापेत्वा एतदवोच--'पातुभूता खो, मे, तात कुमार, देवदूता; दिस्सन्ति सिरस्मिं पलितानि जातानि; भुत्ता खो पन मे मानुसका [N. 303] कामा; समयो दिब्बे कामे परियेसितुं। एहि त्वं, तात कुमार, इमं रज्जं पटिपज्ज। अहं पन केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिस्सामि। तेन हि, तात कुमार, यदा त्वं पि पस्सेय्यासि सिरस्मि पलितानि जातानि, अथ कप्पकस्स गामवरं दत्वा जेट्ठपुत्तं कुमारं साधुकं रज्जे समनुसासित्वा केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्यासि। येन मे इदं कल्याणं वत्तं निहितं अनुप्पवत्तेय्यासि, मा खो मे त्वं अन्तिमपुरिसो अहोसि। यस्मिं खो, तात कुमार, पुरिसयुगे वत्तमाने एवरूपस्स कल्याणस्स वत्तस्स समुच्छेदो होति सो तेसं अन्तिमपुरिसो होति! तं ताहं, तात कुमार, एवं वदामि--येन मे इदं कल्याणं वत्तं निहितं अनुप्पवत्तेय्यासि, मा खो मे त्वं अन्तिमपुरिसो अहोसी' ति। अथ खो, आनन्द, रञ्ञो मखादेवस्स पुत्तो कप्पकस्स गामवरं दत्वा जेट्ठपुत्तं कुमारं साधुकं रज्जे समनुसासित्वा इमस्मिं येव [B 265] मखादेवम्बवने केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजि। सो मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहासि, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं; इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यापज्झेन फरित्वा विहासि। करुणासहगतेन चेतसा···मुदितासहगतेन चेतसा···उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहासि, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं; इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन [R. 78] महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यापज्झेन फरित्वा विहासि। रञ्ञो खो पनानन्द, मखादेवस्स पुत्तो चतुरासीतिवस्ससहस्सानि कुमारकीळितं कीळि, चतुरासीतिवस्ससहस्सानि ओपरज्जं कारेसि, चतुरासीतिवस्ससहस्सानि रज्जं कारेसि, चतुरासीतिवस्ससहस्सानि इमस्मिं येव मखादेवम्बवने अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो ब्रह्मचरियमचरि। सो चत्तारो ब्रह्मविहारे भावेत्वा कायस्स भेदा परं मरणा ब्रह्मलोकूपगो अहोसि।

"तब फिर, आनन्द! राजा मखादेव के पुत्र ने उस कल्पक को एक अच्छा ग्राम इनाम में दे कर अपने ज्येष्ठ पुत्र को बुला कर यह कहा······वह देहपात के बाद ब्रह्मलोक चला गया।

४. "रञ्ञो खो पनानन्द, मखादेवस्स पुत्तपपुत्तका तस्स [N. 304] ते परम्परा चतुरासीतिराजसहस्सानि इमस्मिं येव मखादेवम्बवने केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिंसु। मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरिंसु, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं; इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्याबज्झेन फरित्वा विहरिंसु। करुणासहगतेन चेतसा···मुदितासहगतेन चेतसा···उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरिंसु, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं; इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्याबज्झेन फरित्वा विहरिंसु। चतुरासीतिवस्ससहस्सानि कुमारकीळितं कीळिंसु, चतुरासीतिवस्ससहस्सानि ओपरज्जं कारेसुं, चतुरासीतिवस्ससहस्सानि रज्जं कारेसुं, चतुरासीतिवस्ससहस्सानि इमस्मिं येव मखादेवम्बवने अगारस्मा अनगारियं [B. 266] पब्बजिता ब्रह्मचरियमचरिंसु। ते चत्तारो ब्रह्मविहारे भावेत्वा कायस्स भेदा परं मरणा ब्रह्मलोकूपगा अहेसुं।

३. निमि राजा तेसं पच्छिमको

५. "निमि तेसं राजा पच्छिमको अहोसि धम्मिको धम्मराजा धम्मे ठितो महाराजा; धम्मं चरति ब्राह्मणगहपतिकेसु नेगमेसु चेव जानपदेसु च; उपोसथं च उपवसति चातुद्दसिं पञ्चदसिं अट्ठमिं च पक्खस्स। [R. 79]

६. "भूतपुब्बं, आनन्द, देवानं तावतिंसानं सुधम्मायं सभायं सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं अयमन्तरा कथा उदपादि–'लाभा वत, भो, विदेहानं, सुलद्धं वत, भो, विदेहानं, येसं निमि राजा धम्मिको धम्मराजा धम्मे ठितो महाराजा; धम्मं चरति ब्राह्मणगहपतिकेसु नेगमेसु चेव जानपदेसु च;

---

४. "आनन्द ! इस तरह राजा मखादेव के पुत्र-पौत्रों ने, चौरासी हजार राजाओं तक इस परम्परा को निभाया और वे सभी इस मखादेव-आम्रवन में दाढ़ी मूँछ मुंडवा कर···पूर्ववत् ··ब्रह्मलोक चले गये।

३. राजा निमि उन सब में अन्तिम

५. "राजा निमि उनमें सबसे अन्तिम राजा हुआ जो अपने पूर्व पुरुषों की तरह धर्म में स्थित हो धर्मपूर्वक ब्राह्मणों गृहपतियों नागरिकों व ग्रामवासियों से व्यवहार करता था। और पक्ष की चतुर्दशी, पूर्णिमा एवं अष्टमी के दिन उपवासव्रत रखता था।

६. "आनन्द ! पुराकाल की बात है कि त्रायस्त्रिंश लोक की सुधर्मा देवसभा में

उपोसथं च उपवसति चातुद्दसिं पञ्चदसिं अट्ठमिं च पक्खस्सा' ति। अथ खो, आनन्द, सक्को देवानमिन्दो देवे तावतिंसे आमन्तेसि--'इच्छेय्याथ नो तुम्हे, मारिसा, निमिं राजानं दट्ठुं' ति ?

[N. 305] " 'इच्छाम मयं, मारिस, निमिं राजानं दट्ठुं' ति। तेन पन, आनन्द, समयेन निमि राजा तदहुपोसथे पन्नरसे सीसन्हातो उपोसथिको उपरिपासादवरगतो निसिन्नो होति। अथ खो, आनन्द, सक्को देवानमिन्दो—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य, एवमेव—देवेसु तावतिंसेसु अन्तरहितो निमिस्स रञ्ञो पमुखे पातुरहोसि। अथ खो, आनन्द, सक्को देवानमिन्दो निमिं राजानं एतदवोच—'लाभा ते, महाराज, सुलद्धं ते, महाराज! देवा, महाराज, तावतिंसा सुधम्मायं सभायं कित्तयमानरूपा सन्निसिन्ना—लाभा वत, भो, विदेहानं, सुलद्धं वत, भो, विदेहानं, येसं निमि राजा धम्मिको धम्मराजा धम्मे ठितो महाराजा, धम्मं चरति ब्राह्मणगहपतिकेसु नेगमेसु चेव जानपदेसु च; उपोसथं च उपवसति चातुद्दसिं पञ्चदसिं अट्ठमिं च पक्खस्सा ति। देवा ते, महाराज, तावतिंसा दस्सनकामा। तस्स ते अहं, महाराज, सहस्सयुत्तं आजञ्ञरथं पहिणिस्सामि; अभिरुहेय्यासि,

एकत्र बैठे देवताओं में यह चर्चा चल पड़ी--'तिरहुत[1] (विदेह) प्रदेश के वासियों ने बहुत सत्कर्म किया है, बहुत पुण्य अर्जित किया है, जिसके प्रभाव से उन्हें निमि जैसा धार्मिक राजा मिला है, जो ब्राह्मणों...ग्रामवासियों के साथ धर्मपूर्वक व्यवहार करता है। पक्ष की चतुर्दशी...के दिन उपवासव्रत रखता है'। तब, आनन्द ! देवेन्द्र शक्र ने उन त्रायस्त्रिंशवासी देवताओं से पूछा—'मार्ष ! क्या आप लोग राजा निमि को देखना चाहते हैं ?' देवताओं ने उत्तर दिया—'हाँ, मार्ष ! हम देखना चाहते है।' उस समय आनन्द ! राजा निमि पूर्णिमा के दिन उपवासव्रत-विधि सम्पन्न करने के लिये शिर से स्नान किया हुआ अपने प्रासाद (महल) की ऊपरी मंजिल में बैठा था। तब, आनन्द ! देवेन्द्र शक्र, जैसे बलवान् पुरुष अपनी सिकुड़ी बाहु को अनायास फैला दे, या फैली हुई बाहु को अनायास सिकोड़ ले, इसी तरह त्रायस्त्रिंश देवलोक से अन्तर्धान हो राजा निमि के सम्मुख उपस्थित हुए। तब आनन्द ! देवराज शक्र ने राजा निमि से यों कहा—'महाराज ! आपने बहुत पुण्य किया है, बहुत सत्कर्म किये हैं, जिनके प्रभाव से आपके बारे में त्रायस्त्रिंश देवों की सभा में यह चर्चा चल पड़ी...पूर्ववत्...। वे देवता आप के दर्शन करना चाहते हैं। इसके (आप के वहाँ पधारने के) लिये महाराज ! मैं आपको अपना सहस्र घोड़ों

१. गंगा, गण्डक, कोसी एवं हिमालय के बीच का विहार प्रान्त का प्रदेश।

महाराज, दिब्बं यानं अविकम्पमानो' ति ? अधिवासेसि खो, आनन्द, निमि राजा तुण्हीभावेन ।

७. "अथ खो, आनन्द, सक्को देवानमिन्दो निमिस्स [B. 267] रञ्ञो अधिवासनं विदित्वा--सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य, एवमेव—निमिस्स रञ्ञो पमुखे अन्तरहितो देवेसु तावतिंसेसु पातुरहोसि । अथ खो, आनन्द, सक्को देवानमिन्दो मातलिं सङ्गाहकं आमन्तेसि--'एहि त्वं, सम्म मातलि, सहस्सयुत्तं आजञ्ञरथं योजेत्वा निमिं राजानं उपसङ्कमित्वा एवं वदेहि--अयं ते, महाराज, सहस्सयुत्तो आजञ्ञरथो सक्केन देवानमिन्देन पेसितो; अभिरुहेय्यासि, महाराज, दिब्बं यानं अविकम्पमानो' ति । [R. 80] 'एवं, भद्दन्तवा' ति खो, आनन्द, मातलि सङ्गाहको सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिस्सुत्वा सहस्सयुत्तं आजञ्ञरथं योजेत्वा निमिं राजानं उपसङ्कमित्वा एतदवोच--'अयं ते, महराज, सहस्सयुत्तो आजञ्ञरथो सक्केन [N. 306] देवानमिन्देन पेसितो; अभिरुह, महाराज, दिब्बं यानं अविकम्पमानो । अपि च, महाराज, कतमेन तं नेमि, येन वा पापकम्मा पापकानं कम्मानं विपाकं पटिसंवेदेन्ति, येन वा कल्याणकम्मा कल्याणकम्मानं विपाकं पटिसंवेदेन्ती' ति ?

से खींचा जानेवाला आजानेयरथ भेजूँगा । क्या आप उस सुखप्रद दिव्यविमान पर बैठकर हमारे यहाँ पधारेंगे' ? आनन्द ! राजा निमि ने देवराज इन्द्र का यह प्रस्ताव मौन भाव से स्वीकार कर लिया ।

७. "तब आनन्द ! देवराज इन्द्र राजा निमि की स्वीकृति जान, जैसे बलवान् पुरुष'''पूर्ववत्'''त्रायस्त्रिंश लोक में पुनः लौट गये । आनन्द ! वहाँ उस देवराज इन्द्र ने अपने सारथि (संग्राहक) मातलि को बुलाकर कहा—'सौम्य मातलि, तुम हजार घोड़ों से जुता रथ ले, निमि राजा के पास जाकर उन्हें मेरी ओर से यह कहना—महाराज ! देवराज शक्र ने यह हजार घोड़े जुता सुखप्रद (आरामदेह) आजमेय रथ आपके लिये भेजा है । आप इस पर विराजें ।' 'ठीक है माननीय !'—कहकर, आनन्द ! वह देवराज इन्द्र का सारथि'''रथ जोत कर, राजा निमि के पास जाकर यों बोला—'यह, महाराज ! हजार घोड़े जुता रथ तय्यार है, इसे देवराज शक्र ने आपके लिये भेजा है, यह अत्यन्त सुखद देवयान है । महाराज ! यह भी बताइये कि मैं आपको किधर से वहाँ ले चलूँ—उधर से, जिधर पापकर्म करने वाले पापकर्मों का फल भोगते हैं, या उधर से जिधर पुण्य कर्म करने वाले पुण्यकर्मों का फल भोगते हैं ?'

'उभयेनेव मं, मातलि, नेही' ति।

"सम्पवेसेसि खो, आनन्द, मातलि, सङ्गाहको निमिं राजानं सुधम्मं सभं। अद्दसा खो, आनन्द, सक्को देवानमिन्दो निमिं राजानं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान निमिं राजानं एतदवोच—'एहि खो, महाराज, स्वागतं, महाराज! देवा ते दस्सनकामा, महाराज, तावतिंसा सुधम्मायं सभायं कित्तयमानरूपा सन्निसिन्ना—लाभा वत, भो, विदेहानं, सुलद्धं वत, भो, विदेहानं, येसं निमि राजा धम्मिको धम्मराजा धम्मे ठितो महाराजा; धम्मं चरति ब्राह्मणगहपतिकेसु नेगमेसु चेव जानपदेसु च; उपोसथं च उपवसति चातुद्दसिं पञ्चदसिं अट्ठमिं च पक्खस्सा ति। देवा ते, महाराज, तावतिंसा दस्सनकामा। अभिरम, महाराज, देवेसु देवानुभावेना' ति।

'अलं, मारिस, तत्थेव मं मिथिलं पटिनेतु। तत्थाहं धम्मं चरिस्सामि ब्राह्मणगहपतिकेसु नेगमेसु चेव जानपदेसु च; उपोसथं च उपवसिस्सामि चातुद्दसिं पञ्चदसिं अट्ठमिं च पक्खस्सा' ति।

८. "अथ खो, आनन्द, सक्को देवानमिन्दो मातलिं सङ्गाहकं आमन्तेसि—'एहि त्वं, सम्म मातलि, सहस्सयुत्तं आजञ्ञरथं योजेत्वा निमिं राजानं [B. 268] तत्थेव मिथिलं पटिनेही' ति। 'एवं, भद्दन्तवा' ति खो, आनन्द, मातलि सङ्गाहको सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिस्सुत्वा सहस्सयुत्तं आजञ्ञरथं योजेत्वा निमिं राजानं तत्थेव मिथिलं पटिनेसि। तत्र सुदं, आनन्द, निमि राजा धम्मं चरति ब्राह्मणगहपतिकेसु नेगमेसु चेव जानपदेसु च,

---

'मातलि! दोनों ही तरफ से ले चलो।'

"आनन्द! यों सुन, मातलि सारथि ने क्रमशः राजा को सुधर्मा देवसभा पहुँचाया। वहाँ देवराज शक्र ने राजा निमि को दूर से ही आते देखा। देखकर, वह राजा निमि को यों बोला—'आओ, महाराज! आपका स्वागत है! ये देवता आपके दर्शनेच्छुक हैं। महाराज! ये देवता सुधर्मा देवसभा में आपका गुणगान करते हुए यों बातें कर रहे थे—विदेहों का कितना पुण्य है"'उपवासव्रत रखते हैं। महाराज! यही वे देवता आपके दर्शनेच्छुक हैं। महाराज! आप यहाँ देवसुख भोगते हुए आनन्द से रहें।'

'रहने दें मार्ष देवराज! मुझे तो वहीं वापस मिथिला में पहुँचवा दें। मैं वहीं रहक धर्माचरण करता हुआ ब्राह्मण गृहपतियों, नागरिकों व ग्रामवासी जनता से धर्मव्यवहार करके सुख मानूँगा। और चतुर्दशी"'का उपवासव्रत रखता रहूँगा।'

८. "इसके बाद, आनन्द! देवराज इन्द्र ने अपने सारथि मातलि को बुलाकर (पुनः) कहा—'सौम्य मातलि! जाओ, हजार घोड़ों का दिव्य रथ जुतवा कर राजा

उपोसथं च उपवसति चातुद्दसिं पञ्चदसिं अट्ठमिं च पक्खस्स। अथ [R. 81] खो, आनन्द, निमि राजा बहूनं वस्सानं बहूनं वस्ससतानं बहूनं वस्ससहस्सानं अच्चयेन कप्पकं आमन्तेसि--'यदा मे, सम्म कप्पक, पस्से- [N. 307] य्यासि सिरस्मिं पलितानि जातानि, अथ मे आरोचेय्यासी' ति। 'एवं, देवा' ति खो, आनन्द, कप्पको निमिस्स रञ्ञो पच्चस्सोसि। अद्दसा खो, आनन्द, कप्पको बहूनं वस्सानं बहूनं वस्ससतानं बहूनं वस्ससहस्सानं अच्चयेन निमिस्स रञ्ञो सिरस्मिं पलितानि जातानि। दिस्वान निमिं राजानं एतदवोच--'पातुभूता खो देवस्स देवदूता; दिस्सन्ति सिरस्मिं पलितानि जातानी' ति।

'तेन हि, सम्म कप्पक, तानि पलितानि साधुकं सण्डासेन उद्धरित्वा मम अञ्जलिस्मिं पतिट्ठापेही' ति।

"'एवं, देवा' ति खो, आनन्द, कप्पको निमिस्स रञ्ञो पटिस्सुत्वा तानि पलितानि साधुकं सण्डासेन उद्धरित्वा निमिस्स रञ्ञो अञ्जलिस्मिं पतिट्ठा-पेसि। अथ खो, आनन्द, निमि राजा कप्पकस्स गामवरं दत्वा जेट्ठपुत्तं कुमारं आमन्तापेत्वा एतदवोच—'पातुभूता खो मे, तात कुमार, देवदूता; दिस्सन्ति सिरस्मिं पलितानि जातानि; भुत्ता खो पन मे मानुसका कामा; समयो दिब्बे कामे परियेसितुं। एहि त्वं, तात कुमार, इमं रज्जं पटिपज्ज। अहं पन केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिस्सामि। तेन हि, तात कुमार, यदा त्वंपि पस्सेय्यासि सिरस्मिं पलितानि जातानि, अथ कप्पकस्स गामवरं दत्वा जेट्ठपुत्तं कुमारं साधुकं रज्जे समनुसासित्वा केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छा-देत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्यासि; येन मे इदं कल्याणं वत्तं निहितं अनुप्पवत्तेय्यासि, मा खो मे त्वं अन्तिमपुरिसो अहोसि। यस्मिं खो, तात कुमार, पुरिसयुगे वत्तमाने एवरूपस्स कल्याणस्स वत्तस्स समुच्छेदो होति सो तेसं अन्तिमपुरिसो होति। तं ताहं, तात कुमार, एवं वदामि--येन मे इदं कल्याणं वत्तं निहितं अनुप्पवत्तेय्यासि, मा खो मे त्वं अन्तिमपुरिसो अहोसी' ति।

निमि को वापस मिथिला पहुँचा दो।' 'ठीक है, श्रीमन्' कहकर सारथि मातलि ने··· उपवासव्रत करता रहा। तब आनन्द! निमि राजा ने कल्पक···पूर्ववत्···प्रव्रजित होना। ताकि हमारी यह परम्परा अक्षुण्ण बनी रहे, और तुम हमारे वंश के अन्तिम व्यक्ति न बन जाओ। तात! जिस वंश में पुरुषयुगल के रहते यह परम्परा टूट जाती है

९. "अथ खो, आनन्द, निमि राजा कप्पकस्स गामवरं [B. 269] दत्वा जेट्ठपुत्तं कुमारं साधुकं रज्जे समनुसासित्वा इमस्मिं येव मखादेवम्बवने [N. 308] केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजि। सो मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा [R. 82] विहासि, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं; इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्याबज्झेन फरित्वा विहासि। करुणासहगतेन चेतसा···मुदितासहगतेन चेतसा···उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहासि, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं; इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्याबज्झेन फरित्वा विहासि। निमि खो, आनन्द, राजा चतुरासीतिवस्ससहस्सानि कुमारकीळितं कीळि, चतुरासीतिवस्ससहस्सानि ओपरज्जं कारेसि, चतुरासीतिवस्ससहस्सानि रज्जं कारेसि, चतुरासीतिवस्ससहस्सानि इमस्मिं येव मखादेवम्बवने अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो ब्रह्मचरियमचरि। सो चत्तारो ब्रह्मविहारे भावेत्वा कायस्स भेदा परं मरणा ब्रह्मलोकूपगो अहोसि। निमिस्स खो पनानन्द, रञ्ञो कळारजनको नाम पुत्तो अहोसि। न सो अगारस्मा अनगारियं पब्बजि। सो तं कल्याणं वत्तं समुच्छिन्दि। सो तेसं अन्तिमपुरिसो अहोसि।

तो वह उस वंश का अन्तिम पुरुष बन जाता है। इसलिये मैं तुम्हें यह परामर्श देता हूँ, ताकि हमारी यह परम्परा चलती रहे और तूँ इस परम्परा का अन्तिम व्यक्ति न माना जाय।'

९. "तब, आनन्द ! निमि राजा ने कल्पक को बुलाकर, एक अच्छा ग्राम इनाम में दे, अपने ज्येष्ठ राजकुमार को राज्यभार सौंप, इसी मखादेव आम्रवन में दाढ़ी-मूँछ···प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। और उसने मैत्रीसहगत चित्त से···करुणासहगत चित्त से···मुदितासहगत चित्त से······उपेक्षासहगत चित्त से धर्माभ्यास किया। आनन्द ! उस निमि राजा ने चौरासी हजार वर्ष तक बाल्यावस्था की लीला की, चौरासी हजार वर्ष तक यौवराज्य पद सम्हाला, चौरासी हजार वर्ष इस मिथिला पर राज्य किया और चौरासी हजार वर्ष तक इसी मखादेव आम्रवन में साधना (तपस्या) की। उसने चारों ब्रह्मविहारों (मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा) की कठोर साधना की। आनन्द ! उस निमि राजा के कड़ारजनक नाम का पुत्र हुआ। वह घर से बेघर हो प्रव्रजित नहीं हुआ। उसने इस कल्याणपरम्परा को तोड़ दिया। (अतः) वह इस वंश का अन्तिम पुरुष सिद्ध हुआ।

४. तथागतो व राजा मखादेवो अहोसि

१०. "सिया खो पन ते, आनन्द, एवमस्स--'अञ्ञो नून तेन समयेन राजा मखादेवो अहोसि, येन तं कल्याणं वत्तं निहितं' ति। न खो पनेतं, आनन्द, एवं दट्ठब्बं। अहं तेन समयेन राजा मखादेवो अहोसिं। अहं तं कल्याणं वत्तं निहिनिं, मया तं कल्याणं वत्तं निहितं पच्छिमा जनता अनुपवत्तेसि। तं खो पनानन्द, कल्याणं वत्तं न निब्बिदाय न विरागाय न निरोधाय न उपसमाय न अभिञ्ञाय न सम्बोधाय न निब्बानाय संवत्तति, यावदेव ब्रह्मलोकूपपत्तिया। इदं खो पनानन्द, एतरहि मया कल्याणं वत्तं निहितं एकन्तनिब्बिदाय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति। कतमञ्चानन्द, एतरहि मया कल्याणं वत्तं निहितं एकन्तनिब्बिदाय विरागाय निरोधाय [N. 309, B. 270] उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति? अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, सेय्यथीदं--सम्मादिट्ठि, सम्मासङ्कप्पो, सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मासति, सम्मा- [R. 83] समाधि। इदं खो, आनन्द, एतरहि मया कल्याणं वत्तं निहितं एकन्तनिब्बिदाय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय

---

४. उस समय तथागत ही राजा मखादेव थे

१०. "हो सकता है आनन्द! तुम्हारे मन में यह (सन्देह) हो—'कोई दूसरा राजा मखादेव हुआ होगा, जिसने अपने वंश में यह कल्याणपरम्परा चलायी।' आनन्द! ऐसा सन्देह (विचार) न करना। मैं ही उस समय राजा मखादेव था। मैंने ही वह कल्याणपरम्परा स्थापित की थी, जिस पर इस वंश के उत्तराधिकारी चलते रहे। परन्तु आनन्द! वह कल्याणपरम्परा भी एकान्ततः निर्वेद (संसार से ग्लानि), वैराग्य, निरोध, शान्ति, अभिज्ञा, सम्बोध, निर्वाण या एकान्ततः ब्रह्मलोक तक पहुँचाने में समर्थ नहीं थी। हाँ, इस समय मैंने जो यह कल्याणपरम्परा स्थापित की है, वह एकान्ततः निर्वेद, वैराग्य··· या ऐकान्तिक ब्रह्मलोक तक पहुँचाने में समर्थ है। आनन्द! इस समय मैंने कौन सी कल्याणपरम्परा (कल्याण मार्ग) चलायी है, जो निर्वेद···एकान्ततः ब्रह्मलोक तक पहुँचाने में समर्थ (सिद्ध) है? आनन्द! यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग; जैसे--सम्यग्दृष्टि, सम्यक्सङ्कल्प, सम्यग्वाक्, सम्यक्कर्मान्त, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्स्मृति एवं सम्यक्समाधि। आनन्द! इस समय मैंने यह कल्याणपरम्परा निर्वाणाभीप्सु जनों के हितार्थ चलायी है, जो एकान्ततः निर्वेद, वैराग्य, निरोध, उपशम, अभिज्ञा,

संवत्तति। तं वो अहं, आनन्द, एवं वदामि—'येन मे इदं कल्याणं वत्तं निहितं अनुप्पवत्तेय्याथ, मा खो मे तुम्हे अन्तिमपुरिसा अहुवत्थ। यस्मि खो, आनन्द, पुरिसयुगे वत्तमाने एवरूपस्स कल्याणस्स वत्तस्स समुच्छेदो होति सो तेसं अन्तिमपुरिसो होति। तं वो अहं, आनन्द, एवं वदामि—'येन मे इदं कल्याणं वत्तं निहितं अनुप्पवत्तेय्याथ, मा खो मे तुम्हे अन्तिमपुरिसा अहुवत्था' " ति।

११. इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा आनन्दो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति॥

●

सम्बोध एवं निर्वाण के लिये सर्वोपयुक्त है। उस परम्परा के विषय में मैं यह कहना चाहता हूँ कि--तुम इस परम्परा (मार्ग) पर चलना कि तुम मेरी परम्परा के अन्तिम पुरुष न कहलाओ। क्योंकि, आनन्द! दो पुरुषों के रहते हुए भी ऐसी कल्याण-परम्परा उच्छिन्न हो जाय तो वह उस परम्परा का अन्तिम पुरुष कहलाता है; इसलिये, आनन्द! मैं यह कहता हूँ—'सभी मेरी बतायी इस कल्याणपरम्परा पर चलने का प्रयास करें, ताकि तुम में से कोई इस परम्परा का अन्तिम पुरुष न कहलाये।"

११. भगवान् ने यों उपदेश किया। आत्तमना आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया।

मखादेवसुत्त समाप्त॥

●

३४. मधुरसुत्तं

१. धनलभा यस्सकस्सचि मनापचारिता

१. एवं मे सुतं। एकं समयं आयस्मा महाकच्चानो [N. 310] मधुरायं विहरति गुन्दावने। अस्सोसि खो राजा माधुरो अवन्तिपुत्तो— "समणो खलु, भो, कच्चानो मधुरायं विहरति गुन्दावने। तं खो पन भवन्तं कच्चानं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो--'पण्डितो वियत्तो मेधावी बहुस्सुतो चित्तकथी कल्याणपटिभानो बुद्धो चेव अरहा च'। साधु खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं होती" ति। अथ खो राजा माधुरो अवन्तिपुत्तो भद्रानि भद्रानि यानानि योजापेत्वा भद्रं यानं अभिरुहित्वा भद्रेहि भद्रेहि यानेहि मधुराय निय्यासि महच्चा राजानुभावेन आयस्मन्तं महाकच्चानं दस्सनाय। यावतिका यानस्स भूमि यानेन गन्त्वा याना पच्चो- [B. 271, R. 84] रोहित्वा पत्तिको व येनायस्मा महाकच्चानो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता महाकच्चानेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा माधुरो अवन्तिपुत्तो आयस्मन्तं महाकच्चानं एतदवोच-- "ब्राह्मणा, भो कच्चान, एवमाहंसु--'ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीनो अञ्ञो वण्णो; ब्राह्मणो व सुक्को वण्णो, कण्हो अञ्ञो वण्णो; ब्राह्मणा व सुज्झन्ति,

---

३४. मधुरसूत्र

१. झूठी प्रशंसा (खुशामद) करने वाले धनक्रीत होते हैं

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय आयुष्मान् महाकात्यायन मधुरा (= मथुरा ?) के गुन्दावन में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। उस समय मथुरा के राजा अवन्तिपुत्र[1] ने सुना—"अरे ! आजकल श्रमण महाकात्यायन मथुरा के गुन्दावन में साधनाहेतु ठहरे हुए हैं। उस माननीय कात्यायन के बारे में लोगों में ऐसी प्रशंसा फैली हुई है—'यह महाकात्यायन पण्डित, चतुर (व्यक्त, सुलझा हुआ), मेधावी, बहुश्रुत, अच्छा कथिक, एवं मङ्गलमय प्रतिभावान् ज्ञानी है।' ऐसे ज्ञानियों का दर्शन शुभप्रद होता है।" तब मथुरा का राजा अवन्तिपुत्र अच्छे-अच्छे रथ (यान) तय्यार करा कर, उनमें सबसे अच्छे रथ पर स्वयं सवार हो कर, बाकी यानों को अपने पीछे लगा कर, बड़े भारी राजकीय सम्मान (ताम-झाम) के साथ आयुष्मान् कात्यायन के दर्शनहेतु निकला। वह जितना मार्ग रथ से पार होने लायक था, उतना रथ से जा और बाकी को रथ से उतर, पैदल ही जा, जहाँ आयुष्मान् महाकात्यायन विराजमान थे वहाँ, पहुँचा। पहुँच कर, उसने आयुष्मान् महाकात्यायन से कुशल-मङ्गल प्रश्न

---

१. अट्ठकथा में इस अवन्तिपुत्र को अवन्तीश्वर राजा प्रद्योत की कन्या का पुत्र बताया गया है।

नो अब्राह्मणा; ब्राह्मणा व ब्रह्मनो पुत्ता ओरसा मुखतो जाता ब्रह्मजा ब्रह्मनिम्मित्ता ब्रह्मदायादा' ति। इध भवं कच्चानो किमक्खायी" ति ?

"घोसो येव खो एसो, महाराज, लोकस्मिं—'ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीनो अञ्ञो वण्णो; ब्राह्मणो व सुक्को वण्णो, कण्हो अञ्ञो वण्णो; ब्राह्मणा व सुज्झन्ति, नो अब्राह्मणा; ब्राह्मणा व ब्रह्मनो पुत्ता ओरसा मुखतो जाता ब्रह्मजा ब्रह्मनिम्मिता ब्रह्मदायादा' ति। तदमिनापेतं, महाराज, परियायेन [N. 311] वेदितब्बं यथा घोसो येवेसो लोकस्मिं--'ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीनो अञ्ञो वण्णो···पे०···ब्रह्मदायादा' ति।

२. "तं किं मञ्ञसि, महाराज, खत्तियस्स चे पि इज्झेय्य धनेन वा धञ्ञेन वा रजतेन वा जातरूपेन वा खत्तियोपिस्सास्स पुब्बुट्ठायी पच्छानिपात्ती किङ्कारपटिस्सावी मनापचारी पियवादी, ब्राह्मणोपिस्सास्स···वेस्सोपिस्सास्स···सुद्दोपिस्सास्स पुब्बुट्ठायी पच्छानिपाती किङ्कारपटिस्सावी मनापचारी पियवादी" ति ?

किया। कुशल मङ्गल पूछ, उनके स्वास्थ्य के बारे में जानने के बाद वह एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मथुरा के राजा अवन्तिपुत्र ने आयुष्मान् महाकात्यायन से यों पूछा—

भो कात्यायन ! ब्राह्मणों का यह कहना है कि ब्राह्मण ही (सब वर्णों में) श्रेष्ठ वर्ण है, अन्य सभी वर्ण (उससे) हीन (नीच) हैं; ब्राह्मण ही शुक्ल (शुद्ध) वर्ण वाले हैं, अन्य वर्ण (पापमय क्रियाओं के कारण) कृष्ण वर्ण वाले हैं; ब्राह्मण ही शुद्ध (पवित्र) होते हैं, ब्राह्मणेतर वर्ण नहीं। ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस पुत्र, मुख से उत्पन्न होने के कारण उसके साक्षात् पुत्र, ब्रह्मा के द्वारा उत्पन्न होने कारण उसके उत्तराधिकारी हैं।' भो कात्यायन ! ब्राह्मणों की इस मान्यता के विषय में आप का क्या कहना है ?"

"महाराज ! लोक में उन ब्राह्मणों का यह कथनमात्र है (इसके पीछे उनका कोई तर्क नहीं है) कि 'ब्राह्मण ही श्रेष्ठ है···पूर्ववत्···ब्रह्मा के उत्तरधिकारी हैं'। इस तरह से, महाराज ! यह इनका यह कथन (प्रलाप) मात्र ही समझना चाहिये।

२. "तो क्या मानते हो महाराज ! यदि कोई क्षत्रिय अपने धन-धान्य से, चाँदी-सोना से किसी क्षत्रिय को अपना बनाना चाहे तो वह क्षत्रिय उससे पहले उठने वाला, बाद में सोने वाला, बराबर 'क्या करना है'—पूछने वाला, खुशामद करने वाला, प्रिय बोलने वाला हो सकता है ? ब्राह्मण भी···वैश्य भी···शूद्र भी उससे पहले उठने वाला···खुशामद करने वाला हो सकता है ?"

"खत्तियस्स चे पि, भो कच्चान, इज्झेय्य धनेन वा धञ्ञेन वा रजतेन वा जातरूपेन वा खत्तियोपिस्सास्स पुब्बुट्ठायी पच्छानिपाती किङ्कारपटिस्सावी मनापचारी पियवादी, ब्राह्मणोपिस्सास्स··· वेस्सोपिस्सास्स··· सुद्दोपिस्सास्स पुब्बुट्ठायी पच्छानिपाती किङ्कारपटिस्सावी मनापचारी पियवादी" ति।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, ब्राह्मणस्स चे पि इज्झेय्य धनेन वा धञ्ञेन वा रजतेन वा जातरूपेन वा ब्राह्मणोपिस्सास्स पुब्बुट्ठायी पच्छानिपाती किङ्कारपटिस्सावी मनापचारी पियवादी, वेस्सोपिस्सास्स···सुद्दोपिस्सास्स··· खत्तियोपिस्सास्स पुब्बुट्ठायी पच्छानिपाती किङ्कारपटिस्सावी [R. 85] मनापचारी पियवादी" ति ?

"ब्राह्मणस्स चे पि, भो कच्चान, इज्झेय्य धनेन वा धञ्ञेन वा रजतेन वा जातरूपेन वा ब्राह्मणोपिस्सास्स पुब्बुट्ठायी पच्छानिपाती किङ्कारपटिस्सावी मनापचारी पियवादी, वेस्सोपिस्सास्स···सुद्दोपिस्सास्स···खत्तियोपिस्सास्स पुब्बुट्ठायी पच्छानिपाती किङ्कारपटिस्सावी मनापचारी [B. 272] पियवादी" ति।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, वेस्सस्स चे पि इज्झेय्य धनेन वा धञ्ञेन वा रजतेन वा जातरूपेन वा वेस्सोपिस्सास्स पुब्बुट्ठायी पच्छानिपाती किङ्कारपटिस्सावी मनापचारी पियवादी, सुद्दोपिस्सास्स···खत्तियोपिस्सास्स··· ब्राह्मणोपिस्सास्स पुब्बुट्ठायी पच्छानिपाती किङ्कारपटिस्सावी मनापचारी पियवादी" ति ?

"वेस्सस्स चे पि, भो कच्चान, इज्झेय्य धनेन वा धञ्ञेन वा रजतेन वा [N . 312] जातरूपेन वा वेस्सोपिस्सास्स पुब्बुट्ठायी पच्छानिपाती

"हाँ, कात्यायन ! यदि कोई क्षत्रिय अपने धन-धान्य से किसी क्षत्रिय को अपना बनाना चाहे तो वह क्षत्रिय भी···प्रियवादी हो सकता है।"

"तो क्या मानते हो महाराज ! कोई ब्राह्मण अपने धन-धान्य से···किसी क्षत्रिय को अपना बनाना चाहे···तो वह क्षत्रिय भी···ब्राह्मण भी···वैश्य भी···शूद्र भी उससे पहले उठने वाला···खुशामद करनेवाला हो सकता है ?",

"हाँ भो कात्यायन ! यदि कोई ब्राह्मण अपने धन-धान्य से···वैश्य भी···शूद्र भी···क्षत्रिय भी···प्रियवादी हो सकता है।"

"तो क्या मानते हो, महाराज ! यदि कोई वैश्य अपने धन-धान्य से···वैश्य भी···शूद्र भी···क्षत्रिय···प्रियवादी हो सकता है ?"

"हाँ, भो कात्यायन ! यदि कोई···पूर्ववत्···प्रियवादी हो सकता है।"

किङ्कारपटिस्सावी मनापचारी पियवादी, सुद्दोपिस्सास्स ··· खत्तियोपिस्सास्स···ब्राह्मणोपिस्सास्स पुब्बुट्ठायी पच्छानिपाती किङ्कारपटिस्सावी मनापचारी पियवादी'' ति।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, सुद्दस्स चे पि इज्झेय्य धनेन वा धञ्ञेन वा रजतेन वा जातरूपेन वा सुद्दोपिस्सास्स पुब्बुट्ठायी पच्छानिपाती किङ्कारपटिस्सावी मनापचारी पियवादी, खत्तियोपिस्सास्स···ब्राह्मणोपिस्सास्स··· वेस्सोपिस्सास्स पुब्बुट्ठायी पच्छानिपाती किङ्कारपटिस्सावी मनापचारी पियवादी'' ति ?

"सुद्दस्स चे पि, भो कच्चान, इज्झेय्य धनेन वा धञ्ञेन वा रजतेन वा जातरूपेन वा सुद्दोपिस्सास्स पुब्बुट्ठायी पच्छानिपाती किङ्कारपटिस्सावी मनापचारी पियवादी, खत्तियोपिस्सास्स ··· ब्राह्मणोपिस्सास्स ··· वेस्सोपिस्सास्स पुब्बुट्ठायी पच्छानिपाती किङ्कारपटिस्सावी मनापचारी पियवादी'' ति।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, यदि एवं सन्ते, इमे चत्तारो वण्णा समसमा होन्ति, नो वा ? कथं वा ते एत्थ होती'' ति ?

[R. 86]"अद्धा खो, भो कच्चान, एवं सन्ते, इमे चत्तारो वण्णा समसमा होन्ति। नेसं एत्थ किञ्चि नानाकरणं समनुपस्सामी'' ति।

"इमिना पि खो एतं, महाराज, परियायेन वेदितब्बं यथा घोसो येवेसो लोकस्मि—'ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीनो अञ्ञो वण्णो···पे०···ब्रह्मदायादा' ति।

"तो क्या मानते हो, महाराज ! यदि कोई शूद्र अपने धन-धान्य से···क्षत्रिय भी···ब्राह्मण भी···शूद्र भी···प्रियवादी हो सकता है ?"

"हाँ, भो कात्यायन ! यदि कोई शूद्र अपने धन-धान्य से···क्षत्रिय भी··· ब्राह्मण भी···वैश्य भी···प्रियवादी हो सकता है।"

"तो क्या मानते हो, महाराज ! ऐसा होने पर ये चारों वर्ण परस्पर समान हुए कि नहीं ? तुम्हें यहाँ कैसा समझ में आ रहा है ?"

"अवश्य, भो कात्यायन ! ऐसा होने पर तो ये चारों ही वर्ण परस्पर समान होते हैं। मैं इस विषय में कोई भेद (=नानाकरण) नहीं कर पा रहा हूँ।"

"तो, महाराज ! इस युक्ति (=पर्याय) से भी तुम्हें यह समझना चाहिये कि ब्राह्मणों का यह कथन (=घोष, वचन, प्रतिज्ञा) मात्र है कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है···ब्रह्मा के उत्तराधिकारी हैं।

२. सुगति दुग्गति वा कम्मविनिबद्धा

३. "तं किं मञ्ञसि, महाराज, इधस्स खत्तियो पाणाति- [B. 273] पाती अदिन्नादायी कामेसुमिच्छाचारी मुसावादी पिसुणवाचो फरुसवाचो सम्फप्पलापी अभिज्झालु ब्यापन्नचित्तो मिच्छादिट्ठि कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जेय्य, नो वा? कथं वा ते एत्थ होती" ति?

"खत्तियो पि हि, भो कच्चान, पाणातिपाती अदिन्नादायी [N. 313] कामेसुमिच्छाचारी मुसावादी पिसुणवाचो फरुसवाचो सम्फप्पलापी अभिज्झालु व्यापन्न चित्तो मिच्छादिट्ठि कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जेय्य। एवं मे एत्थ होति, एवं च पन मे एतं अरहतं सुतं" ति।

"साधु साधु, महाराज! साधु खो ते एतं, महाराज, एवं होति; साधु च पन ते एतं अरहतं सुतं। तं किं मञ्ञसि, महाराज, इधस्स ब्राह्मणो··· पे०···इधस्स वेस्सो···पे०···इधस्स सुद्दो पाणातिपाती अदिन्नादायी···पे०··· मिच्छादिट्ठि कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जेय्य नो वा? कथं वा ते एत्थं होती" ति?

"सुद्दो पि हि, भो कच्चान, पाणातिपाती अदिन्नादायी···पे०···मिच्छा-

---

२. प्राणी की सुगति-दुर्गति उसके कर्माधीन है

३. "तो क्या मानते हो, महाराज! यहाँ कोई क्षत्रिय दूसरों की हिंसा करता रहता हो, अदत्तादान (चोरी) करता रहता हो, कामभोगों में मिथ्याचारी हो, असत्यभाषी हो, चुगलखोर हो, दूसरों को कठोर वाणी बोलता हो, दूसरों के प्रति ईर्ष्यालु हो, व्यापाद (द्वेष) भावना रखता हो, मिथ्यादृष्टि हो, वह इस देहपात के बाद, मरने पर अपाय, दुर्गति व नरक में ही गिरेगा न?"

"भो कात्यायन! क्षत्रिय भी यदि दूसरों की हिंसा करने वाला···नरक में ही गिरेगा। यहाँ मेरा ऐसा विचार है। और मैंने ज्ञानियों (विद्वानों) से भी ऐसा ही सुना है।"

"ठीक है, महाराज! आप का कहना ठीक है! आपने ज्ञानियों से भी ठीक ही सुना है। तो क्या मानते हो, महाराज! यहाँ कोई ब्राह्मण···वैश्य···शूद्र प्राणातिपाती हो···अदत्तादायी···पूर्ववत्···मिथ्यादृष्टि हो वह इस देहपात के बाद···नरक में ही गिरेगा न? तुम्हारा इस विषय में क्या विचार है?"

"हाँ, भो कात्यायन! शूद्र भी यदि प्राणातिपाती···मिथ्यादृष्टि हो तो वह देह-

दिट्ठि कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जेय्य— एवं मे एत्थ होति, एवं च पन मे एतं अरहतं सुतं" ति।

"साधु साधु, महाराज! साधु खो ते एतं, महाराज, एवं होति, साधु च पन ते एतं अरहतं सुतं। तं किं मञ्ञसि, महाराज, यदि एवं सन्ते, इमे चत्तारो वण्णा समसमा होन्ति नो वा? कथं वा ते एत्थ होती" ति?

[R. 87] "अद्धा खो, भो कच्चान, एवं सन्ते, इमे चत्तारो वण्णा समसमा होन्ति। नेसं एत्थ किञ्चि नानाकरणं समनुपस्सामी" ति।

"इमिना पि खो एतं, महाराज, परियायेन वेदितब्बं यथा घोसो येवेसो लोकस्मि—'ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीनो अञ्ञो वण्णो···पे०···ब्रह्मदायादा' ति।

४. "तं किं मञ्ञसि, महाराज, इधस्स खत्तियो पाणातिपाता पटिविरतो, अदिन्नादाना पटिविरतो, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो, मुसावादा पटिविरतो, पिसुणाय वाचाय पटिविरतो, फरुसाय वाचाय पटिविरतो, सम्फप्पलापा पटिविरतो, अनभिज्झालु अब्यापन्नचित्तो सम्मादिट्ठि कायस्स [B. 274] भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेय्य, नो वा? कथं वा ते एत्थ होती" ति?

पात के बाद नरक में ही गिरेगा--ऐसा मेरा विचार है। ऐसा ही मैंने ज्ञानियों से भी सुना है'।

"ठीक है, महाराज! ठीक है! आपके विचार सर्वथा उचित ही हैं। आपने इस विषय में ज्ञानियों से भी ठीक ही सुना है। तो क्या मानते हो, महाराज! ऐसा होने पर (इस तर्क-बल से भी) ये चारों वर्ण परस्पर समान ही हुए न? आपका यहाँ क्या विचार है?"

"अवश्य, भो कात्यायन! ऐसा होने पर ये चारों वर्ण परस्पर समान ही लगते हैं। मैं तो इनमें कोई भेद नहीं समझ पाता।"

"तो महाराज! इस तर्क (युक्ति) से भी यही समझना चाहिये कि ऐसा होने पर ये चारों वर्ण परस्पर समान ही हैं। और ब्राह्मणों का वह कथन प्रतिज्ञामात्र है कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ हैं, अन्य वर्ण हीन (नीच) है···ब्रह्मा के उत्तराधिकारी हैं।" (क)

४. "तो क्या मानते हो, महाराज! यदि कोई क्षत्रिय प्राणातिपात (हिंसा) से··· अदत्तादान से···कामभोगों में मिथ्याचार से···मृषावाद से···चुगलखोरी से···कठोर वाणी बोलने से···बकवाद करने से···ईर्ष्या करने से···द्वेष से विरत रहता हुआ सम्य-

"खत्तियो पि हि, भो कच्चान, पाणातिपाता पटिविरतो, [N. 314] अदिन्नादाना पटिविरतो, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो, मुसावादा पटिविरतो, पिसुणाय वाचाय पटिविरतो, फरुसाय वाचाय पटिविरतो, सम्फप्पलापा पटिविरतो, अनभिज्झालु अब्यापन्नचित्तो सम्मादिट्ठि कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेय्य। एवं मे एत्थ होति, एवं च पन मे एतं अरहतं सुतं" ति।

"साधु साधु, महाराज! साधु खो ते एतं, महाराज, एवं होति, साधु च पन ते एतं अरहतं सुतं। तं किं मञ्ञसि, महाराज, इधस्स ब्राह्मणो··· इधस्स वेस्सो···इधस्स सुद्दो पाणातिपाता पटिविरतो अदिन्नादाना पटिविरतो···पे०···सम्मादिट्ठि कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेय्य, नो वा? कथं वा ते एत्थ होती" ति?

"सुद्दो पि हि, भो कच्चान, पाणातिपाता पटिविरतो, अदिन्नादाना पटिविरतो··पे०···सम्मादिट्ठि कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेय्य। एवं मे एत्थ होति, एवं च पन मे एतं अरहतं सुतं" ति।

"साधु साधु, महाराज! साधु खो ते एतं, महाराज, एवं होति; साधु च पन ते एतं अरहतं सुतं। तं किं मञ्ञसि, महाराज, यदि एवं सन्ते, इमे चत्तारो वण्णा समसमा होन्ति, नो वा? कथं वा ते एत्थ होती" ति?

ग्दृष्टि से सम्पन्न हो तो वह इस देहपात के बाद, सुगति स्वर्गलोक में उत्पन्न होगा या नहीं? तुम्हें इस विषय में क्या लगता है?"

"हाँ, माननीय कात्यायन! यदि कोई क्षत्रिय प्राणतिपात से···पूर्ववत्···सम्यग्दृष्टि से सम्पन्न हो तो वह स्वर्गलोग में ही उत्पन्न होगा—ऐसी मेरी भी मान्यता है और यही मैंने विद्वानों से भी सुना है।

"ठीक है, महाराज, ठीक है! तुम्हारी यह मान्यता ठीक है। और तुमने विद्वानों से भी ठीक ही सुना है। अच्छा अब यह बताओ कि यदि कोई ब्राह्मण··· कोई वैश्य···कोई शूद्र प्राणातिपात से विरत हो···सम्यग्दृष्टि से सम्पन्न हो तो वह भी इस देहपात के बाद सुगति स्वर्गलोक में ही उत्पन्न होगा न? यहाँ तुम्हारी कैसी मान्यता है?"

"भो कात्यायन! शूद्र भी प्राणातिपात से विरत हो···स्वर्गलोक में ही उत्पन्न होगा। यहाँ मेरी यह मान्यता है। ज्ञानियों से भी मैंने यही सुना-समझा है।"

"ठीक है, महाराज! ठीक है तुम्हारी···पूर्ववत्···। तो क्या मानते हो, महाराज! ऐसा होने पर ये चारों वर्ण परस्पर समान ही हुए न? तुम्हारा यहाँ क्या कहना है?"

[R. 88] "अद्धा खो, भो कच्चान, एवं सन्ते, इमे चत्तारो वण्णा समसमा होन्ति। नेसं एत्थ किञ्चि नानाकरणं समनुपस्सामी" ति।

"इमिना पि खो एतं, महाराज, परियायेन वेदितब्बं यथा घोसोयेवेसो लोकस्मि—'ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीनो अञ्ञो वण्णो···पे०···ब्रह्मदायादा" ति।

५. "तं किं मञ्ञसि, महाराज, इध खत्तियो सन्धिं वा छिन्देय्य, निल्लोपं वा हरेय्य, एकागारिकं वा करेय्य, परिपन्थे वा तिट्ठेय्य, परदारं वा गच्छेय्य, तं चे ते पुरिसा गहेत्वा दस्सेय्युं—'अयं ते, देव, चोरो आगुचारी। इमस्स यं इच्छसि तं दण्डं पणेही' ति। किन्ति नं करेय्यासी" [B. 275] ति ?

[N. 315] "घातेय्याम वा, भो कच्चान, जापेय्याम वा, पब्बाजेय्याम वा, यथापच्चयं वा करेय्याम। तं किस्स हेतु ? या हिस्स, भो कच्चान, पुब्बे 'खत्तियो' ति समञ्ञा सास्स अन्तरहिता; चोरो त्वेव सङ्खं गच्छती" ति।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, इध ब्राह्मणो···इध वेस्सो···इध सुद्दो सन्धिं वा छिन्देय्य, निल्लोपं वा हरेय्य, एकागारिकं वा करेय्य, परिपन्थे वा

"अवश्य, भो कात्यायन ! तब तो ये चारों वर्ण समान ही हुए। इनमें कोई ऊँचा या नीचा नहीं है । इनमें कोई भेद नहीं है।"

"महाराज ! इस युक्ति से भी यही समझना चाहिये कि ये चारों वर्ण परस्पर समान ही हैं। तब तो ब्राह्मणों का यह कहना कि 'ब्राह्मण ही सब वर्णों में श्रेष्ठ है, अन्य सब वर्ण उससे हीन है'—तर्कविहीन ही हुआ। (ख)

५. तो क्या मानते हो, महाराज ! यहाँ कोई क्षत्रिय सेंध लगावे, लूट-पाट (रहजनी) करे, चोरी करे, बटमारी करे, दूसरे की स्त्रियों पर व्यभिचार हेतु नजर डाले। उसको आपके सिपाही पकड़कर आपके सामने लावें और कहें—'देव ! यह आपका चोर है, (अपराधी) है, इसको जैसा आप चाहें दण्ड दें।' तो आप क्या करेंगे ?"

'भो कात्यायन ! या तो हम उसे मरवा देंगे, या जेल में डाल देंगे, या देश-निकाला दे देंगे, या जैसा अपराध होगा वैसा दण्ड देंगे। वह किसलिए ? वह इसलिये कि, भो कात्यायन ! पहले जो उसकी क्षत्रिय संज्ञा थी वह समाप्त हो गयी; अब तो चोर ही उसकी संज्ञा है।"

"तो क्या मानते हो, महाराज ! यहाँ कोई ब्राह्मण···कोई वैश्य···कोई शूद्र सेंध लगावें···पूर्ववत्···तो आप क्या करेंगे ?"

तिट्ठेय्य, परदारं वा गच्छेय्य, तं चे ते पुरिसा गहेत्वा दस्सेय्युं—'अयं ते, देव, चोरो आगुचारी। इमस्स यं इच्छसि तं दण्डं पणेही' ति। किन्ति नं करेय्यासी" ति ?

"घातेय्याम वा, भो कच्चान, जापेय्याम वा पब्बाजेय्याम वा यथापच्चयं वा करेय्याम। तं किस्स हेतु ? या हिस्स, भो कच्चान, पुब्बे 'सुद्दो' ति समञ्ञा सास्स अन्तरहिता; चोरो त्वेव सङ्खं गच्छती" ति।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, यदि एवं सन्ते, इमे चत्तारो वण्णा समसमा होन्ति नो वा ? कथं वा ते एत्थ होती" ति ?

"अद्धा खो, भो कच्चान, एवं सन्ते, इमे चत्तारो वण्णा समसमा होन्ति। नेसं एत्थ किञ्चि नानाकरणं समनुपस्सामी" ति।

"इमिना पि खो एतं, महाराज, परियायेन वेदितब्बं यथा घोसोयेवेसो लोकस्मिं—'ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीनो अञ्ञो वण्णो…पे०… [R. 89] ब्रह्मदायादा' ति।

६. "तं किं मञ्ञसि, महाराज, इध खत्तियो केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो अस्स विरतो पाणातिपाता, विरतो अदिन्नादाना, विरतो मुसावादा, रत्तूपरतो, एकभत्तिको, ब्रह्मचारी, सीलवा, कल्याणधम्मो; किन्ति नं करेय्यासी" ति ?

"अभिवादेय्याम वा, भो कच्चान, पच्चुपट्ठेय्याम वा आसनेन वा निमन्ते-

---

"भो कात्यायन ! या तो हम उसे मरवा देंगे…चोर ही उसकी संज्ञा है।"

"तो क्या मानते हो, महाराज ! इस युक्ति से भी चारों वर्ण परस्पर समान ही हैं न ? यहाँ अब तुम्हारे क्या विचार हैं ?"

"भो कात्यायन ! मैं भी इस युक्ति से इन चारों वर्णों को समान ही मानता हूँ। मुझे भी इनमें कोई भेद नहीं दिखायी देता।"

"तो महाराज ! इस तर्क से भी ये चारों वर्ण परस्पर समान ही सिद्ध हुए। अब ब्राह्मणों का यह कहना उनका प्रतिज्ञामात्र रह गया कि 'ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण हैं, अन्य सब वर्ण हीन (अधम) हैं'…। (ग)

६. "तो क्या मानते हो महाराज ! यहाँ यदि कोई क्षत्रिय दाढ़ी-मूँछ मुँडवा, काषाय वस्त्र पहन, घर से बेघर होता हुआ प्रव्रजित हो प्राणातिपात से…अदत्तादान से…मृषावाद से…राग से उपरत हो, एक ही समय भोजन करने वाला, ब्रह्मचारी, शीलव्रतधारी तथा कल्याण धर्मों का आचरण करने वाला हो, इसके साथ आप कैसा व्यवहार करेंगे ?"

य्याम अभिनिमन्तेय्याम वा नं चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चय-भेसज्जपरिक्खारेहि धम्मिकं वा अस्स रक्खावरणगुत्तिं संविदहेय्याम। तं [N. 316] किस्स हेतु ? या हिस्स, भो कच्चान, पुब्बे 'खत्तियो' ति समञ्ञा सास्स अन्तरहिता; समणो त्वेव सङ्खं गच्छती" ति।

[B. 276] "तं किं मञ्ञसि, महाराज, इध ब्राह्मणो...इध वेस्सो... इध सुद्दो केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो अस्स विरतो पाणातिपाता, विरतो अदिन्नादाना, विरतो मुसावादा, रत्तूपरतो, एकभत्तिको, ब्रह्मचारी, सीलवा, कल्याणधम्मो; किन्ति नं करेय्यासी" ति ?

"अभिवादेय्याम वा, भो कच्चान, पच्चुपट्ठेय्याम वा आसनेन वा निमन्तेय्याम अभिनिमन्तेय्याम वा नं चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्ज-परिक्खारेहि धम्मिकं वा अस्स रक्खावरणगुत्तिं संविदहेय्याम। तं किस्स हेतु ? या हिस्स, भो कच्चान, पुब्बे 'सुद्दो' ति समञ्ञा सास्स अन्तरहिता; समणो त्वेव सङ्खं गच्छती" ति।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, यदि एवं सन्ते, इमे चत्तारो वण्णा समसमा होन्ति नो वा ? कथं वा ते एत्थ होती" ति ?

"अद्धा खो, भो कच्चान, एवं सन्ते, इमे चत्तारो वण्णा समसमा होन्ति। नेसं एत्थ किञ्चि नानाकरणं समनुपस्सामी ति।

"ऐसे सत्पुरुष का तो, भो कात्यायन ! हम अभिवादन, अभ्युत्थान (आने पर खड़े होना) करेंगे, बैठने को आसन देंगे, अपने घर निमन्त्रित करेंगे, भोजन करायेंगे, इसे चीवर-पिण्डपात-शयनाशन, रोग निवारक औषधि देंगे, उसकी धार्मिक रक्षा (बचाव) व गोपन की व्यवस्था करेंगे। वह किस लिये ? क्यों कि, भो कात्यायन ! इसकी जो पूर्व में 'क्षत्रिय' संज्ञा थी वह अन्तर्हित हो गयी, अब तो उसे 'श्रमण' नाम से ही पुकारा जाता है।"

"तो क्या मानते हो, महाराज ! कोई ब्राह्मण...वैश्य...शूद्र दाढ़ी-मूँछ... कल्याण धर्मों का आचरण करने वाला हो जाय, तो उसके साथ आप क्या व्यवहार करेंगे ?"

"ऐसे सत्पुरुष का, भो कात्यायन ! हम...श्रमण नाम से ही पुकारा जाता है।"

"तो क्या मानते हो, महाराज ! ऐसा होने पर ये चारों वर्ण परस्पर समान ही हुए न ? तुम्हें यहाँ क्या निश्चय होता है ?"

"हाँ, भो कच्चान ! ऐसा होने पर तो ये चारों वर्ण मुझे परस्पर समान ही लगते हैं। मुझे तो इनमें कोई भेद मालूम नहीं पड़ता।"

"इमिना पि खो एतं, महाराज, परियायेन वेदितब्बं यथा घोसोयेवेसो लोकस्मिं—'ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीनो अञ्ञो वण्णो; ब्राह्मणो व सुक्को वण्णो, कण्हो अञ्ञो वण्णो; ब्राह्मणा व सुज्झन्ति, नो अब्राह्मणा; ब्राह्मणा व ब्रह्मुनो पुत्ता ओरसा मुखतो जाता ब्रह्मजा ब्रह्मनिम्मिता ब्रह्मदायादा'' ति।

३. रञ्ञो माधुरस्स उपासकत्तपटिवेदनं

७. एवं वुत्ते, राजा माधुरो अवन्तिपुत्तो आयस्मन्तं महा- [R. 90] कच्चानं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भो कच्चान, अभिक्कन्तं, भो कच्चान! सेय्यथापि, भो कच्चान, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—'चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती' ति; एवमेवं भोता कच्चानेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भवन्तं कच्चानं सरणं गच्छामि धम्मं [N. 317] च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं कच्चानो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'' ति।

"मा खो मं त्वं, महाराज, सरणं अगमासि। तमेव त्वं भगवन्तं सरणं गच्छ यमहं सरणं गतो'' ति।

"कहं पन, भो कच्चान, एतरहि सो भगवा विहरति अरहं सम्मासम्बुद्धो'' ति?

"तो महाराज! इस युक्ति से भी तुम्हें यह समझ लेना चाहिये कि ब्राह्मणों का का यह उद्घोषमात्र ही है कि ब्राह्मण ही सब वर्णों में श्रेष्ठ है, अन्य वर्ण हीन है ... ब्रह्मा के उत्तराधिकारी हैं।" (घ)

३. मथुरा के राजा का उपासकत्व-निवेदन

७. ऐसा कहने पर, मथुरा के राजा अवन्तिपुत्र ने आयुष्मान् महाकात्यायन से यों निवेदन किया—"आश्चर्य है, भो कात्यायन! अद्भुत है भो कात्यायन! जैसे औंधे को सीधा कर दे ... वैसे ही आप कात्यायन ने धर्मों (तत्त्व विषयों) को प्रकाशित किया, समझाया। अतः यह मैं आप कात्यायन का शरणागत हूँ, धर्म और भिक्षुसङ्घ का भी। आप, कात्यायन, आज से मुझे अपना अञ्जलिबद्ध (हर समय हाथ जोड़कर सामने खड़े रहने वाला) उपासक (सेवक) समझें।"

"महाराज! आप मेरी शरण में न आवें। आप भी उसी भगवान् की शरण में जावें, जिनकी शरण में मैं रहता हूँ।"

"भो कात्यायन! इस समय वे भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध कहाँ हैं?"

"परिनिब्बुतो खो, महाराज, एतरहि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो" ति।

[B. 277] "सचे पि मयं, भो कच्चान, सुणेय्याम तं भगवन्तं दससु योजनेसु, दस पि मयं योजनानि गच्छेय्याम तं भगवन्तं दस्सनाय अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं। सचे पि मयं, भो कच्चान, सुणेय्याम तं भगवन्तं वीसतिया योजनेसु, तिंसाय योजनेसु, चत्तारीसाय योजनेसु, पञ्ञासाय योजनेसु, पञ्ञासं पि मयं योजनानि गच्छेय्याम तं भगवन्तं दस्सनाय अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं। योजनसते चे पि मयं भो कच्चान, सुणेय्याम तं भगवन्तं, योजनसतं पि मयं गच्छेय्याम तं भगवन्तं दस्सनाय अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं। यतो च, भो कच्चान, परिनिब्बुतो सो भगवा, परिनिब्बुतं पि मयं भगवन्तं सरणं गच्छाम धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं कच्चानो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं" ति॥

●

"महाराज! इस समय तो वे भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध परिनिर्वृत्त हो चुके हैं।"

"भो कात्यायन! उन भगवान् को यदि हम दस योजन पर भी सुन पाते तो हम दस योजन पर भी इन भगवान् के दर्शन करने जाते।...बीस योजन...तीस योजन...चालीस योजन...पचास योजन...सौ योजन...जाते। तो भो कात्यायन! वे भगवान् परिनिर्वृत्त हो गये तो क्या? उनके परिनिर्वृत्त होने पर भी, हम उनकी शरण में जाते है, धर्म और भिक्षुसङ्घ की शरण में जाते हैं। आज से आप कात्यायन मुझे अपना अञ्जलिबद्ध उपासक स्वीकार करें"॥

मधुरसुत्त समाप्त॥

●

३५. बोधिराजकुमारसुत्तं

१. राजकुमारपासादे भगवा निमन्तितो

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा भग्गेसु [N. 313, R. 91] विहरति सुसुमारगिरे भेसकळावने मिगदाये। तेन खो पन समयेन बोधिस्स राजकुमारस्स कोकनदो नाम पासादो अचिरकारितो होति अनज्झावुट्ठो समणेन वा ब्राह्मणेन वा केनचि वा मनुस्सभूतेन। अथ खो बोधि राजकुमारो सञ्जिकापुत्तं माणवं आमन्तेसि—"एहि त्वं, सम्म सञ्जिकापुत्त, येन भगवा तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा मम वचनेन भगवतो पादे सिरसा वन्द, अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छ—'बोधि, भन्ते, राजकुमारो भगवतो पादे सिरसा वन्दति, अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छती' ति। एवं च वदेहि—'अधिवासेतु किर, भन्ते, भगवा बोधिस्स राजकुमारस्स स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना' ति। "एवं, भो" ति खो सञ्जिकापुत्तो माणवो बोधिस्स राजकुमारस्स पटिस्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सञ्जिकापुत्तो माणवो भगवन्तं एतदवोच—"बोधि खो राज- [B. 278] कुमारो भोतो गोतमस्स पादे सिरसा वन्दति, अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छति। एवं च वदेति—'अधिवासेतु किर भवं गोतमो

---

३५. बोधिराजकुमारसुत्त

१. राजकुमार के महल में भगवान् का निमन्त्रण

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) भर्ग प्रदेश के शिशुमारगिरिस्थित भेषकड़ावन के मृगदाव में साधना कर रहे थे। उस समय बोधिराजकुमार का कोकनद नामक प्रासाद, जो अभी कुछ समय पूर्व ही बनवाया गया था, जिसमें अभी तक श्रमण ब्राह्मण, या किसी भी मनुष्य द्वारा वास नहीं हुआ था। तब बोधिराजकुमार ने युवक (तरुण) सञ्जिकापुत्र को अपने पास बुलाकर यों कहा—"सौम्य सञ्जिकापुत्र, तुम जहाँ भगवान् विराजमान हैं वहाँ जाओ, जाकर मेरी तरफ से भगवान् के श्रीचरणों में शिर से प्रणाम करना, और उनकी कुशलता, नीरोगता, शरीर की कार्यक्षमता आदि के बारे में यों पूछना—'भन्ते ! बोधिराजकुमार भगवान् के श्रीचरणों में प्रणाम कर...कार्यक्षमता पूछता है'। और यों कहना—'भगवान्, कल भिक्षुसङ्घ के साथ, बोधिराजकुमार के आवास पर भोजन का निमन्त्रण स्वीकार करें।" "अच्छा श्रीमन्" यों बोधिराजकुमार को कहकर युवक सञ्जिकापुत्र जहाँ भगवान् थे गया, जा कर...एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठे युवक सञ्जिकापुत्र ने भगवान् से यों निवेदन किया—'भन्ते ! बोधिराजकुमार...

बोधिस्स राजकुमारस्स स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना' " ति। अधि-
वासेसि भगवा तुण्हीभावेन।

अथ खो सञ्जिकापुत्तो माणवो भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना येन बोधि राजकुमारो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा बोधिं राजकुमारं एतदवोच—"अवोचुम्ह भोतो वचनेन तं भवन्तं गोतमं—'बोधि खो राजकुमारो [N. 319, R. 92] भोतो गोतमस्स पादे सिरसा वन्दति, अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छति। एवं च वदेति—अधिवासेतु किर भवं गोतमो बोधिस्स राजकुमारस्स स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना' ति। अधिवुट्ठं च पन समणेन गोतमेना" ति।

२. अथ खो बोधि राजकुमारो तस्सा रत्तिया अच्चयेन सके निवेसने पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा, कोकनदं च पासादं ओदातेहि दुस्सेहि सन्थरापेत्वा याव पच्छिमसोपानकळेवरा, सञ्जिकापुत्तं माणवं आमन्तेसि—"एहि त्वं, सम्म सञ्जिकापुत्त, येन भगवा तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा भगवतो कालं आरोचेहि—'कालो, भन्ते, निट्ठितं भत्तं' " ति। "एवं, भो" ति खो सञ्जिकापुत्तो माणवो बोधिस्स राजकुमारस्स पटिस्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवतो कालं आरोचेसि—"कालो, भो गोतम, निट्ठितं भत्तं" ति। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन बोधिस्स राजकुमारस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि।

पूर्ववत्... भोजन का निमन्त्रण स्वीकार करें"। भगवान् ने मौन रहते हुए वह निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

तब वह तरुण सञ्जिकापुत्र भगवान् की स्वीकृति जान, आसन से उठ, जहाँ बोधिराजकुमार थे वहाँ, पहुँचा। पहुँच कर वह बोधि राजकुमार को यों बोला—"आपके कथनानुसार, मैंने उन पूज्य गौतम... मौन रहते स्वीकार कर लिया।"

२. तब बोधिराजकुमार ने उस रात्रि के बीत जाने पर, अपने ही घर पर अच्छे अच्छे स्वादिष्ठ व रुचिकर खाद्यभोज्य पदार्थ बनवाकर, कोकनद प्रासाद को साफ दुसालों से सीढ़ियों तक सुसज्जित करवा कर, तरुण सञ्जिकापुत्र को (फिर) बुलाया, और कहा— 'सौम्य सञ्जिकापुत्र! तुम जहाँ भगवान् विराजमान हैं वहाँ जाओ, और भगवान् को समय की सूचना दो कि 'भन्ते! भोजन तय्यार है"। सञ्जिकापुत्र माणवक ने बोधि राजकुमार को "ठीक है, श्रीमन्"—यों उत्तर दे, जहाँ भगवान् थे... भोजन तय्यार है। तब भगवान् पूर्वाह्ण समय बिताकर, पात्र चीवर ले, जहाँ बोधि राजकुमार का आवास था वहाँ, पहुँचे। उस समय बोधि राजकुमार अपने आवास के बरामदे में खड़ा भगवान् के शुभागमन की

तेन खो पन समयेन बोधि राजकुमारो बहिद्वारकोट्ठके ठितो होति भगवन्तं आगमयमानो। अद्दसा खो बोधि राजकुमारो भगवन्तं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान पच्चुग्गन्त्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा पुरक्खत्वा येन कोकनदो पासादो तेनुपसङ्कमि। अथ खो भगवा पच्छिमं सोपानकळेवरं निस्साय अट्ठासि। अथ खो बोधि राजकुमारो भगवन्तं एतदवोच--"अभिरुहतु, भन्ते, भगवा दुस्सानि, अभिरुहतु सुगतो दुस्सानि; यं मम अस्स दीघरत्तं [B. 279] हिताय सुखाया" ति। एवं वुत्ते, भगवा तुण्ही अहोसि। दुतियं पि खो... पे०...ततियं पि खो बोधि राजकुमारो भगवन्तं एतदवोच--"अभिरुहतु, भन्ते, भगवा दुस्सानि, अभिरुहतु सुगतो दुस्सानि; यं मम अस्स दीघरत्तं हिताय सुखाया" ति।

३. अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं अपलोकेसि। अथ खो आयस्मा आनन्दो बोधिं राजकुमारं एतदवोच—"संहरतु, राजकुमार, [R. 93] दुस्सानि; न भगवा चेलपटिकं अक्कमिस्सति। पच्छिमं जनतं तथागतो अनु-[N. 320] कम्पती" ति! अथ खो बोधि राजकुमारो दुस्सानि संहरापेत्वा उपरिकोकनदपासादे आसनानि पञ्ञापेसि। अथ खो भगवा कोकनदं पासादं अभिरुहित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि सद्धिं भिक्खुसङ्घेन। अथ खो बोधि राजकुमारो बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था

प्रतीक्षा कर रहा था। बोधि राजकुमार ने भगवान् को दूर से ही आते देखा। देख, (उनके सत्कारहेतु आसन से) उठ, भगवान् को प्रणाम कर, उनकी अगुवानी कर वह उन्हें अपने कोकनद प्रासाद में ले आया। भगवान् उस प्रासाद की पहली सीढ़ी के पास आकर रुक गये। तब बोधिराजकुमार ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! भगवान् आप इन गलीचों (से सुसज्जित सीढ़ियों) पर चलने की कृपा करें; इससे हमारे हित-सुख की दीर्घकाल तक वृद्धि होती रहेगी।" ऐसा कहे जाने पर भगवान् चुप ही रहे। दूसरी बार भी...तीसरी बार भी बोधिराजकुमार ने... वृद्धि होती रहेगी।"

३. तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द की ओर देखा। आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् के मन की बात समझकर बोधिराजकुमार से यों कहा—"बोधि राजकुमार! इन बिछे हुए गलीचों को हटवा लो। भगवान् इन पाँवड़ों (भूमि पर सम्मानार्थ बिछाये गलीचों=चेलमार्ग) पर नहीं चलेंगे, ताकि आगे आने वाली जनता पर (भगवान् के चरित्र के विषय में) दुष्प्रभाव न पड़े, ऐसा कर भगवान् उस जनता पर कृपा कर रहे हैं"। तब बोधिराजकुमार ने मार्ग में बिछाये उन गलीचों को हटवा कर कोकनद प्रासाद पर आसन बिछवाये। तब भगवान् भिक्षुसङ्घ के

सन्तप्पेसि सम्पवारेसि । अथ खो बोधि राजकुमारो भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं विदित्वा अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि । एकमन्तं निसिन्नो खो बोधि राजकुमारो भगवन्तं एतदवोच—"मय्हं खो, भन्ते, एवं होति—'न खो सुखेन सुखं अधिगन्तब्बं, दुक्खेन खो सुखं अधिगन्तब्बं' " ति ।

२. बोधिसत्तचरिया

४. "मय्हं पि खो, राजकुमार, पुब्बेव सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो एतदहोसि--'न खो सुखेन सुखं अधिगन्तब्बं, दुक्खेन खो सुखं अधिगन्तब्बं' ति । सो खो अहं, राजकुमार, अपरेन समयेन दहरो व समानो सुसुकाळकेसो भद्रेन योब्बनेन समन्नागतो पठमेन वयसा अकामकानं मातापितूनं अस्सुमुखानं रुदन्तानं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिं ।

आळारो कालामो

५. "सो एवं पब्बजितो समानो किंकुसलगवेसी अनुत्तरं सन्तिवरपदं परियेसमानो येन आळारो कालामो तेनुपसङ्कमिं; उपसङ्कमित्वा आळारं

साथ जाकर बिछे आसन पर विराजमान हुए। और बोधिराजकुमार ने बुद्धप्रधान उस समग्र भिक्षुसङ्घ को अच्छे-अच्छे रुचिकर खाद्य पदार्थ अपने हाथ से परोसे। उसे खाकर भिक्षुसङ्घ सन्तृप्त हुआ, सन्तुष्ट हुआ। इसके बाद बोधिराजकुमार भगवान् को भोजन से सन्तृप्त हुआ जान, क्योंकि वे पात्र से हाथ हटा चुके थे, एक नीचा आसन ले, उस पर बैठ गया और उनसे यों बोला--"भन्ते ! मुझे यों समझ में आ रहा है कि सुख (के माध्यम) से सुख नहीं प्राप्त किया जा सकता, अपितु दुःखमय कठिन क्रियाओं के सहारे ही वह (सुख) पाया जा सकता है' ।"

२. बोधिसत्त्वचर्या

४. "राजकुमार ! बोधि-प्राप्ति से पूर्व, जब कि मैं सम्यक्सम्बुद्ध नहीं बना था, अपितु बोधिसत्त्व ही था उस समय, मुझे भी (मन में) यही हुआ था--'सुख (साधनों) से सुख नहीं प्राप्त किया जा सकता, दुःखमय (कष्टयुक्त) साधनों से ही सुख पाया जा सकता है' । राजकुमार ! वह मैं दूसरे समय, जब कि अभी नवयौवनसम्पन्न युवक ही था, मेरे बाल भी काले ही थे, पहली (छोटी) ही उम्र में, माता-पिता के न चाहते हुए भी उन्हें रोता छोड़, दाढ़ी-मूँछ मुंडवा, काषाय वस्त्र पहन, घर से बेघर हो, प्रव्रजित हो गया।

आड़ार कालाम

५. "इस तरह मैं प्रव्रजित हो 'मेरे लिए क्या कुशल है'--इसकी खोज करता,

कालामं एतदवोचं--'इच्छामहं, आवुसो कालाम, इमस्मिं धम्मविनये ब्रह्म-चरियं चरितुं' ति। एवं वुत्ते, राजकुमार, आळारो कालामो मं एतदवोच--विहरतायस्मा, तादिसो अयं धम्मो यत्थ विञ्ञू पुरिसो [B. 280] नचिरस्सेव सकं आचरियकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरेय्या' ति। सो खो अहं, राजकुमार, नचिरस्सेव खिप्पमेव तं धम्मं परियापुणिं। सो खो अहं, राजकुमार, तावतकेनेव ओट्ठपहतमत्तेन लपितलापनमत्तेन ञाणवादं च वदामि, थेरवादं च जानामि, पस्सामी ति च [N. 321] पटिजानामि अहं चेव अञ्ञे च। तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि—'न खो आळारो कालामो इमं धम्मं केवलं सद्धामत्तकेन सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरामी ति पवेदेति; अद्धा आळारो कालामो इमं धम्मं जानं पस्सं विहरती' ति।

"अथ ख्वाहं, राजकुमार, येन आळारो कालामो तेनुपसङ्कमिं; उपसङ्कमित्वा आळारं कालामं एतदवोचं—'कित्तावता नो, आवुसो कालाम, इमं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरामी ति पवेदेसी' ति? एवं वुत्ते, राजकुमार, आळारो कालामो आकिञ्चञ्ञायतनं पवेदेसि। तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि—'न खो आळारस्सेव कालामस्स अत्थि सद्धा, मय्हं पत्थि सद्धा; न खो आळारस्सेव कालामस्स अत्थि विरियं… पे०…सति…समाधि…पञ्ञा, मय्हं पत्थि पञ्ञा। यन्नूनाहं यं धम्मं आळारो कालामो सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरामी ति पवेदेति तस्स धम्मस्स सच्छिकिरियाय पदहेय्यं' ति। सो खो अहं, राजकुमार, नचिरस्सेव खिप्पमेव तं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासिं। अथ ख्वाहं; राजकुमार, येन आळारो कालामो तेनुपसङ्कमिं; उपसङ्कमित्वा आळारं कालामं एतदवोचं--'एत्तावता नो, आवुसो कालाम, इमं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज पवेदेसी' ति?

लोकोत्तर शान्तिपद की मार्गणा करता हुआ, श्रीमान् आड़ार कालाम…पूर्ववत्[1]… क्या आड़ार कालाम इस गहराई तक पहुँच चुके हैं?'

"राजकुमार! तब मैं फिर आलाम कालाम के पास गया और पूछा--"आयुष्मन् कालाम! कितनी गहराई तक आप अपने धर्म…पूर्ववत्[2]…क्या आप इतने से धर्म की ही देशना करते है या इससे आगे भी कुछ बताते हैं?"

१-२. द्र०---पीछे पृष्ठ ३२५-३२७ (पासरासिसुत्त)।

'एत्तावता खो अहं, आवुसो, इमं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज पवेदेमी' ति।

'अहं पि खो, आवुसो, एत्तावता इमं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरामी' ति।

'लाभा नो, आवुसो, सुलद्धं नो, आवुसो, ये मयं आयस्मन्तं तादिसं सब्रह्मचारिं पस्साम। इति याहं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज पवेदेमि तं त्वं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरसि। यं त्वं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरसि तमहं धम्मं सयं अभिञ्ञा [B. 281] सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज पवेदेमि। इति याहं धम्मं जानामि तं त्वं धम्मं जानासि; यं त्वं धम्मं जानासि तमहं धम्मं जानामि। इति [N. 322] यादिसो अहं तादिसो तुवं, यादिसो तुवं तादिसो अहं। एहि दानि, आवुसो, उभो व सन्ता इमं गणं परिहरामा' ति। इति खो, राजकुमार, आळारो कालामो आचरियो मे समानो अत्तनो अन्तेवासिं मं समानं अत्तना समसमं ठपेसि, उळाराय च मं पूजाय पूजेसि। तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि—'नायं धम्मो निब्बिदाय न विरागाय न निरोधाय न उपसमाय न अभिञ्ञाय न सम्बोधाय न निब्बानाय संवत्तति, यावदेव आकिञ्चञ्ञायतनूपपत्तिया' ति। सो खो अहं, राजकुमार, तं धम्मं अनलङ्करित्वा तस्मा धम्मा निब्बिज्ज अपक्कमिं।

उदको रामपुत्तो

६. "सो खो अहं, राजकुमार, किंकुसलगवेसी अनुत्तरं सन्तिवरपदं परियेसमानो येन उदको रामपुत्तो तेनुपसङ्कमिं; उपसङ्कमित्वा उदकं रामपुत्तं एतदवोचं—'इच्छामहं, आवुसो, इमस्मिं धम्मविनये ब्रह्मचरियं चरितुं' ति। एवं वुत्ते, राजकुमार, उदको रामपुत्तो मं एतदवोच—'विहरतायस्मा,

---

'हाँ आयुष्मन्!···पूर्ववत्[1]···जानता हूँ।'

···'आयुष्मन्! इतना···जान गया हूँ।'

'अब आयुष्मन्! यह हमारा सौभाग्य है कि हम आप जैसे योग्य साथी को अपने बीच पा रहे हैं,···पूर्ववत्[2]···राजकुमार! तब मैं आलार कालाम के उस धर्म को न स्वीकार कर वहाँ से चल दिया।

उद्दक रामपुत्र

६. "राजकुमार! इस तरह मैं 'किंकुशलगवेषी' बनकर परम शान्त पद की

१-२. द्र०—पीछे ३२७-३२८ पृ०।

तादिसो अयं धम्मो यत्थ विञ्ञू पुरिसो नचिरस्सेव सकं आचरियकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरेय्या' ति। सो खो अहं, राजकुमार, नचिरस्सेव खिप्पमेव तं धम्मं परियापुणिं। सो खो अहं, राजकुमार, तावतकेनेव ओट्ठपहतमत्तेन लपितलापनमत्तेन ञाणवादं च वदामि. थेरवादं च जानामि पस्सामी ति च पटिजानामि, अहं चेव अञ्ञे च। तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि—'न खो रामो इमं धम्मं केवलं सद्धामत्तकेन सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरामी ति पवेदेसि; अद्धा रामो इमं धम्मं जानं पस्सं विहासी' ति।

अथ ख्वाहं, राजकुमार, येन उदको रामपुत्तो तेनुपसङ्कमिं; उपसङ्कमित्वा उदकं रामपुत्तं एतदवोचं--'कित्तावता नो, आवुसो, इमं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरामी ति पवेदेसी' ति? एवं वुत्ते, राजकुमार, उदको रामपुत्तो नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं पवेदेसि। तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि--'न खो रामस्सेव अहोसि सद्धा, मय्हं [N. 323, B. 282] पत्थि सद्धा; न खो रामस्सेव अहोसि विरियं···पे०···सति···समाधि··· पञ्ञा, मय्हं पत्थि पञ्ञा। यन्नूनाहं यं धम्मं रामो सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरामी ति पवेदेति तस्स धम्मस्स सच्छिकिरियाय पदहेय्यं' ति। सो खो अहं, राजकुमार, नचिरस्सेव खिप्पमेव तं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासिं।

"अथ ख्वाहं, राजकुमार, येन उदको रामपुत्तो तेनुपसङ्कमिं; उपसङ्कमित्वा उदकं रामपुत्तं एतदवोचं—'एत्तावता नो, आवुसो, रामो इमं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज पवेदेसी' ति?

'एत्तावता खो, आवुसो. रामो इमं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज पवेदेसी' ति। 'अहं पि खो, आवुसो, एत्तावता इमं धमं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरामी' ति।

खोज करता हुआ श्रीमान् उद्दक रामपुत्र···पूर्ववत्[1]···उन्होंने इसे जान-समझकर ही इसका आचरण करना प्रारम्भ किया हो'।

"राजकुमार! तब मैं जहाँ उद्दक रामपुत्र थे, वहाँ पहुँचा, पहुँचकर उद्दक रामपुत्र से यों पूछा—'आयुष्मन्! आपने किसके सहारे मुझसे यों कहा था कि मैं अपने धर्म···पूर्ववत्[2]···स्वयं जानकर, साक्षात् कर, साधना में उतार लिया।

"राजकुमार! तब मैं फिर उद्दक रामपुत्र के पास···धर्म का व्याख्यान करते हैं?"

'हाँ, इतने के सहारे ही···पूर्ववत्[3]···जान गया हूँ'।

१-२-३. द्र० पीछे पृ०--३२८-३३० (पासरासिसुत्त)।

'लाभा नो, आवुसो, सुलद्धं नो, आवुसो, ये मयं आयस्मन्तं तादिसं सब्रह्मचारिं पस्साम। इति यं धम्मं रामो सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज पवेदेसि तं त्वं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरसि। यं त्वं धम्मं सयं सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरसि तं धम्मं रामो सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज पवदेसि। इति यं धम्मं रामो अभिञ्ञासि तं त्वं धम्मं जानासि; यं त्वं धम्मं जानासि तं धम्मं रामो अभिञ्ञासि। इति यादिसो रामो अहोसि तादिसो तुवं, यादिसो तुवं तादिसो रामो अहोसि। एहि दानि, आवुसो, तुवं इमं गणं परिहरा' ति। इति खो, राजकुमार, उदको रामपुत्तो सब्रह्मचारी मे समानो आचरियट्ठाने म ठपेसि, उळाराय च मं पूजाय पूजेसि। तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि—'नायं धम्मो निब्बिदाय न विरागाय न निरोधाय न उपसमाय न अभिञ्ञाय न सम्बोधाय न निब्बानाय संवत्तति, यावदेव नेवसञ्ञानासञ्ञायतनूपपत्तिया' ति। सो खो अहं राजकुमार, तं धम्मं अनलङ्करित्वा तस्मा धम्मा निब्बिज्ज अपक्कमिं।

उरुवेलायं दुक्करचरिया

७. "सो खो, अहं, राजकुमार, किंकुसलगवेसी अनुत्तरं सन्तिवरपदं परियेसमानो, मगधेसु अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो, येन उरुवेला सेनानिगमो [N. 324] तदवसरिं। तत्थद्दसं रमणीयं भूमिभागं, पासादिकं च वनसण्डं, नदिं च सन्दतिं सेतकं सुपतित्थं, रमणीयं समन्ता च गोचरगामं। तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि—'रमणीयो वत, भो, भूमिभागो, पासादिको च वनसण्डो, नदी च सन्दति सेतका सुपतित्था रमणीया, समन्ता च [B. 283] गोचरगामो। अलं वतिदं कुलपुत्तस्स पधानत्थिकस्स पधा-

---

"तब तो हमारा सौभाग्य है कि हमें एक और साथी मिल गया, जिसने इस धर्म को स्वयं जानकर" पूर्ववत्[1] "यह सोचकर मुझे उस धर्म के प्रति वैराग्य हो गया और मैं उसे न स्वीकार कर वहाँ से चल दिया।

उरुवेला में दुष्करचर्या

७. राजकुमार! मैं फिर आगे 'क्या कुशल है' इसकी खोज में लोकोत्तर शान्ति की मार्गणा हेतु मगध देश में घूमता, क्रमशः चारिका करता हुआ उरुवेला नामक सेना की छावनी पहुँचा। वहाँ मैंने उसका मनोरम"पूर्ववत्[2] "यह बहुत

---

१. द्र०—पीछे पृ० ३३०-३३१ (२६. पासरासिसुत्त।)

२. द्र०—पीछे पृ०—४६१ (४६. महासच्चकसुत्त)।

नाया ति। सो खो अहं, राजकुमार, तत्थेव निसीदिं—'अलमिदं पधानाया' ति। अपिस्सु मं, राजकुमार, तिस्सो उपमा पटिभंसु अनच्छरिया पुब्बे अस्सुतपुब्बा।

८. "सेय्यथापि, राजकुमार, अल्लं कट्ठं सस्नेहं उदके निक्खित्तं। अथ पुरिसो आगच्छेय्य उत्तरारणिं आदाय—'अग्गिं अभिनिब्बत्तेस्सामि, तेजो पातुकरिस्सामी' ति। तं किं मञ्ञसि, राजकुमार, अपि नु सो पुरिसो अमुं अल्लं कट्ठं सस्नेहं उदके निक्खित्तं उत्तरारणिं आदाय अभिमन्थेन्तो अभिनिब्बत्तेय्य, तेजो पातुकरेय्या" ति?

"नो हिदं, भन्ते। तं किस्स हेतु? अदुं हि, भन्ते, अल्लं कट्ठं सस्नेहं तं च पन उदके निक्खित्तं, यावदेव च पन सो पुरिसो किलमथस्स विघातस्स भागी अस्सा" ति।

"एवमेव खो, राजकुमार, ये हि केचि समणा वा ब्राह्मणा वा कायेन चेव चित्तेन च कामेहि अवूपकट्ठा विहरन्ति, यो च नेसं कामेसु कामच्छन्दो कामस्नेहो काममुच्छा कामपिपासा कामपरिळाहो सो च अज्झत्तं न सुप्पहीनो होति, न सुप्पटिप्पस्सद्धो। ओपक्कमिका चे पि ते भोन्तो समणब्राह्मण, दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदयन्ति, अभब्बा व ते ञाणाय दस्सनाय अनुत्तराय सम्बोधाय। नो चे पि ते भोन्तो समणब्राह्मणा ओपक्कमिका दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदयन्ति, अभब्बा ते ञाणाय दस्सनाय अनुत्तराय सम्बोधाय। अयं खो मं, राजकुमार, पठमा उपमा पटिभासि अनच्छरिया पुब्बे अस्सुतपुब्बा।

"अपरा पि खो मं, राजकुमार, दुतिया उपमा पटिभासि अनच्छरिया पुब्बे अस्सुतपुब्बा।

अच्छा स्थल है'—यह विचार कर मैं साधना के लिये वहीं ठहर गया। राजकुमार! उस समय ये तीन आश्चर्यजनक उपमायें मुझे याद आयीं, जो कभी नहीं सुनी थीं।

८. "राजकुमार! जैसे कोई स्नेहसिक्त गीला काष्ठ जल में फेंका हुआ हो। वहाँ कोई अज्ञ पुरुष हाथ में अरणि (=अग्निमन्थन काष्ठ) लेकर…पूर्ववत्[1]… अपितु उसका एतद्विषयक समग्र परिश्रम एवं कष्ट भी व्यर्थ ही जायगा।

"इसी तरह, राजकुमार! जो कोई श्रमण-ब्राह्मण काय चित्त तथा कामभोगों से अव्युपकृष्ट साधना करते हैं, उस समय उनका वह कामभोगों में…पूर्ववत्[2]…फिर भी वे ज्ञानदर्शन या निर्वाण के लिये तो अयोग्य ही हैं। राजकुमार! मुझे यह पहली अश्रुतपूर्व उपमा ध्यान में आयी।

"राजकुमार! इसके बाद मुझे यह दूसरी अश्रुतपूर्व उपमा ध्यान में आयी—

१-२. द्र० पीछे पृ०—४६१-४६२ (४६. महासच्चकसुत्त)।

[N. 325] ९. "सेय्यथापि, राजकुमार, अल्लं कट्ठं सस्नेहं आरका उदका थले निक्खित्तं। अथ पुरिसो आगच्छेय्य उत्तरारणिं आदाय—'अग्गिं अभिनिब्बत्तेस्सामि, तेजो पातुकरिस्सामी' ति। तं किं मञ्ञसि, राजकुमार, अपि नु सो पुरिसो अमुं अल्लं अकट्ठं सस्नेहं आरका उदका थले निक्खित्तं उत्तरारणिं आदाय अभिमन्थेन्तो अग्गिं अभिनिब्बत्तेय्य, तेजो [B. 284] पातुकरेय्या" ति ?

"नो हिदं, भन्ते। तं किस्स हेतु ? अदुं हि, भन्ते, अल्लं कट्ठं सस्नेहं किञ्चापि आरका उदका थले निक्खित्तं, यावदेव च पन सो पुरिसो किलमथस्स विघातस्स भागी अस्सा" ति।

"एवमेव खो, राजकुमार, ये हि केचि समणा वा ब्राह्मणा वा कायेन चेव चित्तेन च कामेहि वूपकट्ठा विहरन्ति, यो च नेसं कामेसु कामच्छन्दो कामस्नेहो काममुच्छा कामपिपासा कामपरिळाहो सो च अज्झत्तं न सुप्पहीनो होति, न सुप्पटिप्पस्सद्धो। ओपक्कमिका चे पि ते भोन्तो समणब्राह्मणा दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदयन्ति, अभब्बा व ते ञाणाय दस्सनाय अनुत्तराय सम्बोधाय। नो चे पि ते भोन्तो समणब्राह्मणा ओपक्कमिका दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदयन्ति, अभब्बा व ते ञाणाय दस्सनाय अनुत्तराय सम्बोधाय। अयं खो मं, राजकुमार, दुतिया उपमा पटिभासि अनच्छरिया पुब्बे अस्सुतपुब्बा।

"अपरा पि खो मं, राजकुमार, ततिया उपमा पटिभासि अनच्छरिया पुब्बे अस्सुतपुब्बा।

१०. "सेय्यथापि, राजकुमार, सुक्खं कट्ठं कोळापं आरका उदका थले निक्खित्तं। अथ पुरिसो आगच्छेय्य उत्तरारणिं आदाय—'अग्गिं अभि-

---

९. "राजकुमार! जैसे कोई स्नेहसिक्त गीला काष्ठ पानी से दूर, जमीन पर फेंका गया हो। तब वहाँ कोई अज्ञ पुरुष हाथ में अरणि लेकर...पूर्ववत्[1]...समग्र परिश्रम एवं कष्ट व्यर्थ ही जायगा।"

"राजकुमार! इसी तरह जो कोई श्रमण-ब्राह्मण काय, चित्त तथा कामभोगों से व्युपकृष्ट साधना करते हैं, उस समय उनका वह कामभोगों में...पूर्ववत्[2]...ज्ञानदर्शन या निर्वाण के लिये तो अयोग्य ही हैं। राजकुमार! यों मुझे यह दूसरी अश्रुतपूर्व उपमा ध्यान में आयी।

"राजकुमार! इसके बाद मुझे यह तीसरी अश्रुतपूर्व उपमा ध्यान में आयी—

१०. "राजकुमार! जैसे कोई अस्निग्ध सूखा काष्ठ जल से दूर, जमीन पर पड़ा

१-२. द्र० पीछे पृष्ठ—४६३ (४६. महासच्चकसुत्त।)

निब्बत्तेस्सामि, तेजो पातुकरिस्सामी' ति। तं किं मञ्ञसि, राजकुमार, अपि नु सो पुरिसो अमुं सुक्खं कट्ठं कोळापं आरका उदका थले निक्खित्तं उत्तरारणिं आदाय अभिमन्थेन्तो अग्गिं अभिनिब्बत्तेय्य, तेजो पातुकरेय्या" ति ?

"एवं, भन्ते।

"तं किस्स हेतु ? [N. 326]

"अदुं हि, भन्ते, सुक्खं कट्ठं कोळापं, तं च पन आरका उदका थले निक्खित्तं" ति।

"एवमेव खो, राजकुमार, ये हि केचि समणा वा ब्राह्मणा वा कायेन चेव चित्तेन च कामेहि वूपकट्ठा विहरन्ति, यो च तेसं कामेसु कामच्छन्दो कामस्नेहो काममुच्छा कामपिपासा कामपरिळाहो सो च अज्झत्तं सुप्पहीनो होति सुप्पटिप्पस्सद्धो। ओपक्कमिका चे पि ते भोन्तो समणब्राह्मणा दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदयन्ति भब्बा व ते ञाणाय दस्सनाय अनुत्तराय सम्बोधाय। नो चे पि ते भोन्तो समणब्राह्मणा ओपक्कमिका दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदयन्ति, भब्बा व ते आणाय दस्सनाय [B. 285] अनुत्तराय सम्बोधाय। अयं खो मं, राजकुमार, ततिया उपमा पटिभासि अनच्छरिया पुब्बे अस्सुतपुब्बा। इमा खो मं, राजकुमार, तिस्सो उपमा पटिभंसु अनच्छरिया पुब्बे अस्सुतपुब्बा।

११. "तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि—'यन्नूनाहं दन्तेभि दन्तमाधाय, जिव्हाय तालुं आहच्च, चेतसा चित्तं अभिनिग्गण्हेय्यं अभिनिप्पीळेय्यं अभिसन्तापेय्यं' ति। सो खो अहं राजकुमार, दन्तेभि दन्तमाधाय,

---

हो, तब वहाँ कोई पुरुष अरणि···पूर्ववत्[1]···अग्नि उसे तत्काल पकड़ लेगी और वह प्रज्वलित हो उठेगा। (यों उसका श्रम भी सार्थक होगा)।

"राजकुमार ! इसी तरह जो कोई श्रमण-ब्राह्मण काय, चित्त तथा कामभोगों से व्युपकृष्ट हो साधना करते हैं, उस समय उनका वह कामभोगों के प्रति आध्यात्मिक राग···पूर्ववत्[2]···पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं, अतः उनको ज्ञानदर्शन एवं निर्वाण-प्राप्ति अवश्य सम्भव है। राजकुमार ! मुझे यह तीसरी अश्रुतपूर्व उपमा ध्यान में आयी। राजकुमार ! मुझे यह आश्चर्यजनक तीन अश्रुतपूर्व उपमायें ध्यान में आयी।

११. "राजकुमार ! उस समय मुझको यह हुआ—'क्यों न मैं दाँत पर दाँत रखकर, जिह्वा से तालु को दबाकर, मन से मन का निग्रह करूँ, उसे दबाऊँ, उसे

१-२. द्र० —पीछे पृ० ४६३-४६४ (४६. महासच्चकसुत्त)।

जिव्हाय तालुं आहच्च, चेतसा चित्तं अभिनिग्गण्हामि अभिनिप्पीळेमि अभिसन्तपेमि। तस्स मय्हं, राजकुमार, दन्तेभि दन्तमाधाय, जिव्हाय तालुं आहच्च, चेतसा चित्तं अभिनिग्गण्हतो अभिनिप्पीळयतो अभिसन्तापयतो कच्छेहि सेदा मुच्चन्ति। सेय्यथापि, राजकुमार, बलवा पुरिसो दुब्बलतरं पुरिसं सीसे वा गहेत्वा खन्धे वा गहेत्वा अभिनिग्गण्हेय्य अभिनिप्पीळेय्य अभिसन्तापेय्य; एवमेव खो मे, राजकुमार, दन्तेभि दन्तमाधाय, जिव्हाय तालुं आहच्च, चेतसा चित्तं अभिनिग्गण्हतो अभिनिप्पीळयतो अभिसन्तापयतो कच्छेहि सेदा मुच्चन्ति। आरद्धं खो पन मे, राजकुमार, विरियं होति असल्लीनं, उपट्ठिता सति असम्मुट्ठा, सारद्धो च पन मे कायो होति अप्पटिप्पस्सद्धो, तेनेव दुक्खप्पधानेन पधानाभितुन्नस्स सतो।

[N. 327] १२. "तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि—'यन्नूनाहं अप्पाणकं येव झानं झायेय्यं' ति। सो खो अहं, राजकुमार, मुखतो च नासतो च अस्सासपस्सासे उपरुन्धिं, तस्स मय्हं, राजकुमार, मुखतो च नासतो च अस्सासपस्सासेसु उपरुद्धेसु कण्णसोतेहि वातानं निक्खमन्तानं अधिमत्तो सद्दो होति। सेय्यथापि नाम कम्मारगग्गरिया धममानाय अधिमत्तो सद्दो होति; एवमेव खो मे, राजकुमार, मुखतो च नासतो च अस्सासपस्सासेसु उपरुद्धेसु कण्णसोतेहि वातानं निक्खमन्तानं अधिमत्तो सद्दो होति। आरद्धं खो पन [B. 286] मे, राजकुमार, विरियं होति असल्लीनं उपट्ठिता सति असम्मुट्ठा,

---

पीड़ित करूँ। राजकुमार! तब मैंने दाँत पर दाँत रखकर, जिह्वा से तालु को दबाकर, मन से मन का निग्रह किया, उसे दबाया, उसे सन्तप्त किया। राजकुमार! तब मुझे दाँत पर दाँत रखकर…सन्तप्त करने के कारण मेरी काँखों से पसीना छूटने लगा। राजकुमार! जैसे कोई बलवान् पुरुष कमजोर पुरुष को सिर या कन्धे से पकड़कर निग्रहीत करे, उसे दबावे या संतप्त करे; इसी तरह, राजकुमार! दाँत पर दाँत रख…मेरी काँखों से पसीना छूटने लगा। राजकुमार! उस समय मुझमें अदम्य वीर्य (उद्योग) प्रारम्भ हो चुका था, उपस्थित स्मृति भी विस्मृति की ओर नहीं जा पा रही थी और मेरा शरीर भी दुःखक्षय हेतु साधना में सन्नद्ध था।

१२. "राजकुमार! (उसके बाद) मुझे यह विचार हुआ—'क्यों न मैं श्वासरहित ध्यानभावना ही करूँ'। राजकुमार! तब मैंने मुख और नासिका से श्वास का आना-जाना रोक लिया। राजकुमार! तब मुझे, मुख और नासिका से श्वास-प्रश्वास को रोकने के बाद, मेरे कर्ण छिद्रों से निकलने वाली वायु से अत्यधिक शब्द सुनायी देने लगा। जैसे लोहार की धौंकनी से धौंके जाने पर बहुत अधिक शब्द होता है; इसी तरह, राजकुमार! मुझे मुख और नासिका से श्वास…अत्यधिक

सारद्धो च पन मे कायो होति अप्पटिप्पस्सद्धो, तेनेव दुक्खप्पधानेन पधानाभितुन्नस्स सतो।

"तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि—'यन्नूनाहं अप्पाणकं येव झानं झायेय्यं' ति। सो खो अहं, राजकुमार, मुखतो च नासतो च कण्णतो च अस्सासपस्सासे उपरुन्धि। तस्स मय्हं, राजकुमार, मुखतो च नासतो च कण्णतो च अस्सासपस्सासेसु उपरुद्धेसु अधिमत्ता वाता मुद्धनि ऊहनन्ति। सेय्यथापि, राजकुमार, बलवा पुरिसो तिण्हेन सिखरेन मुद्धनि अभिमत्थेय्य; एवमेव खो मे, राजकुमार, मुखतो च नासतो च कण्णतो च अस्सासपस्सासेसु उपरुद्धेसु अधिमत्ता वाता मुद्धनि ऊहनन्ति। आरद्धं खो पन मे, राजकुमार, विरियं होति असल्लीनं, उपट्ठिता सति असम्मुट्ठा, सारद्धो च पन मे कायो होति अप्पटिप्पस्सद्धो, तेनेव दुक्खप्पधानेन पधानाभितुन्नस्स सतो।

"तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि—'यन्नूनाहं अप्पाणकं येव झानं झायेय्यं' ति। सो खो अहं, राजकुमार, मुखतो च नासतो च कण्णतो च अस्सासपस्सासे उपरुन्धि। तस्स मय्हं, राजकुमार, मुखतो च नासतो च कण्णतो च अस्सासपस्सासेसु उपरुद्धेसु अधिमत्ता सीसे सीसवेदना होन्ति। सेय्यथापि, राजकुमार, बलवा पुरिसो दळ्हेन वरत्तक्खण्डेन सीसे सीसवेठं ददेय्य; एवमेव खो मे, राजकुमार, मुखतो च नासतो च [N. 328]

शब्द होने लगा। राजकुमार! उस समय मुझमें अदम्य वीर्य प्रारम्भ...साधना में सन्नद्ध था।

"राजकुमार! (उसके बाद) मुझे यह विचार हुआ—'क्यों न मैं श्वासरहित ध्यानभावना ही करूँ'। राजकुमार! तब मैंने मुख, नासिका, और कान से श्वास-प्रश्वास को रोक दिया। राजकुमार! तब मुझे मुख, नासिका और कान से श्वास-प्रश्वास रोकने के बाद मेरे मूर्धा (शिर) में एकत्र हुई बायु से अत्यधिक शब्द होने लगा। राजकुमार जैसे कोई बलवान् पुरुष तीक्ष्ण मुगदर से शिर पर प्रहार करे; इसी तरह राजकुमार! मुझे मुख, नासिका...शब्द होने लगा। राजकुमार! उस समय मुझमें अदम्य...साधना में सन्नद्ध था।

"... 'क्यों न मैं श्वासरहित ध्यानभावना ही करूँ'। राजकुमार! तब मैंने मुख, नासिका और कान से श्वास-प्रश्वास...रोकने के बाद मेरे मस्तक में अतीव वेदना होने लगी। राजकुमार! जैसे कोई बलवान् पुरुष चाबुक से सिर पर चोट करे; इसी तरह, राजकुमार! मुझे मुख, नासिका और कान से...मस्तक में अतीव

कण्णतो च अस्सासपस्सासेसु उपरुद्धेसु अधिमत्ता सीसे सीसवेदना होन्ति। आरद्धं खो पन मे, राजकुमार, विरियं होति असल्लीनं, उपट्ठिता सति असम्मुट्ठा, सारद्धो च पन मे कायो होति अप्पटिप्पस्सद्धो, तेनेव दुक्खप्पधानेन पधानाभितुन्नस्स सतो।

"तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि—'यन्नूनाहं अप्पाणकं येव झानं झायेय्यं' ति। सो खो अहं, राजकुमार, मुखतो च नासतो च कण्णतो च [B. 287] अस्सासपस्सासे उपरुन्धिं। तस्स मय्हं, राजकुमार, मुखतो च नासतो च कण्णतो च अस्सासपस्सासेसु उपरुद्धेसु अधिमत्ता वाता कुच्छिं परिकन्तन्ति। सेय्यथापि, राजकुमार, दक्खो गोघातको वा गोघातकन्तेवासी वा तिण्हेन गोविकन्तनेन कुच्छिं परिकन्तेय्य; एवमेव खो मे, राजकुमार, मुखतो च नासतो च कण्णतो च अस्सासपस्सासेसु उपरुद्धेसु अधिमत्ता वाता कुच्छिं परिकन्तन्ति। आरद्धं खो पन मे, राजकुमार, विरियं होति असल्लीनं, उपट्ठिता सति असम्मुट्ठा, सारद्धो च पन मे कायो होति अप्पटिप्पस्सद्धो, तेनेव दुक्खप्पधानेन पधानाभितुन्नस्स सतो।

"तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि—'यन्नूनाहं अप्पाणकं येव झानं झायेय्यं' ति। सो खो अहं, राजकुमार, मुखतो च नासतो च कण्णतो च अस्सासपस्सासे उपरुन्धिं। तस्स मय्हं, राजकुमार, मुखतो च नासतो च कण्णतो च अस्सासपस्सासेसु उपरुद्धेसु अधिमत्तो कायस्मिं डाहो होति। सेय्यथापि, राजकुमार, द्वे बलवन्तो पुरिसा दुब्बलतरं पुरिसं नानाबाहासु गहेत्वा अङ्गारकासुया सन्तापेय्युं सम्परितापेय्युं; एवमेव खो मे, राजकुमार,

---

वेदना होने लगी। राजकुमार! उस समय मुझमें अदम्य वीर्य···साधना में सन्नद्ध था।

"···'क्यों न मैं श्वासरहित ध्यानभावना ही करूँ'। राजकुमार! तब मैंने मुख, नासिका और कान से श्वास-प्रश्वास···रोकने के बाद अन्दर रुकी वायु मेरे पेट को काटने सी लगीं। राजकुमार! जैसे कोई चतुर कसाई या कसाई का साथी तीक्ष्ण शस्त्र से गाय का पेट काट रहा हो; इसी तरह, राजकुमार! मुझे मुख, नासिका और कान से···मेरे पेट को काटने सी लगीं। राजकुमार! उस समय मुझमें···।

"···'क्यों न मैं श्वासरहित ध्यानभावना ही करूँ'। राजकुमार! तब मैंने मुख, नासिका और कान से श्वास-प्रश्वास···रोकने बाद मेरे पूरे शरीर में भयंकर दाह उत्पन्न होने लगा। राजकुमार! जैसे कोई दो बलवान् पुरुष किसी दुर्बल पुरुष को कई तरह से बाँहों में पकड़कर अग्नि मे जलावें, तपावें; वैसे ही राजकुमार! मुझे

मुखतो च नासतो च कण्णतो च अस्सासपस्सासेसु उपरुद्धेसु अधिमत्तो कायस्मिं डाहो होति। आरद्धं खो पन मे, राजकुमार, विरियं होति असल्लीनं, उपट्ठिता सति असम्मुट्ठा, सारद्धो च पन मे कायो होति अप्पटिप्पस्सद्धो, तेनेव दुक्खप्पधानेन पधानाभितुन्नस्स सतो। अपिस्सु मं, राजकुमार, देवता दिस्वा एवमाहंसु--'कालङ्कतो समणो गोतमो' ति। एकच्चा देवता एवमाहंसु--'न कालङ्कतो समणो गोतमो, अपि च [N. 329] कालङ्करोती' ति। एकच्चा देवता एवमाहंसु--' न कालङ्कतो समणो गोतमो, नापि कालङ्करोति। अरहं समणो गोतमो। विहारो त्वेव सो अरहतो एवरूपो होती' ति।

१३. "तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि--'यन्नूनाहं सब्बसो आहारुपच्छेदाय पटिपज्जेय्यं' ति। अथ खो मं, राजकुमार, देवता उपसङ्कमित्वा एतदवोचुं—'मा खो त्वं, मारिस, सब्बसो आहारुपच्छेदाय [B. 288] पटिपज्जि। सचे खो त्वं, मारिस, सब्बसो आहारुपच्छेदाय पटिपज्जिस्ससि, तस्स ते मयं दिब्बं ओजं लोमकूपेहि अज्झोहारेस्साम, ताय त्वं यापेस्ससी' ति। तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि--'अहञ्चेव खो पन सब्बसो अजज्जितं पटिजानेय्यं। इमा च मे देवता दिब्बं ओजं लोमकूपेहि अज्झोहारेय्युं, ताय चाहं यापेय्यं, तं ममस्स मुसा' ति। सो खो अहं, राजकुमार, ता देवता पच्चाचिक्खामि। 'हलं' ति वदामि।

मुख, नासिका और कान से···भयंकर दाह उत्पन्न होने लगा। राजकुमार! उस समय मुझमें अदम्य वीर्य···साधना में सन्नद्ध था।

राजकुमार! तब कुछ देवता (मेरे चारों ओर एकत्र हो) यों कहने लगे—'श्रमण गौतम तो मर गया'। और कुछ यों कह रहे थे--'यह अभी मरा नहीं है, हाँ, मरनेवाला है'। और कुछ यों कह रहे थे--'श्रमण गौतम न मरा है, न मरने वाला है। श्रमण गौतम ध्यानी है। इन ध्यानियों (बुद्धों) की यह साधना ही ऐसी है कि उस साधना में रत रहते हुए ये ऐसे (मृतवत्) ही लगते हैं'।

१३. "···'क्यों न मैं अब खाना-पीना भी सर्वथा छोड़ दूँ'। तब एक देवता ने मेरे पास आकर यों कहा—'मार्ष! आप सर्वथा आहार लेना मत छोड़िये। मार्ष! यदि आप सर्वथा आहार लेना छोड़ देंगे तो हम लोग आपके शरीर में रोमकूपों द्वारा दिव्य ओज पहुँचाने लगेंगे'। राजकुमार! तब मुझे यह हुआ--'यदि आहार-निरोध के बाद इस देवता द्वारा प्रदत्त दिव्य ओज के सहारे मेरे शरीर की रक्षा होती रही तो मेरी यह साधना मिथ्या (कृत्रिम) कहलायेगी।' राजकुमार! तब मैंने उस देवता को वैसा करने से रोक दिया और 'हट जाओ' कह (कर भगा) दिया।

"तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि--'यन्नूनाहं थोकं थोकं आहारं आहारेय्यं पसतं पसतं, यदि वा मुग्गयूसं यदि वा कुलत्थयूसं यदि वा कळाययूसं यदि वा हरेणुकयूसं' ति। सो खो अहं, राजकुमार, थोकं थोकं आहारं आहारेसिं पसतं पसतं, यदि वा मुग्गयूसं यदि वा कुलत्थयूसं यदि वा कळाययूसं यदि वा हरेणुकयूसं। तस्स मय्हं, राजकुमार, थोकं थोकं आहारं आहारयतो पसतं पसतं, यदि वा मुग्गयूसं यदि वा कुलत्थयूसं यदि वा कळाययूसं यदि वा हरेणुकयूसं, अधिमत्तकसिमानं पत्तो कायो होति। सेय्यथापि नाम आसीतिकपब्बानि वा काळपब्बानि वा; एवमेवस्सु मे अङ्गपच्चङ्गानि भवन्ति तायेवप्पाहारताय। सेय्यथापि नाम ओट्ठपदं, एवमेवस्सु मे आनिसदं होति तायेवप्पाहारताय। सेय्यथापि नाम वट्टनावळी; एवमेवस्सु मे पिट्ठिकण्टको उण्णतावनतो होति तायेवप्पाहारताय। सेय्यथापि नाम जरसालाय गोपानसियो ओलुग्गविलुग्गा भवन्ति; एवमेवस्सु मे फासुळियो ओलुग्गविलुग्गा भवन्ति तायेवप्पाहारताय। सेय्यथापि नाम गम्भीरे उद- [N. 330] पाने उदकतारका गम्भीरगता ओक्खायिका दिस्सन्ति, एवमेवस्सु मे अक्खिकूपेसु अक्खितारका गम्भीरगता ओक्खायिका दिस्सन्ति तायेवप्पाहारताय। सेय्यथापि नाम तित्तकालाबु आमकच्छिन्नो वातातपेन सम्फुटितो होति सम्मिलातो, एवमेवस्सु मे सीसच्छवि सम्फुटिता होति [B. 289] सम्मिलाता तायेवप्पाहारताय। सो खो अहं, राजकुमार, 'उदर-

"....'क्यों न मैं थोड़ा सा आहार लेकर ही साधना करूँ, जो कि अधिक से अधिक अञ्जलि-भर हो; भले ही वह मूँग का जूस हो या कुलत्थ, कलाय हो या हरेणुक (क्षुद्र अन्न) का जूस।' राजकुमार! इस तरह मैंने उक्त जूसों के रूप में थोड़ा सा आहार लेकर साधना प्रारम्भ की। राजकुमार! तब उक्त जूसों के रूप में थोड़ा सा आहार लेने के कारण मेरा शरीर और अधिक कृश हो गया। जैसे सूखे वृक्ष के भाग अलग-अलग दिखायी देते हैं; उसी तरह, उस अल्पाहार के कारण, मेरे शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग की प्रत्येक अस्थि दीखने लगी। मेरे चूतड़ (नितम्ब) ऊँट के पैर की तरह हो गये। रस्सी की ऐंठन की तरह, मेरी पीठ की अस्थि-शृङ्खला हो गयी। ...पुराने मकान की छत की कड़ियों की तरह मेरी पसलियाँ अलग-अलग होती जा रही थीं। ...जैसे किसी तालाब के गहरे पानी में तारासमूह की परछाईं दिखायी देती हो; वैसे ही मेरी आँखें (कमजोरी के कारण) धीरे-धीरे अपने खड्डों (अक्षिकोटर) में दबती जा रही थीं।...जैसे कच्ची लौकी हवा और धूप से सिकुड़ जाती है, मुरझा जाती है; वैसे ही मेरा चेहरा (भोजन की कमी के कारण) सिकुड़ गया, मुरझा गया। राजकुमार! (उस समय) वह मैं यदि पेट की चमड़ी

च्छविं परिमसिस्सामी' ति पिट्ठिकण्टकं येव परिग्गण्हामि, 'पिट्ठिकण्टकं परिमसिस्सामी' ति उदरच्छविं येव परिग्गण्हामि। यावस्सु मे, राजकुमार, उदरच्छवि पिट्ठिकण्टकं अल्लीना होति तायेवप्पाहारताय। सो खो अहं, राजकुमार, 'वच्चं वा मुत्तं वा करिस्सामी' ति तत्थेव अवकुज्जो पपतामि तायेवप्पाहारताय। सो खो अहं, राजकुमार, इममेव कायं अस्सासेन्तो पाणिना गत्तानि अनुमज्जामि। तस्स मय्हं, राजकुमार, पाणिना गत्तानि अनुमज्जतो पूतिमूलानि लोमानि कायस्मा पपतन्ति तायेवप्पाहारताय। अपिस्सु मं, राजकुमार, मनुस्सा दिस्वा एवमाहंसु—'काळो समणो गोतमो' ति, 'सामो समणो गोतमो' ति। एकच्चे मनुस्सा एवमाहंसु—'न काळो समणो गोतमो, सामो समणो गोतमो' ति। एकच्चे मनुस्सा एवमाहंसु—'न काळो समणो गोतमो, न पि सामो, मङ्गुरच्छवि समणो गोतमो' ति। यावस्सु मे, राजकुमार, ताव परिसुद्धो छविवण्णो परियोदातो उपहतो होति तायेवप्पाहारताय।

१४. "तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि—'ये खो केचि अतीतमद्धानं समणा वा ब्राह्मणा वा ओपक्कमिका दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदयिंसु, एतावपरमं नयितो भिय्यो। ये पि हि केचि अनागतमद्धानं समणा वा ब्राह्मणा वा ओपक्कमिका दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदयिस्सन्ति, एतावपरमं नयितो भिय्यो। येपि हि केचि एतरहि समणा वा ब्राह्मणा

को पकड़ता तो पीठ की अस्थिशृङ्खला मेरी पकड़ में आ जाती थी, और यदि पीठ की अस्थिशृङ्खला को पकड़ता तो पेट की चमड़ी पकड़ में आ जाती थी। राजकुमार! उस समय उसी अल्पाहार से मेरा पेट पीठ से ऐसा सट गया था कि वह एक मुट्ठी में भी पकड़ा जा सकता था। राजकुमार! वह मैं उस समय मूत्र या पुरीष उत्सर्ग के लिये जमीन पर बैठता तो वहीं लुढ़क जाता। राजकुमार! वह मैं जब अपने हाथ से शरीर को सहलाता था तब, राजकुमार! अपने हाथ से शरीर को सहलाते समय, मेरे शरीर के सड़ी-गली जड़ वाले लोम उखड़ जाते थे। राजकुमार! उस समय लोग मुझे देखकर, ऐसा कहने लगे—'श्रमण गौतम काला पड़ गया है'। वहीं कुछ लोग यह कहने लगे—'श्रमण गौतम काला नहीं, साँवला पड़ गया है'। और वहीं कुछ लोग यह भी कहते सुने गये—'श्रमण गौतम न काला है, न साँवला है, इसके शरीर की छवि धूमिल (मङ्गुर) हो गयी है'। राजकुमार! उस समय उस अल्पाहार के कारण मेरा वह पुराना परिशुद्ध गौर वर्ण बिलकुल नष्ट हो चुका था।

१४. ···पुराने समय में जन किन्हीं साधक श्रमण-ब्राह्मणों ने साधना करते समय जो घोर एवं तीव्र कष्ट अनुभव किया था, वही उनकी साधना का अन्तिम निष्कर्ष

वा ओपक्कमिका दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदयन्ति, एतावपरमं नयितो भिय्यो। न खो पनाहं इमाय कटुकाय दुक्करकारिकाय अधिगच्छामि उत्तरिमनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं; सिया नु खो अञ्ञो मग्गो [N. 331] बोधाया" ति। तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि--'अभिजानामि खो पनाहं पितु सक्कस्स कम्मन्ते सीताय जम्बुच्छायाय निसिन्नो विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरिता; सिया नु खो एसो मग्गो बोधाया' ति। तस्स मय्हं, राजकुमार, सतानुसारि विञ्ञाणं अहोसि—'एसेव मग्गो बोधाया' ति। तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि--'किं नु खो अहं तस्स सुखस्स भायामि यं तं सुखं अञ्ञत्रेव कामेहि अञ्ञत्र अकुसलेहि [B. 290] धम्मेही' ति? तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि—'न खो अहं तस्स सुखस्स भायामि यं तं सुखं अञ्ञत्रेव कामेहि अञ्ञत्र अकुसलेहि धम्मेही' ति।

सम्मासम्बोधि

१५. "तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि—'न खो तं सुकरं सुखं अधिगन्तुं एवं अधिमत्तकसिमानं पत्तकायेन। यन्नूनाहं ओळारिकं आहारं आहारेय्यं ओदनकुम्मासं' ति। सो खो अहं, राजकुमार, ओळारिकं आहारं आहारेसिं ओदनकुम्मासं। तेन खो पन मं, राजकुमार, समयेन पञ्चवग्गिया भिक्खू पच्चुपट्ठिता होन्ति—'यं खो समणो गोतमो धम्मं अधिगमिस्सति तं नो आरोचेस्सती' ति। यतो खो अहं, राजकुमार, ओळारिकं आहारं आहारेसिं ओदनकुम्मासं, अथ मे ते पञ्चवग्गिया भिक्खू निब्बिज्ज पक्कमिंसु—'बाहुल्लिको समणो गोतमो पधानविब्भन्तो, आवत्तो बाहुल्लाया' ति।

१६. "सो खो अहं, राजकुमार, ओळारिकं आहारं आहारेत्वा बलं

नहीं था। और आगे भविष्य में...पूर्ववत्[1]...विचित्र सुख से भय नहीं खा रहा।

सम्यक्सम्बोधि

१५. "राजकुमार! तब मुझे यह हुआ—'अपने शरीर को इस तरह कृश करने की अपेक्षा उपयुक्त मार्ग से सम्बोधि प्राप्त करना अत्यन्त सरल है। तो क्यों न मैं उक्त सम्बोधि प्राप्ति के लिये शरीर को सशक्त बनाये रखने हेतु अच्छे आहार का प्रयोग करूँ! ...पूर्ववत्[2]...हमारी सहायता कर पायगा!

१६. "राजकुमार! तब मैं स्थूल आहार द्वारा स्वशरीर को शक्तिसम्पन्न

१-२. द्र०—पीछे पृष्ठ ४७०-४७२ (३६. महासच्चकसुत्त)।

गहेत्वा विविच्चेव कामेहि...पे०...पठमं झानं उपसम्पज्ज विहासिं। वितक्कविचारानं वूपसमा दुतियं झानं...ततियं झानं...चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहासिं। सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते पुब्बेनिवासानुस्सतिञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेसिं। सो अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरामि, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो...पे०...इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरामि। अयं खो मे, राजकुमार, [N. 332] रत्तिया पठमे यामे पठमा विज्जा अधिगता, अविज्जा विहता, विज्जा उप्पन्ना; तमो विहतो, आलोको उप्पन्नो—यथा तं अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो।

"सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते सत्तानं चुतूपपातञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेसिं। सो दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सामि चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते [B. 291] दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानामि...पे०...अयं खो मे, राजकुमार, रत्तिया मज्झिमे यामे दुतिया विज्जा अधिगता, अविज्जा विहता, विज्जा उप्पन्ना; तमो विहतो, आलोको उप्पन्नो—यथा तं अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो।

"सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते आसवानं खयञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेसिं। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं अब्भञ्ञासिं...पे०...अयं दुक्खनिरोध-

---

रखता हुआ, कामभोगों एवं अकुशल धर्मों से दूर रहते हुए...प्रथम ध्यान तक पहुँचकर साधना करने लगा। वितर्क-विचारों के उपशम से...द्वितीय ध्यान...तृतीय ध्यान...चतुर्थ ध्यान तक पहुँचकर साधना करने लगा। इस तरह समाहित, परिशुद्ध, पर्यवदात, निर्मल, उपक्लेशरहित, मृदु, कोमल, एवं स्थिर चित्त हो जाने पर उसे मैंने अपने पूर्वजन्मों के स्मृतिज्ञान...पूर्ववत्[1]...जैसा कि सावधान एवं उद्योगरत साधक का होता है।

"इस तरह समाहित...चित्त हो जाने पर मैं उसको दूसरे प्राणियों पूर्वजन्मों की जानकारी के लिये झुकाने लगा...पूर्ववत्[2]...जैसा कि सावधान एवं उद्योगरत साधक का होता है।

"इस तरह समाहित...चित्त हो जाने पर मैंने उसको आस्रव-क्षयज्ञान की ओर

१-२. द्र०—पीछे पृ० ४७२-४७३ (३६. महासच्चकसुत्त)।

गामिनी पटिपदा ति यथाभूतं अब्भञ्ञासिं; 'इमे आसवा' ति यथाभूतं अब्भञ्ञासिं'''तस्स मे एवं जानतो एवं पस्सतो कामासवा पि चित्तं विमुच्चित्थ, भवासवा पि चित्तं विमुच्चित्थ, अविज्जासवा पि चित्तं विमुच्चित्थ। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं अहोसि। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति अब्भञ्ञासिं। अयं खो मे, राजकुमार, रत्तिया पच्छिमे यामे ततिया विज्जा अधिगता, अविज्जा विहता, विज्जा उप्पन्ना; तमो विहतो, आलोको उप्पन्नो—यथा तं अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो।

३. ब्रह्मयाचना

१७. "तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि—'अधिगतो खो म्यायं धम्मो गम्भीरो दुद्दसो दुरनुबोधो सन्तो पणीतो अतक्कावचरो निपुणो पण्डितवेदनीयो। आलयरामा खो पनायं पजा आलयरता आलयसम्मुदिता। आलय- [N. 333] रामाय खो पन पजाय आलयरताय आलयसम्मुदिताय दुद्दसं इदं ठानं यदिदं--इदप्पच्चयतापटिच्चसमुप्पादो। इदं पि खो ठानं दुद्दसं यदिदं, सब्बसङ्खारसमथो सब्बूपधिपटिनिस्सग्गो तण्हक्खयो विरागो निरोधो निब्बानं। अहं चेव खो पन धम्मं देसेय्यं, परे च मे न आजानेय्युं, सो ममस्स किलमथो, सा ममस्स विहेसा' ति। अपिस्सु मं, राजकुमार, इमा अनच्छरिया गाथायो पटिभंसु पुब्बे अस्सुतपुब्बा--

'किच्छेन मे अधिगतं, हलं दानि पकासितुं।
रागदोसपरेतेहि, नायं धम्मो सुसम्बुधो॥

झुकाया। फिर मैंने 'यह दुःख है'''पूर्ववत्[1]'''अब मेरा कोई कर्तव्य अवशिष्ट नहीं है'। इस तरह राजकुमार! मुझे रात्रि के तृतीय प्रहर में यह तृतीय विद्या प्राप्त हो गयी, अविद्या नष्ट हो गयी, और विद्या उत्पन्न हो गयी; अन्धकार नष्ट हो गया, प्रकाश फैल गया—जैसा कि सावधान एवं उद्योगरत साधक का होता है।

३. ब्रह्मा की याचना

१७. "राजकुमार! तब मुझे यह विचार हुआ—'मैंने गम्भीर, अत्यन्त कठिनतया साक्षात्करणीय, ज्ञातव्य, शान्त, प्रणीत, तर्क की गति से दूर, निपुण और पण्डितों के ही समझने योग्य धर्म को पा लिया'''पूर्ववत्[2]'''उस समय, राजकुमार! मुझे ये आश्चर्यजनक गाथायें याद आयीं जो कि पहले कभी किसी से नहीं सुनी गयी थीं—

---

१. द्र०--पीछे पृ० ४७४ (३६. महासच्चकसुत्त)।
२. द्र०--पीछे पृ० ३३२-३३३ (२६. पासरासिसुत्त)।

'पटिसोतगामिं निपुणं, गम्भीरं दुद्दसं अणुं।
रागरत्ता न दक्खन्ति, तमोखन्धेन आवुटा' ति ॥

"इतिह मे, राजकुमार, पटिसञ्चिक्खतो अप्पोस्सुक्कताय चित्तं नमति नो धम्मदेसनाय। [B. 292]

१८. "अयं खो, राजकुमार, ब्रह्मुनो सहम्पतिस्स मम चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय एतदहोसि—'नस्सति वत, भो, लोको, विनस्सति वत, भो, लोको। यत्र हि नाम तथागतस्स अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स अप्पोस्सुक्कताय चित्तं नमति, नो धम्मदेसनाया' ति। अथ खो, राजकुमार, ब्रह्मा सहम्पति—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य; एवमेव--ब्रह्मलोके अन्तरहितो मम पुरतो पातुरहोसि। अथ खो, राजकुमार, ब्रह्मा सहम्पति एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येनाहं तेनञ्जलिं पणामेत्वा मं एतदवोच--'देसेतु, भन्ते, भगवा धम्मं, देसेतु सुगतो धम्मं। सन्ति सत्ता अप्परजक्खजातिका अस्सवनताय धम्मस्स परिहायन्ति; भविस्सन्ति धम्मस्स अञ्ञातारो' ति।

"इदमवोच, राजकुमार, ब्रह्मा सहम्पति; इदं वत्वा अथापरं एतदवोच-

'पातुरहोसि मगधेसु पुब्बे, धम्मो असुद्धो समलेहि चिन्तितो।
[N. 334] अपापुरेतं अमतस्स द्वारं, सुणन्तु धम्मं विमलेनानुबुद्धं ॥
'सेले यथा पब्बतमुद्धनिट्ठितो, यथा पि पस्से जनतं समन्ततो।
तथूपमं धम्ममयं सुमेध, पासादमारुय्ह समन्तचक्खु ॥
'सोकावतिण्णं जनतमपेतसोको, अवेक्खस्सु जातिजराभिभूतं।
उट्ठेहि वीर, विजितसङ्गाम, सत्थवाह अणण, विचर लोके।
देसस्सु भगवा धम्मं, अञ्ञातारो भविस्सन्ती' ति ॥

'यह धर्म का साक्षात्कार मैंने बहुत कष्ट से प्राप्त किया…पूर्ववत्[1]…साधारण कामिजन इसे क्या समझ पायेंगे!'

"राजकुमार! मेरे द्वारा ऐसा समझने के कारण मेरा चित्त जनता के लिये धर्मोपदेश की ओर न झुककर संसार से वैराग्य की तरफ मुड़ता गया।

१८. "राजकुमार! तब सहम्पति ब्रह्मा ने, मेरे चित्त की यह स्थिति जानकर… पूर्ववत्[2]…संसार में धर्म के जिज्ञासु भी मिलेंगे, आप इतने उदास न हों।' राजकुमार! ब्रह्मा ने मुझसे यह कहा। यह कहकर वह फिर बोला--

'मगध में पहले मलिनचित्त पुरुषों से चिन्तित…पूर्ववत्[3]…इसके सुनने वाले बहुत मिलेंगे।'

१.२.३. द्र०—पीछे पृ० ३३३-३३५ (२६. पासरासिसुत्त)।

[B. 293] १९. "अथ खाहं, राजकुमार, ब्रह्मुनो च अज्झेसनं विदित्वा सत्तेसु च कारुञ्ञतं पटिच्च बुद्धचक्खुना लोकं वोलोकेसिं। अद्दसं खो अहं, राजकुमार, बुद्धचक्खुना लोकं वोलोकेन्तो सत्ते अप्परजक्खे महारजक्खे तिक्खिन्द्रिये मुदिन्द्रिये स्वाकारे द्वाकारे सुविञ्ञापये दुविञ्ञापये, अप्पेकच्चे परलोकवज्जभयदस्साविने विहरन्ते, अप्पेकच्चे न परलोकवज्जभयदस्साविने विहरन्ते। सेय्यथापि नाम उप्पलिनियं वा पदुमिनियं वा पुण्डरीकिनियं वा अप्पेकच्चानि उप्पलानि वा पदुमानि वा पुण्डरीकानि वा उदके जातानि उदके संवड्ढानि उदकानुग्गतानि अन्तोनिमुग्गपोसीनि, अप्पेकच्चानि उप्पलानि वा पदुमानि वा पुण्डरीकानि वा उदके जातानि उदके संवड्ढानि उदकानुग्गतानि समोदकं ठितानि, अप्पेकच्चानि उप्पलानि वा पदुमानि वा पुण्डरीकानि वा उदके जातानि उदके संवड्ढानि उदका अच्चुग्गम्म ठितानि अनुपलित्तानि उदकेन; एवमेव खो अहं, राजकुमार, बुद्धचक्खुना लोकं वोलोकेन्तो अद्दसं सत्ते अप्परजक्खे महारजक्खे तिक्खिन्द्रिये मुदिन्द्रिये स्वाकारे द्वाकारे सुविञ्ञापये दुविञ्ञापये, अप्पेकच्चे परलोकवज्जभयदस्साविने [N. 335] विहरन्ते, अप्पेकच्चे न परलोकवज्जभयदस्साविने विहरन्ते। अथ खाहं, राजकुमार, ब्रह्मानं सहम्पतिं गाथाय पच्चभासिं—

'अपारुता तेसं अमतस्स द्वारा, ये सोतवन्तो पमुञ्चन्तु सद्धं।
विहिंससञ्ञी पगुणं न भासिं, धम्मं पणीतं मनुजेसु ब्रह्मे' ति॥

"अथ खो, राजकुमार, ब्रह्मा सहम्पति 'कतावकासो खोम्हि भगवता धम्मदेसनाया' ति मं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायि।

४. धम्मचक्कपवत्तनं

२०. "तस्स मय्हं राजकुमार, एतदहोसि—'कस्स नु खो अहं पठमं

---

१९. "राजकुमार! तब मैंने सहम्पति ब्रह्मा के चित्त का अभिप्राय समझकर प्राणियों पर अनुकम्पा करते हुए, बुद्ध-(सर्वज्ञ-) दृष्टि से दुनियाँ को देखा...पूर्ववत्[1]... देखकर मैंने सहम्पति ब्रह्मा से यह गाथा कही—

'वैसे लोगों के लिये यह (धर्मोपदेशरूपी) अमृतद्वार बन्द ही समझो... पूर्ववत्[2]...धर्मोपदेश सुनाने में उपेक्षा कर रहा था।'

"तब राजकुमार! ब्रह्मा सहम्पति—'भगवान् ने धर्मोपदेश के विषय में मेरी बात मान ली'—यह जानकर मुझे प्रणाम एवं प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गये।

५. धर्मचक्रप्रवर्तन

२०. "राजकुमार! तब मुझे यह विचार हुआ—'मैं अपना यह धर्म किसे

१-२. द्र०—पीछे पृ० ३३५-३३६ (२६. पासरासिसुत्त)।

धम्मं देसेय्यं ? को इमं धम्मं खिप्पमेव आजानिस्सती' ति ? तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि—'अयं खो आळारो कालामो पण्डितो वियत्तो मेधावी दीघरत्तं अप्परजक्खजातिको। यन्नूनाहं आळारस्स कालामस्स पठमं धम्मं देसेय्यं; सो इमं धम्मं खिप्पमेव आजानिस्सती' ति। [B. 294] अथ खो मं, राजकुमार, देवता उपसङ्कमित्वा एतदवोच—'सत्ताहकालङ्कतो, भन्ते, आळारो कालामो' ति। ञाणं च पन मे दस्सनं उदपादि—'सत्ताहकालङ्कतो आळारो कालामो' ति। तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि—'महाजानियो खो आळारो कालामो। सचे हि सो इमं धम्मं सुणेय्य, खिप्पमेव आजानेय्या' ति। तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि—'कस्स नु खो अहं पठमं धम्मं देसेय्यं ? को इमं धम्मं खिप्पमेव आजानिस्सती' ति ? तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि—'अयं खो उदको रामपुत्तो पण्डितो वियत्तो मेधावी दीघरत्तं अप्परजक्खजातिको। यन्नूनाहं उदकस्स रामपुत्तस्स पठमं धम्मं देसेय्यं; सो इमं धम्मं खिप्पमेव आजानिस्सती' ति। अथ खो मं, राजकुमार, देवता उपसङ्कमित्वा एतदवोच—'अभिदोसकालङ्कतो, भन्ते, उदको रामपुत्तो' ति। ञाणं च पन मे दस्सनं उदपादि—'अभिदोसकालङ्कतो उदको रामपुत्तो' ति। तस्स मय्हं, राजकुमार, एतद- [N. 336] होसि—'महाजानियो खो उदको रामपुत्तो। सचे हि सो इमं धम्मं सुणेय्य, खिप्पमेव आजानेय्या' ति।

२१. "तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि—'कस्स नु खो अहं पठमं धम्मं देसेय्यं ? को इमं धम्मं खिप्पमेव आजानिस्सती' ति ? तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि—'बहुकारा खो मे पञ्चवग्गिया भिक्खू ये मं पधानपहितत्तं उपट्ठहिंसु। यन्नूनाहं पञ्चवग्गियानं भिक्खूनं पठमं धम्मं देसेय्यं' ति। तस्स मय्हं, राजकुमार, एतदहोसि—'कहं नु खो एतरहि पञ्चवग्गिया भिक्खू विहरन्ती' ति। अद्दसं खवाहं, राजकुमार, दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन पञ्चवग्गिये भिक्खू बाराणसियं विहरन्ते इसिपतने

सबसे पहले सुनाऊँ, जो सुनते ही समझ ले।' तब मुझे यह मन में आया—'यह आड़ार कालाम पण्डित है···पूर्ववत्[1]···वे बहुत समझदार थे···।'

तब मुझे यह मन में आया--'यह उद्दक रामपुत्र पण्डित है···पूर्ववत्[2]···वे बहुत समझदार···थे।

तब मुझे अचानक यह ध्यान आया—'क्यों न मैं समाधिनिष्ठ पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को···पूर्ववत्[3]···ऋषिपत्तन मृगदाव में साधना कर रहे हैं। तब, राजकुमार! मैं

१-२-३. द्र०—पीछे पृ०—३३६-३३७ (२६. पासरासिसुत्त)।

मिगदाये। अथ ख्वाहं, राजकुमार, उरुवेलायं यथाभिरन्तं विहरित्वा येन बाराणसी तेन चारिकं पक्कमिं।

"अद्दसा खो मं, राजकुमार, उपको आजीवको अन्तरा च गयं अन्तरा च बोधिं अद्धानमग्गप्पटिपन्नं। दिस्वान मं एतदवोच--'विप्पसन्नानि खो ते, आवुसो, इन्द्रियानि, परिसुद्धो छविवण्णो परियोदातो। कंसि त्वं, आवुसो, उद्दिस्स पब्बजितो? को वा ते सत्था? कस्स वा त्वं धम्मं रोचेसी' ति? एवं वुत्ते, अहं, राजकुमार, उपकं आजीवकं गाथाहि अज्झभासिं—

[B. 295] 'सब्बाभिभू सब्बविदूहमस्मि, सब्बेसु धम्मेसु अनूपलित्तो।
सब्बञ्जहो तण्हक्खये विमुत्तो, सयं अभिञ्ञाय कमुद्दिसेय्यं॥

'न मे आचरियो अत्थि, सदिसो मे न विज्जति।
सदेवकस्मिं लोकस्मिं, नत्थि मे पटिपुग्गलो॥

'अहं हि अरहा लोके, अहं सत्था अनुत्तरो।
एकोम्हि सम्मासम्बुद्धो, सीतिभूतोस्मि निब्बुतो॥

[N.337] 'धम्मचक्कं पवत्तेतुं, गच्छामि कासिनं पुरं।
अन्धभूतस्मिं लोकस्मिं, आहञ्छं अमतदुन्दुभिं' ति॥

उरुवेला में कुछ काल और विचरण कर चारिका करता हुआ बाराणसी चल पड़ा।

२१. "राजकुमार! चारिका करते-करते जब मैं बोधिवृक्ष और गया नगर के बीच की राह पर था, तब उपक नामक आजीवक ने मुझको देखा। देखकर पूछा—'आयुष्मन्! आपकी इन्द्रियाँ...पूर्ववत्[1]...धर्म की साधना करते हैं?' ऐसा पूछे जाने पर, राजकुमार! मैंने उससे गाथाओं के माध्यम से यह कहा—

'मैं सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वज्ञ हूँ, मैं सभी धर्मों से निर्लिप्त हूँ। मैं सर्वत्यागी एवं तृष्णाक्षय से मुक्त होने के कारण 'विमुक्त' हो चुका हूँ। अब मैं स्वयंसाक्षात्कृत धर्म का उपदेश करूँगा।

'मेरा न कोई आचार्य है, न इस लोक में मेरे सदृश कोई अन्य है। मैं तो अनुपम और प्रतिद्वन्द्वितारहित हूँ।

'मैं इस लोक में एकमात्र ज्ञानी हूँ। मैं ही अद्वितीय शास्ता हूँ। मेरी समग्र इन्द्रियाँ शान्त हैं और विषयों से दूर हट चुकी हैं।

'मैं धर्मोपदेश करने के लिये काशी नगरी जा रहा हूँ। अब मैं रागादि दुर्गुणों से अन्धभूत इस लोक में अमृत-दुन्दुभि (अमरता का नगाड़ा) बजाऊँगा।'

---

१. द्र०--पीछे पृ० ३३८ (२६. पासरासिसुत्त)।

'यथा खो त्वं, आवुसो, पटिजानासि अरहसि अनन्तजिनो' ति ।

'मादिसा वे जिना होन्ति, ये पत्ता आसवक्खयं ।
जिता मे पापका धम्मा, तस्माहमुपक जिनो' ति ॥

"एवं वुत्ते, राजकुमार, उपको आजीवको 'हुपेय्यपावुसो' ति वत्वा सीसं ओकम्पेत्वा उम्मग्गं गहेत्वा पक्कामि ।

२२. "अथ ख्वाहं, राजकुमार, अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन बाराणसी इसिपतनं मिगदायो येन पञ्चवग्गिया भिक्खू तेनुपसङ्कमिं । अद्दसंसु खो मं, राजकुमार, पञ्चवग्गिया भिक्खू दूरतो व आगच्छन्तं । दिस्वान अञ्ञमञ्ञं सण्ठपेसुं--'अयं खो, आवुसो, समणो गोतमो आगच्छति बाहुल्लिको पधान-विब्भन्तो आवत्तो बाहुल्लाय । सो नेव अभिवादेतब्बो, न पच्चुट्ठातब्बो, नास्स पत्तचीवरं पटिग्गहेतब्बं; अपि च खो आसनं ठपेतब्बं--सचे सो आकङ्खिस्सति निसीदिस्सती' ति । यथा यथा खो अहं, राजकुमार, पञ्च-वग्गिये भिक्खू उपसङ्कमिं, तथा तथा पञ्चवग्गिया भिक्खू नासक्खिंसु सकाय कतिकाय सण्ठातुं । अप्पेकच्चे मं पच्चुग्गन्त्वा पत्तचीवरं पटिग्गहेसुं ।

"आयुष्मन् ! जैसा तुम अपने बारे में बता रहे हो उससे तो तुम अनन्त जिन (ज्ञानी = तत्त्ववेत्ता) लग रहे हो ।"

"मेरे जैसे ही पुरुष 'जिन' होते हैं, जिनके चित्त के समग्र आस्रव (मल) क्षीण हो चुके हैं, जिन्होंने अपने समग्र पाप-धर्मों को जीत लिया है । अतः हे उपक ! मैं (तुम्हारे कथनानुसार) जिन ही हूँ ।

"ऐसा कहने पर, भिक्षुओ ! वह उपक आजीवक--'होंगे आयुष्मन् ! आप जिन'--यह कहता हुआ, मेरी उपेक्षाहेतु सिर हिलाता हुआ सामने के रास्ते चल दिया ।

२२. तब, राजकुमार ! मैं क्रमशः चारिका करते हुए जहाँ वाराणसी का ऋषिपत्तन मृगवन है, जहाँ पञ्चवर्गीय भिक्षु (साधना कर रहे) थे, वहाँ पहुँचा । राजकुमार ! उन पञ्चवर्गीय भिक्षुओं ने मुझको दूर से ही आते हुए देख लिया । देखकर वे मेरे बारे में आपस में बात करने लगे--'अरे ! यह तो जोड़-बटोरू श्रमण गौतम आ रहा है, जो कि (कुछ समय पहले) वास्तविक मार्ग से भटक कर इधर-उधर के साधना मार्गों में मन लगा रहा था । यह तो मार्ग से भटका हुआ है, अतः (यहाँ आने पर) इसे न प्रणाम और न इसके सम्मान में अभ्युत्थान करना चाहिये, न इसका पात्र-चीवर ही (आगे बढ़कर) लेना चाहिये । हाँ ! एक आसन डाल दो, यदि वह चाहेगा तो बैठ जायगा' । (परन्तु) राजकुमार ! जैसे जैसे मैं उनके समीप पहुँचा त्यों-त्यों वे पञ्चवर्गीय भिक्षु अपनी बात पर स्थिर न रह सके । उनमें से

अप्पेकच्चे आसनं पञ्ञापेसुं । अप्पेकच्चे पादोदकं उपट्ठपेसुं । अपि च खो मं [B. 296] नामेन च आवुसोवादेन च समुदाचरन्ति । एवं वुत्ते, अहं, राजकुमार, पञ्चवग्गिये भिक्खू एतदवोचं--'मा, भिक्खवे, तथागतं नामेन च आवुसोवादेन च समुदाचरथ; अरहं, भिक्खवे, तथागतो सम्मासम्बुद्धो । ओदहथ, भिक्खवे, सोतं । अमतमधिगतं । अहमनुसासामि, अहं धम्मं देसेमि । यथानुसिट्ठं तथा पटिपज्जमाना नचिरस्सेव— यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं--ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सथा' ति ।

[N. 338] एव वुत्ते, राजकुमार, पञ्चवग्गिया भिक्खू मं एतदवोचुं— 'ताय पि खो त्वं, आवुसो गोतम, इरियाय ताय पटिपदाय ताय दुक्करकारिकाय नाज्झगमा उत्तरिमनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं; किं पन त्वं एतरहि बाहुल्लिको पधानविब्भन्तो आवत्तो बाहुल्लाय अधिगमिस्ससि उत्तरिमनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं' ति ? एवं वुत्ते, अहं, राजकुमार, पञ्चवग्गिये भिक्खू एतदवोचं--'न, भिक्खवे, तथागतो बाहुल्लिको न पधानविब्भन्तो न आवत्तो बाहुल्लाय । अरहं, भिक्खवे, तथागतो सम्मा-

---

कोई मेरे पास आकर मेरा पात्र-चीवर ले रखने लगा, कोई मेरे लिये आसन बिछाने लगा, कोई मेरे पैर धोने के लिये जल ले आया, किसी ने मेरे बैठने के लिये पीढा रख दिया । मैं बिछाये आसन पर बैठ, पैर धोने लगा । वे मुझे नामग्रहणपूर्वक सम्बोधन करते हुए 'आयुष्मान्' शब्द से व्यवहृत करने लगे । यह व्यवहार होने पर, राजकुमार ! मैं उन भिक्षुओं को यों बोला--'भिक्षुओ ! तथागत के साथ नामग्रहण-पूर्वक आयुष्मान् शब्द से व्यवहार न करें । भिक्षुओ ! अब तथागत (मैं) ज्ञानी व सम्यक्सम्बुद्ध हो चुके हैं । तुम लोग कान लगा (ध्यान दे) कर सुनो ! मैंने जो अमृतोपम ज्ञान साक्षात् कर लिया है उस धर्म-ज्ञान का मैं तुम्हें उपदेश करूँगा । उपदेशानुसार आचरण करते हुए तुम--जिसके लिये कुलीन लोग घर से बेघर हो प्रव्रजित होते हैं--उस लोकोत्तर धर्म को इसी जन्म में शीघ्र ही स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर धर्मलाभ के भागी बनोगे ।"

(मेरे द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, राजकुमार ! वे पञ्चवर्गीय भिक्षु मुझसे यों बोले--'आयुष्मन् गौतम ! जब आप उस साधना, उस धारणा, उस दुष्करचर्या से भी इस लोकोत्तर धर्म, आर्यों के ज्ञानदर्शन की परा काष्ठा तक नहीं पहुँच पाये तो अब आप इधर-उधर की साधनाओं में लग, मुख्य मार्ग से भटक, मार्गच्युत हो उस ज्ञान-दर्शन की पराकाष्ठा पाये होगें ?' ऐसा कहने पर राजकुमार ! मैं उन पञ्चवर्गीय

सम्बुद्धो। ओदहथ, भिक्खवे, सोतं। अमतमधिगतं। अहमनुसासामि, अहं धम्मं देसेमि। यथानुसिट्ठं तथा पटिपज्जमाना न चिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सथा'ति।

"दुतियं पि खो, राजकुमार, पञ्चवग्गिया भिक्खू मं एतदवोचुं—'ताय पि खो त्वं, आवुसो गोतम, इरियाय ताय पटिपदाय ताय दुक्करकारिकाय नाज्झगमा उत्तरिमनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं; किं पन त्वं एतरहि बाहुल्लिको पधानविब्भन्तो आवत्तो बाहुल्लाय अधिगमिस्ससि उत्तरिमनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं' ति? दुतियं पि खो अहं राजकुमार, पञ्चवग्गिये भिक्खू एतदवोचं—'न, भिक्खवे, तथागतो बाहुल्लिको न पधानविब्भन्तो न आवत्तो बाहुल्लाय। अरहं, भिक्खवे, तथागतो सम्मासम्बुद्धो। ओदहथ, भिक्खवे, सोतं। अमतमधिगतं। अहमनुसासामि, अहं धम्मं देसेमि। यथानुसिट्ठं तथा पटिपज्जमाना नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज [B. 297] विहरिस्सथा' ति।

"ततियं पि खो, राजकुमार, पञ्चवग्गिया भिक्खू मं एतदवोचुं—'ताय पि खो त्वं, आवुसो गोतम, इरियाय ताय पटिपदाय ताय दुक्करकारिकाय नाज्झगमा उत्तरिमनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं; किं पन त्वं एतरहि बाहुल्लिको पधानविब्भन्तो आवत्तो बाहुल्लाय अधिगमिस्ससि उत्तरिमनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं' ति? एवं वुत्ते, अहं, राजकुमार, पञ्चवग्गिये भिक्खू एतदवोचं—'अभिजानाथ मे नो तुम्हे, [N. 339] भिक्खवे, इतो पुब्बे एवरूपं पभावितमेतं' ति?

भिक्षुओं को यों बोला—'भिक्षुओ! तथागत मार्गच्युत (भूला-भटका) नहीं है। अब तो वह तथागत ज्ञानी सम्यक्सबुद्ध बन चुका है। तुम लोग कान खोल कर सुनो! मैंने अमृत पा लिया। मैंने…।'

"दूसरी बार भी राजकुमार! वे पञ्चवर्गीय भिक्षु…धर्म लाभ के भागी बनोगे?"

"तीसरी बार भी, राजकुमार! वे पञ्चवर्गीय भिक्षु…ज्ञानदर्शन की पराकाष्ठा को क्या प्राप्त करोगे?"

(भिक्षुओं द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, मैं उनको यह बोला—'भिक्षुओ! क्या तुम्हें स्मरण है कि आज से पहले कभी तुम लोगों ने मुझको इतना तेजोमय देखा है?'

'नो हेतं, भन्ते'।

'अरहं, भिक्खवे, तथागतो सम्मासम्बुद्धो। ओदहथ, भिक्खवे, सोतं। अमतमधिगतं। अहमनुसासामि, अहं धम्मं देसेमि। यथानुसिट्ठं तथा पटिपज्जमाना नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं--ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सथा' ति।

"असक्खि खो अहं, राजकुमार, पञ्चवग्गिये भिक्खू सञ्ञापेतुं। द्वे पि सुदं, राजकुमार, भिक्खू ओवदामि, तयो भिक्खू पिण्डाय चरन्ति। यं तयो भिक्खू पिण्डाय चरित्वा आहरन्ति, तेन छब्बग्गिया यापेम। तयो पि सुदं, राजकुमार, भिक्खू ओवदामि, द्वे भिक्खू पिण्डाय चरन्ति। यं द्वे भिक्खू [R. 94] पिण्डाय चरित्वा आहरन्ति तेन छब्बग्गिया यापेम।

२३. "अथ खो, राजकुमार, पञ्चवग्गिया भिक्खू मया एवं ओवदियमाना एवं अनुसासियमाना नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिंसू" ति।

एवं वुत्ते, बोधि राजकुमारो भगवन्तं एतदवोच--"कीव चिरेन नु खो, भन्ते, भिक्खु तथागतं विनायकं लभमानो--यस्सत्था कुलपुत्ता सम्मदेव

'नहीं भन्ते!'

'भिक्षुओ! तथागत अब ज्ञानी हो चुके हैं, सम्यक्सम्बुद्ध बन चुके हैं। तुम लोग कान खोलकर...भागी हो सकोगे।

"राजकुमार! (किसी तरह) मैं उन पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को इस अनुपम धर्म का महत्त्व समझाने में समर्थ हुआ। जब मैं दो भिक्षुओं को उपदेश करता तो (बाकी) तीन भिक्षु भिक्षा लाते। इस तरह उन तीनों द्वारा लायी भिक्षा से हम छहों (छब्बग्गिय=षड्वर्गीय) भिक्षु काम चलाते। जब तीन भिक्षुओं को मैं उपदेश करता तो दो भिक्षु भिक्षा लाते। उन दोनों भिक्षुओं द्वारा लायी गयी भिक्षा से हम छहों भिक्षु काम चलाते।

२३. "यों, राजकुमार! मेरे द्वारा उपदिष्ट एवं अनुशासित वे पञ्चवर्गीय भिक्षु जल्दी ही—जिसके लिये अन्य कुलपुत्र घर से बेघर हो प्रव्रजित होते हैं--उस अद्वितीय ज्ञान को इसी जीवन में जानकर, साक्षात् कर धर्मसाधना करते रहे।"

(भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर बोधिराजकुमार भगवान् से यों बोला—"भन्ते! कितना जल्दी कोई भिक्षु तथागत को अनुशास्ता के रूप में पाकर, जिसके

अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरेय्या'' ति ?

पञ्च पधानियङ्गानि

२४. "तेन हि, राजकुमार, तं येवेत्थ पटिपुच्छिस्सामि। यथा ते खमेय्य, तथा नं ब्याकरेय्यासि। तं किं मञ्ञसि, राजकुमार, कुसलो त्वं हत्थारूळ्हे अङ्कुसगय्हे सिप्पे'' ति ?

"एवं, भन्ते, कुसलो अहं हत्थारूळ्हे अङ्कुसगय्हे [N. 340, B. 299] सिप्पे'' ति।

"तं किं मञ्ञसि, राजकुमार, इध पुरिसो आगच्छेय्य—'बोधि राजकुमारो हत्थारूळ्हं अङ्कुसगय्हं सिप्पं जानाति; तस्साहं सन्तिके हत्थारूळ्हं अङ्कुसगय्हं सिप्पं सिक्खिस्सामी' ति। सो चस्स अस्सद्धो; यावतकं सद्धेन पत्तब्बं तं न सम्पापुणेय्य। सो चस्स बह्वाबाधो; यावतकं अप्पाबाधेन पत्तब्बं तं न सम्पापुणेय्य। सो चस्स सठो मायावी; यावतकं असठेन अमायाविना पत्तब्बं तं न सम्पापुणेय्य। सो चस्स कुसीतो; यावतकं आरद्धविरियेन पत्तब्बं तं न सम्पापुणेय्य। सो चस्स दुप्पञ्ञो; यावतकं पञ्ञवता पत्तब्बं तं न सम्पापुणेय्य। तं किं मञ्ञसि, राजकुमार, अपि नु सो पुरिसो तव सन्तिके हत्थारूळ्हं अङ्कुसगय्हं सिप्पं सिक्खेय्या'' ति ?

लिये कुलपुत्र घर से सर्वथा बेघर हो प्रव्रजित होते हैं--अद्वितीय ज्ञान को इसी जन्म में स्वयं जान, साक्षात् कर, धर्मसाधना में लग जाते हैं ?''

पाँच प्रधानीय अङ्ग

२४. "तो, राजकुमार ! तुम्हीं से मैं एक प्रश्न पूछता हूँ, तुम्हें जो ठीक लगे वैसा उसका उत्तर दो। तो क्या मानते हो, राजकुमार ! तुम हाथी की सवारी में, उसको अंकुश द्वारा निगृहीत करने में कुशल हो ?''

"हाँ भन्ते ! मैं हाथी···निगृहीत करने में कुशल हूँ।

"तो क्या मानते हो, राजकुमार ! यहाँ कोई पुरुष आवे (और कहे)— 'बोधिराजकुमार, हाथी की·· कुशल है। उससे मैं यह हाथी की··· शिक्षा लूंगा।' यदि वह श्रद्धावान् न हो, तो वह श्रद्धावान् व्यक्ति जितना नहीं सीख पायगा। या वह बहुत अधिक रोगी हो, तो वह कम रोग वाले द्वारा जितना-सा सीखा जा सकता है उतना नहीं सीख पायगा। या वह धूर्त हो, जालसाज (=मायावी) हो तो वह जितना किसी अशठ या अमायावी द्वारा सीखा जा सकता है, उतना नहीं सीख पायगा। या वह आलसी हो तो वह जितना उत्साही पुरुष सीख सकता है, उतना नहीं सीख सकेगा। यदि वह मन्दबुद्धि (दुष्प्रज्ञ) हो तो किसी तीक्ष्णबुद्धि (प्रज्ञावान्)

"एकमेकेना पि, भन्ते, अङ्गेन समन्नागतो सो पुरिसो न मम सन्तिके अङ्कुसगय्हं सिप्पं सिक्खेय्य, को पन वादो पञ्चहङ्गेही" ति !

[R. 95] २५. "तं किं मञ्ञसि, राजकुमार, इध पुरिसो आगच्छेय्य—'बोधि राजकुमारो हत्थारूळ्हं अङ्कुसगय्हं सिप्पं जानाति; तस्साहं सन्तिके हत्थारूळ्हं अङ्कुसगय्हं सिप्पं सिक्खस्सामी' ति। सो चस्स सद्धो; यावतकं सद्धेन पत्तब्बं तं सम्पापुणेय्य। सो चस्स अप्पाबाधो; यावतकं अप्पाबाधेन पत्तब्बं तं सम्पापुणेय्य। सो चस्स असठो अमायावी; यावतकं असठेन अमायाविना पत्तब्बं तं सम्पापुणेय्य। सो चस्स आरद्धविरियो; यावतकं आरद्धविरियेन पत्तब्बं तं सम्पापुणेय्य। सो चस्स पञ्ञवा; यावतकं पञ्ञवता पत्तब्बं तं सम्पापुणेय्य। तं किं मञ्ञसि, राजकुमार, अपि नु सो पुरिसो तव सन्तिके हत्थारूळ्हं अङ्कुसगय्हं सिप्पं सिक्खेय्या" ति ?

"एकमेकेना पि, भन्ते, अङ्गेन समन्नागतो सो पुरिसो मम सन्तिके हत्थारूळ्हं अङ्कुसगय्हं सिप्पं सिक्खेय्य, को पन वादो पञ्चहङ्गेही" ति !

"एवमेव खो, राजकुमार, पञ्चिमानि पधानियङ्गानि। कतमानि पञ्च ? इध, राजकुमार, भिक्खु सद्धो होति; सद्दहति तथागतस्स बोधि—[N. 341] 'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो

के बराबर नहीं सीख पायगा। तो क्या मानते हो, राजकुमार ! क्या ऐसा आदमी तुमसे हाथी की···सीख पायगा ?"

"भन्ते ! इनमें से किसी एक दुर्गुण से भी युक्त पुरुष मुझसे हाथी की···शिक्षा ग्रहण नहीं कर पायगा। फिर यदि वह व्यक्ति जो इन उपर्युक्त पाँचों दुर्गुणों से युक्त है, उसकी तो बात ही क्या !"

२५. "तो क्या मानते हो, राजकुमार ! यहाँ कोई पुरुष आवे (और यह कहे)—'मुझे बोधिराजकुमार···सीखूंगा।' वह यदि श्रद्धावान् हो तो वह उतनी ही शिक्षा प्राप्त कर लेगा जितनी कोई अन्य श्रद्धालु पा सकता है। वह यदि स्वस्थ है···वह यदि अशठ या अमायावी है···वह यदि उत्साही है···वह यदि प्रज्ञावान् है तो वह उतनी शिक्षा पाने में समर्थ है जितनी शिक्षा कोई अन्य प्रज्ञावान् पा सकता है। तो क्या मानते हो, राजकुमार ! वह पुरुष तुमसे हाथी की···शिक्षा ग्रहण कर सकेगा ?"

"भन्ते ! ऐसा व्यक्ति, जिसमें उपर्युक्त पाँचों में से एक भी गुण है वह भी मुझसे हाथी की···के विषय में काफी कुछ सीख सकता है, फिर उसका तो कहना ही क्या, जिसमें ये पाँचों गुण हों !"

"इसी तरह, राजकुमार ! निर्वाण की साधना (=प्रधान) के भी ये पाँच अङ्ग हैं। कौन से पाँच ? यहाँ, राजकुमार ! कोई 'भिक्षु १. श्रद्धालु हो, तथागत

सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति; अप्पाबाधो होति अप्पातङ्को समवेपाकिनिया गहणिया समन्नागतो नातिसीताय नाच्चुण्हाय मज्झिमाय पधानक्खमाय; असठो होति अमायावी यथाभूतं अत्तानं आविकत्ता सत्थरि वा विञ्ञूसु वा सब्रह्मचारीसु; आरद्ध-विरियो विहरति अकुसलानं धम्मानं पहानाय कुसलानं धम्मानं उप्पादाय, थामवा दळ्हपरक्कमो अनिक्खित्तधुरो कुसलेसु धम्मेसु; पञ्ञवा होति उदयत्थगामिनिया पञ्ञाय समन्नागतो अरियाय निब्बेधिकाय सम्मादुक्ख-क्खयगामिनिया। इमानि खो, राजकुमार, पञ्च पधानियङ्गानि।

२६. "इमेहि, राजकुमार, पञ्चहि पधानियङ्गेहि समन्नागतो भिक्खु तथागतं विनायकं लभमानो—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अन-गारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरेय्य सत्त वस्सानि। तिट्ठन्तु, [R. 96] राजकुमार, सत्त वस्सानि। इमेहि पञ्चहि पधानियङ्गेहि समन्नागतो भिक्खु तथागतं विनायकं लभमानो—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरेय्य छब्बस्सानि…पञ्च वस्सानि… चत्तारि वस्सानि…तीणि वस्सानि…द्वे वस्सानि…एकं वस्सं। तिट्ठतु, राजकुमार, एकं वस्सं। इमेहि पञ्चहि पधानियङ्गेहि समन्नागतो भिक्खु

(द्वारा उपदिष्ट) ज्ञान के प्रति श्रद्धा रखता हो—'वह भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध… पूर्ववत्…बुद्ध भगवान् हैं'; २. सामान्यतः कम रोग वाला, स्वस्थ, न बहुत शीत न बहुत उष्ण, साधनायोग्य, समविपाक वाली प्रकृति (ग्रहणी) से युक्त; ३. अशठ, अमायावी हो, गुरु और सतीर्थ्यों (सब्रह्मचारियों) में स्वयं को, जैसा हो वैसा ही, प्रदर्शित करने वाला हो; ४. अकुशल धर्मों के प्रहाण में और कुशल धर्मों के उत्पाद में सतत उत्साही हो; तथा ५. प्रज्ञावान् हो, हान-उत्पादसमर्थ, आर्यनिर्वेधिक सम्यग्दुःखक्षयगामिनी प्रज्ञा से युक्त हो। राजकुमार! निर्वाण की साधना के ये पाँच अङ्ग हैं।

२६. "राजकुमार! इन पाँच प्रधानीय अङ्गों से युक्त भिक्षु तथागत को शास्ता मानकर अद्वितीय ब्रह्मचर्यफल को इसी जन्म में सात वर्षों में, स्वयं जानकर साक्षात् कर, प्राप्त कर धर्मसाधना में लगा रह सकता है।

"राजकुमार! छोड़ो सात वर्ष की बात! इन पाँच प्रधानीय अङ्गों से युक्त भिक्षु छह वर्षों में…पाँच वर्षों में…चार वर्षों में…तीन वर्षों…में…दो वर्षों में… एक वर्ष में स्वयं जानकर…लगा रहेगा। और छोड़ो, राजकुमार! एक वर्ष की

तथागतं विनायकं लभमानो—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरेय्य सत्त मासानि। तिट्ठन्तु, राजकुमार, सत्त मासानि। इमेहि पञ्चहि पधानियङ्गेहि समन्नागतो भिक्खु तथागतं विनायकं लभमानो—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरेय्य छ मासानि…पञ्च मासानि… [N. 342] चत्तारि मासानि…तीणि मासानि…द्वे मासानि…एकं मासं… अड्ढमासं। तिट्ठतु, राजकुमार, अड्ढमासो। इमेहि पञ्चहि पधानियङ्गेहि समन्नागतो भिक्खु तथागतं विनायकं लभमानो—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरेय्य सत्त रत्तिन्दिवानि। तिट्ठन्तु, राजकुमार, सत्त रत्तिन्दिवानि। इमेहि पञ्चहि पधानियङ्गेहि समन्नागतो भिक्खु तथागतं विनायकं लभमानो—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरिय- [B. 300] परियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरेय्य छ रत्तिन्दिवानि…पञ्च रत्तिन्दिवानि…चत्तारि रत्तिन्दिवानि…तीणि रत्तिन्दिवानि…द्वे रत्तिन्दिवानि…एकं रत्तिन्दिवं। तिट्ठतु, राजकुमार, एको रत्तिन्दिवो। इमेहि पञ्चहि पधानियङ्गेहि समन्नागतो भिक्खु तथागतं विनायकं लभमानो सायमनुसिट्ठो पातो विसेसं अधिगमिस्सति, पातमनुसिट्ठो सायं विसेसं अधिगमिस्सती" ति।

६. बोधिराजकुमारस्स उपासकत्तपटिवेदनं

२७. एवं वुत्ते, बोधि राजकुमारो भगवन्तं एतदवोच—"अहो बुद्धो,

भी बात ! इन पाँच प्रधानीय अङ्गों से युक्त भिक्षु छह मास में…पाँच मास में… चार मास में…तीन मास में…दो मास में…एक मास में…आधे मास में स्वयं…। और, राजकुमार ! छोड़ो आधे मास की बात ! इन पाँच प्रधान अङ्गों से युक्त भिक्षु सात रात-दिन में…छह रात-दिन में…पाँच रात-दिन में…चार रात-दिन में…तीन रात-दिन मे…दो रात-दिन में…एक रात-दिन में स्वयं जानकर…। सही बात तो यह है राजकुमार ! कि एक दिन-रात की बात भी क्या कही जाय ! इन पाँच प्रधानीय अङ्गों से युक्त भिक्षु तथागत-जैसा शास्ता पाकर, सायङ्काल उन से उपदेश लेकर, उस पर आचरण करता हुआ प्रातःकाल उस ज्ञानदर्शनविशेष को पा लेता है, और प्रातःकाल उनसे…सायङ्काल तक उस विशेष का अधिगम कर सकता है।"

अहो धम्मो, अहो धम्मस्स स्वाक्खातता ! यत्र हि नाम सायमनुसिट्ठो पातो विसेसं अधिगमिस्सति, पातमनुसिट्ठो सायं विसेसं अधिगमिस्सति" ति !

एवं वुत्ते, सञ्जिकापुत्तो माणवो बोधिं राजकुमारं एतदवोच—"एवमेव पनायं भवं बोधि—'अहो बुद्धो, अहो धम्मो, अहो धम्मस्स स्वाक्खातता' ति च वदेति; अथ च पन न तं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छति धम्मं च भिक्खुसङ्घं चा" ति।

"मा हेवं, सम्म सञ्जिकापुत्त, अवच; मा हेवं, सम्म सञ्जिकापुत्त, अवच। सम्मुखा मेतं, सम्म सञ्जिकापुत्त, अय्याय सुतं, [R. 97] सम्मुखा···पटिग्गहितं।

"एकमिदं, सम्म सञ्जिकापुत्त, समयं भगवा कोसम्बियं विहरति घोसितारामे। अथ खो मे अय्या कुच्छिमती येन भगवा तेनुप- [N. 343] सङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्ना खो मे अय्या भगवन्तं एतदवोच--'यो मे अयं, भन्ते, कुच्छिगतो कुमारको वा कुमारिका वा सो भगवन्तं सरणं गच्छति धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं तं भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं' ति।

---

६. बोधिराजकुमार द्वारा उपासकत्वप्रतिवेदन

२७. ऐसा कहने पर बोधिराजकुमार भगवान् से यों बोला—"धन्य हैं आप! और धन्य है आपके द्वारा उपदिष्ट धर्म एवं उस धर्म की व्याख्यानशैली ! जहाँ कि सायङ्काल में अनुशासित भिक्षु प्रातःकाल तक उस आर्यज्ञानदर्शनविशेष को पा जाय और प्रातः अनुशिष्ट सायंकाल तक उस विशेष को पा जाय।"

राजकुमार के यों कहने पर, सञ्जिकापुत्र माणवने बोधिराजकुमार से कहा—"यही बात है श्रीमान् बोधिराजकुमार ! 'धन्य हैं बुद्ध ! धन्य है उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म'''विशेष को पा जाय; यद्यपि ऐसा आप कहते तो हैं, परन्तु आप इन भगवान् बुद्ध, इनके धर्म और सङ्घ की शरण में तो नहीं जाते।"

"सौम्य सञ्जिकापुत्र ! ऐसा न कहो ! सौम्य'''न कहो ! सौम्य सञ्जिकापुत्र मैंने अपनी आर्या (अय्या = माता) के मुँह से सुना है, उन्हीं के मुख से ग्रहण किया है। सौम्य सञ्जिकापुत्र ! एक बार भगवान् कौशाम्बी के घोषिताराम में साधना (विहार) कर रहे थे। तब मेरी गर्भवती माता जहाँ भगवान् थे, वहाँ गयी; जा कर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गयी। एक ओर बैठी उसने भगवान् से यों निवेदन किया—'भन्ते ! मेरी कौंख में यह जो कुमार या कुमारी है वह भगवान् की, धर्म और भिक्षुसङ्घ शरण में जाता है। आज से आप भगवान् इसे अपना अञ्जलिबद्ध उपासक समझें।

"एकमिदं, सम्म सञ्जिकापुत्त, समयं भगवा इधेव भग्गेसु विहरति सुसुमारगिरे भेसकळावने मिगदाये। अथ खो मं धाति अङ्केन हरित्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठिता खो मं धाति भगवन्तं एतदवोच—'अयं, भन्ते, बोधि राजकुमारो भगवन्तं सरणं गच्छति धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं तं भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं' ति।

एसाहं, सम्म सञ्जिकापुत्त, ततियकं पि भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति।

●

"सौम्य सञ्जिकापुत्र! एक बार भगवान् यहीं भर्ग देश में सुंसुमार गिरि के भेषकड़ावन के मृगदाव में साधनाहेतु विराजमान थे। तब मेरी धात्री (=धाय), मुझे गोद में लेकर जहाँ भगवान् थे वहाँ गयी। जाकर एक ओर खड़ी हो गयी। एक ओर खड़ी उस मेरी धाय ने भगवान् से निवेदन किया—'भन्ते! यह बोधिराजकुमार आप की…शरण में जाता है। आज से…उपासक स्वीकार करें।

"सञ्जिकापुत्र! आज यह मैं तीसरी बार भी भगवान् की, धर्म की, भिक्षुसङ्घ की शरण में…उपासक समझें॥

बोधिराजकुमारसुत्त समाप्त॥

●

३६. अंगुलिमालसुत्तं

ङ्१. अंगुलिमालपब्बज्जा

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं [N. 344, B. 301] विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स विजिते चोरो अंगुलिमालो नाम होति लुद्दो लोहितपाणि हतपहते निविट्ठो अदयापन्नो पाणभूतेसु। तेन गामा पि अगामा कता, निगमा पि अनिगमा कता, जनपदा पि अजनपदा कता। सो [R. 98] मनुस्से वधित्वा वधित्वा अङ्गुलीनं मालं धारेति। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पाविसि। सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो सेनासनं संसामेत्वा पत्तचीवरमादाय येन चोरो अङ्गुलिमालो तेनद्धानमग्गं पटिपज्जि। अद्दसंसु खो गोपालका पसुपालका कस्सका पथाविनो भगवन्तं येन चोरो अङ्गुलिमालो तेनद्धानमग्गपटिपन्नं। दिस्वान भगवन्तं एतदवोचुं—"मा, समण, एतं मग्गं पटिपज्जि। एतस्मिं, समण, मग्गे चोरो अङ्गुलिमालो नाम लुद्दो लोहितपाणि हतपहते निविट्ठो अदयापन्नो पाणभूतेसु। तेन गामा पि अगामा कता, निगमा पि अनिगमा कता, जनपदा पि अजनपदा कता। सो मनुस्से वधित्वा वधित्वा अङ्गुलीनं मालं धारेति। एतं हि, समण, मग्गं

---

३६. अंगुलिमालसुत्त

१. अङ्गुलिमालप्रव्रज्या

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती स्थित जेतवनाराम में, जो कि किसी समय अनाथपिंडिक श्रेष्ठी द्वारा बनवाया गया था, साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय कौसल देश के राजा प्रसेनजित् के अधीन (विजित) प्रदेश में अंगुलिमाल नाम का एक चौर रहता था, जो भयंकर रुद्र, खून से रंगे हाथों वाला, दिन-रात मार-काट में लगा हुआ एवं प्राणिमात्र के प्रति निर्दय था। जिसने पूरे के पूरे ग्राम अग्राम (निर्जन) कर दिये थे, निगमों को अनिगम, एवं जनपदों को अजनपद कर दिया था। (अर्थात् उसके भय से बहुत से ग्राम, निगम तथा जनपद खाली हो गये थे।) वह मनुष्यों को मार-मारकर उनकी अंगुलियों की माला धारण करता था। उसी समय कभी भगवान् पूर्वाह्न समय बिता कर, पात्र-चीवर ले, श्रावस्ती में भिक्षाचर्याहेतु प्रविष्ट हुए। वे श्रावस्ती में भिक्षा कर, एतदनन्तर इस कार्य से निवृत्त हो, शयनासन बगल में दबा, जिधर वह अंगुलिमाल रहता था उधर जाने वाले मार्ग पर ही चल पड़े। वहाँ कुछ गोपालकों, पशुपालकों तथा किसानों व राहगीरों (पथिकों) ने भगवान् को उस मार्ग की ओर जाते देखा, जिधर

दस पि पुरिसा वीसं पि पुरिसा तिंसं पि पुरिसा चत्तारीसं पि पुरिसा पञ्ञासं पि पुरिसा सङ्करित्वा सङ्करित्वा पटिपज्जन्ति। ते पि चोरस्स अङ्गुलिमालस्स हत्थत्थं गच्छन्ती'' ति। एवं वुत्ते, भगवा तुण्हीभूतो अगमासि। दुतियं पि खो गोपालका...पे०...ततियं पि खो गोपालका पसुपालका कस्सका पथाविनो भगवन्तं एतदवोचुं...पे०...ते पि चोरस्स अङ्गुलिमालस्य हत्थत्थं गच्छन्ती ति।

[B. 302] २. अथ खो भगवा तुण्हीभूतो अगमासि। अद्दसा खो चोरो [N. 345] अङ्गुलिमालो भगवन्तं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वानस्स एतदहोसि—"अच्छरियं वत, भो, अब्भुतं वत, भो! इमं हि मग्गं दस पि [R. 99] पुरिसा वीसं पि पुरिसा तिंसं पि पुरिसा चत्तारीसं पि पुरिसा पञ्ञासं पि पुरिसा सङ्करित्वा सङ्करित्वा पटिपज्जन्ति। ते पि मम हत्थत्थं गच्छन्ति। अथ च पनायं समणो एको अदुतियो पसय्ह मञ्ञे आगच्छति। यन्नूनाहं इमं समणं जीविता वोरोपेय्यं'' ति। अथ खो चोरो अङ्गुलिमालो असिचम्मं गहेत्वा धनुकलापं सन्नय्हित्वा भगवन्तं पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबन्धि। अथ खो भगवा तथारूपं इद्धाभिसङ्खारं अभिसङ्खासि यथा चोरो अङ्गुलिमालो भगवन्तं पकतिया गच्छन्तं सब्बथामेन गच्छन्तो न सक्कति सम्पा-

---

अंगुलिमाल रहता है, तो वे भगवान् से यों बोले—"भो श्रमण! आप इस रास्ते पर न जाँय; क्योंकि इस रास्ते पर आगे अंगुलिमाल नामक......माला धारण करता है। श्रमण! इस रास्ते पर यदि दस, बीस, तीस, चालीस, पचास आदमी भी इकट्ठे हो (समूह बना) कर हिम्मत करके चलते हैं, तो वे भी उस अंगुलिमाल के हत्थे चढ़ जाते हैं, पकड़ में आ जाते हैं।" ऐसा कहने पर भगवान् चुप ही रहे। दूसरी बार भी वे गोपालक...पूर्ववत्...। तीसरी बार भी वे गोपालक...पकड़ में आ ही जाते हैं।

२. भगवान् फिर भी उन गोपालकों की बात सुनकर चुप रहे। उधर अंगुलिमाल चौर ने भगवान् को दूर से ही आते हुए देखा। देखकर उसे यह हुआ—"अरे! यह बहुत आश्चर्य है! इस रास्ते पर दस, बीस,...पचास आदमी एक साथ मिलकर भी आने की हिम्मत नहीं करते, वे भी मेरे हत्थे चढ जाते हैं, मेरी पकड़ में आ जाते हैं; जबकि यह श्रमण अकेला होते हुए भी इधर आने की हिम्मत कर रहा है। अच्छा! आने दो इसे, मैं जरूर इसके प्राण ले लूँगा।" तब वह चौर अंगुलिमाल हाथ में ढाल-तलवार ले, धनुष-बाण सजा, भगवान् के पीछे-पीछे लग गया। उस समय भगवान् ने ऐसा चमत्कार (ऋद्ध्यनुभाव) दिखाया कि स्वभाव से चलते हुए भगवान् का पीछा करने वाले अंगुलिमाल ने कितना ही तेज भागकर उनको पकड़ना चाहा, पर वह उन्हें पकड़ नहीं सका। तब अंगुलिमाल के मन में यह

पुणितुं। अथ खो चोरस्स अङ्गुलिमालस्स एतदहोसि—"अच्छरियं वत, भो अब्भुतं वत, भो ! अहं हि पुब्बे हत्थि पि धावन्तं अनुपतित्वा गण्हामि, अस्सं पि…रथं पि…मिगं पि धावन्तं अनुपतित्वा गण्हामि; अथ च पनाहं इमं समणं पकतिया गच्छन्तं सब्बथामेन गच्छन्तो न सक्कोमि सम्पापुणितुं" ति ! ठितो व भगवन्तं एतदवोच—"तिट्ठ, तिट्ठ, समणा" ति।

"ठितो अहं, अङ्गुलिमाल, त्वं च तिट्ठा" ति।

अथ खो चोरस्स अङ्गुलिमालस्स एतदहोसि—"इमे खो समणा सक्यपुत्तिया सच्चवादिनो सच्चपटिञ्ञा। अथ पनायं समणो गच्छं येवाह—ठितो अहं, अङ्गुलिमाल, त्वं, च तिट्ठा' ति। यन्नूनाहं इमं समणं पुच्छेय्यं" ति।

३. अथ खो चोरो अङ्गुलिमालो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"गच्छं वदेसि समण ! ठितोम्हि, ममं च ब्रूसि ठितमट्ठितो ति।
पुच्छामि तं समण एतमत्थं, कथं ठितो त्वं अहमट्ठितोम्ही" ति ?॥

"ठितो अहं अङ्गुलिमाल सब्बदा, सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं। [B. 303]
तुवं च पाणेसु असञ्ञतोसि, तस्मा ठितोहं तुवमट्ठितोसी" [N. 346]
ति॥

विचार हुआ—"अरे कितना आश्चर्य है, कितनी अनहोनी बात है कि आज से पहले मैंने दौड़ते हाथी को भी, पीछा कर, अन्त में पकड़ ही लिया, था, दौड़ते घोड़े को भी…रथ को भी… मृग को भी पीछा कर आखिर पकड़ ही लिया; परन्तु आज अपनी स्वाभाविक चाल से चल रहा यह श्रमण पूरी शक्ति से दौड़ते हुए भी मुझसे पकड़ में नहीं आ रहा है !" तब एक जगह ठहरते हुए उसने भगवान् से कहा—"ठहर जा, श्रमण ! ठहर जा।"

"मैं तो ठहरा हुआ ही हूँ, अंगुलिमाल ! तूँ ही ठहरने का प्रयास कर।"

तब उस चौर अंगुलिमाल के मन में यह हुआ—"अरे ! ये श्रमण तो सत्यवादी एवं सत्यप्रतिज्ञ होते हैं। फिर यह श्रमण तेज चलते हुए भी कह रहा है—'मैं ठहरा हुआ हूँ…' तो क्यों न मैं इस श्रमण से पूछूँ"।

३. तब उस चौर अंगुलिमाल ने गाथाओं द्वारा भगवान् से यह पूछा—

"श्रमण ! तुम चलते हुए भी अपने लिए कह रहे हो तुम खड़े हो, और मुझ खड़े हुए को भी तुम कह रहे हो कि मैं खड़ा नहीं हूँ। यह क्या पहेली है श्रमण ! तुम कैसे एक जगह खड़े हुए, और मैं कैसे खड़ा नहीं हूँ ?—यह मुझे समझाइये।"

"अंगुलिमाल ! समग्र प्राणियों पर दण्ड (प्रतीकारभाव) छोड़कर मैं सर्वदा 'स्थित' हो गया हूँ। तूँ प्राणियों के प्रति असंयमी है, इसलिये 'अस्थित' है।"

[R. 100] चिरस्सं वत मे महितो महेसी, महावनं पापुगि सच्चवादी ।
सोहं चरिस्सामि पहाय पापं, सुत्वान गाथं तव धम्मयुत्तं" ॥
इत्वेव चोरो असिमावुधं च, सोब्भे पपाते नरके अकिरि ।
अवन्दि चोरो सुगतस्स पादे, तत्थेव नं पब्बज्जं अयाचि ॥
बुद्धो च खो कारुणिको महेसि, यो सत्था लोकस्स सदेवकस्स ।
तमेहि भिक्खू ति तदा अवोच, एसे व तस्स अहु भिक्खुभावो ति ॥

२. भगवतो पच्छासमणो अंगुलिमालो

४. अथ खो भगवा आयस्मता अङ्गुलिमालेन पच्छासमणेन येन सावत्थि तेन चारिकं पक्कामि । अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन सावत्थि तदवसरि । तत्र सुदं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे । तेन खो पन समयेन रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स अन्तेपुरद्वारे महाजनकायो सन्निपतित्वा उच्चासद्दो महासद्दो होति--"चोरो ते, देव, विजिते अङ्गुलिमालो नाम लुद्दो लोहितपाणि हतपहते निविट्ठो अदयापन्नो पाणभूतेसु । तेन गामा पि अगामा कता, निगमा पि अनिगमा कता, जनपदा पि अजन-

---

"मुझे किसी महर्षि का पूजन करने में बहुत देर हो गयी, आज आप सत्यवादी श्रमण मुझे इस महावन में मिल गये । अतः अब मैं पापकर्म छोड़ आप की धर्ममयी वाणी का अनुपालन करता हुआ धर्माचरण में लगूँगा ।"

इस तरह उस चौर (अंगुलिमाल) ने अपने तलवार-धनुष-बाण आदि हथियार खोह, प्रपात और नाले में फैंक दिये । और उस (चौर) ने सुगत की चरण-वन्दना की । तथा उनसे उसी क्षण प्रव्रज्या देने की याच्ञा की । तब उस देवलोकसहित इस जगत् के शास्ता, करुणामय, महर्षि बुद्ध ने उसको "आ भिक्षु !"--ऐसा कहा । यही उस चौर की प्रव्रज्या-दीक्षा (भिक्षुभाव) हुई ।

२. अंगुलिमाल भगवान् का अनुगामी श्रमण बन गया

४. तब भगवान् अपने अनुगामी आयुष्मान् अंगुलिमाल के साथ श्रावस्ती की तरफ चारिका करते हुए चल पड़े । क्रमशः चारिका करते हुए वे श्रावस्ती पहुँचे । वहाँ भगवान् श्रावस्ती के जेतवन स्थित अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित विहार में साधनाहेतु विराजमान हुए । उस समय कौसल के राजा प्रसेनजित के अन्तःपुर (राजकुल) के बाहर बहुत विशाल जनसमूह एकत्र हो कोलाहल करने लगा— "देव ! आपके अधीन प्रदेश (राज्य) में अंगुलिमाल नाम का एक महाक्रोधी, निष्ठुर, खूनी, खून से सने हाथों वाला, एवं दिन-रात लूटपाट में लगा रहने वाला एक चौर है । जिसने अपनी निर्दयता से बड़े-बड़े ग्राम, निगम एवं जनपद जन-

पदा कता। सो मनुस्से वधित्वा वधित्वा अङ्गुलीन मालं धारेति। तं देवो पटिसेधेतू" ति।

अथ खो राजा पसेनदि कोसलो पञ्चमत्तेहि अस्ससतेहि [B. 304] सावत्थिया निक्खमि दिवादिवस्स। येन आरामो तेन पाविसि। यावतिका यानस्स भूमि यानेन गन्त्वा याना पच्चोरोहित्वा पत्तिको व येन [N. 347] भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एक- [R. 101] मन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो राजानं पसेनदिं कोसलं भगवा एतद-वोच—"किं नु ते, महाराज, राजा व मागधो सेनियो बिम्बिसारो कुपितो वेसालिका वा लिच्छवी अञ्ञे वा पटिराजानो" ति?

"न खो मे, भन्ते, राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो कुपितो, नापि वेसालिका लिच्छवी, नापि अञ्ञे पटिराजानो। चोरो मे, भन्ते, विजिते अङ्गुलिमालो नाम लुद्दो लोहितपाणि हतपहते निविट्ठो अदयापन्नो पाण-भूतेसु। तेन गामा पि अगामा कता, निगमा पि अनिगमा कता, जनपदा पि अजनपदा कता। सो मनुस्से वधित्वा वधित्वा अङ्गुलीनं मालं धारेति। ताहं, भन्ते, पटिसेधिस्सामी" ति।

"सचे पन त्वं, महाराज, अङ्गुलिमालं पस्सेय्यासि केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितं, विरतं

विहीन कर डाले। वह (इतना बड़ा निर्दय है कि) मनुष्यों का वध कर उनकी अंगुलियों की माला बनाकर पहनता है। उसका आप निग्रह करें।"

तब राजा प्रसेनजित् कौसल पाँच सौ अश्वारोही सिपाही साथ लेकर मध्याह्न के समय उस चौर को पकड़ने के लिये श्रावस्ती से निकले। और जेतवनाराम में प्रविष्ट हो गये। वह जितनी दूर तक यान से पार करने योग्य भूमि थी, उसे यान से पारकर, बाकी यान से उतर, पैदल ही जाकर, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर···। एक ओर बैठे राजा··· से भगवान् ने यों प्रश्न किया––"क्या बात है महाराज! (आप इतने परेशान क्यों हैं?) क्या आज आप पर राजा मागध श्रैणिक बिम्बिसार क्रुद्ध हो गया है! या वैशाली के लिच्छवि, या अन्य कोई विरोधी (शत्रु) राजा?"

"नहीं, भन्ते! न तो मुझपर राजा मागध श्रैणिक···, या अन्य कोई विरोधी राजा। भन्ते! मेरे राज्य का एक नामी चौर, जिसका नाम अंगुलिमाल है, जो··· निर्जन बना चुका है, मैं यहाँ उसे खोजने व पकड़ने आया हूँ।"

"महाराज! यदि आप उस तथाकथित चौर अंगुलिमाल को दाढ़ी-मूँछ मुँडा···

पाणातिपाता, विरतं अदिन्नादाना, विरतं मुसावादा, एकभत्तिकं, ब्रह्मचारिं सीलवन्तं, कल्याणधम्मं, किन्ति नं करेय्यासी" ति ?

"अभिवादेय्याम वा, भन्ते, पच्चुट्ठेय्याम वा, आसनेन वा निमन्तेय्याम, अभिनिमन्तेय्याम वा नं चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारेहि, धम्मिकं वा अस्स रक्खावरणगुत्तिं संविदहेय्याम । कुतो पनस्स, भन्ते, दुस्सीलस्स पापधम्मस्स एवरूपो सीलसंयमो भविस्सती" ति ?

तेन खो पन समयेन आयस्मा अङ्गुलिमालो भगवतो अविदूरे निसिन्नो होति । अथ खो भगवा तस्स दक्खिणं बाहुं पग्गहेत्वा राजानं पसेनदिं कोसलं एतदवोच—"एसो, महाराज, अङ्गुलिमालो" ति । अथ खो रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स अहुदेव भयं, अहु छम्भितत्तं, अहु लोमहंसो ।

अथ खो भगवा राजानं पसेनदिं कोसलं भीतं संविग्गं लोमहट्ठजातं विदित्वा राजानं पसेनदिं कोसलं एतदवोच—"मा भायि, महाराज, नत्थि ते इतो भयं" ति । अथ खो रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स यं अहोसि भयं [N. 348, R. 102] वा छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा सो पटिप्पस्सम्भि । [B. 305] अथ खो राजा पसेनदि कोसलो येनायस्मा अङ्गुलिमालो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं अङ्गुलिमालं एतदवोच—"अय्यो नो, भन्ते, अङ्गुलिमालो" ति ?

प्रव्रजित हुआ देखें, जो कि हिंसा चोरी असत्य-भाषण से दूर रहता हुआ, एकभक्तिक, शीलवान् एवं सत्कर्मों में लगा हुआ हो, तब आप उसका क्या करेंगे ?"

"तब तो, भन्ते ! हम उसका अभिवादन करेंगे, उसे अभ्युत्थान देंगे, भोजन के लिये निमन्त्रित करेंगे, चीवर-पिण्डपात आदि से सत्कृत करेंगे, उसे न्यायोचित (धार्मिक) सुरक्षा प्रदान करेंगे । परन्तु उस दुराचारी, पापकर्मा में यह (उपर्युक्त) शीलयुक्तता कहाँ होगी ?"

"उस समय आयुष्मान् अंगुलिमाल भगवान् के समीप बैठे हुए थे । तब भगवान् ने उनका दाहिना हाथ पकड़ कर उन्हें राजा प्रसेनजित् कौसल को दिखाते हुए कहा--'राजन् ! यह है अंगुलिमाल !' उसे देखते ही राजा प्रसेनजित् कौसल को अत्यन्त भय स्तब्धता एवं रोमाञ्च होने लगा । तब भगवान् ने राजा को भीत, उद्विग्न (स्तब्ध) रोमाञ्चित जान, उससे यों कहा—'महाराज ! घबराने की आवश्यकता नहीं, आप इनसे कुछ भी भय न मानें !' तब राजा को प्रथम दृष्टि में जो भय, उद्वेग, या रोमाञ्च हो रहा था, वह निवृत्त हो गया । और वह राजा प्रसेनजित् जहाँ आयुष्मान् अंगुलिमाल बैठे थे, वहाँ गये, और आयुष्मान् अंगुलिमाल से यों बोले--"माननीय आर्य ! क्या आप अंगुलिमाल हैं ?"

"एवं, महाराजा" ति।

"कथंगोत्तो अय्यस्स पिता, कथंगोत्ता माता" ति ?

"गग्गो खो, महाराज, पिता, मन्ताणी माता" ति।

"अभिरमतु, भन्ते, अय्यो गग्गो मन्ताणिपुत्तो। अहमय्यस्स गग्गस्स मन्ताणिपुत्तस्स उस्सुक्कं करिस्सामि चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चय-भेसज्जपरिक्खारानं" ति।

५. तेन खो पन समयेन आयस्मा अङ्गुलिमालो आरञ्ञिको होति पिण्डपातिको पंसुकूलिको तेचीवरिको। अथ खो आयस्मा अङ्गुलिमालो राजानं पसेनदिं कोसलं एतदवोच--"अलं, महाराज, परिपुण्णं मे चीवरं" ति।

अथ खो राजा पसेनदि कोसलो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच--"अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! यावञ्चिदं, भन्ते, भगवा अदन्तानं दमेता, असन्तानं समेता, अपरिनिब्बुतानं परिनिब्बापेता। यं हि मयं, भन्ते, नासक्खिम्ह दण्डेन पि सत्थेन पि दमेतुं सो भगवता अदण्डेन असत्थेनेव दन्तो। हन्द च दानि मयं, भन्ते, गच्छाम; बहुकिच्चा मयं बहुकरणीया" ति।

"हाँ, महाराज!"

"आर्य के पिता और माता का क्या गोत्र है?"

"महाराज! मेर पिता का गोत्र है गर्ग एवं माता का गोत्र है मैत्रायणी।"

"आर्य गार्ग्य मैत्रायणीपुत्र प्रसन्न रहें। मैं आप का चीवर-पिण्डपात-शयनासन-ग्लानप्रत्यय-भेषज आदि से सत्कार करना चाहता हूँ।"

उस समय आयुष्मान् अंगुलिमाल ने आरण्यक, पैण्डपातिक, पांसुकूलिक त्रैचीवरिक व्रत ले रखा था। अतः आयुष्मान् अंगुलिमाल ने राजा को यह उत्तर दिया—"महाराज! रहने दें। मेरे पास काम चलाने भर के लिये चीवर पूरा है।"

तब राजा प्रसेनजित् जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ गया। जाकर उनसे यों निवेदन किया—"आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है भन्ते! भगवान् ऐसे-ऐसे अदम्य लोगों का भी दमन (निग्रह) कर लेते हैं, अशान्तों को शान्त कर लेते हैं, अपरिनिर्वृतों को परिनिर्वाण (शान्त पद) तक पहुँचा देते हैं जिनको हम न दण्ड से, न शस्त्र से शान्त जीवन की ओर नहीं मोड़ पाते, उन्हें आप बिना दण्ड व शस्त्र से (धार्मिक शिक्षा देकर ही) शान्त जीवन बिताने के लिये प्रेरित कर देते हैं। भन्ते! अब हम चलें, हमें और भी बहुत से कार्य हैं।"

"यस्सदानि, महाराज, कालं मञ्ञसी" ति। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि।

मूळ्हगब्भाय इत्थिया सोत्थिभावो

६. अथ खो आयस्मा अङ्गुलिमालो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थियं पिण्डाय पाविसि। अद्दसा खो आयस्मा अङ्गुलिमालो [N. 349] सावत्थियं सपदानं पिण्डाय चरमानो अञ्ञतरं इत्थिं मूळ्ह- [R. 103] गब्भं विघातगब्भं। दिस्वानस्स एतदहोसि—"किलिस्सन्ति वत, भो, सत्ता; किलिस्सन्ति वत, भो, सत्ता" ति! अथ खो आयस्मा अङ्गुलिमालो सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा अङ्गुलिमालो भगवन्तं एतदवोच—"इधाहं, भन्ते, पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थि [B. 306] पिण्डाय पाविसिं। अद्दसं खो अहं भन्ते, सावत्थियं सपदानं पिण्डाय चरमानो अञ्ञतरं इत्थिं मूळ्हगब्भं विघातगब्भं। दिस्वान मय्हं एतदहोसि--"किलिस्सन्ति वत, भो, सत्ता; किलिस्सन्ति वत, भो, सत्ता" ति!

"तेन हि त्वं, अङ्गुलिमाल, येन सा इत्थी तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा तं इत्थिं एवं वदेहि--'यतोहं, भगिनि, जातो नाभिजानामि सञ्चिच्च पाणं जीविता वोरोपेता, तेन सच्चेन सोत्थि ते होतु, सो गब्भस्सा' " ति।

"महाराज! जैसा आप उचित समझें।" तब राजा (भगवान् से आज्ञा पाकर) आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर, (अपने आवास को) चला गया।

३. मृतगर्भा स्त्री के प्रति मङ्गलकामना

६. तब (कभी) आयुष्मान् अंगुलिमाल, पूर्वाह्ण समय बिताकर, पात्र चीवर ले, श्रावस्ती नगरी में भिक्षाकर्महेतु गये। वहाँ वे जब श्रावस्ती में कहीं भी एक जगह बिना ठहरे भिक्षाकर्म कर रहे थे तभी उन्होंने किसी स्त्री को जो मृतगर्भा, या जिसके पेट का बच्चा गिर चुका था, देखा। देखकर उन्हें यह हुआ—"अरे प्राणी कितना कष्ट पा रहे हैं, कितना दुःख सह रहे हैं! तब आयुष्मान् अंगुलिमाल श्रावस्ती में भिक्षाकर्म पूर्ण कर उससे निवृत्त हो, जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन्होंने भगवान् से यों निवेदन किया--"भन्ते! मैं आज प्रातःकाल बिताकर... कितना दुःख सह रहे हैं।"

(भगवान् ने कहा--) "तो तूँ, अंगुलिमाल! जहाँ वह स्त्री है वहाँ जा।

"सो हि नून मे, भन्ते, सम्पजानमुसावादो भविस्सति। मया हि, भन्ते, बहु सञ्चिच्च पाणा जीविता वोरोपिता" ति।

"तेन हि त्वं, अङ्गुलिमाल, येन सा इत्थि तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा तं इत्थि एवं वदेहि—'यतोहं, भगिनि, अरियाय जातिया जातो, नाभिजानामि सञ्चिच्च पाणं जीविता वोरोपेता, तेन सच्चेन सोत्थि ते होतु, सोत्थि गब्भस्सा' " ति।

"एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा अङ्गुलिमालो भगवतो पटिस्सुत्वा येन सा इत्थि तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं इत्थिं एतदवोच—"यतोहं, भगिनि, अरियाय जातिया जातो, नाभिजानामि सञ्चिच्च पाणं जीविता वोरोपेता, तेन सच्चेन सोत्थि ते होतु, सोत्थि गब्भस्सा" ति। अथ ख्वास्सा इत्थिया सोत्थि अहोसि, सोत्थि गब्भस्स।

४. अरहा आयस्मा अङ्गुलिमालो

७. अथ खो आयस्मा अङ्गुलिमालो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव [N. 350] अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं--ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। 'खीणा जाति

जाकर उस स्त्री को यह कह--'बहन ! यदि मैंने जन्म से आज तक जान-बूझकर किसी प्राणी की हत्या न की हो तो उस पुण्य के प्रताप से तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे (मृत-) गर्भ का कल्याण हो।"

"भन्ते ! यह कहना तो मेरे लिये जान-बूझकर झूठ न बोलना होगा; क्योंकि भन्ते ! जन्म के बाद तो मैं जानते-बूझते बहुत से प्राणियों की हत्या कर चुका हूँ !"

"तो अंगुलिमाल ! तू उस स्त्री के पास जाकर यह कह--'बहन ! जब से मैंने यह आर्य-जन्म (प्रवज्या) ग्रहण किया है तब से आज तक जान-बूझकर…।"

आयुष्मान् अंगुलिमाल "ठीक है, भन्ते !"--भगवान् को यों निवेदन कर, उस स्त्री के पास गये, जाकर उससे यों बोले—'बहन ! जब से मैंने आर्यजन्म…गर्भ का कल्याण हो।' तभी इस कथन के सत्प्रभाव से उस स्त्री का बच्चा जी उठा, और वह स्त्री प्रसन्नता अनुभव करने लगी।

४. अंगुलिमाल को अर्हत्त्व-प्राप्ति

७. आयुष्मान् अंगुलिमाल एकान्त में ध्यानावस्थित हो, अप्रमत्त, उद्योगरत रहते हुए साधना करते-करते शीघ्र ही, जिसके लिए कुलपुत्र…प्रव्रजित होते हैं, उस सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य-फल को इसी जन्म में स्वयं जान, साक्षात् कर, प्राप्त कर साधना को उच्चतम कोटि पर पहुँच गये। उन्होंने 'मेरी जन्म-परम्परा क्षीण हो गयी, ब्रह्मचय-

[R. 104] वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया" ति अब्भञ्ञासि अञ्ञतरो खो पनायस्मा अङ्गुलिमालो अरहतं अहोसि ।

८. अथ खो आयस्मा अङ्गुलिमालो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पाविसि । तेन खो पन समयेन अञ्ञेन पि लेड्डु [B. 307] खित्तो आयस्मतो अङ्गुलिमालस्य काये निपतति, अञ्ञेन पि दण्डो खित्तो आयस्मतो अङ्गुलिमालस्स काये निपतति, अञ्ञेन पि सक्खरा खित्ता आयस्मतो अङ्गुलिमालस्य काये निपतति । अथ खो आयस्मा अङ्गुलिमालो भिन्नेन सीसेन, लोहितेन गळन्तेन, भिन्नेन पत्तेन, विप्फालिताय सङ्घाटिया येन भगवा तेनुपसङ्कमि । अद्दसा खो भगवा आयस्मन्तं अङ्गुलिमालं दूरतो व आगच्छन्तं । दिस्वान आयस्मन्तं अङ्गुलिमालं एतदवोच— "अधिवासेहि त्वं, ब्राह्मण, अधिवासेहि त्वं, ब्राह्मण ! यस्स खो त्वं, ब्राह्मण, कम्मस्स विपाकेन बहूनि वस्सानि बहूनि वस्ससतानि बहूनि वस्ससहस्सानि निरये पच्चेय्यासि तस्स त्वं, ब्राह्मण, कम्मस्स विपाकं दिट्ठेव धम्मे पटिसंवेदेसी" ति । अथ खो आयस्मा अङ्गुलिमालो रहोगतो पटिसल्लीनो विमुत्तिसुखं पटिसंवेदि; तायं वेलायं इमं उदानं उदानेसि—

९. "यो पुब्बेव पमज्जित्वा, पच्छा सो नप्पमज्जति ।
सोमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तो व चन्दिमा ।।

पालन अन्तिम स्तर पर पहुँच चुका, अब मेरा कोई कर्तव्य अवशिष्ट नहीं है'—यह जान लिया । यों, आयुष्मान् अंगुलिमाल अर्हतों में एक गिने जाने लगे ।

८. एक बार आयुष्मान्, अंगुलिमाल पूर्वाह्णकाल बिताकर पात्र-चीवर ले, श्रावस्ती में भिक्षाकर्महेतु गये । उस समय किसी ने उन पर पत्थर फेंककर मारा, जो आयुष्मान् अंगुलिमाल के शरीर पर लगा, किसी ने लाठी... किसी ने कंकड़ फेंककर...। तब आयुष्मान् अंगुलिमाल बहते खून, फूटे शिर, टूटे पात्र, फटी सङ्घाटी के साथ जहाँ भगवान् थे वहां पहुँचा । भगवान् आयुष्मान् अंगुलिमाल को दूर से ही आते देखकर आयुष्मान् अंगुलिमाल को यों बोले—"ब्राह्मण ! तूने यह स्वीकार कर बहुत अच्छा किया ! जिस कर्म-फल को भोगने के लिए तुझे अनेक सौ, अनेक हजार वर्ष तक नरक में पचना पड़ता, उस कर्मविपाक को, ब्राह्मण ! तू इसी जन्म में भोग ले रहा है ।"

तब आयुष्मान् अंगुलिमाल ने एकान्त में ध्यानावस्थित हो विमुक्तिसुख का अनुभव करते हुए यह उदान कहा ।

९. जो प्रारम्भ में जन्म-ग्रहण करने के बाद भले ही प्रमाद (भूल) करता रहे, परन्तु आर्यजन्म (प्रव्रज्या) ग्रहण के बाद कोई प्रमाद नहीं करता, वह इस लोक में उसी तरह देदीप्यमान होता है, जैसे मेघों से मुक्त चन्द्रमा ।

"यस्स पापं कतं कम्मं, कुसलेन पिधीयति।
सोमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तो व चन्दिमा ॥

"यो हवे दहरो भिक्खु, युञ्जति बुद्धसासने।
सोमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तो व चन्दिमा ॥

"दिसा हि मे धम्मकथं सुणन्तु, दिसा हि मे युञ्जन्तु बुद्धसासने।
दिसा हि मे ते मनुजा भजन्तु; ये धम्ममेवादपयन्ति सन्तो ॥

"दिसा हि मे खन्तिवादानं, अविरोधप्पसंसीनं। [N. 351, R. 105]
सुणन्तु धम्मं कालेन, तं च अनुविधीयन्तु॥

"न हि जातु सो ममं हिंसे, अञ्ञं वा पन किञ्चिनं।
पप्पुय्य परमं सन्तिं, रक्खेय्य तसथावरे ॥

"उदकञ्हि नयन्ति नेत्तिका, उसुकारा नमयन्ति तेजनं। [B. 308]
दारुं नमयन्ति तच्छका, अत्तानं दमयन्ति पण्डिता ॥

"दण्डेनेके दमयन्ति, अङ्कुसेहि कसाहि च।
अदण्डेन असत्थेन, अहं दन्तोम्हि तादिना ॥

"जिसके किये हुए पाप कर्म (उसके) पुण्यकर्मों से ढक जाते हैं, वही इस लोक को प्रभासित कर सकता है, जैसे निरभ्र आकाश में चन्द्रमा ॥

"जो युवावस्था में ही भिक्षु बनकर बुद्धशासन को स्वीकार कर लेता है, वही मेघमुक्त चन्द्रमा की तरह संसार को प्रभासित कर सकता है ॥

"सभी दिशायें मेरे द्वारा प्रोक्त धर्मकथा सुनें, सभी दिशाएँ मेरे द्वारा स्वीकृत बुद्धशासन से जुड़ें। वे सत्पुरुष सभी दिशाओं में घूमें जो सदा धर्मपालन-हेतु लोक को प्रेरणा देते हैं।

"सभी दिशाएँ मेरे धर्मयुक्त क्षान्ति-वचनों को, जो मैत्रीभावना के प्रशंसक भी हैं, समय-समय पर सुनती रहें, तदनुसार आचरण करती रहें।

"ऐसा धर्मानुशासन में रहनेवाला प्राणी न कभी मुझे मारेगा, न किसी और को। वह परमशक्ति पा कर स्थावर-जङ्गम जगत् की रक्षा करेगा।

"जैसे नदी-नाले पानी को नीचे की ओर बहाते रहते हैं, और धनुष के निर्माता शर (बाण) को तीक्ष्ण करते है, या बढ़ई (खाती) बाँकी-टेढ़ी लकड़ी को सीधा करते हैं; उसी तरह विवेकी जन अपनी इन्द्रियों का निग्रह (दमन) करते रहते हैं ॥

"यहाँ कोई किसी का लाठी-डण्डे से दमन करते हैं, कोई अंकुश या चाबुक से;

"अहिंसको ति मे नामं, हिंसकस्स पुरे सतो।
अज्जाहं सच्चनामोम्हि, न नं हिंसामि किञ्चिनं॥

"चोरो अहं पुरे आसिं, अङ्गुलिमालो ति विस्सुतो।
वुय्हमानो महोघेन, बुद्धं सरणमागमं॥

"लोहितपाणि पुरे आसिं, अङ्गुलिमालो ति विस्सुतो।
सरणगमनं पस्स, भवनेत्ति समूहता॥

"तादिसं कम्मं कत्वान, बहु दुग्गतिगामिनं।
फुट्ठो कम्मविपाकेन, अणणो भुञ्जामि भोजनं॥

"पमादमनुयुञ्जन्ति, बाला दुम्मेधिनो जना।
अप्पमादञ्च मेधावी, धनं सेट्ठं व रक्खति॥

"मा पमादमनुयुञ्जेथ, मा कामरतिसन्थवं।
अप्पमत्तो हि झायन्तो, पप्पोति विपुलं सुखं॥

परन्तु तथागत ने मेरा अनुशासन तो बिना लाठी-डण्डे, विना अंकुश या चाबुक से ही कर दिखाया॥

"पहले मेरा नाम 'अहिंसक' था, जब कि मैं उस व्यावहारिक जीवन में दिन रात हिंसा करता रहता था, अतः मेरा वह नाम सच्चा (यथार्थ) नहीं था; पर आज वही नाम यथार्थ हो गया है, क्योंकि अब मैं किसी की हिंसा नहीं करता॥

"पहले मैं 'अंगुलिमाल' नाम से विख्यात चौर था। मैं इस भवसागर की अथाह बाढ से घबराकर अन्त में बुद्ध की शरण में आ गया॥

"मुझ प्रसिद्ध डाकू अंगुलिमाल के हाथ प्राणियों की हत्या करते-करते खून से सने रहते थे; पर अब मेरे इस बुद्धशरणगमन का प्रभाव देखो कि मेरा समग्र भव-जाल धीरे-धीरे अपने आप कट गया॥

"मैं पहले दुर्गति की तरफ ले जाने वाले बहुत से कर्म करता हुआ उस दुष्कर्म-विपाक से घिरा हुआ नाना कष्ट भोग रहा था। अब तो मैं उनसे छुटकारा पा, अनृण हो, भोजन कर रहा हूँ॥

"अविवेकी मूर्खजन प्रमाद में लगे रहते हैं। परन्तु ज्ञानी जन अप्रमाद को ही श्रेष्ठ धन मानकर उसकी रक्षा करते हैं॥

"प्रमाद से सम्पृक्त न होवो, कामरति का सङ्ग न करो। अप्रमादयुक्त पुरुष ही ध्यान-भावना करता हुआ विपुल सुख का अनुभव करता है॥

"स्वागतं नापगतं, नयिदं दुम्मन्तितं मम।
संविभत्तेसु धम्मेसु, यं सेट्ठं तदुपागमं॥
"स्वागतं नापगतं, नयिदं दुम्मन्तितं मम।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं" ति॥

●

"मेरा यहाँ (बुद्ध की शरण में) आना मेरे भले के लिये ही हुआ, बुराई के लिये नहीं; यहाँ आने के लिये मेरा चिन्तन (मन्त्र) भी मेरी भलाई के ही काम आया; क्योंकि यहाँ आकर मैंने सुविभक्त धर्मों के ज्ञान द्वारा जो श्रेष्ठ उपलब्धि हो सकती थी, उसे मैंने पा लिया॥

"मेरा यहाँ आना... भलाई के ही काम आया; क्योंकि मैंने यहाँ आकर तीनों विद्याओं को अधिगत कर लिया, और तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म के पालन में लग गया॥

अंगुलिमालसुत्त समाप्त॥

●

पियजातिकसुत्तं

१. गहपतिपुत्तकालकिरियावत्थु

[N. 352, B. 309, R. 106] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स गहपतिस्स एकपुत्तको पियो मनापो कालङ्कतो होति। तस्स कालङ्किरियाय नेव कम्मन्ता पटिभन्ति न भत्तं पटिभाति। सो आळाहनं गन्त्वा कन्दति—"कहं, एकपुत्तक, कहं, एकपुत्तका" ति! अथ खो सो गहपति येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो तं गहपतिं भगवा एतदवोच— "न खो ते, गहपति, सके चित्ते ठितस्स इन्द्रियानि, अत्थि ते इन्द्रियानं अञ्ञथत्तं" ति।

"किं हि मे, भन्ते, इन्द्रियानं नाञ्ञथत्तं भविस्सति; मय्हं हि, भन्ते, एकपुत्तो पियो मनापो कालङ्कतो! तस्स कालङ्किरियाय नेव कम्मन्ता पटिभन्ति, न भत्तं पटिभाति। सोहं आळाहनं गन्त्वा कन्दामि—'कहं एक-पुत्तक, कहं एकपुत्तका' " ति!

"एवमेतं, गहपति, एवमेतं, गहपति! पियजातिका हि, गहपति, सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा पियप्पभविका" ति।

---

३७. प्रियजातिकसूत्र

१. गृहपतिपुत्र की मृत्युकथा

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के अनाथपिण्डक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय किसी गृहपति का प्रिय, दुलारा, एकमात्र पुत्र कालकवलित हो गया। उसके कालकवलित (मृत) होने से उस गृहपति का न तो किसी काम में ही मन लगता था, न उसकी किसी प्रकार के भोजन में रुचि रह गयी थी। वह समय बे-समय श्मशान में जा विलाप (क्रन्दन) करने लगता था—"अरे मेरे एकाकी पुत्र! तुम कहाँ हो?" तब कभी वह गृहपति जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस गृहपति से भगवान् ने पूछा—"क्या बात है, गृहपति! तुम्हारी चित्तवृत्ति (इन्द्रियाँ) तुम्हारे वश में नहीं जान पड़ती? तुम्हारी इन्द्रियों में कोई विकलता (अन्यथात्व) तो नहीं है?"

"भन्त! क्यों न हो मेरी इन्द्रियों में अन्यथात्व! मेरा प्यारा इकलौता पुत्र जो अचानक कालकवलित हो गया है। उसके कालकवलित होने से न मेरा किसी काम में···तुम कहाँ हो?"

"ऐसा ही होता है, गृहपति! ऐसा ही होता है। गृहपति! संसार में दिखायी

"कस्स खो नामेतं, भन्ते, एवं भविस्सति—'पियजातिका सोकपरिदेव-दुक्खदोमनस्सुपायसा पियप्पभविका'? पियजातिका हि खो, भन्ते आनन्द-सोमनस्सा पियप्पभविका" ति। अथ खो सो गहपति भगवतो भासितं अनभिनन्दित्वा पटिक्कोसित्वा उट्ठायासना पक्कामि।

२. तेन खो पन समयेन सम्बहुला अक्खधुत्ता भगवतो अविदूरे अक्खेहि दिब्बन्ति। अथ खो सो गहपति येन ते अक्खधुत्ता तेनुपसङ्कमि; [N. 353] उपसङ्कमित्वा अक्खधुत्ते एतदवोच—"इधाहं, भोन्तो, येन [R. 107] समणो गोतमो तेनुपसङ्कमिं; उपसङ्कमित्वा समणं गोतमं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिं। एकमन्तं निसिन्नं खो मं, भोन्तो, समणो गोतमो एतद-वोच—'न खो ते, गहपति, सके चित्ते ठितस्स इन्द्रियानि, अत्थि ते इन्द्रियानं अञ्ञथत्तं' ति। एवं वुत्ते अहं, भोन्तो, समणं गोतमं एतदवोचं—'किं हि मे, भन्ते, इन्द्रियानं नाञ्ञथत्तं भविस्सति; मय्हं हि, भन्ते, एकपुत्तको पियो मनापो कालङ्कतो। तस्स कालङ्किरियाय नेव कम्मन्ता पटिभन्ति, न भत्तं पटिभाति। सोहं आळाहनं गन्त्वा कन्दामि--कहं, एकपुत्तक, [B. 310] कहं एकपुत्तका' ति!

'एवमेतं, गहपति, एवमेतं, गहपति! पियजातिका हि, गहपति, सोक-परिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा पियप्पभविका' ति।

"कस्स खो नामेतं, भन्ते, एवं भविस्सति—पियजातिका सोकपरिदेव-दुक्खदोमनस्सुपायासा पियप्पभविका? पियजातिका हि खो, भन्ते, आनन्द-

---

देने वाले ये शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य या उपायास प्रिय के प्रति आसक्ति से ही उत्पन्न होने वाले हैं।"

"भन्ते! यह कौन मानेगा कि प्रिय की आसक्ति से शोक परिदेव, दुःख, दौर्म-नस्य या उपायास उत्पन्न होते हैं, प्रिय से तो, भन्ते! आनन्द और सौमनस्य की ही उत्पत्ति लोक में देखी जाती है।" फिर वह गृहपति भगवान् के कथन का अभिनन्दन न कर, उसको गलत बताता हुआ, आसन से उठ, वहाँ से चल दिया।

२. उस समय बहुत से जुआरी (अक्षधूर्त) जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ से कुछ दूर बैठे जुआ (द्यूत) खेल रहे थे। वह गृहपति जहाँ वे जुआरी थे वहाँ गया, जाकर उन जुआरियों से यों बोला—"माननीयो! अभी मैं जहाँ श्रमण गौतम थे वहाँ गया था। वहाँ जाकर…पूर्ववत्…'मेरे प्यारे इकलौते पुत्र कहाँ हो?'

'ऐसा ही होता है…प्रिय से ही उत्पन्न होने वाले हैं।"

"भन्ते! यह कौन मानेगा…" वहाँ से चल दिया।

सोमनस्सा पियप्पभविका' ति। अथ ख्वाहं, भोन्तो, समणस्स गोतमस्स भासितं अनभिनन्दित्वा पटिक्कोसित्वा उट्ठायासना पक्कामिं" ति।

"एवमेतं, गहपति, एवमेतं, गहपति! पियजातिका हि, गहपति, आनन्दसोमनस्सा पियप्पभविका" ति।

अथ खो सो गहपति "समेति मे अक्खधुत्तेही" ति पक्कामि। अथ खो इदं कथावत्थु अनुपुब्बेन राजन्तेपुरं पाविसि।

२. पसेनदिस्स मल्लिकाय पुच्छा

३. अथ खो राजा पसेनदि कोसलो मल्लिकं देविं आमन्तेसि--"इदं ते, मल्लिके, समणेन गोतमेन भासितं--'पियजातिका सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा पियप्पभविका' " ति?

"सचेतं, महाराज, भगवता भासितं, एवमेतं" ति।

[N. 354] "एवमेव पनायं मल्लिका यञ्ञदेव समणो गोतमो भासति तं तदेवस्स अब्भनुमोदति"।

"सचेतं, महाराज, भगवता भासितं एवमेतं ति सेय्यथापि नाम, यञ्ञदेव आचरियो अन्तेवासिस्स भासति तं तदेवस्स अन्तेवासी अब्भनुमोदति--'एवमेतं, आचरिय, एवमेतं, आचरिया' " ति। एवमेव खो त्वं, मल्लिके, यञ्ञदेव समणो गोतमो भासति तं तदेवस्स अब्भनुमोदसि"।

(तब जुआरियों ने कहा—) "ऐसा ही होता है गृहपति! प्रिय से तो आनन्द-सौमनस्य ही उत्पन्न होते हैं।"

तब वह गृहपति, यह मानकर कि 'ये जुआरी भी मुझसे सहमत हैं' चल दिया। उधर यह प्रकरण (गृहपति एवं भगवान् का यह संवाद) धीरे-धीरे राजघराने में भी पहुँच गया।

२. सेनजित् का मल्लिका से प्रश्न

३. तब राजा प्रसेनजित् ने मल्लिका देवी से पूछा—"मल्लिके! तुम्हारे श्रमण गौतम ने यह कहा है—"शोक, परिदेव··· प्रिय से ही सम्भव है?"

"यदि, महाराज! भगवान् ने ऐसा कहा है तो ठीक ही कहा होगा।"

"अरे! यह मल्लिका जो कुछ भी भगवान् कहते हैं उसी का अनुमोदन करती रहती है।"

"फिर राजा ने कहा—'यदि, महाराज! भगवान् ने ऐसा कहा है तो ठीक ही कहा है'—यह बात तो ऐसी ही हुई जैसे कोई आचार्य अपने अन्तेवासी को कुछ बतावे, तब अन्तेवासी आचार्य के उस कथन के बारे में कहे कि 'आचार्य ने ऐसा

"सचेतं महाराज, भगवता भासितं एवमेतं" ति। [R. 108]
"चर पि, रे मल्लिके, विनस्सा" ति।

अथ खो मल्लिका देवी नाळिजङ्घं ब्राह्मणं आमन्तेसि--"एहि त्वं, ब्राह्मण, येन भगवा तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा मम वचनेन भगवतो पादे सिरसा वन्दाहि, अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छ--'मल्लिका, भन्ते, देवी भगवतो पादे सिरसा वन्दति, अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छती' ति। एवं च वदेहि--'भासिता नु खो, भन्ते, भगवता एसा वाचा—पियजातिका सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा पियप्पभविका' ति। यथा ते भगवा ब्याकरोति तं साधुकं उग्गहेत्वा मम आरोचेय्यासि। न हि तथागता वितथं भणन्ती" ति।

"एवं, भोती" ति खो नाळिजङ्घो ब्राह्मणो मल्लिकाय देविया पटिस्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। [B. 311] सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो नाळिजङ्घो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"मल्लिका, भो गोतम, देवी भोतो गोतमस्स पादे सिरसा वन्दति; अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छति; एवं च वदेति—'भासिता नु खो, भन्ते, भगवता एसा वाचा—पियजातिका सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा पियप्पभविका' " ति ?

कहा है, इसलिये यही ठीक है'। इसी तरह मल्लिके! जो कुछ श्रमण गौतम कहते हैं, उसका तूँ भी अनुमोदन कर ही देती है।"

"यदि महाराज! भगवान् ने वह कहा है तो वह ठीक ही होना चाहिये।"

"अरी जा भी मल्लिके! दूर हट!"

तब मल्लिका देवी ने नाड़ीजङ्घ नामक ब्राह्मण को बुलाया, और उसको आदेश दिया—"ब्राह्मण! तुम जहाँ भगवान् हैं वहाँ जाओ, और मेरे कहने से भगवान् के चरणों में वन्दना करना और उसकी कुशलता, नीरोगता एवं स्वास्थ्य के विषय में पूछना और कहना--'भन्ते! मल्लिका देवी भगवान् के चरणों में वन्दना करती है, और आपकी कुशलता नीरोगता और स्वास्थ्य के विषय में पूछती है। और पूछा है—'भन्ते! आपने यह बात कही है कि शोक···उपायास आदि प्रिय के प्रति आसक्ति से ही सम्भूत होते हैं।' इस विषय में भगवान् जो कुछ भी कहें उसे ठीक से समझकर मुझे आकर बताओ। तथागत वितथ-(असत्य-) भाषी नहीं होते।"

"माननीये! ऐसा ही करूँगा" वह नाड़ीजङ्घ ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ··· भगवान् से बोला--'भन्ते! मल्लिका देवी ने···पूर्ववत्···प्रिय से ही सम्भूत होता है।'

४. "एवमेतं, ब्राह्मण, एवमेतं, ब्राह्मण! पियजातिका हि, ब्राह्मण, [N. 355] सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा पियप्पभविका ति। तद-मिनापेतं, ब्राह्मण, परियायेन वेदितब्बं यथा पियजातिका सोकपरिदेव-दुक्खदोमनस्सुपायासा पियप्पभविका। भूतपुब्बं, ब्राह्मण, इमिस्सा येव सावत्थिया अञ्ञतरिस्सा इत्थिया माता कालमकासि। सा तस्सा काल-किरियाय उम्मत्तिका खित्तचित्ता रथिकाय रथिकं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं उपसङ्कमित्वा एवमाह—'अपि मे मातरं अद्दस्सथ, अपि मे मातरं अद्दस्सथा' [R. 109] ति? इमिना पि खो एतं, ब्राह्मण, परियायेन वेदितब्बं यथा पियजातिका सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा पियप्पभविका ति।

"भूतपुब्बं, ब्राह्मण, इमिस्सा येव सावत्थिया अञ्ञतरिस्सा इत्थिया पिता कालमकासि...भाता कालमकासि...भगिनी कालमकासि...पुत्तो कालमकासि...धीता कालमकासि...सामिको कालमकासि...सा तस्स काल-किरियाय उम्मत्तिका खित्तचित्ता रथिकाय रथिकं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं उपसङ्कमित्वा एवमाह—'अपि मे सामिकं अद्दस्सथ, अपि मे सामिकं अद्-दस्सथा' ति? इमिना पि खो एतं, ब्राह्मण, परियायेन वेदितब्बं यथा पिय-जातिका सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा पियप्पभविका ति।

"भूतपुब्बं, ब्राह्मण, इमिस्सा येव सावत्थिया अञ्ञतरस्स पुरिसस्स माता कालमकासि। सो तस्सा कालकिरियाय उम्मत्तको खित्तचित्तो रथि-काय रथिकं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं उपसङ्कमित्वा एवमाह—'अपि मे मातरं [B. 312] अद्दस्सथ, अपि मे मातरं अद्दस्सथा' ति? इमिना पि खो एतं,

---

४. "ऐसा ही है, ब्राह्मण! ऐसा ही है। शोक...प्रिय से ही सम्भूत होते हैं। इस बात को स्पष्टतया समझाने के लिये कि—'शोक...प्रिय से ही सम्भूत हैं'। (इस पर एक कथा याद आती है।) ब्राह्मण! पहले कभी इसी श्रावस्ती में किसी स्त्री की माता की मृत्यु हो गयी। वह उसकी मृत्यु से उन्मत्त विक्षिप्तचित्त हो गली-गली, चौराहे-चौराहे जाकर सबसे पूछती थी—'क्या तुमने मेरी माता को देखा है?' इस कथानक से भी यह सिद्ध होता है कि शोक, परिदेव आदि प्रिय से ही सम्भूत होते हैं।

"ब्राह्मण! पहले कभी इसी श्रावस्ती में किसी स्त्री का पिता...भ्राता...बहन...पुत्र...पुत्री...स्वामी (पति) मर गया। वह उसकी मृत्यु से उन्मत्त विक्षिप्तचित्त...सम्भूत होते हैं।

"ब्राह्मण! पहले कभी इसी श्रावस्ती में किसी पुरुष की माता...सम्भूत होते हैं।

ब्राह्मण, परियायेन वेदितब्बं यथा पियजातिका सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा पियप्पभविका ति।

"भूतपुब्बं, ब्राह्मण, इमिस्सा येव सावत्थिया अञ्ञतरस्स पुरिसस्स पिता कालमकासि... भाता कालमकासि... भगिनी कालमकासि... पुत्तो कालमकासि... धीता कालमकासि... पजापति कालमकासि। सो तस्सा कालकिरियाय उम्मत्तको खित्तचित्तो रथिकाय रथिकं सिङ्घाटकेन [N. 356] सिङ्घाटकं उपसङ्कमित्वा एवमाह--'अपि मे पजापतिं अद्दस्सथ, अपि मे पजापतिं अद्दस्सथा' ति? इमिना खो एतं, ब्राह्मण, परियायेन वेदितब्बं यथा पियजातिका सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा पियप्पभविका ति।

"भूतपुब्बं, ब्राह्मण, इमिस्सा येव सावत्थिया अञ्ञतरा इत्थि ञातिकुलं अगमासि। तस्सा ते ञातका सामिकं अच्छिन्दित्वा अञ्ञस्स दातुकामा। सा च तं न इच्छति। अथ खो सा इत्थि सामिकं एतदवोच--'इमे, मं, अय्यपुत्त, ञातका त्वं अच्छिन्दित्वा अञ्ञस्स दातुकामा। अहं च तं न इच्छामी' ति। अथ खो सो पुरिसो तं इत्थिं द्विधा छेत्वा अत्तानं उप्फालेसि--'उभो पेच्च भविस्सामा' ति। इमिना पि खो एतं, ब्राह्मण, [R. 110] परियायेन वेदितब्बं यथा पियजातिका सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा पियप्पभविका" ति।

अथ खो नाळिजङ्घो ब्राह्मणो भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना येन मल्लिका देवी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा यावतको अहोसि भगवता सद्धिं कथासल्लापो तं सब्बं मल्लिकाय देविया आरोचेसि।

"ब्राह्मण! पहले कभी... किसी पुरुष का पिता... भ्राता... बहन... पुत्र... पुत्री... स्त्री की मृत्यु हो गयी। वह उसकी मृत्यु से उन्मत्त विक्षिप्तचित्त हो गली-गली, चौराहे-चौराहे जाकर सबसे... सम्भूत होते हैं।

"ब्राह्मण! पहले कभी इसी श्रावस्ती की कोई स्त्री अपने पितृगृह गयी थी। वहाँ उसे पता चला कि उसके ये मायके (मातृगृह) वाले उसके स्वामी की हत्या कर उसका विवाह किसी दूसरे से करना चाह रहे हैं। वह यह नहीं चाहती थी। तब उस स्त्री ने यह बात अपने स्वामी को बतायी और कहा कि मैं ऐसा नहीं चाहती। तब उस पुरुष ने उस स्त्री के दो टुकड़े कर अपने को भी यह सोचकर काट डाला कि 'दोनों मर कर पुनः एकत्र उत्पन्न होंगे।' ब्राह्मण इस कथानक से भी यही सिद्ध होता है कि शोक परिदेव आदि प्रिय में आसक्ति से ही... सम्भूत होते हैं।

तब वह नाड़ीजङ्घ ब्राह्मण, भगवान् के इस स्पष्टीकरण का अभिनन्दन-अनुमोदन कर मल्लिका देवी के आवास पर पहुँचा, और भगवान् से जो भी कथासँल्लाप हुआ था, वह मल्लिकादेवी को कह सुनाया।

३. मल्लिकाय धम्मी कथा

५. अथ खो मल्लिका देवी येन राजा पसेनदि कोसलो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा राजानं पसेनदिं कोसलं एतदवोच—"तं किं मञ्ञसि, महाराज, पिया ते वजिरी कुमारी" ति ?

"एवं, मल्लिके, पिया मे वजिरी कुमारी" ति।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, वजिरिया ते कुमारिया विपरिणामञ्ञथाभावा उप्पज्जेय्युं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा" ति ?

"वजिरिया मे, मल्लिके, कुमारिया विपरिणामञ्ञथाभावा जीवितस्स [B. 313] पि सिया अञ्ञथत्तं, किं पन मे न उप्पज्जिस्सन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा" ति ?

"इदं खो तं, महाराज, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मा- [N. 357] सम्बुद्धेन सन्धाय भासितं—'पियजातिका सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा पियप्पभविका' ति।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, पिया ते वासभा खत्तिया" ति ?

"एवं, मल्लिके, पिया मे वासभा खत्तिया" ति।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, वासभाय ते खत्तियाय विपरिणामञ्ञथाभावा उप्पज्जेय्युं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा" ति ?

---

३. मल्लिका देवी द्वारा धार्मिक चर्चा

५. तब मल्लिका देवी जहाँ राजा प्रसेनजित थे वहाँ पहुँची। पहुँचकर राजा प्रसेनजित् को यों बोली--"तो क्या मानते हो महाराज! आपको अपनी इकलौती वज्री कुमारी प्रिय है न ?"

"अवश्य, मल्लिके, मुझे वज्री कुमारी प्रिय है।" "तो क्या मानते हो महाराज! आप की उस वज्री कुमारी को कोई सङ्कट या और कोई ऐसी-वैसी बात हो जाय तो उसके कारण आपको शोक…उपायास होंगे या नहीं ?"

"मल्लिके! कुमारी पर कोई संकट या ऐसी-वैसी बात होने पर मेरे जीवन पर कुछ भी घट सकता है, शोक-परिदेव आदि की तो बात ही क्या !"

"महाराज! यही भाव लेकर उन भगवान् सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध ने कहा है—'शोक-परिदेव आदि प्रिय से ही सम्भव (उत्पन्न) होते हैं"।

"तो क्या मानते हो महाराज! वासभक्षत्रिया आप को प्रिय है कि नहीं ?"

"तो क्या मानते हो, महाराज!…उपायास होंगे या नहीं ?"

"मल्लिके! वासभा पर…उपायास की तो बात ही क्या !"

"महाराज! यही भाव लेकर…प्रिय से ही उत्पन्न होते हैं।"

"वासभाय मे, मल्लिके, खत्तियाय विपरिणामञ्ञथाभावा जीवितस्स पि सिया अञ्ञथत्तं, किं पन मे न उप्पज्जिस्सन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा" ति ?

"इदं खो तं, महाराज, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सन्धाय भासितं--'पियजातिका सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा पियप्पभविका' ति ।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, पियो ते विडूडभो सेनापती" ति ?

"एवं, मल्लिके, पियो मे विडूडभो सेनापती" ति । [R. 111]

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, विडूडभस्स ते सेनापतिस्स विपरिणामञ्ञथाभावा उप्पज्जेय्युं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा" ति ?

"विडूडभस्स मे, मल्लिके, सेनापतिस्स विपरिणामञ्ञथाभावा जीवितस्स पि सिया अञ्ञथत्तं, किं पन मे न उप्पज्जिस्सन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा" ति ?

"इदं खो तं, महाराज, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सन्धाय भासितं—'पियजातिका सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा पियप्पभविका' ति ।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, पिया ते अहं" ति ?

"एवं, मल्लिके, पिया मेसि त्वं" ति ।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, मय्हं ते विपरिणामञ्ञथाभावा उप्पज्जेय्युं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा" ति ?

"तुय्हं हि मे, मल्लिके, विपरिणामञ्ञथाभावा जीवितस्स पि सिया अञ्ञथत्तं, किं पन मे न उप्पज्जिस्सन्ति सोकपरिदेवदुक्ख- [N. 358] दोमनस्सुपायासा" ति ?

"तो क्या मानते हो, महाराज ! विड्डभ सेनापति आपको प्रिय है या नहीं ?"

"अवश्य मल्लिके ! वह मुझे प्रिय है ।"

"तो क्या मानते हो, महाराज ! उपायास होंगे या नहीं !"

"मल्लिके ! विड्डभ पर कोई सङ्कट... उपायास की तो बात ही क्या !"

"महाराज ! यही भाव लेकर... प्रिय से सम्भव है ।"

"तो क्या मानते हो, महाराज ! मैं आपकी प्रिय हूँ कि नहीं ?"

"अवश्य, मल्लिके ! तुम मुझे बहुत प्रिय हो ।"

"तो क्या मानते हो महाराज ! मुझ पर कोई सङ्कट... उपायास होंगे कि नहीं ?

"मल्लिके ! तुम पर कोई सङ्कट... उपायास की तो बात ही क्या !"

"इदं खो तं, महाराज, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सन्धाय भासितं—'पियजातिका सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा [B. 314] पियप्पभविका' ति। तं किं मञ्ञसि, महाराज, पिया ते कासिकोसला" ति ?

"एवं, मल्लिके, पिया मे कासिकोसला। कासिकोसलानं, मल्लिके, आनुभावेन कासिकचन्दनं पच्चनुभोम, मालागन्धविलेपनं धारेमा" ति।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, कासिकोसलानं ते विपरिणामञ्ञथाभावा उप्पज्जेय्युं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा" ति ?

"कासिकोसलानं हि, मल्लिके, विपरिणामञ्ञथाभावा जीवितस्स पि सिया अञ्ञथत्तं, किं पन मे न उप्पज्जिसन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा" ति ?

"इदं खो तं, महाराज, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सन्धाय भासितं--'पियजातिका सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासापियप्पभविका' " ति।

[R. 812] "अच्छरियं, मल्लिके, अब्भुतं, मल्लिके ! यावञ्च सो भगवा पञ्ञाय अतिविज्झ मञ्ञे पस्सति। एहि, मल्लिके, आचमेही" ति।

अथ खो राजा पसेनदि कोसलो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा तिक्खत्तुं उदानं उदानेसि—"नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स, नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स, नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्सा" ति।

"महाराज ! यही भाव लेकर...प्रिय से सम्भूत है।"

"तो क्या मानते हो महाराज ! आप को काशी व कौसल प्रदेश की जनता आपको प्रिय है कि नहीं ?...पूर्ववत्...।"

"महाराज ! यही भाव लेकर...उपायास आदि प्रिय से ही सम्भूत हैं।"

"आश्चर्य है, मल्लिके ! अद्भुत है मल्लिके ! वे भगवान् कैसे हैं ! वे तो मानो हर बात को प्रज्ञा से भली-भाँति समझ कर देखते हैं। आओ, मल्लिके ! हम दोनों सङ्कल्प लें।"

एतदनन्तर राजा प्रसेनजित् कौसल ने आसन से उठकर, अपना उत्तरासङ्ग एक कन्धे पर कर, जिधर भगवान् थे उधर करबद्ध प्रणाम कर, तीन बार ये उद्‌गार प्रकट किये—"उन भगवान् ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम है, उन भगवान् ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम है, उन भगवान् ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम है।"

प्रियजातिकसुत्त समाप्त ॥

३८. बाहितिकसुत्तं

१. ओपारम्भो काय-वची-मनोसमाचारो

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति [N. 359] जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो आयस्मा आनन्दो पुब्बण्ह-समयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थियं पिण्डाय पाविसि। सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो येन पुब्बारामो मिगार-मातुपासादो तेनुपसङ्कमि दिवाविहाराय। तेन खो पन समयेन राजा पसेनदि कोसलो एकपुण्डरीकं नागं अभिरुहित्वा सावत्थिया निय्याति दिवा-दिवस्स। अद्दसा खो राजा पसेनदि कोसलो आयस्मन्तं आनन्दं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान सिरिवड्ढं महामत्तं आमन्तेसि—"आयस्मा नो एसो, सम्म सिरिवड्ढ, आनन्दो" ति ? [B. 315]

"एवं, महाराज, आयस्मा एसो आनन्दो" ति।

अथ खो राजा पसेनदि कोसलो अञ्ञतरं पुरिसं आमन्तेसि—"एहि त्वं, अम्भो पुरिस, येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा मम वचनेन आयस्मतो आनन्दस्स पादे सिरसा वन्दाहि—'राजा, भन्ते, पसेनदि कोसलो आयस्मतो आनन्दस्स पादे सिरसा वन्दती' ति। एवं च वदेहि—'सचे किर,

---

३८. बाहितिकसुत्त

१. उपालम्भयुक्त काय-वाक्-मनोव्यापार

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के अनाथपिण्डक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय कभी आयुष्मान् आनन्द पूर्वाह्न समय बिताकर, पात्र-चीवर ले, श्रावस्ती में भिक्षाहेतु गये। श्रावस्ती में भिक्षाचर्या कर वे दिन की साधनाहेतु पूर्वाराम के मृगार-मातृ-प्रासाद में जा रहे थे। उसी समय राजा प्रसेनजित् कौसल मध्याह्न में किसी कार्यविशेष से एकपुण्डरीक नामक हाथी पर चढ़कर श्रावस्ती से निकला था। वहाँ राजा प्रसेनजित् ने आयुष्मान् आनन्द को दूर से ही आते देखा। देखकर उसने श्रीवर्ध नामक महामात्य को पूछा—"सौम्य श्री वर्ध! क्या ये हमारे आयुष्मान् आनन्द हैं ?"

"हाँ, महाराज! ये आयुष्मान् आनन्द ही हैं।"

तब राजा प्रसेनजित् कौसल ने एक अनुचर को आदेश दिया—"अरे अनुचर! तुम जहाँ आयुष्मान् आनन्द हैं वहाँ जाओ, और मेरी तरफ से उनके चरणों में सिर नवाकर कहना—'राजा प्रसेनजित् कौसल, भन्ते! आपके चरणों में सिर नवाता है'। और (यह भी) कहना—'भन्ते! यदि आयुष्मान् आनन्द को कोई अन्य

भन्ते, आयस्मतो आनन्दस्स न किञ्चि अच्चायिकं करणीयं, आगमेतु किर, [R. 113] भन्ते, आयस्मा आनन्दो मुहुत्तं अनुकम्पं उपादाया" ति।

"एवं, देवा" ति खो सो पुरिसो रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स पटिस्सुत्वा येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो सो पुरिसो आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच--"राजा, भन्ते, पसेनदि कोसलो आयस्मतो आनन्दस्स पादे सिरसा वन्दति; एवं च वदेति--'सचे किर, भन्ते, आयस्मतो आनन्दस्स न [N. 360] किञ्चि अच्चायिकं करणीयं, आगमेतु किर, भन्ते, आयस्मा आनन्दो मुहुत्तं अनुकम्पं उपादाया' " ति। अधिवासेसि खो आयस्मा आनन्दो तुण्हीभावेन। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो यावतिका नागस्स भूमि नागेन गन्त्वा नागा पच्चोरोहित्वा पत्तिको व येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो राजा पसेनदि कोसलो आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच— 'सचे, भन्ते, आयस्मतो आनन्दस्स न किञ्चि अच्चायिकं करणीयं, साधु, भन्ते, आयस्मा आनन्दो येन अचिरवतिया नदिया तीरं तेनुपसङ्कमतु अनुकम्पं उपादाया" ति। अधिवासेसि खो आयस्मा आनन्दो तुण्हीभावेन।

२. अथ खो आयस्मा आनन्दो येन अचिरवतिया नदिया तीरं तेनुपस-

आप के कार्य में विघ्न न हो तो, भन्ते ! आयुष्मन् आनन्द ! कृपा करके कुछ समय के लिये यहाँ ठहरें।"

"ठीक है देव !"—राजा प्रसेनजित् को यह उत्तर दे, वह पुरुष जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्द को प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़ा हुआ वह अनुचर आयुष्मान् आनन्द से यों निवेदन करने लगा--"भन्ते ! राजा प्रसेनजित् कौसल ने आयुष्मान् आनन्द के चरणों सिर नवाया है, और यह विनय किया है--'यदि कुछ समय के लिये यहाँ ठहरें'।"

आयुष्मान् आनन्द ने मौन भाव से (राजा का कथन) स्वीकार कर लिया।

तब राजा प्रसेनजित् कौसल, जितना हाथी से जाने का रास्ता था उतना हाथी से पार कर बाकी को उससे उतरकर पैदल ही जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ पहुँचकर आ० आनन्द को प्रणाम...कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हो उसने उनसे कहा--"भन्ते ! यदि कोई...तो कृपया आप अचिरवती नदी के तट पर पधारें।" (वहीं बैठकर कुछ धर्म की चर्चा होगी।)

आयुष्मान् आनन्द ने यह बात भी मौन भाव से स्वीकार कर ली।

२. आयुष्मान् आनन्द अचिरवती नदी के किनारे पहुँचकर किसी वृक्ष के नीचे

ङ्कमि; उपसङ्कमित्वा अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो यावतिका नागस्स भूमि नागेन गन्त्वा नागा पच्चोरोहित्वा पत्तिको व येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो राजा पसेनदि कोसलो आयस्मन्तं आनन्द एतदवोच—"इध, भन्ते, आयस्मा आनन्दो हत्थत्थरे निसीदतू" ति। [B. 316]

"अलं, महाराज। निसीद त्वं; निसिन्नो अहं सके आसने" ति। निसीदि खो राजा पसेनदि कोसलो पञ्ञत्ते आसने। निसज्ज खो राजा पसेनदि कोसलो आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—"किं नु खो, भन्ते आनन्द, सो भगवा तथारूपं कायसमाचारं समाचरेय्य, य्वास्स कायसमाचारो ओपारम्भो समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूहीति ?

"न खो, महाराज, सो भगवा तथारूपं कायसमाचारं समाचरेय्य, य्वास्स कायसमाचारो ओपारम्भो समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूही" ति।

"किं पन, भन्ते आनन्द, सो भगवा तथारूपं वचीससमाचारं [R. 114] ...पे०...मनोसमाचारं समाचरेय्य, य्वास्स मनोसमाचारो ओपारम्भो समणेहि ब्राह्मणेही" ति ?

"न खो, महाराज, सो भगवा तथारूपं मनोसमाचारं समा- [N. 361] चरेय्य, य्वास्स मनोसमाचारो ओपारम्भो समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूही" ति।

"अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! यं हि मयं, भन्ते, नासक्खिम्हा पञ्हेन परिपूरेतुं तं, भन्ते, आयस्मता आनन्देन पञ्हस्स वेय्याकरणेन परि-

---

बिछे आसन पर विराजे। उधर राजा प्रसेनजित् कौसल भी···एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द से यों बोले--"भन्ते आनन्द ! इस गलीचे (या कालीन) पर विराजें।"

"ठीक है, महाराज ! आप ही विराजें, मैं तो अपने उचित स्थान पर ही बैठा हूँ। राजा प्रसेनजित् उस बिछे कालीन पर बैठे। बैठकर राजा···यह पूछा--"भन्ते, क्या वे भगवान् वैसा कायिक आचरण कर सकते हैं जो श्रमण ब्राह्मणों द्वारा निन्दित (उपालम्भ योग्य) हो ?"

"नहीं, महाराज ! वे भगवान् वैसा कायिक आचरण नहीं कर सकते···हो।"

"क्या, भन्ते, आनन्द वे भगवान् ऐसा वाचिक आचरण···?"

"नहीं, महाराज···।"

"क्या भन्ते···ऐसा मानसिक आचरण···?"

"नहीं महाराज···!"

आश्चर्य है, भन्ते ! अद्भुत है, भन्ते ! जो हम दूसरे श्रमणों से प्रश्न कर पूर्णतया

पूरितं। ये ते, भन्ते, बाला अब्यत्ता अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा परेसं वण्णं वा अवण्णं वा भासन्ति, न मयं तं सारतो पच्चागच्छाम; ये पन ते, भन्ते, पण्डिता वियत्ता मेधाविनो अनुविच्च परियोगाहेत्वा परेसं वण्णं वा अवण्णं वा भासन्ति, मयं तं सारतो पच्चागच्छाम।

३. "कतमो पन, भन्ते आनन्द, कायसमाचारो ओपारम्भो समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूही" ति ?

"यो खो, महाराज, कायसमाचारो अकुसलो"।

"कतमो पन, भन्ते, कायसमाचारो अकुसलो" ?

"यो खो, महाराज, कायसमाचारो सावज्जो"।

"कतमो पन, भन्ते, कायसमाचारो सावज्जो" ?

[B. 317] "यो खो, महाराज, कायसमाचारो सब्याबज्झो"।

"कतमो पन, भन्ते कायसमाचारो सब्याबज्झो" ?

"यो खो, महाराज, कायससाचारो दुक्खविपाको"।

"कतमो पन, भन्ते, कायसमाचारो दुक्खविपाको" ?

"यो खो, महाराज, कायसमाचारो अत्तब्याबाधाय पि संवत्तति, परब्याबाधाय पि संवत्तति, उभयब्याबाधाय पि संवत्तति तस्स अकुसला धम्मा

नहीं जान सके, उसे आपने सरलतया ही हमको समझा दिया। भन्ते! जो नासमझ मूर्ख (बाल) बिना सोचे, बिना समझे दूसरों का प्रशंसात्मक या निन्दात्मक उत्तर-प्रत्युत्तर करते रहते हैं, उसे हम सार (तत्त्व=निष्कर्ष) मानकर ग्रहण नहीं करते। और भन्ते! जो पण्डित या मेधावान् पुरुष भलीभाँति सोच-समझकर गहनतया विचार कर प्रशंसात्मक (अनुकूल) या निन्दात्मक (प्रतिकूल) भाषण करते हैं उसे हम निष्कर्ष मानकर ग्रहण करते हैं।

३. भन्ते! कौन सा कायिक आचरण श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा उपालम्भनीय (निन्दनीय) है ?"

"महाराज! जो कायिक आचरण अकुशल है।"

"भन्ते! अकुशल कायिक आचरण कौन सा है ?"

"महाराज! दोषमय (अवद्य) कायिक आचरण अकुशल है।"

"भन्ते! कौन सा कायिक आचरण दोषमय है ?"

"महाराज! जो कायिक आचरण हिंसायुक्त होता है।"

"भन्ते! कौन सा कायिक आचरण हिंसायुक्त होता है ?"

"महाराज! जो कायिक आचरण अपने लिये दुःख फल का देने वाला है,... वही कायिक आचरण श्रमण ब्राह्मणों द्वारा निन्द्य है।"

अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति; एवरूपो खो, महाराज, काय-समाचारो ओपारम्भो समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूही" ति।

कतमो पन, भन्ते आनन्द, वचीसमाचारो...पे०...मनोसमाचारो...पे० ...एवरूपो खो, महाराज, मनोसमाचारो ओपारम्भो समणेहि [R. 115] ब्राह्मणेहि विञ्ञूही ति।

"किं नु खो, भन्ते आनन्द, सो भगवा सब्बेसं येव अकुसलानं धम्मानं पहानं वण्णेती" ति?

"सब्बाकुसलधम्मपहीनो खो, महाराज, तथागतो कुसल- [N. 362] धम्मसमन्नागतो" ति।

२. अनोपारम्भो काय-वची-मनोसमाचारो

४. "कतमो पन, भन्ते आनन्द, कायसमाचारो अनोपारम्भो समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूही" ति?

"यो खो, महाराज, कायसमाचारो कुसलो"।

"कतमो पन, भन्ते, कायसमाचारो कुसलो"? [B. 318]

"यो खो महाराज, कायसमाचारो अनवज्जो"।

"भन्ते! कौन सा कायिक आचरण दुःख का फल दाता है?"

"महाराज! जो कायिक आचरण अपने लिये पीड़ा दायक या पर के लिये पीड़ादायक व उभय के लिये पीड़ादायक होता है उससे अकुशल (पापमय) धर्म वृद्धिङ्गत होते हैं तथा कुशल धर्म क्षीण होने लगते हैं; महाराज! इस प्रकार का कायिक आचरण विज्ञ श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा निन्दनीय कहा गया है।"

भन्ते आनन्द! कौन सा वाचिक आचरण···पूर्ववत्···मानसिक आचरण··· निन्दनीय कहा गया है।

"भन्ते आनन्द! क्या हमारे आदरणीय भगवान् ने सभी अकुशल धर्मों के प्रहाण का उपदेश किया है?"

"महाराज! तथागत सभी अकुशल धर्मों (बुराइयों) से रहित हैं, सभी कुशल-धर्मों से युक्त हैं।"

२. अनुपालम्भसयुक्त काय-वाक्-मनोव्यापार

४. भन्ते आनन्द! कौन सा कायिक आचरण विज्ञ श्रमण ब्राह्मणों द्वारा अनिन्दनीय कहा गया है?"

"महाराज! जो कायिक आचरण कुशल हो।"

"भन्ते! कुशल कायिक आचरण कौन सा है?"

"महाराज! जो कायिक आचरण अनवद्य हो।"

"कतमो पन, भन्ते, कायसमाचारो अनवज्जो" ?

"यो खो, महाराज, कायसमाचारो अब्याबज्झो" ।

"कतमो पन, भन्ते, कायसमाचारो अब्याबज्झो" ?

"यो खो, महाराज, कायसमाचारो सुखविपाको" ।

"कतमो पन, भन्ते, कायसमाचारो सुखविपाको" ?

"यो खो, महाराज, कायसमाचारो नेवत्तब्याबाधाय पि संवत्तति, न परब्याबाधाय पि संवत्तति, न उभयब्याबाधाय पि संवत्तति तस्स अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति; एवरूपो खो, महाराज, कायसमाचारो अनोपारम्भो समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूही ति।

कतमो पन, भन्ते आनन्द, वचीसमाचारो...पे०...मनोसमाचारो...पे० [R. 116] ...एवरूपो खो, महाराज, मनोसमाचारो अनोपारम्भो समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूही" ति ।

किं पन, भन्ते आनन्द, सो भगवा सब्बेसं येव कुसलानं धम्मानं उपसम्पदं वण्णेती" ति ?

"सब्बाकुसलधम्मपहीनो खो, महाराज, तथागतो कुसलधम्मसमन्नागतो" ति ।

३. कोसलरञ्ञो अत्तमनता

[B. 319] ४. "अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते ! याव सुभासितं

"भन्ते ! अनवद्य कायिक आचरण कौन सा है ?"

"महाराज ! जो कायिक आचरण हिंसायुक्त न हो ।"

"भन्ते ! कौन सा कायिक आचरण अहिंसायुक्त होता है ?"

"महाराज ! जो कायिक आचरण सुखमय फलप्रद हो ।

"भन्ते ! कौन सा कायिक आचरण सुखमय फलप्रद होता है ?"

"महाराज ! जो कायिक आचरण न अपने लिये पीड़ादायक...न पर के लिये... अनिन्दनीय (अनुपालम्भयोग्य) कहा गया है ।"

भन्ते ! कौन सा वाचिक आचरण...मानसिक आचरण...बिज्ञ श्रमण ब्राह्मणों द्वारा अनिन्दनीय कहा गया है ।

"भन्ते ! क्या हमारे आदरणीय भगवान् ने सभी कुशल धर्मों को स्वीकार करने का उदेश किया है ?"

"महाराज ! तथागत तो सभी अकुशल धर्मों से रहित एवं कुशल धर्मों (अच्छाइयों) से युक्त हैं ।

३. कौसल नरेश का प्रमुदित होना

"आश्चर्य है, भन्ते ! अद्भुत है ! आपका कथन कितना सुन्दर (मनोरम) है !

चिदं, भन्ते, आयस्मता आनन्देन। इमिना च मयं, भन्ते, आयस्मतो आनन्दस्स सुभासितेन अत्तमनाभिरद्धा। एवं अत्तमनाभिरद्धा च मयं, [N. 363] भन्ते, आयस्मतो आनन्दस्स सुभासितेन। सचे, भन्ते, आयस्मतो आनन्दस्स हत्थिरतनं कप्पेय्य, हत्थिरतनं पि मयं आयस्मतो आनन्दस्स ददेय्याम। सचे, भन्ते, आयस्मतो आनन्दस्स अस्सरतनं कप्पेय्य, अस्सरतनं पि मयं आयस्मतो आनन्दस्स ददेय्याम। सचे, भन्ते, आयस्मतो आनन्दस्स गामवरं कप्पेय्य, गामवरं पि मयं आयस्मतो आनन्दस्स ददेय्याम। अपि च, भन्ते, मयम्पेतं जानाम—'नेतं आयस्मतो आनन्दस्स कप्पती' ति। अयं मे, भन्ते, बाहितिका रञ्ञा मागधेन अजातसत्तुना वेदेहिपुत्तेन वत्थनाळिया पक्खिपित्वा पहिता सोळससमा आयामेन, अट्ठसमा वित्थारेन। तं, भन्ते, आयस्मा आनन्दो पटिग्गण्हातु अनुकम्पं उपादाया" ति।

"अलं, महाराज, परिपुण्णं मे तिचीवरं" ति।

"अयं, भन्ते, अचिरवती नदी दिट्ठा आयस्मता चेव [R. 117] आनन्देन अम्हेहि च। यदा उपरिपब्बते महामेघो अभिप्पवुट्ठो होति, अथायं अचिरवती नदी उभतो कूलानि संविस्सन्दन्ती गच्छति; एवमेव खो, भन्ते, आयस्मा आनन्दो इमाय बाहितिकाय अत्तनो तिचीवरं करिस्सति। यं पनायस्मतो आनन्दस्स पुराणं तिचीवरं तं सब्रह्मचारीहि संविभजिस्सति। एवायं अम्हाकं दक्खिणा संविस्सन्दन्ती मञ्ञे गमिस्सति। पटिग्गण्हातु,

---

भन्ते ! हम आप आयुष्मान् आनन्द के सुभाषित से अत्यन्त प्रसन्न हैं। इस तरह प्रसन्न हुए हम, भन्ते ! आपको कोई हस्तिरत्न (श्रेष्ठ हाथी) भी भेंट कर सकते हैं; यदि वह आपके (श्रमण-) धर्म में ग्राह्य माना गया हो। यदि भन्ते ! आप अश्वरत्न चाहें तो वह भी हम दे सकते हैं, या कोई श्रेष्ठ ग्राम चाहें तो वह भी दे सकते हैं। परन्तु, भन्ते ! हम यह भी जानते हैं कि (धर्मानुशासन के अनुसार) आप आयुष्मान् आनन्द को यह सब ग्राह्य (स्वीकार्य) नहीं होगा। अतः भन्ते ! यह राजा मागध वैदेहीपुत्र द्वारा भेजी गयी सोलह हाथ लम्बी, आठ हाथ चौड़ी वाहितिका (वाहीत राष्ट्र में बनने वाला वस्त्र) हमारे पास है, इसे, भन्ते ! आप आयुष्मान् आनन्द कृपया स्वीकार करें।"

"रहने दें, महाराज ! मेरे पास मेरा त्रिचीवर ही पर्याप्त है।"

"भन्ते ! यह अचिरवती नदी जिसे आप और हम सभी देख रहे हैं। जब पर्वत पर पानी बरसता है तो वह इसमें आकर भर जाता है, तब यह नदी अपने दोनों किनारों के ऊपर से बहने लगती है; इसी प्रकार यह बाहितिका कभी आपको त्रिचीवर का काम देगी। और आपका त्रिचीबर किसी अन्य भिक्षु के उपयाग में आ जायगा।

भन्ते, आयस्मा आनन्दो बाहितिकं" ति। पटिग्गहेसि खो आयस्मा आनन्दो बाहितिकं।

अथ खो राजा पसेनदि कोसलो आयस्मन्तं एतदवोच—"हन्द च दानि मयं, भन्ते आनन्द, गच्छाम; बहुकिच्चा मयं बहुकरणीया" ति।

"यस्सदानि त्वं, महाराज, कालं मञ्ञसी" ति।

अथ खो राजा पसेनदि कोसलो आयस्मतो आनन्दस्स भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना आयस्मन्तं आनन्दं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि।

४. भगवतो अनुमोदना

[N. 364, B. 320] ६. अथ खो आयस्मा आनन्दो अचिरपक्कन्तस्स रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो यावतको अहोसि रञ्ञा पसेनदिना कोसलेन सद्धिं कथासल्लापो तं सब्बं भगवतो आरोचेसि। तं च बाहितिकं भगवतो पादासि। अथ खो भगवा

यों हमारा किया दान भी सफल हो जायगा। अतः आप आनन्द ! इस बाहितिका को स्वीकार कर लें।" आयुष्मान् आनन्द ने (राजा के आग्रह को न टालते हुए वह) बाहितिका स्वीकार कर ली।

तब राजा प्रसेनजित् कौसल ने आयुष्मान् आनन्द से यों निवेदन किया--"भन्ते आनन्द ! अब हम चलें; हमें और भी बहुत से कार्य हैं, जिन्हें पूर्ण करना आवश्यक है।"

"महाराज ! जैसा आप उचित समझें।"

तब राजा प्रसेनजित् कौसल आयुष्मान् आनन्द के कथन का अभिनन्दन-अनुमोदन कर, आसन से उठ, आयुष्मान् आनन्द को अभिवादन-प्रदक्षिणा कर, वापस लौट गया।

४. भगवान् द्वारा आयुष्मान् आनन्द के कथन का अनुमोदन

६. तब आयुष्मान् आनन्द, राजा प्रसेनजित् के चले जाने के कुछ ही देर बाद, जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द ने राजा प्रसेनजित् कौसल के साथ जो कुछ भी धार्मिक चर्चा (कथासँल्लाप) हुई थी, वह सब भगवान् के सम्मुख कह सुनायी। और वह बाहितिका भी भगवान् को समर्पित कर दी। तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—

भिक्खू आमन्तेसि—"लाभा, भिक्खवे, रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स, सुलद्धलाभा, भिक्खवे, रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स; यं राजा पसेनदि कोसलो लभति आनन्दं दस्सनाय, लभति पयिरुपासनाया" ति।

७. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति।

●

"भिक्षुओ! राजा प्रसेनजित्...को लाभ ही है...सुलाभ मिला है, जो राजा इस धर्मश्रवण का आनन्द उठाता है, भिक्षु-(धर्म) सेवा का सुअवसर पाता है।"

७. भगवान् यों बोले। भिक्षुओं ने सन्तुष्ट हो भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया॥

वाहितिकसुत्त समाप्त॥

●

३९. धम्मचेतियसुत्तं

१. कोसलरञ्ञो भगवति निपच्चकारो

[N. 365, R. 118] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सक्केसु विहरति मेदळुम्पं नाम सक्यानं निगमो। तेन खो पन समयेन राजा पसेनदि कोसलो नगरकं अनुप्पत्तो होति केनचिदेव करणीयेन। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो दीघं कारायनं आमन्तेसि—"योजेहि, सम्म कारायन, भद्रानि भद्रानि यानानि, उय्यानभूमिं गच्छाम सुभूमिं दस्सनाया" ति। "एवं, देवा" ति खो दीघो कारायनो रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स पटिस्सुत्वा भद्रानि भद्रानि यानानि योजापेत्वा रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स पटिवेदेसि—"युत्तानि खो ते, देव, भद्रानि भद्रानि यानानि। यस्सदानि कालं मञ्ञसी" ति। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो भद्रं यानं अभिरुहित्वा भद्रेहि भद्रेहि यानेहि नगरकम्हा निय्यासि महच्चा राजानुभावेन। येन आरामो तेन पायासि। यावतिका यानस्स भूमि यानेन गन्त्वा याना पच्चोरोहित्वा पत्तिको व आरामं पाविसि। अद्दसा खो राजा पसेनदि कोसलो आरामे [B. 321] जङ्घाविहारं अनुचङ्कममानो अनुविचरमानो रुक्खमूलानि पासादिकानि पसादनीयानि अप्पसद्दानि अप्पनिग्घोसानि विजनवातानि मनुस्सराहस्सेय्यकानि पटिसल्लानसारुप्पानि। दिस्वान भगवन्तं येव आरब्भ

---

३९. धर्मचैत्यसुत्त

१. कौसलराज का भगवान् के प्रति विनय

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) शाक्य प्रदेश के मेदडुम्प नामक शाक्य ग्राम में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। उस समय राजा प्रसेनजित् कौसल नगरक[१] (=नगला) में किसी कार्यविशेष से आया हुआ था। तब राजा प्रसेनजित् ने दीर्घकारायण को बुलाकर आज्ञा दी—"सौम्य कारायण ! अच्छे-अच्छे रथ तय्यार कराओ। हम सुभूमि (पृथ्वी का सौन्दर्य) देखने के लिये उदयानभूमि जाँयगें।" "ठीक है, देव !" ऐसा कहकर (कुछ देर बाद) दीर्घ कारायण ने राजा प्रसेनजित् को बताया—"देव ! अच्छे-अच्छे रथ तय्यार करा दिये हैं। अब जैसा आप उचित समझें।" तब राजा प्रसेनजित् कौसल ने एक अच्छे यान पर सवार हो, बाकी यानों को अपने यान के पीछे लगा राजकीय ठाट-बाट के साथ नगरक से निकलकर, जहाँ आराम था, वहाँ गया। जितनी दूर यान से जाने का मार्ग था यान से जाकर, बाकी यान से उतर कर पैदल ही उद्यान (आराम) में प्रविष्ट हुआ। राजा ने पैदल चलते हुए कुछ ऐसे मनोमोहक, शब्दरहित, निर्जन

---

१. पश्चिमी उत्तर प्रदेश में आज भी सुविधासम्पन्न बड़े ग्राम को नगरक (नगला) कहते है।

सति उदपादि—"इमानि खो तानि रुक्खमूलानि पासादिकानि पसादनीयानि अप्पसद्दानि अप्पनिग्घोसानि विजनवातानि मनुस्सराहस्सेय्यकानि पटिसल्लानसारुप्पानि, यत्थ सुदं मयं तं भगवन्तं पयिरुपासाम अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं" ति ।

२. अथ खो राजा पसेनदि कोसलो दीघं कारायनं आमन्तेसि—"इमानि खो, सम्म कारायन, तानि रुक्खमूलानि पासादिकानि पसादनीयानि अप्पसद्दानि अप्पनिग्घोसानि विजनवातानि मनुस्सराहस्सेय्यकानि [N. 366] पटिसल्लानसारुप्पानि, यत्थ सुदं मयं तं भगवन्तं पयिरुपासाम अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं । कहं नु खो, सम्म कारायन, एतरहि सो भगवा विहरति अरहं सम्मासम्बुद्धो" ति ? [R. 119]

"अत्थि, महाराज, मेदळुम्पं नाम सक्यानं निगमो । तत्थ सो भगवा एतरहि विहरति अरहं सम्मासम्बुद्धो" ति ।

"कीवदूरे पन, सम्म कारायन, नगरकम्हा मेदळुम्पं नाम सक्यानं निगमो होति" ति ?

"न दूरे, महाराज, तीणि योजनानि; सक्का दिवसावसेसेन गन्तुं" ति ।

"तेन हि सम्म कारायन, योजेहि भद्रानि भद्रानि यानानि, गमिस्साम मयं तं भगवन्तं दस्सनाय अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं" ति । "एवं, देवा" ति खो दीघो कारायनो रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स पटिस्सुत्वा भद्रानि

एकान्त होने से सुखदायक एवं नीचे बैठकर ध्यान भावना करने योग्य वृक्ष देखे । उन्हें देखकर उसे भगवान् की ही स्मृति हुई कि ये वृक्ष तो कुछ वैसे ही मन को मोहने वाले, निःशब्द, निर्जन, एकान्त होने से सुखदायक एव ध्यानभावनाहेतु अनुकूल दिखायी पड़ते हैं, जहाँ बैठकर हम भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध की सेवा-सुश्रूषा एवं उनसे 'धर्मश्रवण' करते थे ।

२. तब राजा प्रसेनजित् कौसल ने दीर्घकारायण से पूछा--"सौम्य कारायण ! ये वृक्ष तो वैसे ही मन को मोहने वाले···धर्मश्रवण करते थे । आज भगवान् कहाँ हैं?"

"महाराज ! यहाँ समीप ही मेदडुम्प नामक शाक्यों का एक ग्राम है ; भगवान् इस समय वहीं साधना कर रहे हैं ।"

"सौम्य कारायण ! यह ग्राम यहाँ से कितना दूर है ?"

"अधिक दूर नहीं है, महाराज ! तीन योजन भर है : दिन के अस्त होते-होते हम वहाँ पहुँच सकते हैं ।"

"तो सौम्य कारायण ! अच्छे-अच्छे रथ तैय्यार कराओ । हम उन भगवान् ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध के दर्शनार्थ चलेंगे । "ठीक है, देव !" दीर्घकारायण ने राजा

भद्रानि यानानि योजापेत्वा रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स पटिवेदेसि—युत्तानि खो ते, देव, भद्रानि भद्रानि यानानि। यस्सदानि कालं मञ्ञसी" ति। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो भद्रं यानं अभिरुहित्वा भद्रेहि भद्रेहि यानेहि नगरकम्हा येन मेदळुम्पं नाम सक्यानं निगमो तेन पायासि। तेनेव दिवसावसेसेन मेदळुम्पं नाम सक्यानं निगमं सम्पापुणि। येन आरामो तेन पायासि। यावतिका यानस्स भूमि यानेन गन्त्वा याना पच्चोरोहित्वा पत्तिको व आरामं पाविसि।

३. तेन खो पन समयेन सम्बहुला भिक्खू अब्भोकासे चङ्कमन्ति। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो येन ते भिक्खू तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा ते भिक्खू एतदवोच—"कहं नु खो, भन्ते, एतरहि सो भगवा विहरति अरहं [B. 322] सम्मासम्बुद्धो? दस्सनकामा हि मयं तं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्ध" ति।

"एसो, महाराज, विहारो संवुतद्वारो। तेन अप्पसद्दो उपसङ्कमित्वा अतरमानो आळिन्दं पविसित्वा उक्कासित्वा अग्गळं आकोटेहि। विवरिस्सति [N. 367] भगवा ते द्वार" ति। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो तत्थेव खग्गं च उण्हीसं च दीघस्स कारायनस्स पादासि। अथ खो दीघस्स कारायनस्स एतदहोसि—"रहायति खो दानि राजा, इधेव दानि मया ठातब्ब" ति। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो येन सो विहारो संवुतद्वारो तेन अप्पसद्दो उपसङ्कमित्वा अतरमानो आळिन्दं पविसित्वा उक्कासित्वा अग्गळं आको-

---

को यों उत्तर दे कुछ ही समय में वापस लौटकर कहा—"देव! अच्छे-अच्छे रथ तैयार करा दिये हैं, अब आप जैसा उचित समझें।" तब राजा प्रसेनजित् एक अच्छे रथ पर सवार हो…शाक्य ग्राम मेदड्डुम्प पहुँचे। वहाँ से जहाँ आराम था, वहाँ गये। जितनी भूमि रथ से…पैदल ही आराम में प्रविष्ट हुए।

३. उस समय बहुत से भिक्षु खुली जगह में टहल रहे थे। तब राजा प्रसेनजित् कौसल उन भिक्षुओं के पास गये और उनसे पूछा—"भन्ते! इस समय भगवान् ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध कहाँ विराजमान हैं?"

(भिक्षुओं ने बताया—) "महाराज! यह (सामने) विहार (गन्धकुटी) दिखायी दे रहा है, इसका दरवाजा बन्द है। आप वहाँ शान्ति (विना पदशब्द) से जाकर बरामदे में होते हुए आवाज करते हुए साँकल खटखटाओ। भगवान् दरवाजा खोल देंगे।" तब राजा प्रसेनजित् कौसल ने तलवार और पगड़ी को वहीं उतार कर दीर्घ कारायण को दे दी। तब दीर्घकारायण ने यह सोचा—"राजा मुझे यहीं ठहराना चाहता है, अतः मुझे यहीं खड़े रहना चाहिये।" तब राजा प्रसेनजित्

टेसि। विवरि भगवा द्वारं। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो विहारं पविसित्वा भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवतो पादानि [R. 120] मुखेन च परिचुम्बति, पाणीहि च परिसम्बाहति, नामं च सावेति— "राजाहं, भन्ते, पसेनदि कोसलो; राजाहं, भन्ते, पसेनदि कोसलो" ति।

४. "किं पन त्वं, महाराज, अत्थवसं सम्पस्समानो इमस्मिं सरीरे एवरूपं परमनिपच्चकारं करोसि, मित्तूपहारं उपदंसेसी" ति?

२. (क) कोसलरञ्ञो भगवति धम्मन्वयो

५. "अत्थि खो मे, भन्ते, भगवति धम्मन्वयो—'होति सम्मासम्बुद्धो भगवा, स्वाक्खातो भगवता धम्मो, सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो' ति। इधाहं, भन्ते, पस्सामि एके समणब्राह्मणे परियन्तकतं ब्रह्मचरियं चरन्ते दस पि वस्सानि, वीसं पि वस्सानि, तिंसं पि वस्सानि, चत्तारीसं पि वस्सानि। ते अपरेन समयेन सुन्हाता सुविलित्ता कप्पितकेसमस्सू पञ्चहि कामगुणेहि समप्पिता समङ्गीभूता परिचारेन्ति। इध पनाहं, भन्ते, भिक्खू पस्सामि यावजीवं आपाणकोटिकं परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं चरन्ते। न खो पनाहं, भन्ते, इतो बहिद्धा अञ्ञं एवं परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं

कौसल ने जहाँ वह बन्द द्वार वाली भगवान् की गन्धकुटी थी वहाँ, बिना किसी पदक्रम के शब्द के, जाकर बरामदे में प्रवेश कर, आगल खटखटाई। भगवान् ने दरवाजा खोल दिया। तब राजा प्रसेनजित् कौसल गन्धकुटी में प्रवेश कर भगवान् के श्रीचरणों में अपना सिर नवा, भगवान् के श्रीचरणों को अपने मुख से चूमने लगा, हाथों से दबाने लगा और बार-बार अपना नाम यों सुनाने लगा—"भन्ते! मैं राजा प्रसेनजित् कौसल हूँ, भन्ते! मैं राजा प्रसेनजित् कौसल हूँ।"

४. (भगवान् ने पूछा—) "महाराज! आप क्या समझ कर (मेरे) इस शरीर के प्रति ऐसा विनय प्रकट कर रहे हैं?"

(क) कौशलराज की भगवान् के धर्म के प्रति निष्ठा

५. ("क्योंकि) भन्ते! भगवान् के साथ मेरा धर्मसम्बन्ध (धर्म के प्रति निष्ठा) इसलिये है कि भगवान् स्वयं सम्यक्सम्बुद्ध हैं, भगवान् का धर्म भी स्वाख्यात है, (आप का) सङ्घ भी सुमार्ग पर सर्वथा आरूढ है। भन्ते! यहाँ मैं कुछ श्रमण-ब्राह्मणों को एक सीमित समय तक धर्मसाधना करते देखता हूँ; जैसे दस वर्ष, बीस वर्ष, तीस वर्ष या चालीस वर्ष। बाद में वे ही लोग भलीभाँति स्नान कर चन्दनादि का लेप लगा, अपने केशों को सँवार, पाँचों इन्द्रियों के कामभोगों में लिप्त हो घूमते हैं। परन्तु दूसरी तरफ, भन्ते, भिक्षुओं को मैं देखता हूँ कि वे जीवन भर अहिंसा पर दृढ रहते परिपूर्णपरिशुद्ध ब्रह्मचर्य की साधना करते रहते हैं। भन्ते! मुझे तो आप

समनुपस्सामि। अयं पि खो मे, भन्ते, भगवति धम्मन्वयो होति—'सम्मासम्बुद्धो भगवा, स्वाक्खातो भगवता धम्मो, सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो' ति।

(ख) भिक्खूसु समग्गता

६. "पुन च परं, भन्ते, राजानो पि राजूहि विवदन्ति, खत्तिया पि खत्तियेहि विवदन्ति, ब्राह्मणा पि ब्राह्मणेहि विवदन्ति, गहपतयो पि गह- [N. 368, B. 323] पतीहि विवदन्ति, माता पि पुत्तेन विवदति, पुत्तो पि मातरा विवदति, पिता पि पुत्तेन विवदति, पुत्तो पि पितरा विवदति, भाता पि भगिनिया विवदति, भगिनी पि भातरा विवदति, सहायो पि सहायेन विवदति। इध पनाहं, भन्ते, भिक्खू पस्सामि समग्गे सम्मोदमाने [R. 121] अविवदमाने खीरोदकीभूते अञ्ञमञ्ञं पियचक्खूहि सम्पस्सन्ते विहरन्ते। न खो पनाहं, भन्ते, इतो बहिद्धा अञ्ञं एवं समग्गं परिसं समनुपस्सामि। अयं पि खो मे, भन्ते, भगवति धम्मन्वयो होति—'सम्मासम्बुद्धो भगवा, स्वाक्खातो भगवता धम्मो, सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो' ति।

(ग) भिक्खूनं हट्ठपहट्ठता

७. "पुन च पराहं, भन्ते, आरामेन आरामं, उय्यानेन उय्यानं अनुचङ्कमामि अनुविचरामि। सोहं तत्थ पस्सामि एके समणब्राह्मणे किसे लूखे

के द्वारा प्रतिपादित इस धर्म के अतिरिक्त अन्य कोई धर्म ऐसा परिपूर्ण या परिशुद्ध नहीं दिखायी देता। इस कारण से भन्ते ! आप के द्वारा प्रतिपादित धर्म के प्रति मेरा सम्बन्ध (निष्ठा) बना है। भगवान् तो स्वयं सम्यक्सम्बुद्ध हैं...सर्वथा आरूढ है।"

(ख) भिक्षुओं में एकता

६. फिर भन्ते ! लोक में राजा लोग भी दूसरे राजाओं से विवाद करते हैं, क्षत्रिय दूसरे क्षत्रिय से, ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मणों से, वैश्य दूसरे वैश्यों से, माता पुत्र से' पुत्र माता से; पिता पुत्र से, पुत्र पिता से; भाई बहन से, बहन भाई से या साथी अपने दूसरे साथी से विवाद (कलह) करते रहते हैं। परन्तु भन्ते ! दूसरी तरफ मैं देखता हूँ कि आपके ये भिक्षु हँसी-खुशी से इकट्ठे रहते हुए, बिना किसी कलह के दूध-जल की तरह मिले-जुले परस्पर एक दूसरे को स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखते हुए निरन्तर अपनी धर्म-साधना में लगे रहते हैं। भन्ते ! सङ्घ से बाहर दूसरे तीर्थिकों में ऐसी एकता या मिलजुल कर रहने की बात मुझे नहीं दिखायी देती। भन्ते ! यह भी कारण है कि मैं कहता हूँ कि आप सम्यक्सम्बुद्ध...सर्वथा आरूढ है।

(ग) भिक्षुओं का सब स्थितियों में प्रसन्न रहना

७. और फिर भन्ते ! मैं तो इस आराम से उस आराम में, इस उद्यान से

दुब्बण्णे उप्पण्डुप्पण्डुकजाते धमनिसन्थतगत्ते, न विय मञ्ञे चक्खुं बन्धन्ते जनस्स दस्सनाय। तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि—'अद्धा इमे आयस्मन्तो अनभिरता वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, अत्थि वा तेसं किञ्चि पापं कम्मं कतं पटिच्छन्नं; तथा हि इमे आयस्मन्तो किसा लूखा दुब्बण्णा उप्पण्डुप्पण्डुकजाता धमनिसन्थतगत्ता, न विय मञ्ञे चक्खुं बन्धन्ति जनस्स दस्सनाया' ति। त्याहं उपसङ्कमित्वा एवं वदामि—'किं नु खो तुम्हे आयस्मन्तो किसा लूखा दुब्बण्णा उप्पण्डुप्पण्डुकजाता धमनिसन्थतगत्ता, न विय मञ्ञे चक्खुं बन्धथ जनस्स दस्सनाया' ति? ते एवमाहंसु—'बन्धुकरोगो नो, महाराजा' ति। इध पनाहं, भन्ते, भिक्खू पस्सामि हट्ठपहट्ठे उदग्गुदग्गे अभिरतरूपे पीणिन्द्रिये अप्पोस्सुक्के पन्नलोमे परदत्तवुत्ते मुदुभूतेन चेतसा विहरन्ते। तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि—'अद्धा इमे आयस्मन्तो तस्स भगवतो सासने उळारं पुब्बेनापरं विसेसं जानन्ति; तथा हि इमे आयस्मन्तो हट्ठपहट्ठा उदग्गुदग्गा अभिरतरूपा पीणिन्द्रिया अप्पोस्सुका पन्नलोमा [N. 369] परदत्तवुत्ता मुदुभूतेन चेतसा विहरन्ती' ति। अयं पि खो मे, भन्ते, भगवति धम्मन्वयो होति—'सम्मासम्बुद्धो भगवा, स्वाक्खातो भगवता धम्मो, सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो' ति।

उस उद्यान में (साधु सन्तों के दर्शनार्थ) जाता-आता रहता हूँ। वहाँ मुझे कुछ श्रमण-ब्राह्मण कृश, रूक्ष, दुर्वर्ण, (रक्ताल्पता से) पीले पड़े हुए, शरीर में उभरी हुई नसों वाले ही दिखायी देते हैं, मानों वे लोगों को न देखने के लिये हमेशा के लिये अपनी आँखें मूँद लेना (मरना) चाहते हों। तब (उन्हें देख) मुझे लगता है कि वे आयुष्मान् या तो बे-मन से ही उस धर्म साधना में लगे हुए हैं। या फिर वे किसी गुप्त पाप कर्म से घिरे हुए हैं कि जिसके कारण वे इतने कृश...नसों वाले दिखायी देते हैं। मैंने (कई बार) उन लोगों के पास जाकर उनसे पूछा है कि आयुष्मानो! आप लोग इतने कृश...क्यों दिखाई देते हैं? वे मुझे उत्तर में कहते हैं कि हम ही अकेलों की यह दुर्दशा नहीं हैं, यह तो हमें कुल-क्रमागत मिली हुई है। (अर्थात् उन श्रमण-ब्राह्मणों में भूत-भविष्य-वर्तमान--सभी समयों में ऐसे ही लोग होते आये हैं।) दूसरी तरफ, भन्ते! मैं आप के इस सङ्घ में देखता हूँ कि सभी भिक्षु हृष्ट-पुष्ट, सावधान, देखने में मनोरम, प्रसन्नेन्द्रिय, लौकिक कर्मों में अल्प उत्सुकता वाले, रोमाञ्चरहित, दूसरे के दिये को बता देने वाले मृदु चित्त से धर्म में साधनारत हैं। इन्हें देखकर भन्ते! मुझे यों होता है—"ये आयुष्मान् अवश्य उस भगवदुपदिष्ट धर्म को आदि से अन्त तक सूक्ष्मतया जानते हैं, इसी कारण ये लोग सदा प्रसन्न, सन्तुष्ट, उत्साहसम्पन्न, देखने में सुन्दर, प्रसन्नेन्द्रिय, (भयादि के अभाव में) रोमाञ्च-

(घ) भिक्खुपरिसा सुविनीता

८. "पुन च पराहं, भन्ते, राजा खत्तियो मुद्धावसित्तो; पहोमि घातेतायं [R. 122, B. 324] घातेतुं, जापेतायं वा जापेतुं, पब्बाजेतायं वा पब्बाजेतुं। तस्स मय्हं, भन्ते, अत्थकरणे निसिन्नस्स अन्तरन्तरा कथं ओपातेन्ति। सोहं न लभामि—'मा मे भोन्तो अत्थकरणे निसिन्नस्स अन्तरन्तरा कथं ओपातेथ, कथापरियोसानं मे भोन्तो आगमेन्तू' ति। तस्स मय्हं, भन्ते, अन्तरन्तरा कथं ओपातेन्ति। इध पनाहं, भन्ते, भिक्खू पस्सामि; यस्मिं समये भगवा अनेकसताय परिसाय धम्मं देसेति, नेव तस्मिं समये भगवतो सावकानं खिपितसद्दो वा होति उक्कासितसद्दो वा। भूतपुब्बं, भन्ते, भगवा अनेकसताय परिसाय धम्मं देसेति। तत्रञ्ञतरो भगवतो सावको उक्कासि। तमेनं अञ्ञतरो सब्रह्मचारी जण्णुकेन घट्टेसि—'अप्पसद्दो आयस्मा होतु, मायस्मा सद्दमकासि; सत्था नो भगवा धम्मं देसेती' ति। तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि—'अच्छरियं वत, भो, अब्भुतं वत भो! अदण्डेन वत किर, भो, असत्थेन एवं सुविनीता परिसा भविस्सती' ति! न खो पनाहं, भन्ते, इतो बहिद्धा अञ्ञं एवं सुविनीतं परिसं समनुपस्सामि।

रहित, भोगों के प्रति अल्प उत्सुकता वाले, दूसरे के दिये के प्रशंसक हो, मृदु चित्त से साधनारत रहते हैं। इसलिये भी भन्ते! मेरी आपके धर्म के प्रति निष्ठा बनी है। फिर आप तो सम्यक्सम्बुद्ध हैं···सर्वथा आरूढ हैं।

(घ) भिक्षुपरिषद् सुविनीत है

८. फिर, भन्ते! मैं तो मूर्धाभिषिक्त राजा हूँ। मैं मारने योग्य को मरवा सकता हूँ और कैद करने योग्य को कैद करवा सकता हूँ- देशनिकाला देने योग्य को देशनिकाला दे सकता हूँ। ऐसा होते हुए भी भन्ते! मैं जब न्याय करने बैठता हूँ तो उस समय बीच-बीच में विघ्न पड़ता रहता है। तब मुझे कहना पड़ता है— 'मैं न्याय करने बैठा हूँ, आपलोग विघ्न न करिये। निर्णय कर लेने दीजिये, तब तक शान्त (चुप) रहिये।' परन्तु इधर आप की भिक्षुपरिषद् को देखता हूँ तो वहाँ जब आप सैकड़ों भिक्षुओं के बीच बैठे धर्मोपदेश करते हैं, तब उस अन्तराल में आपके शिष्यों के बीच न कोई वस्तु गिरने का शब्द होता है न कोई खांसी, छीक या जम्हाई लेने की हिम्मत करता है। एक बार आप की सभा में कोई भिक्षु खाँस दिया, उसको बगल में बैठे भिक्षु ने जानु (गोड़े) के स्पर्श से संकेत कर समझाया—'आयुष्मान्! चुप रहिये, देख नहीं रहे हो हमारे शास्ता हमें धर्मोपदेश कर रहे हैं!' इस घटना को देखकर मुझे यह हुआ—'अरे! यह कैसा आश्चर्य है, कैसी अद्भुत बात है! बिना किसी दण्ड, या शस्त्र के यह परिषद् कितने अनुशासन में बैठी है!' इस गुण के

अयं पि खो मे, भन्ते, भगवति धम्मन्वयो होति--'सम्मासम्बुद्धो भगवा स्वाक्खातो भगवता धम्मो, सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो' ति।

(ङ) वादरोपनका पण्डिता सावका सम्पज्जन्ति

९. "पुन च पराहं, भन्ते, पस्सामि इधेकच्चे खत्तियपण्डिते निपुणे कतपरप्पवादे वालवेधिरूपे। ते भिन्दन्ता मञ्ञे चरन्ति पञ्ञागतेन दिट्ठिगतानि। ते सुणन्ति--'समणो खलु, भो, गोतमो अमुकं नाम गामं वा निगमं वा ओसरिस्सती' ति। ते पञ्हं अभिसङ्खरोन्ति—'इमं मयं पञ्हं समणं गोतमं उपसङ्कमित्वा पुच्छिस्साम। एवं चे नो पुट्ठो एवं ब्याकरिस्सति, एवमस्स मयं वादं आरोपेस्साम; एवं चे पि नो पुट्ठो एवं [N. 370] ब्याकरिस्सति, एव पिस्स मयं वादं आरोपेस्सामा' ति। ते सुणन्ति-- 'समणो खलु, भो, गोतमो अमुकं नाम गामं वा निगमं वा ओसटो' ति। ते येन भगवा तेनुपसङ्कमन्ति। ते भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति। ते भगवता धम्मिया कथाय सन्द- [R. 123] स्सिता समादपिता समुत्तेजिता सम्पहंसिता न चेव भगवन्तं पञ्हं पुच्छन्ति, कुतो वादं आरोपेस्सन्ति! अञ्ञदत्थु भगवतो सावका सम्पज्जन्ति। अयं पि खो मे, भन्ते, भगवति धम्मन्वयो होति—'सम्मासम्बुद्धो [B. 325] भगवा, स्वाक्खातो भगवता धम्मो, सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो' ति।

कारण भी भन्ते! मेरी आपके धर्म के प्रति श्रद्धा है। फिर आप भी सम्यक्सम्बुद्ध हैं...सर्वथा आरूढ है।

(ङ) विवाद करने की इच्छा से आये लोग भी शिष्य बन जाते हैं

९. भन्ते! फिर मैं यहाँ कुछ क्षत्रिय पण्डितों, जो दूसरों से शास्त्रचर्चा में अत्यन्त कुशल होते हैं, और कुशल शिकारी की तरह दूसरे के मर्म-स्थानों पर ही आक्रमण करते हैं, को जानता हूँ, जो मानों अपने प्रज्ञा-तर्कों से दूसरे के शास्त्र-पक्ष को छिन्न-भिन्न कर डालते हैं। वे जब सुनते हैं—'श्रमण गौतम अमुक ग्राम या कस्बे में पधारेंगे तो वे पहले से ही प्रश्न तय्यार कर लेते हैं कि उनसे यों पूछा जाय। हमारे द्वारा ऐसा पूछा जाने पर यदि वे यह उत्तर देंगे तो हम उनसे यों तर्क करेंगे, और यों उत्तर देने पर यह तर्क करेंगे'। वे जब सुनते हैं कि श्रमण गौतम अमुक ग्राम या कस्बे में आ गये, तब वे भगवान् के पास जाते हैं। भगवान् उन्हें शास्त्रानुकूल धार्मिक कथाओं से परिचित कराते हैं, प्रेरित करते हैं, समुत्तेजित करते हैं, सम्प्रहर्षित करते हैं। तब वे भगवान् की धार्मिक कथाओं से परिचित...सम्प्रहर्षित हो भगवान् से कोई छोटा-मोटा प्रश्न भी नहीं कर पाते, वाद करना तो दूर की बात है! अपितु भगवान् के शिष्य बन जाते हैं। यह भी एक कारण है कि सर्वथा आरूढ है।

१०. "पुन च पराहं, भन्ते, पस्सामि इधेकच्चे ब्राह्मणपण्डिते...पे०... गहपतिपण्डिते...पे०...समणपण्डिते निपुणे कतपरप्पवादे वालवेधिरूपे। ते भिन्दन्ता मञ्ञे चरन्ति पञ्ञागतेन दिट्ठिगतानि। ते सुणन्ति--'समणो खलु, भो, गोतमो अमुकं नाम गामं वा निगमं वा ओसरिस्सती' ति। ते पञ्हं अभिसङ्खरोन्ति--'इमं मयं पञ्हं समणं गोतमं उपसङ्कमित्वा पुच्छिस्साम। एवं चे नो पुट्ठो एवं ब्याकरिस्सति, एवमस्स मयं वादं आरोपेस्साम; एवं चे पि नो पुट्ठो एवं ब्याकरिस्सति, एवं पिस्स मयं वादं आरोपेस्सामा' ति। ते सुणन्ति--'समणो खलु, भो, गोतमो, अमुकं नाम गामं वा निगमं वा ओसटो' ति। ते येन भगवा तेनुपसङ्कमन्ति। ते भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति। ते भगवता धम्मिया कथाय सन्दस्सिता समादपिता समुत्तेजिता सम्पहंसिता न चेव भगवन्तं पञ्हं पुच्छन्ति, कुतो वादं आरोपेस्सन्ति! अञ्ञदत्थु भगवन्तं येव ओकासं याचन्ति अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जाय। ते भगवा पब्बाजेति। ते तथा पब्बजिता समाना एका वूपकट्ठा अप्पमत्ता आतापिनो पहितत्ता विहरन्ता नचिरस्सेव--यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं--ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ति। ते एवमाहंसु--'मयं वत, भो, अनस्साम; मयं वत, भो, पनस्साम। मयं हि पुब्बे अस्समणा व समाना 'समणाम्हा' ति पटिजानि- [N. 371] म्हा, अब्राह्मणा व समाना 'ब्राह्मणाम्हा' ति पटिजानिम्हा, अनरहन्तो व समाना 'अरहन्ताम्हा' ति पटिजानिम्हा। 'इदानि खोम्ह समणा, इदानि खोम्ह ब्राह्मणा, इदानि खोम्ह अरहन्तो' ति। अयं पि खो मे, भन्ते, भगवति धम्मन्वयो होति--'सम्मासम्बुद्धो भगवा, स्वाक्खातो भगवता धम्मो, सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो' ति।

---

१०. "फिर भन्ते ! मैं कुछ ब्राह्मण पण्डितों को, गृहपति पण्डितों को···श्रमण पण्डितो की···अपितु वे भगवान् का शिष्य बनने के लिये घर से बेघर हो प्रव्रज्या की याचना करते हैं। भगबान् उन्हें प्रव्रजित कर लेते हैं। वे भगवान् से प्रव्रजित हो, एकान्त विचरण करते हुए···साधना में रत रहते हैं। वे ऐसा कहते हैं—'अरे ! हम तो नष्ट थे, प्रणष्ट थे कि हम पहले (श्रमण धर्म का पालन न करने के कारण) अश्रमण होते हुए भी 'श्रमण होने' का दावा (प्रतिज्ञा) करते थे। अब्राह्मण होते हुए भी 'ब्राह्मण होने' का दावा करते थे। हाँ ! अब (भगवान् से शिक्षा पाकर) ब्राह्मण कहलाने योग्य हुए हैं, वास्तविक ब्राह्मण हुए हैं। अब श्रमण हुए हैं, वास्तविक श्रमण हुए हैं। यह भी कारण है भन्ते ! कि मेरी···सर्वथा आरूढ हैं।'

(ङ) थपतीनं भगवति सद्धा

११. "पुन च परं, भन्ते, इमे इसिदत्तपुराणा थपतयो ममभत्ता ममयाना, अहं नेसं जीविकाय दाता, यसस्स आहत्ता; अथ च पन नो तथा [B 326] मयि निपच्चकारं करोन्ति यथा भगवति। भूतपुब्बाहं, भन्ते, सेनं [R 124] अब्भुय्यातो समानो इमे च इसिदत्तपुराणा थपतयो वीमंसमानो अञ्ञतरस्मिं सम्बाधे आवसथे वासं उपगच्छि। अथ खो, भन्ते, इमे इसिदत्तपुराणा थपतयो बहुदेव रत्तिं धम्मिया कथाय वीतिनामेत्वा, यतो अहोसि भगवा ततो सीसं कत्वा मं पादतो करित्वा निपज्जिंसु। तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि--'अच्छरियं वत, भो, अब्भुतं वत, भो! इमे इसिदत्तपुराणा थपतयो ममभत्ता ममयाना, अहं नेसं जीविकाय दाता, यसस्स आहत्ता; अथ च पन नो तथा मयि निपच्चकारं करोन्ति यथा भगवति। अद्धा इमे आयस्मन्तो तस्स भगवतो सासने उळारं पुब्बेनापरं विसेसं जानन्ती' ति। अयं पि खो मे, भन्ते, भगवति धम्मन्वयो होति--'सम्मासम्बुद्धो भगवा, स्वाक्खातो भगवता धम्मो, सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो' ति।

१२. "पुन च परं, भन्ते, भगवा पि खत्तियो, अहं पि खत्तियो; भगवा पि कोसलो, अहं पि कोसलो; भगवा पि आसीतिको, अहं पि आसीतिको।

(ङ) स्थपतियों की भगवान् में श्रद्धा

११. भन्ते ! फिर ये ऋषिदत्त व पुराण नामक स्थपति (महावत) मेरे दिये भोजन से जीने वाले, मेरे चलाये चलने वाले हैं, मैं ही इनकी जीविका (नौकरी) का दाता हूँ, इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा का कारण हूँ; फिर भी ये मुझमें उतना विनय-भाव (सम्मान) नहीं रखते, जितना कि भगवान् (आप) में। एक बार की बात है, भन्ते ! मैं सेना से बिछुड़कर इन दोनों ऋषिदत्त और पुराण को खोजता हुआ एक भीड़ भरे आवस (सराय) में गया। तब, भन्ते ! ये दोनों—ऋषिदत्त और पुराण धर्म-कथा सुनते-सुनते बहुत रात बिताकर, जिधर भववान् थे उधर सिर और मेरी तरफ पैर कर सो गये। भन्ते ! तब मुझे यह हुआ—'अरे यह आश्चर्य है, यह बहुत अद्भुत बात है कि ये ऋषिदत्त और पुराण स्थपति, जो कि मेरे दिये भोजन से··· फिर भी मुझमें उतना आदर भाव नहीं रखते, जितना भगवान् में। ये आयुष्मान् उन भगबान् के शासन में कुछ अधिक ही विशेष देखते होंगे, जिसके कारण ये उनके प्रति अधिक श्रद्धालु हैं ! यह भी एक कारण···आरूढ हैं।

१२. फिर भन्ते ! भगवान् भी क्षत्रिय हैं, मैं भी क्षत्रिय हूँ; भगवान् भी कौसल-देशवासी हैं मैं भी वही हूँ। भगवान् की आयु भी अस्सी वर्ष के करीब हो चुकी है, मैं प्रायः इसी आयु का हूँ। भन्ते ! इन सब उपर्युक्त समानताओं के कारण भी

यं पि, भन्ते, भगवा पि खत्तियो अहं पि खत्तियो, भगवा पि कोसलो अहं पि कोसलो, भगवा पि आसीतिको अहं पि आसीतिको; इमिनावारहामेवाहं भन्ते, भगवति परमनिपच्चकारं कातुं, मित्तूपहारं उपदंसेतुं। हन्द, [N. 372] च दानि मयं, भन्ते, गच्छाम; बहुकिच्चा मयं बहुकरणीया" ति।

"यस्सदानि त्वं, महाराज, कालं मञ्ञसी" ति।

अथ खो राजा पसेनदि कोसलो उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो भगवा, अचिरपक्कन्तस्स रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स, भिक्खू आमन्तेसि—"एसो, भिक्खवे, राजा पसेनदि कोसलो धम्मचेतियानि भासित्वा उट्ठायासना पक्कन्तो। उग्गण्हथ, भिक्खवे, [R. 125] धम्मचेतियानि; परियापुणाथ, भिक्खवे, धम्मचेतियानि; धारेथ, भिक्खवे, धम्मचेतियानि। अत्थसंहितानि, भिक्खवे, धम्मचेतियानि आदिब्रह्मचरियकानी" ति।

१३. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति।

●

यह उचित ही ठहरता है कि मैं आप में इतना आदरभाव रखूं। आपका अधिक से सम्मान करूँ, आप में औरों से अधिक गौरवभाव प्रदर्शित करूँ। भन्ते! अब हम जाना चाहते हैं; क्योंकि हमें और भी बहुत से कार्य हैं।"

"महाराज! आप जैसा उचित समझें।"

तब राजा प्रसेनजित् कौसल, आसन से उठकर, भगवान् को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर चल दिये। तब भगवान् ने, जब कि राजा प्रसेनजित् कौसल को गये कुछ ही समय बीता था, भिक्षुओं को बुलाया—"भिक्षुओ! यह राजा प्रसेनजित् धर्मचैत्य (धर्म को स्थायी बनाने वाली बातें) कहकर आसन से उठ चला गया। भिक्षुओ! तुम 1 इन धर्मचैत्यों को मन में बैठाओ। इनके अनुसार आचरण करते हुए इन्हें पूरा क ो, इन्हें धारण करो। भिक्षुओ! राजा द्वारा प्रतिपादित ये धर्मचैत्य सार्थक एवं शुद्ध धर्म साधना के लिये हैं।"

१३. भगवान् ने यह कहा। इसे सुनकर प्रसन्नचित्त भिक्षुओं ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया॥

धर्मचेतियसुत्त समाप्त॥

●

४०. कण्णकत्थलसुत्तं

१. रञ्ञो सब्बञ्ञुतं आरब्भ पुच्छा

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा उरुञ्ञायं [N. 373, B. 327] विहरति कण्णकत्थले मिगदाये। तेन खो समयेन राजा पसेनदि कोसलो उरुञ्ञं अनुप्पत्तो होति केनचिदेव करणीयेन। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो अञ्ञतरं पुरिसं आमन्तेसि—"एहि त्वं, अम्भो पुरिस, येन भगवा तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा मम वचनेन भगवतो पादे सिरसा वन्दाहि, अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छ—'राजा, भन्ते, पसेनदि कोसलो भगवतो पादे सिरसा वन्दति, अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छती' ति। एवं च वदेहि—'अज्ज किर, भन्ते, राजा पसेनदि कोसलो पच्छाभत्तं भुत्तपातरासो भगवन्तं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सती' " ति। "एवं, देवा" ति खो सो पुरिसो रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स पटिस्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो पुरिसो भगवन्तं एतदवोच—"राजा, भन्ते, पसेनदि कोसलो भगवतो पादे सिरसा वन्दति, अप्पाबाधं अप्पातङ्कं बहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छति, एवं च वदेति—'अज्ज किर, भन्ते, राजा पसेनदि कोसलो पच्छाभत्तं भुत्तपातरासो भगवन्तं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सती' " ति।

अस्सोसुं खो सोमा च भगिनि सकुला च भगिनी—"अज्ज किर राजा पसेनदि कोसलो पच्छाभत्तं भुत्तपातरासो भगवन्तं दस्सनाय [R. 126]

---

४०. कर्णकस्थलसूत्र

१. सर्वज्ञता के विषय में राजा का प्रश्न

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) उरुज्ञा देश के कर्णकस्थल नामक मृगदाव में साधना कर रहे थे। उस समय राजा प्रसेनजित् कौसल किसी कार्य से उरुज्ञा आये थे। उस समय राजा प्रसेनजित् ने सेवक को बुलाकर आज्ञा दी—"अरे पुरुष! तुम जहाँ भगवान् विराजमान हैं वहाँ जाओ, और मेरी ओर से उनके श्रीचरणों में शिर नवाओ, और उनका स्वास्थ्य, नीरोगता, एवं कुशल-मङ्गल पूछो और कहो—'भन्ते! राजा प्रसेनजित् ने···आपका कुशल-मङ्गल पूछा है, और निवेदन किया है—'भन्ते! मैं आज प्रातः जलपान (कलेवा) के बाद भगवान् के दर्शन करने आऊँगा।" "ठीक है, देव!" यों राजा को उत्तर दे, वह पुरुष जहाँ भगवान् थे वहाँ गया···दर्शन करने आऊँगा।

सोमा और सकुला दोनों बहनों ने (राजा की स्त्रियों ने) जब सुना—"आज

उपसङ्कमिस्सती" ति। अथ खो सोमा च भगिनी सकुला च भगिनी राजानं पसेनदिं कोसलं भत्ताभिहारे उपसङ्कमित्वा एतदवोचुं—तेन हि, महाराज, अम्हाकं पि वचनेन भगवतो पादे सिरसा वन्दाहि, अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छ—'सोमा च, भन्ते, भगिनी सकुला च भगिनी भगवतो पादे सिरसा वन्दति, अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छती' " ति।

[N. 374] २. अथ खो राजा पसेनदि कोसलो पच्छाभत्तं भुत्तपातरासो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं [B. 328] निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच—"सोमा च, भन्ते, भगिनी सकुला च भगिनी भगवतो पादे सिरसा वन्दति, अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छती" ति।

"किं पन, महाराज, सोमा च भगिनी सकुला च भगिनी अञ्ञं दूतं नालत्थुं" ति ?

"अस्सोसुं खो, भन्ते, सोमा च भगिनी सकुला च भगिनी—'अज्ज किर राजा पसेनदि कोसलो पच्छाभत्तं भुत्तपातरासो भगवन्तं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सती' ति। अथ खो, भन्ते, सोमा च भगिनी सकुला च भगिनी मं भत्ताभिहारे उपसङ्कमित्वा एतदवोचुं—'तेन हि, महाराज, अम्हाकं पि वचनेन भगवतो पादे सिरसा वन्दाहि, अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छ—सोमा च भगिनी सकुला च भगिनी भगवतो पादे सिरसा वन्दन्ति, अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छती' " ति।

राजा प्रसेनजित् कौसल जलपान के बाद भगवान् के दर्शनार्थ जाँयगें' तो उन दोनों बहनों ने जलपान के समय राजा से आकर कहा—"तो महाराज ! हमारी तरफ से भी भगवान् के श्रीचरणों की वन्दना करें और कहें—'भन्ते ! सोमा और सकुला बहन...आप की नीरोगता, स्वास्थ्य एवं कुशल-मङ्गल पूछती हैं।"

२. तब राजा प्रसेनजित् कौसल जलपान कर, जहाँ भगवान् वहाँ...बैठे। एक ओर बैठे राजा ने यों निवेदन किया—'सोमा...कुशल-मङ्गल पूछती है।"

(भगवान् ने पूछा) "महाराज ! क्या सोमा और सकुला बहनों को दूसरा कोई दूत नहीं मिला ?"

"भन्ते ! सोमा और सकुला बहनों ने जब सुना कि मैं जलपान के बाद आप के दर्शनार्थ जा रहा हूँ, तो उन्होंने मेरे पास आकर...कुशल-मङ्गल पूछती हैं।"

"सुखिनियो होन्तु, ता, महाराज, सोमा च भगिनी सकुला च भगिनी" ति ।

३. अथ खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच—"सुतं मेतं, भन्ते, 'समणो गोतमो एवमाह—नत्थि सो समणो वा ब्राह्मणो वा यो सब्बञ्ञू सब्बदस्सावी अपरिसेसं ञाणदस्सनं पटिजानिस्सति, नेतं ठानं विज्जती' ति । ये ते, भन्ते, एवमाहंसु--'समणो गोतमो एवमाह--नत्थि [R. 127] सो समणो वा ब्राह्मणो वा यो सब्बञ्ञू सब्बदस्सावी अपरिसेसं ञाणदस्सनं पटिजानिस्सति, नेतं ठानं विज्जती' ति; कच्चि ते, भन्ते, भगवतो वुत्त-वादिनो, न च भगवन्तं अभूतेन अब्भाचिक्खन्ति, धम्मस्स चानुधम्मं व्याकरोन्ति, न च कोचि सहधम्मिको वादानुवादो गारय्हं ठानं आगच्छती" ति ?

"ये ते, महाराज एवमाहंसु--'समणो गोतमो एवमाह--नत्थि सो समणो वा ब्राह्मणो वा यो सब्बञ्ञू सब्बदस्सावी अपरिसेसं [N. 375] ञाणदस्सनं पटिजानिस्सति, नेतं ठानं विज्जती' ति; न मे ते वुत्तवादिनो, अब्भाचिक्खन्ति च पन मं ते असता अभूतेना" ति ।

४. अथ खो राजा पसेनदि कोसलो विडूडभं सेनापतिं आमन्तेसि--"को नु खो, सेनापति, इमं कथावत्थुं राजन्तेपुरे अब्भुदाहासी" ति ?

"सञ्जयो, महाराज, ब्राह्मणो आकासगोत्तो" ति ।

"महाराज ! वे दोनों ही बहनें सुखी रहें ।"

३. तब राजा प्रसेनजित् ने भगवान् से यों पूछा--"भन्ते ! मैंने सुना है कि 'श्रमण गौतम ऐसा कहते हैं—कोई ऐसा श्रमण या ब्राह्मण जो सर्वज्ञ हो या सर्वद्रष्टा हो, अशेष ज्ञानदर्शन को वह जान ले—यह सम्भव नहीं है ।' भन्ते ! आप के बारे में जो लोग यह (उपर्युक्त बात) कहते हैं, क्या वे भगवान् के बारे में सच कह रहे हैं ? भगवान् पर असत्य-भाषण का लाञ्छन तो नहीं लगाते ? धर्म (आप के उपदेश) का धर्मानुकूल ही व्याख्यान करते हैं ? इसमें कोई सहधार्मिक वादानुवाद तो गर्हणीय (निन्दनीय) स्थान प्राप्त नहीं करता ?"

"महाराज ! जो लोग यह कहते हैं--'श्रमण गौतम...यह सम्भव नहीं है', वे लोग मेरे बारे में सत्य नहीं कहते, मुझ पर असत्य, अभूत का ही लाञ्छन लगाते हैं ।

४. तब राजा प्रसेनजित् कौसल ने अपने सेनापति विडूडभ से पूछा—"सेना-पति ! यह बात हमारे अन्तःपुर में किसने कही थी ?"

"महाराज ! आकाशगोत्र सञ्जय ब्राह्मण ने ।"

अथ खो राजा पसेनदि कोसलो अञ्ञतरं पुरिसं आमन्तेसि--"एहि त्वं, [B. 329] अम्भो पुरिस, मम वचनेन सञ्जयं ब्राह्मणं आकासगोत्तं आमन्तेहि--'राजा तं, भन्ते, पसेनदि कोसलो आमन्तेती' " ति। "एवं, देवा" ति खो सो पुरिसो रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स पटिस्सुत्वा येन सञ्जयो ब्राह्मणो आकासगोत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा सञ्जयं ब्राह्मणं आकासगोत्तं एतदवोच—"राजा तं, भन्ते, पसेनदि कोसलो आमन्तेती" ति।

अथ खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच--' 'सिया नु खो, भन्ते, भगवता अञ्ञदेव किञ्चि सन्धाय भासितं, तं च जनो अञ्ञथा पि पच्चागच्छेय्य। यथा कथं पन, भन्ते, भगवा अभिजानाति वाचं भासिता" ति ?

"एवं खो अहं, महाराज, अभिजानामि वाचं भासिता– 'नत्थि सो समणो वा ब्राह्मणो वा यो सकिदेव सब्बं ञस्सति, सब्बं दक्खिति, नेतं ठानं विज्जती' " ति ।

"हेतुरूपं, भन्ते, भगवा आह ; सहेतुरूपं, भन्ते, भगवा आह--'नत्थि [R. 128] सो समणो वा ब्राह्मणो वा यो सकिदेव सब्बं ञस्सति, सब्बं दक्खिति, नेतं ठानं विज्जती' " ति ।

तब राजा···ने किसी अनुचर को बुलाकर आज्ञा दी--"अरे पुरुष ! मेरे कहने से तुम आकाशगोत्र सञ्जय ब्राह्मण को कहो--'माननीय ! आप को राजा प्रसेनजित् कौसल ने बुलाया है'।" "ठीक है, देव !" उसने राजा को उत्तर दे, वह जहाँ सञ्जय ब्राह्मण था उसके पास गया, और उसको कहा—'श्रीमान् ! आप को राजा प्रसेनजित कौसल ने बुलाया है'।

फिर राजा प्रसेनजित् कौसल ने भगवान् से यह पूछा—"हो सकता है, भन्ते ! भगवान् ने दूसरा कोई भाव (आशय) लेकर यह बात कही हो और सुनने वाले ने इसको दूसरी तरह समझ लिया हो। अब आप भगवान् बतायें कि आप ने यह बात किस आशय से कही थी, उसका तात्पर्य हमें समझावें ?"

"महाराज ! मैंने वह बात इस आशय से कही थी—'यहाँ कोई श्रमण-ब्राह्मण ऐसा नहीं है जो एक साथ सब कुछ जान ले, सब कुछ देख ले। यह सम्भव ही नहीं है'।"

"भन्ते ! भगवान् ने यह तो युक्तियुक्त ही कहा है, सहेतुक ही कहा है कि यहाँ कोई श्रमण-ब्राह्मण···यह सम्भव ही नहीं है'।"

२. चातुवण्णिसुद्धिपुच्छा

५. "चत्तारोमे, भन्ते, वण्णा—खत्तिया, ब्राह्मणा, वेस्सा, सुद्दा। इमेसं नु खो, भन्ते, चतुन्नं वण्णानं सिया विसेसो सिया नानाकारणं" ति ?

"चत्तारोमे, महाराज, वण्णा—खत्तिया, ब्राह्मणा, वेस्सा, [N. 376] सुद्दा। इमेसं खो, महाराज, चतुन्नं वण्णानं द्वे वण्णा अग्गमक्खायन्ति—खत्तिया च, ब्राह्मणा च—यदिदं अभिवादनपच्चुट्ठानअञ्जलिकम्मसामीचिकम्मानी" ति।

"नाहं भन्ते, भगवन्तं दिट्ठधम्मिकं पुच्छामि; सम्परायिकाहं, भन्ते, भगवन्तं पुच्छामि। चत्तारोमे, भन्ते, वण्णा—खत्तिया, ब्राह्मणा, वेस्सा, सुद्दा। इमेसं नु खो, भन्ते, चतुन्नं वण्णानं सिया विसेसो सिया नानाकरणं" ति ?

६. "पञ्चिमानि, महाराज पधानियङ्गानि। कतमानि पञ्च ? इध महाराज, भिक्खु सद्धो होति, सद्दहति तथागतस्स बोधिं—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति; अप्पाबाधो होति अप्पातङ्को समवेपाकिनिया गहणिया समन्नागतो नातिसीताय नाच्चुण्हाय मज्झिमाय पधानक्खमाय ; असठो होति अमायावी यथाभूतं अत्तानं आविकत्ता सत्थरि वा विञ्ञूसु वा सब्रह्मचारीसु ; आरद्धविरियो [B. 330] विहरति अकुसलानं धम्मानं पहानाय, कुसलानं धम्मानं उपसम्पदाय, थामवा

---

२. चतुर्वर्ण-शुद्धि-विषयक प्रश्न

५. भन्ते ! ये चार वर्ण प्रसिद्ध हैं—क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र। भन्ते ! इन चारों वर्णों में कोई विशेषता या भेद सम्भव है ?"

"महाराज ! यहाँ ये चार वर्ण हैं—क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र। इन चारों वर्णों में दो वर्ण श्रेष्ठ कहलाते हैं—क्षत्रिय और ब्राह्मण; क्योंकि इन्हीं को लोक में अभिवादन, अभ्युत्थान, हाथ जोड़ना या सामीचि (सम्मान) कम किया जाता है।"

"भन्ते ! मैं इस लोक की बात नहीं पूछ रहा हूँ, मैं तो परलोक के विषय में पूछ रहा हूँ। क्या इन चारों वर्णों में (उत्पन्न होने से) परलोक जाने पर इनमें कोई विशेषता आती है क्या ?"

६. महाराज ! ये पाँच प्रधानीय अङ्ग हैं। कौन से पाँच ? (१) महाराज ! यहाँ कोई भिक्षु श्रद्धालु होता है, तथागत द्वारा उपदिष्ट ज्ञान के प्रति श्रद्धा रखता है—'वे भगवान्, ज्ञानी, सम्यक्सम्बुद्ध...बुद्ध भगवान् हैं'। (२) प्रायः नीरोग रहता है। (३) शठ (मायावी) नहीं होता। अमायावी हो भगवान् व साथी ब्रह्मचारियों के

दळ्हपरक्कमो अनिक्खित्तधुरो कुसलेसु धम्मेसु; पञ्ञवा होति उदयत्थगामिनिया पञ्ञाय समन्नागतो अरियाय निब्बेधिकाय सम्मादुक्खक्खयगामिनिया—इमानि खो, महाराज, पञ्च पधानियङ्गानि। चत्तारोमे, महाराज, वण्णा--खत्तिया, ब्राह्मणा, वेस्सा, सुद्दा। ते चस्सु इमेहि पञ्चहि पधानियङ्गेहि समन्नागता; एत्थ पन नेसं अस्स दीघरत्तं हिताय सुखाया" ति।

[R. 129] "चत्तारोमे, भन्ते वण्णा--खत्तिया, ब्राह्मणा, वेस्सा, सुद्दा। ते चस्सु इमेहि पञ्चहि पधानियङ्गेहि समन्नागता; एत्थ पन नेसं, भन्ते, सिया विसेसो सिया नानाकरणं" ति?

"एत्थ खो नेसाहं, महाराज, पधानवेमत्ततं वदामि। सेय्यथापिस्सु महाराज, द्वे हत्थिदम्मा वा अस्सदम्मा वा गोदम्मा वा सुदन्ता सुविनीता, द्वे हत्थिदम्मा वा अस्सदम्मा वा गोदम्मा वा अदन्ता अविनीता। तं किं मञ्ञसि, महाराज, ये ते द्वे हत्थिदम्मा वा अस्सदम्मा वा गोदम्मा वा [N. 377] सुदन्ता सुविनीता, अपि नु दन्ता व दन्तकारणं गच्छेय्युं, दन्ता व दन्तभूमिं सम्पापुणेय्युं" ति?

"एवं भन्ते"।

"ये पन ते द्वे हत्थिदम्मा वा अस्सदम्मा वा गोदम्मा वा अदन्ता अविनीता, अपि नु ते अदन्ता व दन्तकारणं गच्छेय्युं, अदन्ता व दन्तभूमिं

सामने जाता है। (४) उद्योगशील (आरब्धवीर्य) नहीं होता। और (५) प्रज्ञावान् होता है···।महाराज! ये पाँच प्रधानीय अङ्ग हैं। महाराज, यदि इन क्षत्रिय आदि चारों वर्णों में जो कोई इन पाँचों अङ्गों से समन्वित होता है, तो वही इसके लिये चिरकाल तक हितकर या सुखकर होगा।

"भन्ते! ये चार वर्ण हैं—क्षत्रिय···शूद्र। वे इन प्रधानीय अङ्गों से सम्पन्न हो जाँय तो क्या उनमें इनके कारण कोई भेद नहीं आता, विशेषता नहीं आती?"

"महाराज! इन चारों वर्णों में प्रधानीय अङ्गों के संयोजनमात्र से मैं कोई भेद नहीं मानता। जैसे, महाराज! दो दमनीय हाथी, घोड़े, या बैल सुदान्त, सुविनीत (अच्छी प्रकार से शिक्षित किये गये) हों; और उधर दो अदमनीय हाथी, घोड़े या बैल अदान्त, अविनीत (भलीभाँति शिक्षा न पाये हुए हों; तो क्या मानते हो, महाराज! इनमें जो हाथी, घोड़े ये सुदान्त व सुविनीत हैं, क्या वे सुदान्त होने से दान्त पद तक या दान्त अवस्था तक पहुँचे हैं?"

"हाँ, महाराज! ऐसा ही है।"

"और जो वे दो हाथी, घोड़े या बैल, जो कि अदान्त या अविनीत हैं वे अदान्त होते हुए भी दान्त पद या अवस्था को पा सकते हैं?"

सम्पापुणेय्युं, सेय्यथापि ते द्वे हत्थिदम्मा वा अस्सदम्मा वा गोदम्मा वा सुदन्ता सुविनीता" ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

"एवमेव खो, महाराज, यं तं सद्धेन पत्तब्बं अप्पाबाधेन असठेन अमायाविना आरद्धविरियेन पञ्ञावता तं वत अस्सद्धो बह्वाबाधो सठो मायावी कुसीतो दुप्पञ्ञो पापुणिस्सती ति—नेतं ठानं विज्जती" ति।

७. "हेतुरूपं, भन्ते, भगवा आह; सहेतुरूपं, भन्ते, भगवा आह। चत्तारोमे, भन्ते, वण्णा—खत्तिया, ब्राह्मणा, वेस्सा, सुद्दा। ते चस्सु इमेहि पञ्चहि पधानियङ्गेहि समन्नागता, ते चस्सु सम्मप्पधाना; एत्थ पन नेसं भन्ते, सिया विसेसो सिया नानाकरणं" ति ?

"अथ खो नेसाहं, महाराज, न किञ्चि नानाकरणं वदामि—यदिदं विमुत्तिया विमुत्तिं। सेय्यथापि, महाराज, पुरिसो सुक्खं साककट्ठं आदाय अग्गिं अभिनिब्बत्तेय्य, तेजो पातुकरेय्य; अथापरो पुरिसो सुक्खं सालकट्ठं आदाय अग्गिं अभिनिब्बत्तेय्य, तेजो पातुकरेय्य; अथापरो [R. 130] पुरिसो सुक्खं अम्बकट्ठं आदाय अग्गिं अभिनिब्बत्तेय्य, तेजो [B. 331] पातुकरेय्य; अथापरो पुरिसो सुक्खं उदुम्बरकट्ठं आदाय अग्गिं अभिनिब्बत्तेय्य, तेजो पातुकरेय्य। तं किं मञ्ञसि, महाराज, सिया नु खो तेसं अग्गीनं नानादारुतो अभिनिब्बत्तानं किञ्चि नानाकरणं अच्चिया वा अच्चिं, वण्णेन वा वण्णं, आभाय वा आभं" ति ?

"नहीं महाराज !"

"इसी तरह, महाराज ! जो कुछ श्रद्धालु, स्वस्थ (नीरोग) अशठ, अमायावी, उद्योगी, प्रज्ञावान् द्वारा पाने योग्य है, उसे उसी तरह श्रद्धारहित, रोगी, शठ, आलसी व मूर्ख (= दुष्प्रज्ञ) पा सकेगा—यह सम्भव नहीं है।"

७. "भन्ते ! भगवान् ने सयुक्तिक ही कहा, यह सहेतुक ही कहा; परन्तु हाँ, एक बात और स्पष्ट कीजिये कि ये जो क्षत्रिय, ब्राह्मण आदि चार वर्ण हैं, उनमें से यदि कोई इन पाँचों प्रधानीय अङ्गों से युक्त हों, और साथ ही सम्यक्प्रधान से भी युक्त हो तो उसमें कोई वैशिष्ट्य या भेद माना जायगा ?"

"महाराज ! मैं इनमें विमुक्ति से विमुक्ति प्राप्त करने पर भी कोई भेद या विशेषता नहीं मानता। जैसे महाराज ! कोई एक सूके शाककाष्ठ से अग्नि प्रज्वलित करे, दूसरा कोई साल की लकड़ी से, तीसरा कोई आम की लकड़ी से, चौथा कोई सूखे गूलर वृक्ष की लकड़ी से—तो क्या मानते हो इससे उन जली हुई अग्नियों में कोई अग्नित्व या उसके वर्ण में कोई भेद या विशेषता आयगी ?"

"नो हेतं भन्ते"।

"एवमेव खो, महाराज, यं तं तेजं विरिया निम्मथितं पधानाभिनिब्बत्तं, नाहं तत्थ किञ्चि नानाकरणं वदामि--यदिदं विमुत्तिया विमुत्तिं" ति।

३. अधिदेवं पुच्छा

[N. 378] ८. हेतुरूपं, भन्ते, भगवा आह; सहेतुरूपं, भन्ते, भगवा आह। किं पन, भन्ते अत्थि देवा" ति?

"किं पन त्वं, महाराज, एवं वदेसि—'किं पन, भन्ते अत्थि देवा'" ति?

"यदि वा ते, भन्ते, देवा आगन्तारो इत्थत्तं, यदि वा अनागन्तारो इत्थत्तं"?

"ये ते, महाराज, देवा सब्याबज्झा ते देवा आगन्तारो इत्थत्तं, ये ते देवा अब्याबज्झा ते देवा अनागन्तारो इत्थत्तं" ति।

९. एवं वुत्ते, विडूडभो सेनापति भगवन्तं एतदवोच—"ये ते, भन्ते, देवा सब्याबज्झा आगन्तारो इत्थत्तं ते देवा, ये ते देवा, अब्याबज्झा अनागन्तारो इत्थत्तं ते देवे तम्हा ठाना चावेस्सन्ति वा पब्बाजेस्सन्ति वा" ति?

अथ खो आयस्मतो आनन्दस्स एतदहोसि--"अयं खो विडूडभो सेनापति

"नहीं भन्ते!"

"इसी तरह प्रधान में उद्योग (वीर्य) करते हुए जो तेज उत्पन्न होता है, उसके द्वारा उत्पन्न विमुक्ति से विमुक्ति द्वारा भी मैं इन वर्णों में कोई भेद मानने को तय्यार नहीं हूँ!"

३. देवताविषय का प्रश्न

८. "भन्ते! आपने यह भी सयुक्तिक ही कहा, सहेतुक ही कहा। पर भन्ते! यह तो बताइये—देवता हैं?"

"महाराज! आपके पूछने का यहाँ तात्पर्य यही है न कि देवता हैं कि नहीं?"

"भन्ते! मेरा इस पूछने में तात्पर्य यह है कि देवता लोग भी हमारे इस लोक में आते हैं कि नहीं?"

"महाराज! जो देवता लोभी हैं वे इस लोक में आते हैं; जो लोभी नहीं होते वे इस लोक में नहीं आते।"

इस प्रसङ्ग में, विड्डभ सेनापति ने भगवान् से यह प्रश्न किया--"भन्ते! जो देवता लोभी हैं और इस लोक में आने की इच्छा करते हैं वे उन निर्लोभ देवताओं द्वारा उस पद से च्युत कर दिये जाते हैं या प्रव्रजित कर दिये जाते हैं?"

तब (यह सुनकर) आयुष्मान् आनन्द को यह विचार हुआ--"यह विड्डभ

रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स पुत्तो; अहं भगवतो पुत्तो। अयं खो कालो यं पुत्तो पुत्तेन मन्तेय्या'' ति। अथ खो आयस्मा आनन्दो विडूडभं सेनापतिं आमन्तेसि—"तेन हि, सेनापति, त येवेत्थ पटिपुच्छिस्सामि; यथा ते खमेय्य तथा नं ब्याकरेय्यासि। तं किं मञ्ञसि, सेनापति, यावता रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स विजितं यत्थ च राजा पसेनदि कोसलो [R. 131] इस्सरियाधिपच्चं रज्जं कारेति, पहोति तत्थ राजा पसेनदि कोसलो समणं वा ब्राह्मणं वा पुञ्ञवन्तं वा अपुञ्ञवन्तं वा ब्रह्मचरियवन्तं वा अब्रह्मचरियवन्तं वा तम्हा ठाना चावेतुं वा पब्बाजेतुं वा'' ति ?

"यावता, भो, रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स विजितं यत्थ च राजा पसेनदि कोसलो इस्सरियाधिपच्चं रज्जं कारेति, पहोति तत्थ [B. 332] राजा पसेनदि कोसलो समणं वा ब्राह्मणं वा पुञ्ञवन्तं वा अपुञ्ञवन्तं वा ब्रह्मचरियवन्तं वा अब्रह्मचरियवन्तं वा तम्हा ठाना चावेतुं वा पब्बाजेतुं वा'' ति।

"तं किं मञ्ञसि, सेनापति, यावता रञ्ञो पसेनदिस्स [N. 379] कोसलस्स अविजितं यत्थ च राजा पसेनदि कोसलो न इस्सरियाधिपच्चं रज्जं कारेति, तत्थ पहोति राजा पसेनदि कोसलो समणं वा ब्राह्मणं वा पुञ्ञवन्तं वा अपुञ्ञवन्तं वा ब्रह्मचरियवन्तं वा अब्रह्मचरियवन्तं वा तम्हा ठाना चावेतुं वा पब्बाजेतुं वा'' ति ?

"यावता, भो, रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स अविजितं यत्थ च राजा पसेनदि कोसलो न इस्सरियाधिपच्चं रज्जं कारेति, न तत्थ पहोति राजा पसेनदि कोसलो समणं वा ब्राह्मणं वा पुञ्ञवन्तं वा अपुञ्ञवन्तं वा ब्रह्म-

---

सेनापति राजा प्रसेनजित् कौसल का पुत्र है, मैं भी भगवान् का पुत्रस्थानापन्न शिष्य हूँ। यही समय है जब पुत्र के प्रश्न का उत्तर कोई पुत्र ही दे।" तब आयुष्मान् आनन्द ने विडूडभ सेनापति को यह कहा—"तो सेनापति! मैं तुम्हीं से पूछता हूँ, जैसा तुम्हें उचित लगे उसका उत्तर दो। तो क्या मानते हो सेनापति! जितनी दूर तक राजा प्रसेनजित् कौसल का राज्य है, जहाँ तक वे सम्मान के साथ शासन कर रहे हैं, वहाँ वे राजा प्रसेनजित् कौसल किसी पुण्यवान् या अपुण्यवान् और साधनारत एवं असाधनारत श्रमण-ब्राह्मण को उस स्थान से च्युत या प्रव्रजित करने में समर्थ हैं या नहीं ?"

"राजा प्रसेनजित् का जहाँ तक राज्य…प्रव्रजित करने में समर्थ हैं।"

"फिर क्या मानते हो, सेनापति, जहाँ राजा प्रसेनजित् कौसल का राज्य नहीं है… प्रव्राजित करने में समर्थ है या नहीं ?"

चरियवन्तं वा अब्रह्मचरियवन्तं वा तम्हा ठाना चावेतुं वा पब्बाजेतुं वा" ति।

"तं किं मञ्ञसि, सेनापति, सुता ते देवा तावतिंसा" ति ?

"एवं भो ! सुता मे देवा तावतिंसा। इधा पि भोता रञ्ञा पसेनदिना कोसलेन सुता देवा तावतिंसा" ति।

"तं किं मञ्ञसि, सेनापति, पहोति राजा पसेनदि कोसलो देवे तावतिंसे तम्हा ठाना चावेतुं वा पब्बाजेतुं वा" ति ?

"दस्सनं पि, भो, राजा पसेनदि कोसलो देवे तावतिंसे नप्पहोति, कुतो पन तम्हा ठाना चावेस्सति वा पब्बाजेस्सति वा" ति !

"एवमेव खो, सेनापति, ये ते देवा सब्याबज्झा आगन्तारो इत्थत्तं ते देवा, ये ते देवा अब्याबज्झा अनागन्तारो इत्थत्तं ते देवा दस्सनाय पि नप्पहोन्ति; कुतो पन तम्हा ठाना चावेस्सन्ति वा पब्बाजेस्सन्ति वा" ति !

१०. अथ खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच—"कोनामो अयं, भन्ते, भिक्खू" ति ?

"आनन्दो नाम, महाराजा" ति।

"जहाँ प्रसेनजित् कौसल का राज्य नहीं है, वहाँ वे···प्रव्रजित करने में समर्थ नहीं हैं।"

"तो क्या, सेनापति ! तुमने त्रायस्त्रिंश देवों के विषय में कुछ सुना है ?"

"हाँ जी ! मैंने त्रायस्त्रिंश देवों के बारे में सुना है। राजा ने भी उनके बारे में सुना है।"

"तो क्या मानते हो, सेनापति ! राजा प्रसेनजित् उन त्रायस्त्रिंश देवताओं उनके स्थान से च्युत या विस्थापित करने में समर्थ हैं ?"

"नहीं जी ! राजा तो उन त्रायस्त्रिंश देवों को देख भी नहीं सकते, उन्हें उनके स्थान से च्युत करना या उन्हें विस्थापित करना तो उनके लिये बहुत दूर की बात है !"

"इसी तरह, सेनापति ! जो देवता लोभी हैं वे इस लोक में आते हैं, परन्तु जो निर्लोभ हैं, उनके तो दर्शन भी दुर्लभ होते हैं, फिर वे उस स्थान से हटाये या विस्थापित कैसे किये जाँयगें !"

१०. तब राजा प्रसेनजित् कौसल ने भगवान् से पूछा—"भन्ते ! इस भिक्षु का क्या नाम है ?"

"महाराज ! इसका नाम है आनन्द।"

"आनन्दो वत, भो आनन्दरूपो वत, भो! हेतुरूपं, भन्ते, [R. 132] आयस्मा आनन्दो आह; सहेतुरूपं, भन्ते, आयस्मा आनन्दो आह।"

४. अधिब्रह्मं पुच्छा

"किं पन, भन्ते, अत्थि ब्रह्मा" ति?

११. "किं पन त्वं, महाराज, एवं वदेसि--'किं पन, [N. 380] भन्ते, अत्थि ब्रह्मा' " ति?

"यदि वा सो, भन्ते, ब्रह्मा आगन्ता इत्थत्तं, यदि वा अनागन्ता इत्थत्तं"?

"यो सो, महाराज, ब्रह्मा सब्याबज्झो सो ब्रह्मा आगन्ता इत्थत्तं, यो सो ब्रह्मा अब्याबज्झो सो ब्रह्मा अनागन्ता इत्थत्तं" ति।

अथ खो अञ्ञतरो पुरिसो राजानं पसेनदिं कोसलं [B. 333] एतदवोच—"सञ्जयो, महाराज, ब्राह्मणो आकासगोत्तो आगतो" ति। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो सञ्जयं ब्राह्मणं आकासगोत्तं एतदवोच--"को नु खो, ब्राह्मण, इमं कथावत्थुं राजन्तेपुरे अब्भुदाहासी" ति?

"विडूडभो, महाराज, सेनापती" ति।

विडूडभो सेनापति एवमाह--"सञ्जयो, महाराज, ब्राह्मणो आकास-

भन्ते! ये आनन्द तो आनन्दरूप ही लग रहे हैं। इन्होंने हमारी बात का अत्यन्त तर्कसङ्गत उत्तर दिया।

४. ब्रह्मविषयक प्रश्न

११. भन्ते! क्या ब्रह्मा हैं?"

"महाराज आप ऐसा किस तात्पर्य से पूछ रहे हैं कि ब्रह्मा हैं?"

"मेरा पूछने का तात्पर्य यह है कि ब्रह्मा इस लोक में आते (जन्म लेते) हैं? या नहीं?"

"महाराज! जो ब्रह्मा लोभी है, उसे (कभी न कभी) इस लोक में जन्म लेना पड़ता है। जो ब्रह्मा निर्लोभ हैं वे इस लोक में क्यों आना चाहेंगे!"

यह कथा-प्रसङ्ग चल ही रहा था कि किसी पुरुष ने राजा प्रसेनजित् कौसल को सूचना दी कि आकाशगोत्र सञ्जय आ गया है। तब राजा प्रसेनजित् ने आकाशगोत्र सञ्जय को बुलाकर पूछा--"ब्राह्मण! तुमसे यह बात किसने कही थी कि श्रमण गौतम ऐसा कहते हैं...?"

"महाराज विडूडभ सेनापति ने।"

विडूडभ सेनापति ने कहा—"आकाशगोत्र सञ्जय ब्राह्मण ने।" इसी बीच एक पुरुष ने राजा से कहा--"महाराज घर वापस लौटने का समय हो गया है।"

गोत्तो" ति। अथ खो अञ्ञतरो पुरिसो राजानं पसेनदिं कोसलं एतदवोच--
"यानकालो महाराजा" ति।

अथ खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच—"सब्बञ्ञुतं मयं, भन्ते, भगवन्तं अपुच्छिम्हा, सब्बञ्ञुतं भगवा ब्याकासि; तं च पनम्हाकं रुच्चति चेव खमति च, तेन चम्हा अत्तमना। चातुवण्णिसुद्धिं मयं, भन्ते, भगवन्तं अपुच्छिम्हा, चातुवण्णिसुद्धिं भगवा ब्याकासि; तं च पनम्हाकं रुच्चति चेव खमति च, तेन चम्हा अत्तमना। अधिदेवे मयं, भन्ते, भगवन्तं अपुच्छिम्हा, अधिदेवे भगवा ब्याकासि; तं च पनम्हाकं रुच्चति चेव खमति च, तेन चम्हा अत्तमना। अधिब्रह्मानं मयं, भन्ते, भगवन्तं अपुच्छिम्हा, अधिब्रह्मानं भगवा ब्याकासि; तं च पनम्हाकं रुच्चति चेव खमति च, तेन चम्हा अत्तमना। यं यदेव च मयं भगवन्तं अपुच्छिम्हा तं तदेव भगवा ब्याकासि; [R. 133] तं च पनम्हाकं रुच्चति चेव खमति च, तेन चम्हा अत्तमना। हन्द, च दानि मयं, भन्ते, गच्छाम; बहुकिच्चा मयं बहुकरणीया" ति।

[N. 381] "यस्सदानि त्वं, महाराज, कालं मञ्ञसी" ति।

अथ खो राजा पसेनदि कोसलो भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि ति।

राजवग्गो निट्ठितो चतुत्थो।

तब राजा प्रसेनजित् कौसल ने भगवान् से यों निवेदन किया—

"भन्ते! हमने भगवान् से सर्वज्ञता के विषय में प्रश्न किया, भगवान् ने उसका अच्छी तरह व्याख्यान किया। वह हमको अच्छा भी लगा, हमारे मस्तिष्क में भी बैठ गया। उस से हम प्रसन्न हैं। चतुर्वर्ण-शुद्धि के विषय में भी हमने प्रश्न किया, उसका भी आप ने जो उत्तर दिया वह भी हमको जँचा, और हमारी बुद्धि में भी बैठ गया। उससे भी हम प्रसन्न हैं। देवताओं के विषय में भी, भन्ते! हमने आप से प्रश्न किया था उसका भी...। भन्ते! ब्रह्मा के विषय में हमने आप से प्रश्न किया, उसका भी आपने उचित उत्तर दिया, वह भी हमको रुचा और हमारी समझ में आ गया। इससे हम अतीव प्रसन्न हैं। भन्ते! अब हमारा घर लौटने का समय हो गया है, क्योंकि वहाँ भी बहुत से कार्य बाकी पड़े हैं (अतः अब आज्ञा दें)।"

"महाराज! जैसा आप उचित समझें।"

तब राजा प्रसेनजित् कौसल भगवान् के उपदेश का अभिनन्दन-अनुमोदन कर,

तस्सुद्दानं

घटिकारो[1] रट्ठपालो[2], मघदेवो[3] मधुरियं[4]।
बोधि[5] अङ्गुलिमालो च[6], पियजातं[7] बाहितिकं[8]।
धम्मचेतियसुत्तं[9] च, दसमं कण्णकत्थलं[10] ॥

●

आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर (अपने प्रासाद को वापस) लौट गया ॥

कण्णकत्थलसुत्त समाप्त ॥

चतुर्थ राजवग्ग समाप्त ॥

इस वर्ग का उदान

इस वर्ग में ये दश सूत्र थे—१. घटिकार, २. रट्ठपाल, ३. मखादेव, ४. मधुरिय, ५. बोधिराजकुमार, ६. अंगुलिमाल, ७. पियजातिक, ८. बाहितिक, ९. धम्मचेतिय, एवं १०. कण्णकत्थल सूत्र ॥

●

४१. ब्रह्मायुसुत्तं

१. महापुरिसलक्खणसमन्नागतो भगवा

[N. 382, B. 334] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा विदेहेसु चारिकं चरति महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि। तेन खो पन समयेन ब्रह्मायु ब्राह्मणो मिथिलायं पटिवसति जिण्णो वुड्ढो महल्लको अद्धगतो वयोअनुप्पत्तो, वीसवस्ससतिको जातिया, तिण्णं वेदानं पारगू सनिघण्डुकेटुभानं साक्खरप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं, पदको, वेय्याकरणो, लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो। अस्सोसि खो ब्रह्मायु ब्राह्मणो—"समणो खलु भो, गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो विदेहेसु चारिकं चरति महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि। तं खो पन भगवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा ति। सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति। सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति! साधु खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं होती' " ति।

[R. 134] २. तेन खो पन समयेन ब्रह्मायुस्स ब्राह्मणस्स उत्तरो

---

४१. ब्रह्मायुसूत्र

१. महापुरुषलक्षणसम्पन्न भगवान्

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) पाँच सौ की संख्या वाले एक विशाल भिक्षुसङ्घ के साथ विदेह देश में चारिका कर रहे थे। उस समय मिथिला मे ब्रह्मायु नाम का ब्राह्मण रहता था। जो कि अत्यन्त जरा-जीर्ण वृद्ध, किनारे लगा हुआ-सा एवं आयुप्राप्त हो चुका था, और जन्म से एक सौ बीस वर्ष पार कर चुका था। यह तीनों वेदों (ऋक्, यजुष्, साम) में पारङ्गत, निघण्टु, कैटभ, शिक्षा, निरुक्त एवं इतिहास का मर्मज्ञ था, पद एवं वाक्य में निष्णात था, लोकायत शास्त्र एवं सामुद्रिक शास्त्र में प्रवीण था। उस ब्रह्मायु ब्राह्मण ने सुना--"अरे शाक्यपुत्र, शाक्यकुल से प्रव्रजित श्रमण गौतम आजकल पाँच सौ की संख्या वाले बिशाल भिक्षुसङ्घ के साथ विदेह देश में चारिका कर रहे हैं। उन श्रमण गौतम की प्रशंसा में (जनता में) यह कल्याणमय यशोगान हो रहा है कि—वे भगवान् ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध…पूर्ववत्[1]…। वैसे ज्ञानियों का दर्शन मङ्गलप्रद होता है"।

---

१. द्र०—पीछे पृ० ५३७ (सालेय्यकसुत्त)।

नाम माणवो अन्तेवासी होति तिण्णं वेदानं पारगू सनिघण्डुकेटुभानं साक्खरप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं, पदको, वेय्याकरणो, लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो। अथ खो ब्रह्मायु ब्राह्मणो उत्तरं माणवं आमन्तेसि—"अयं, तात उत्तर, समणो गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो विदेहेसु चारिकं चरति महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि। तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो···पे०···साधु खो पन तथारूपानं [N. 383, B. 335] अरहतं दस्सनं होती' ति। एहि त्वं, तात उत्तर, येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा समणं गोतमं जानाहि यदि वा तं भवन्तं गोतमं तथा सन्तं येव सद्दो अब्भुग्गतो, यदि वा नो तथा; यदि वा सो भव गोतमो तादिसो यदि वा न तादिसो। तथा मयं तं भवन्तं गोतमं वेदिस्सामा" ति।

"यथा कथं पनाहं, भो, तं भवन्तं गोतमं जानिस्सामि यदि वा तं भवन्तं गोतमं तथा सन्तं येव सद्दो अब्भुग्गतो, यदि वा नो तथा; यदि वा सो भवं गोतमो तादिसो, यदि वा नो तादिसो" ति?

"आगतानि खो, तात उत्तर, अम्हाकं मन्तेसु द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि, येहि समन्नागतस्स महापुरिसस्स द्वे येव गतियो भवन्ति अनञ्ञा। सचे अगारं अज्झावसति, राजा होति चक्कवत्ती धम्मिको धम्मराजा चातुरन्तो विजितावी जनपदत्थावरियप्पत्तो सत्तरतनसमन्नागतो। तस्सिमानि सत्त

---

२. उस समय ब्रह्मायु ब्राह्मण का एक उत्तर नामक शिष्य था, जो उसी की तरह तीनों वेदों में पारङ्गत···प्रवीण था। ब्रह्मायु ब्राह्मण ने उत्तर माणवको आदेश दिया—"तात उत्तर, यह शाक्यपुत्र एवं शाक्यकुल से प्रव्रजित श्रमण गौतम··· हैं, वहां जाओ। और पता लगाओ कि उनमें ये गुण वस्तुत: हैं भी नहीं, जिनका यह यशोगान जनता में इतनी प्रबलता से हो रहा है। वे गौतम वैसा ही आचरण करने वाले हैं या अन्यथा। इस तरह हम उस श्रमण गौतम के विषय में सच्चाई जान सकेंगे।"

"श्रीमन् यह मैं कैसे उन श्रमण गौतम के विषय में जान सकूंगा कि उनमें ये गुण···या अन्यथा?"

"तात उत्तर! हमारे मन्त्रों (ग्रन्थों) में महापुरुष के बत्तीस (३२) लक्षण बताये हैं; जिनसे सम्पन्न पुरुष की दो ही गतियाँ हो सकती हैं। (क) यदि वह घर (गृहस्थ धर्म) में रहे तो वह धार्मिक धर्माचरणसम्पन्न चक्रवर्ती राजा होता है। जनपदों के सर्वोच्च राजपद पर स्थिरता प्राप्त, चारों छोरों (अन्त) तक पृथ्वी का विजेता सात रत्नों से युक्त होता है। वे सात रत्न ये हैं—१. चक्ररत्न, २. हस्ति-

रतनानि भवन्ति, सेय्यथीदं--चक्करतनं, हत्थिरतनं, अस्सरतनं मणिरतनं, इत्थिरतनं, गहपतिरतनं, परिणायकरतनमेव सत्तमं। परोसहस्सं खो पनस्स पुत्ता भवन्ति सूरा वीरङ्गरूपा परसेनप्पमद्दना। सो इमं पठविं सागरपरियन्तं अदण्डेन असत्थेन धम्मेन अभिविजिय अज्झावसति। सचे खो पन अगारस्मा अनगारियं पब्बजति, अरहं होति सम्मासम्बुद्धो लोके विवट्टच्छदो। अहं खो पन, तात उत्तर, मन्तानं दाता; त्वं मन्तानं पटिग्गहेता' ति।

३. "एवं, भो" ति खो उत्तरो माणवो ब्रह्मायुस्स ब्राह्मणस्स पटिस्सुत्वा उट्ठायासना ब्रह्मायुं ब्राह्मणं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा विदेहेसु येन भगवा तेन चारिकं पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन भगवा [R. 135] तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो उत्तरो माणवो भगवतो काये द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि समन्नेसि। अद्दसा खो उत्तरो माणवो भगवतो काये द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि, येभुय्येन ठपेत्वा द्वे। द्वीसु महापुरिसलक्खणेसु कङ्खति विचिकिच्छति नाधिमुच्चति सम्प-[N. 384] सीदति--कोसोहिते च वत्थगुय्हे, पहूतजिव्हताय च। अथ खो

रत्न, ३. अश्वरत्न, ४. मणिरत्न, ५. स्त्रीरत्न, ६. गृहपतिरत्न एव ७. परिणायक-रत्न। इसके हजारों सुन्दर एवं शत्रु-संहारक वीर पुत्र होते हैं। वह इस समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी को विना किसी दण्ड के, विना किसी शस्त्र के, धर्म के सहारे अपने वश में रखता हुआ शासन करता है। (ख) और यदि वह घर से बेघर हो संसार से प्रव्रज्या (संन्यास) ले लेता है तो वह लोक में आवागमन की स्वपरम्परा को नष्ट कर हुआ ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध बन जाता है। तात उत्तर! मैं तुम्हें मन्त्रों का दाता (गुरु) हूँ और तुम उन मन्त्रों के ग्रहीता (शिष्य) हो।"

३. उत्तर माणव अपने गुरु ब्रह्मायु ब्राह्मण को—"ठीक है गुरुदेव! मैं पता लगाऊँगा।" यह उत्तर दे, आसन से उठ, गुरु को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर, जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा। पहुँच कर, भगवान् से कुशल-मङ्गल पूछा। वह उनसे कुशल-मङ्गल स्वास्थ्यविषयक बातें कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठा वह उत्तर माणव भगवान् के शरीर में बत्तीस महापुरुष लक्षण खोजने लगा। उत्तर माणवक ने भगवान् के शरीर में दो को छोड़ बाकी तीस महापुरुषलक्षणों में से अधिक से अधिक को खोज लिया। वह वस्त्राच्छादित (वस्त्र से ढके) वस्ति (लिङ्ग) और सुदीर्घ (लम्बी) जिह्वा के बारे में ही सन्देहास्पद रह गया। तब भगवान् को यह (विचार) हुआ—"यह उत्तर माणवक मेरे शरीर में बत्तीस महापुरुष लक्षणों की खोज कर रहा है। इसे,

भगवतो एतदहोसि--"पस्सति खो मे अयं उत्तरो माणवो द्वत्तिसमहापुरिसलक्खणानि, येभुय्येन ठपेत्वा द्वे। द्वीसु महापुरिसलक्खणेसु [B. 336] कङ्खति विचिकिच्छति नाधिमुच्चति न सम्पसीदति--कोसोहिते च वत्थगुय्हे, पहूतजिव्हताय चा" ति। अथ खो भगवा तथारूपं इद्धाभिसङ्खारं अभिसङ्खासि यथा अद्दस उत्तरो माणवो भगवतो कोसोहितं वत्थगुय्हं। अथ खो भगवा जिव्हं निन्नामेत्वा उभो पि कण्णसोतानि अनुमसि पटिमसि; उभो पि नासिकासोतानि अनुमसि पटिमसि; केवलं पि नलाटमण्डलं जिव्हाय छादेसि। अथ खो उत्तरस्स माणवस्स एतदहोसि—"समन्नागतो खो समणो गोतमो द्वत्तिसमहापुरिसलक्खणेहि। यन्नूनाहं समणं गोतमं अनुबन्धेय्यं, इरियापथमस्स पस्सेय्यं" ति। अथ खो उत्तरो माणवो सत्त मासानि भगवन्तं अनुबन्धि छाया व अनपायिनी।

४. अथ खो उत्तरो माणवो सत्तन्नं मासानं अच्चयेन विदेहेसु येन मिथिला तेन चारिकं पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन मिथिला येन ब्रह्मायु ब्राह्मणो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा ब्रह्मायुं ब्राह्मणं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो उत्तरं माणवं ब्रह्मायु ब्राह्मणो एतदवोच—"कच्चि, तात उत्तर, तं भवन्तं गोतमं [R. 136] तथा सन्तं एव सद्दो अब्भुग्गतो, नो अञ्ञथा? कच्चि पन सो भवं गोतमो तादिसो, नो अञ्ञादिसो" ति?

दो को छोड़, बाकी सब दिखायी भी दे गये हैं। यह केवल मेरी वस्त्राच्छादित वस्ति एवं सुदीर्घ जिह्वा के (प्रत्यक्ष दिखायी न देने के कारण) विषय में ही सन्देहास्पद है।" तब भगवान् ने ऐसा ऋद्धयनुभाव (चमत्कार) किया कि उत्तर माणवक को भगवान् की वस्त्राच्छादित वस्ति दिखायी दे गयी। फिर भगवान् ने अपनी जिह्वा मुख से बाहर निकाल कर अपने दोनों कानों की जड़ से छुआ दिया, नाक के दोनों छिद्रों को छुआ दिया, और जिह्वा से समग्र ललाट को भी आच्छादित कर दिया। तब उत्तर माणवक को यह हुआ—"ये श्रमण गौतम बत्तीस महापुरुष लक्षणों से युक्त हैं। क्यों न मैं अब श्रमण गौतम का अनुगमन (पीछा) करूँ ताकि इनके ईर्यापथ (चाल-ढाल) के बारे में भी परिचित हो सकूँ।" तब उत्तर माणवक सात मास तक भगवान् के पीछे-पीछे, छाया की तरह, लगा रहा।

४. तब वह उत्तर माणवक, सात मास बीतने पर क्रमशः चारिका करता हुआ, विदेह प्रान्त की मिथिल नगरी में वापस लौट आया और ब्रह्मायु ब्राह्मण के पास पहुँचा। पहुँचकर वह ब्रह्मायु ब्राह्मण को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उत्तर माणवक को ब्रह्मायु ब्राह्मण ने यों पूछा—"तात उत्तर! क्या उन

"तथा सन्तं येव, भो, तं भवन्तं गोतमं सद्दो अब्भुग्गतो, नो अञ्ञथा; तादिसो व सो भवं गोतमो, नो अञ्ञादिसो। समन्नागतो च सो भवं गोतमो द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणेहि।

"सुप्पतिट्ठितपादो खो पन भवं गोतमो; इदं पि तस्स भोतो गोतमस्स महापुरिसस्स महापुरिसलक्खणं भवति। (१)

"हेट्ठा खो पन तस्स भोतो गोतमस्स पादतलेसु चक्कानि जातानि सहस्सारानि सनेमिकानि सनाभिकानि सब्बाकारपरिपूरानि। (२)

"आयतपण्हि खो पन सो भवं गोतमो। (३) [N. 385, B. 337]

"दीघङ्गुलि खो पन सो भवं गोतमो। (४)

"मुदुतलुनहत्थपादो खो पन सो भवं गोतमो। (५)

"जालहत्थपादो खो पन सो भवं गोतमो। (६)

"उस्सङ्खपादो खो पन सो भवं गोतमो। (७)

"एणिजङ्घो खो पन सो भवं गोतमो। (८)

"ठितको खो पन सो भवं गोतमो अनोनमन्तो उभोहि पाणितलेहि जण्णुकानि परिमसति परिमज्जति। (९)

श्रमण गौतम की लोक में जैसी प्रशंसा फैली हुई है, वे वैसे ही हैं या इसके विपरीत? क्या वे आदरणीय श्रमण गौतम वैसे ही हैं? अन्यादृश तो नहीं?"

"श्रीमन्! उन श्रमण गौतम की जैसी प्रशंसा (यशोगाथा) लोक में फैली हुई है, मैंने उनको तदनुरूप ही पाया, अन्यथा नहीं। उनमें महापुरुषों के बत्तीसों लक्षण (चिह्न) वर्तमान हैं।

"वे माननीय गौतम सुप्रतिष्ठित पाद वाले हैं। (उनका पैर जमीन पर समान बैठता है।) यह लक्षण उन के बत्तीस महापुरुष लक्षणों में से एक है। (१)

"उन पूज्य गौतम के पैर के नीचे के तलवे में सर्वाकार परिपूर्ण नाभि व नेमि (पुट्ठी) से युक्त हजारों अरों वाले चक्र हैं। (२)

"उन महापुरुष के पैरों की एड़ी (पार्ष्णि) चौड़ी हैं। (३)

"उन महापुरुष की अँगुलियाँ लम्बी हैं। (४)

"उनके हाथ-पैर कोमल तथा चिकने हैं। (५)

"उनकी अंगुलियाँ जालयुक्त (बत्तक के पैरों के बीच की तरह चमड़े वाली) हैं। (६)

"उनके पैरों के टखने अलग से दिखायी देते हैं। (७)

"उनके पैर मृग की तरह की पिण्डलियों वाले हैं। (८)

"वे गौतम खड़े-खड़े (बिना झुके) ही दोनों हाथों के तलवों से अपनी जानु (घुटना) छू सकते हैं, मसल सकते हैं। (९)

"कोसोहितवत्थगुय्हो खो पन सो भवं गोतमो। (१०)
"सुवण्णवण्णो खो पन भवं गोतमो कञ्चनसन्निभत्तचो। (११)
"सुखुमच्छवि खो पन सो भवं गोतमो। सुखुमत्ता छविया रजोजल्लं काये न उपलिम्पति। (१२)
"एकेकलोमो खो पन सो भवं गोतमो; एकेकानि लोमानि लोमकूपेसु जातानि। (१३)
"उद्धग्गलोमो खो पन सो भवं गोतमो, उद्धग्गानि लोमानि जातानि नीलानि अञ्जनवण्णानि कुण्डलावट्टानि दक्खिणावट्टकजातानि। (१४)
"ब्रह्मुजुगत्तो खो पन सो भवं गोतमो। (१५)
"सत्तुस्सदो खो पन सो भवं गोतमो। (१६)
"सीहपुब्बद्धकायो खो पन सो भवं गोतमो (१७)
"चितन्तरंसो खो पन सो भवं गोतमो। (१८)
"निग्रोधपरिमण्डलो खो पन सो भवं गोतमो; यावतक्वस्स कायो तावतक्वस्स ब्यामो, यावतक्वस्स ब्यामो तावतक्वस्स कायो। (१९)
"समवट्टक्खन्धो खो पन सो भवं गोतमो। (२०)
"रसग्गसग्गी खो पन सो भवं गोतमो। (२१)

"उन पूज्य गौतम का वस्तिगुह्य (मूत्रेन्द्रिय) कोषाच्छादित है। (१०)
"वे सुवर्ण वर्ण वाले हैं एवं उनके शरीर की त्वचा काञ्चन के समान है। (११)
"उनके शरीर की त्वचा सूक्ष्म छवि वाली है, जिससे उनके शरीर पर मैल या धूल नहीं जमती। (१२)
"उनके एक एक रोमकूप में एक-एक ही रोम हैं। (१३)
"उन पूज्य गौतम के लोम अंजन के समान गहरे नीले तथा दाहिनी ओर घूमे हुए (दक्षिणावर्त) कुण्डलित हैं और उनके अग्रभाग ऊपर उठे हुए हैं। (१४)
"वे ब्राह्म ऋजुगात्र (लम्बे अकुटिल शरीर वाले) हैं। (१५)
"उनका शरीर सातों अङ्गों में पूरे उठाव वाला है। (१६)
"उनके शरीर का ऊपरी भाग (वक्ष आदि) सिंह के सदृश है। (१७)
"उनके दोनों कन्धों के बीच का भाग पूर्ण (=चित, भरापूरा) है। (१८)
"उनके शरीर की लम्बाई-चौड़ाई समान है। काया के समान चौड़ाई (व्याम) तथा चौड़ाई के समान काया है। (१९)
"उनके कन्धे समान परिमाण वाले हैं। (२०)
"उनकी शिराओं में ठीक ढंग से रक्तप्रवाह होता है। (२१)

[B. 388, R. 137] "सीहहनु खो पन सो भवं गोतमो । (२२)
[N. 386] "चत्तालीसदन्तो खो पन सो भवं गोतमो (२३)
"समदन्तो खो पन सो भवं गोतमो । (२४)
"अविरळदन्तो खो पन सो भवं गोतमो (२५)
"सुसुक्कदाठो खो पन सो भवं गोतमो । (२६)
"पहूतजिव्हो खो पन सो भवं गोतमो । (२७)
"ब्रह्मस्सरो खो पन सो भवं गोतमो करविकभाणी । (२८)
"अभिनीलनेत्तो खो पन सो भवं गोतमो । (२९)
"गोपखुमो खो पन सो भवं गोतमो । (३०)
"उण्णा खो पनस्स भोतो गोतमस्स भमुकन्तरे जाता ओदाता मुदुतूल-सन्निभा । (३१)
"उण्हीससीसो खो पन सो भवं गोतमो ; इदं पि तस्स भोतो गोतमस्स महापुरिसस्स महापुरिसलक्खणं भवति । (३२)
"इमेहि खो, भो, सो भवं गोतमो द्वत्तिसमहापुरिसलक्खणेहि समन्नागतो ।

५. "गच्छन्तो खो पन सो भवं गोतमो दक्खिणेनेव पादेन पठमं पक्कमति । सो नातिदूरे पादं उद्धरति, नच्चासन्ने पादं निक्खिपति ; सो नातिसीघं गच्छति, नातिसणिकं गच्छति; न च अद्दुवेन अद्दुवं सङ्घट्टेन्तो

"वे सिंह के समान पूर्ण ठोड़ी वाले हैं। (२२)
"उनके दाँत सङ्ख्या में चालीस हैं। (२३)
"उनकी दन्तपंक्ति सम-समान है, कोई ऊपर, कोई नीचे नहीं। (२४)
"उनके दाँतों के बीच-बीच में छिद्र नहीं है। (२५)
"उनकी दाढ़ें सफेद (शुक्ल) हैं। (२६)
"उनकी जिह्वा लम्बी है। (२७)
"उनका स्वर सुरीला एवं श्रुतिमधुर है मानों करविक पक्षी बोल रहा हो। (२८)
"उनकी आँखों की आभा अतसी-पुष्प समान गहरी-नीली है। (२९)
"उनकी पलकें गौ के समान हैं। (३०)
"उनकी भौंहों के बीच में श्वेत कमल या रूई सी ऊर्णा (रोमराजि) है। (३१)
"वे पगड़ी की तरह चारों ओर समान आकार के शिर वाले हैं। (३२)
"इस तरह वे माननीय गौतम बत्तीस महापुरुष लक्षणों से युक्त हैं।

५. "चलना प्रारम्भ करते समय वे पूज्य गौतम अपना दाहिना पैर ही पहले उठाते हैं। वे अपने कदम न तो अधिक दूर (लम्बे) रखते हैं, न अधिक नजदीकी (छोटे)

गच्छति, न च गोप्फकेन गोप्फकं सङ्घट्टेन्तो गच्छति। सो गच्छन्तो न सत्थि उन्नामेति, न सत्थि ओनामेति; न सत्थि सन्नामेति, न सत्थि विनामेति। गच्छतो खो पन तस्स भोतो गोतमस्स अधरकायो व इञ्जति, न च कायबलेन गच्छति। अपलोकेन्तो खो पन सो भवं गोतमो सब्बकायेनेव अपलोकेति; सो न उद्धं उल्लोकेति, न अधो आलोकेति; न च उपेक्खमानो गच्छति, युगमत्तं च पेक्खति; ततो चस्स उत्तरि अनावटं ञाणदस्सनं भवति। सो अन्तरघरं पविसन्तो न कायं उन्नामेति, न कायं ओनामेति; न कायं सन्नामेति, न कायं विनामेति। सो नातिदूरे [B. 339, R. 138] नाच्चासन्ने आसनस्स परिवत्तति, न च पाणिना आलम्बित्वा आसने निसीदति, न च आसनस्मिं कायं पक्खिपति। सो अन्तरघरे निसिन्नो समानो न हत्थकुक्कुच्चं आपज्जति, न पादकुक्कुच्चं आपज्जति; न [N. 387] अद्दुवेन अद्दुवं आरोपेत्वा निसीदति; न च गोप्फकेन गोप्फकं आरोपेत्वा निसीदति; न च पाणिना हनुकं उपदहित्वा निसीदति। सो अन्तरघरे निसिन्नो सामानो न छम्भति न कम्पति न वेधति न परितस्सति। सो अछम्भी अकम्पी अवेधी अपरितस्सी विगतलोमहंसो। विवेकवत्तो च सो भवं गोतमो अन्तरघरे निसिन्नो होति।

ही। वे न अधिक जल्दी ही चलते हैं, न बहुत धीरे। (चलते समय) उनका न गोड़े (जानु) से गोड़ा टकराता है, न टखने (गुल्फ) से टखना। वे उस समय अपनी जाँघ (सक्थि) को न ज्यादा ऊपर उठाते हैं, न ज्यादा नीचे ही रहने देते हैं। न उसे घुमाकर चलते हैं, न हिलाकर चलते हैं। चलते समय उन पूज्य गौतम का निचला शरीर ही हिलता है, वे अपने पूरे शरीर को (आगे) फेंकते-से नहीं चलते। बिना अवलोकन करते हुए भी वे अपनी समग्र काया को अवलोकन करते हुए से चलते हैं। वे न ऊपर की ओर अवलोकन करते हैं, न नीचे की ओर ही, और न चारों ओर व्यर्थ देखते हुए से ही चलते हैं। वे साधारणतः चार हाथ (युगमात्र) आगे का मार्ग देखकर चलते हैं। उससे आगे देखने के लिए उनकी ज्ञानदृष्टि खुली रहती है।

वे गृहस्थों के घर में प्रवेश करते समय न अपने शरीर को उचकाते (उन्नामन) हैं, न विचकाते (अवनामन) हैं, न ऊपर उठाते (सन्नामन) हैं न नीचे झुकाते (विनामन) हैं। वे आसन से न ज्यादा दूर न ज्यादा नजदीक ही अपने शरीर को पलटते हैं। न वे हाथ के सहारे आसन पर बैठते हैं, न आसन पर शरीर फेंकते हुए से बैठते हैं। वे गृहस्थों के घर में बैठे हुए न हाथों से चञ्चलता प्रकट करते हैं, न पैरों से। न गोड़े पर गोड़ा रखकर बैठते हैं, न टखने पर टखना रख कर। न वे ठोडी पर हाथ का सहारा दिये हुए ही बैठते हैं! वे गृहस्थों के घर में बैठे हुए न कोई

"सो पत्तोदकं पटिग्गण्हन्तो न पत्तं उन्नामेति, न पत्तं ओनामेति; न पत्तं सन्नामेति, न पत्तं विनामेति। सो पत्तोदकं पटिग्गण्हाति नातिथोकं नातिबहुं। सो न खुलुखुलुकारकं पत्तं धोवति, न सम्परिवत्तकं पत्तं धोवति, न पत्तं भूमियं निक्खिपित्वा हत्थे धोवति; हत्थेसु धोतेसु पत्तो धोतो होति, पत्ते धोते हत्था धोता होन्ति। सो पत्तोदकं छड्डेति नातिदूरे नाच्चासन्ने, न च विच्छड्डयमानो। सो ओदनं पटिग्गण्हन्तो न पत्तं उन्नामेति, न पत्तं ओनामेति; न पत्तं सन्नामेति, न पत्तं विनामेति। सो ओदनं पटिग्गण्हाति नातिथोकं नातिबहुं। ब्यञ्जनं खो पन भवं गोतमो ब्यञ्जनमत्ताय आहारेति, न च ब्यञ्जनेन आलोपं अतिनामेति। द्वत्तिक्खत्तुं खो भवं गोतमो मुखे आलोपं सम्परिवत्तेत्वा अज्झोहरति; न चस्स काचि ओदनमिञ्जा असम्भिन्ना कायं पविसति, न चस्स काचि ओदनमिञ्जा मुखे अवसिट्ठा होति; अथापरं आलोपं उपनामेति। रसपटिसंवेदी खो पन सो भवं गोतमो आहारं आहारेति, नो च रसरागपटिसंवेदी।

"अट्ठङ्गसमन्नागतं खो पन सो भवं गोतमो आहारं आहारेति—नेव दवाय, न मदाय न मण्डनाय न विभूसनाय, यावदेव इमस्स कायस्स ठितिया

घबराहट दिखाते हैं, न शरीर को कँपाते हैं, न कोई भय अनुभव करते हैं। वे बिना घबराये, बिना शरीर को कँपाये व निर्भय हो गृहस्थ के घर में बैठते हैं।

वे पात्र में जल ग्रहण करते समय, न पात्र को ज्यादा ऊपर उठाते हैं न नीचे नवाते हैं न उसे घुमाते हैं, न हिलाते हैं। वे पात्र में न अधिक जल लेते हैं, न सर्वथा कम। वे पात्र धोते समय न उससे खुल-खुल आवाज होने देते हैं, न उसे उस समय घुमाते हैं। न पात्र को जमीन पर रखकर हाथ धोते हैं। हाथ धो लेने पर पात्र धोते हैं; पात्र धो लेने पर फिर एक बार हाथ धोते हैं। वे पात्र को धोने वाले जल को न बहुत दूर फेंकते हैं, न बहुत नजदीक, न वे उसको चारों ओर बिखेरकर फेंकते हैं। भात लेते समय वे पात्र को न ऊपर उठाते हैं, न उसे नीचे झुकाते हैं, न उसे घुमाते हैं, न हिलाते हैं। वे पात्र में भात लेते समय, न उसे बहुत ज्यादा लेते हैं, न बहुत कम। वे व्यञ्जन को व्यञ्जन की मात्रा से ही (मुख में) लेते हैं। ग्रास में व्यञ्जन अधिक नहीं लेते। दो तीन बार ग्रास को चबाकर आगे निगलते हैं। भात का जूठन उनके शरीर पर नहीं गिरता। जब तक वे पहला ग्रास न निगल लें दूसरा ग्रास मुख में नहीं डालते। वे आहार का रस लेते हुए उसे खाते हैं, फिर भी उसमें राग का अनुभव (= प्रतिसंवेदन) नहीं करते।

"वे माननीय गौतम आठ बातों के लिये इस आहार का ग्रहण करते हैं—१. न चपलता के लिये, २. न मद के लिये, ३. न शरीर के मण्डन (चमक-दमक) के

यापनाय, विहिंसूपरतिया ब्रह्मचरियानुग्गहाय—'इति पुराणं च [R. 139] वेदनं पटिहङ्खामि नवं च वेदनं न उप्पादेस्सामि, यात्रा च मे भविस्सति अनवज्जता च फासुविहारो चा' ति। सो भुत्तावी पत्तोदकं [B. 340] पटिग्गण्हन्तो न पत्तं उन्नामेति न पत्तं ओनामेति; न पत्तं सन्नामेति, न पत्तं विनामेति। सो पत्तोदकं पटिग्गण्हाति नातिथोकं नातिबहुं। सो न खुलुखुलुकारकं पत्तं धोवेति, न सम्परिवत्तकं पत्तं धोवेति, न पत्तं भूमियं निक्खिपित्वा हत्थे धोवति ; हत्थेसु धोतेसु पत्तो धोतो [N. 388] होति, पत्ते धोते हत्था धोता होन्ति। सो पत्तोदकं छड्डेति नातिदूरे नाच्चासन्ने, न च विच्छड्डयमानो। सो भुत्तावी न पत्तं भूमियं निक्खिपति नातिदूरे नाच्चासन्ने, न च अनत्थिको पत्तेन होति, न च अतिवेलानुरक्खी पत्तस्मिं। सो भुत्तावी मुहुत्तं तुण्ही निसीदति, न चानुमोदनस्स कालं अतिनामेति। सो भुत्तावी अनुमोदति, न तं भत्तं गरहति, न अञ्ञं भत्तं पटिकङ्खति; अञ्ञदत्थु धम्मिया कथाय तं परिसं सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति। सो तं परिसं धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा उट्ठायासना पक्कमति।

लिये, ४. न विभूषण (सजावट) के लिये वे आहार ग्रहण करते हैं। ५-६. जितना आहार इस शरीर की स्थिति या यापन (आगे जीवन-यात्रा चलाने) के लिये आवश्यक हो उसके लिये, ७. भूख की पीड़ा-शान्ति के लिये, और ८. ब्रह्मचर्य-साधना में आवश्यक तत्त्व की पूर्ति के लिये ही आहार ग्रहण करते हैं। वह भी यह सोचकर कि 'इस आहार की सहायता से पुरानी वेदना (भोग) को हटाऊँगा और नई वेदना को उत्पन्न न होने दूँगा, मेरी यह शरीर-यात्रा भी होती रहेगी, और शारीरिक निर्दोषता एवं साधना में ऋजुता (सरलता) भी प्राप्त होती रहेगी।'

वे भोजन करने के बाद, जलपात्र उठाते हुए न उसे अधिक ऊपर उठाते हैं, न नीचे नँवाते हैं, न घुमाते हैं न हिलाते हैं। न उसमें मात्रा से अधिक या कम जल ग्रहण करते हैं। न पात्र धोते समय उसमें खल-खल आवाज होने देते हैं, न पात्र को बार-बार उलटते हुए धोते हैं। न पात्र को जमीन पर रख कर धोते हैं; अपितु हाथ धोते समय ही पात्र धुल जाय—ऐसी स्थिति बनाते हैं। पात्र धो लेने पर, एक बार वे फिर हाथ धोते हैं। वे पात्र का फालतू पानी न बहुत दूर गिराते हैं, न बहुत नजदीक, और न उसे बिखेरते हुए फेंकते हैं। वे भोजन कर चुकने के बाद पत्तल को भूमि पर न ज्यादा दूर और न ज्यादा पास फेंकते हैं। न उसकी इतनी उपेक्षा ही करते हैं कि वह उड़कर किसी पवित्र स्थान को अपवित्र कर दे, न उसकी अत्यधिक रक्षा में ही तत्पर होते हैं। वे भोजन कर चुकने के बाद कुछ क्षण चुप रहते हैं; परन्तु इतना भी नहीं कि अनुमोदना का समय ही बीतने लगे। इसके बाद, वे उस भोजन

सो नातिसीघं गच्छति, नातिसणिकं गच्छति, न च मुच्चितुकामो गच्छति; न च तस्स भोतो गोतमस्स काये चीवरं अच्चुक्कट्ठं होति न च अच्चोकट्ठं, न च कायस्मि अल्लीनं न च कायस्मा अपकट्ठं; न च तस्स भोतो गोतमस्स कायम्हा वातो चीवरं अपवहति; न च तस्स भोतो गोतमस्स काये रजोजल्लं उपलिम्पति।

सो आरामगतो निसीदति पञ्ञत्ते आसने। निसज्ज पादे पक्खालेति; न च सो भवं गोतमो पादमण्डनानुयोगमनुयुत्तो विहरति। सो पादे पक्खालेत्वा निसीदति पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। सो नेव अत्तब्याबाधाय चेतेति, न परब्याबाधाय चेतेति, न [R. 140] उभयब्याबाधाय चेतेति; अत्तहित-परहित-उभयहित-सब्बलोकहितमेव सो भवं गोतमो चिन्तेन्तो निसिन्नो होति।

सो आरामगतो परिसति धम्मं देसेति, न तं परिसं उस्सादेति, न तं परिसं अपसादेति; अञ्ञदत्थु धम्मिया कथाय तं परिसं सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति।

"अट्ठङ्गसमन्नागतो खो पनस्स भोतो गोतमस्स मुखतो घोसो निच्छ-

का अनुमोदन (प्रशंसात्मक वचन) करते हैं; वे उस भोजन की निन्दा नहीं करते; न दूसरे किसी भोजन की आकांक्षा करते हैं। अपितु उस परिषद् को धार्मिक कथा द्वारा सन्दर्शन, समुत्तेजन, सम्प्रहर्षण कर, आसन से उठ चल देते हैं।

"वे न अति शीघ्र चलते हैं, न बहुत धीरे; और न उपेक्षापूर्वक (पिण्ड छुड़ाने की तरह) ही चलते हैं। चलते समय उन पूज्य गौतम के शरीर का वस्त्र न अत्यन्त ऊपर रहता है, न अत्यन्त नीचे; न वह काया से अत्यन्त चिपका रहता है, न अत्यन्त निकला हुआ। हवा भी उनके चीवर को नहीं उड़ा पाती। उनके शरीर पर मैल भी नहीं चिपकता।

वे आराम (साधनास्थल) में जाकर बिछे आसन पर बैठते हैं, बैठकर पैर धोते हैं; पर पैरों को सजाने-सँवारने में उनकी कोई प्रवृत्ति दिखायी नहीं देती। वे पैर धोकर, शरीर को सीधा रख, स्मृति रखते हुए, (उनके लिये बिछे) आसन पर विराजते हैं। वे न आत्म-पीड़ा, न पर-पीड़ा, न उभय-पीड़ा के लिये कभी सोचते हैं। वे तो आत्महित, परहित एवं उभयहित या लोकहित का चिन्तन करते हुए ही आसीन रहते हैं। वे साधनास्थल पर बैठ परिषद् में धर्मोपदेश करते हैं। इस समय वे ध्यान रखते हैं कि परिषद् कहीं अत्युत्साह में आकर या निरुत्साह हो भाषण का गलत अर्थ न लगा बैठे। अपितु धार्मिक कथा द्वारा उस परिषद् का उचित सन्दर्शन, समादपन, समुत्साह या सम्प्रहर्षण करते हैं।

रति—विसट्ठो च, विञ्ञेय्यो च, मञ्जु च, सवनीयो च, बिन्दु च, अविसारी च, गम्भीरो च, निन्नादी च। यथापरिसं खो पन सो भवं [B. 341] गोतमो सरेन विञ्ञापेति न चस्स बहिद्धा परिसाय घोसो निच्छरति। ते तेन भोता गोतमेन धम्मिया कथाय सन्दस्सिता समादपिता समुत्तेजिता सम्पहंसिता उट्ठायासना पक्कमन्ति अवलोकयमाना येव अविजहितत्ता।

"अद्दसाम खो मयं भो, तं भवन्तं गोतमं गच्छन्तं, अद्दसाम [N. 389] ठितं, अद्दसाम अन्तरघरं पविसन्तं, अद्दसाम अन्तरघरे निसिन्नं तुण्हीभूतं, अद्दसाम अन्तरघरे भुञ्जन्तं, अद्दसाम भुत्ताविं निसिन्नं तुण्हीभूतं, अद्दसाम भुत्ताविं अनुमोदन्तं, अद्दसाम आरामं गच्छन्तं, अद्दसाम आरामगतं निसिन्नं तुण्हीभूतं, अद्दसाम आरामगतं परिसति धम्मं देसेन्तं। एदिसो च एदिसो च सो भवं गोतमो, ततो च भिय्यो" ति।

२. ब्रह्मायुब्राह्मणस्स भगवति निपच्चकारो

६. एवं वुत्ते, ब्रह्मायु ब्राह्मणो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा तिक्खत्तुं उदानं उदानेसि--

---

"उन आदरणीय गौतम के श्रीमुख से जब कोई शब्द निकलता है तो इन आठ अङ्गों से युक्त होता है—१. प्रामाणिक, २. विज्ञेय, ३. मञ्जु, ४. श्रवणीय, ५. बिन्दु (सारयुक्त), ६. अविसारी (श्रुतिमधुर), ७. गम्भीर एवं ८. निर्नादी (खन-खन ध्वनि वाला)। परिषद् के परिमाण (उपस्थिति) के अनुसार ऊँचे या नीचे स्वर से वे पूजनीय गौतम उपदेश करते हैं। वह स्वर परिषद् से बाहर दूसरों को नहीं सुनायी देता। उन गौतम की कही धार्मिक कथा से सन्दर्शित...सम्प्रहर्षित हो श्रोतृ-जन आसन से उठकर (नीचे) देखते हुए चले जाते हैं उस भाव को बिना छोड़े।

"इस तरह, श्रीमन्! हमने उन पूज्य गौतम को चलते हुए, बैठते हुए, गृहस्थों के घर में प्रवेश के समय, वहाँ चुपचाप बैठे हुए, खाते हुए, खाकर चुप-चाप बैठे हुए, अनुमोदना करते हुए; आराम की तरफ जाते हुए, आराम में बैठे हुए, आराम में परिषद् को उपदेश करते हुए—सभी स्थितियों में देखा। वे ऐसे (उपर्युक्त) गुणों से सम्पन्न हैं, अपितु यों कहना चाहिये कि उनमें हमारे द्वारा वर्णित इन गुणों से अधिक ही गुण हैं।

२. ब्रह्मायु ब्राह्मण का भगवान् को प्रणाम

६. (उत्तर माणवक द्वारा) ऐसा कहे जाने पर ब्रह्मायु ब्राह्मण आसन से उठ, अपना उत्तरासङ्ग एक कन्धे पर कर, जिधर भगवान् थे उधर करबद्ध प्रणाम करते तीन बार यों बोला—

"नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ।

"नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ।

"नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्सा ति ।

"अप्पेव नाम मयं कदाचि करहचि तेन भोता गोतमेन समागच्छेय्याम ! अप्पेव नाम सिया कोचिदेव कथासल्लापो" ति !

७. अथ खो भगवा विदेहेसु अनुपुब्बेन चारिकं चारिकं चरमानो येन मिथिला तदवसरि । तत्र सुदं भगवा मिथिलायं विहरति मखादेवम्बवने । अस्सोसुं खो मिथिलेय्यका ब्राह्मणगहपतिका—"समणो खलु, भो, गोतमो [R. 141] सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो विदेहेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि मिथिलं अनुप्पत्तो मिथिलायं विहरति मखादेवम्बवने । तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति । सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं [B. 342] पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति । सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति । साधु खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं होती" ति ।

[N. 390] अथ खो मिथिलेय्यका ब्राह्मणगहपतिका येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा अप्पेकच्चे भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु; अप्पेकच्चे भगवता सद्धिं सम्मोदिंसु, सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा

"उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को नमस्कार है ।

"उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को नमस्कार है ।

"उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को नमस्कार है ।

"क्या कभी उन पूज्य गौतम से हमारा सत्सङ्ग होगा, क्या उनसे कुछ कथासंलाप होगा !"

७. तब कभी भगवान् क्रमशः विदेह से चारिका करते हुए मिथिला नगरी में पहुँचे । वहाँ भगवान् मिथिला के (समीप) मखादेव-आम्रवन में ठहरे । मिथिलावासी ब्राह्मण गृहपतियों ने सुना—"अरे ! शाक्यपुत्र श्रमण...आम्रवन में ठहरे हैं । उन भगवान् के विषय में ऐसी प्रशंसात्मक बातें सुनायी दे रही हैं—'वे भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध...ऐसे ज्ञानियों का दर्शन मङ्गलमय होता है ।' "

तब मिथिलावासी ब्राह्मण गृहपति, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ, पहुँचे ।

एकमन्तं निसीदिंसु; अप्पेकच्चे येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु; अप्पेकच्चे भगवतो सन्तिके नामगोत्तं सावेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु; अप्पेकच्चे तुण्हीभूता एकमन्तं निसीदिंसु।

८. अस्सोसि खो ब्रह्मायु ब्राह्मणो—"समणो खलु, भो, गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो मिथिलं अनुप्पत्तो, मिथिलायं विहरति मखादेवम्बवने" ति। अथ खो ब्रह्मायु ब्राह्मणो सम्बहुलेहि सावकेहि सद्धिं येन मखादेवम्बवनं तेनुपसङ्कमि। अथ खो ब्रह्मायुनो ब्राह्मणस्स अविदूरे अम्बवनस्स एतदहोसि—न खो मेतं पतिरूपं योहं पुब्बे अप्पटिसंविदितो समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमेय्यं" ति। अथ खो ब्रह्मायु ब्राह्मणो अञ्ञतरं माणवकं आमन्तेसि—"एहि त्वं, माणवक, येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा मम वचनेन समणं गोतमं अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छ—'ब्रह्मायु, भो गोतम, ब्राह्मणो भवन्तं गोतमं अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छती' ति। एवं च वदेहि—"ब्रह्मायु, भो गोतम, ब्राह्मणो जिण्णो वुड्ढो महल्लको अद्धगतो वयोअनुप्पत्तो, वीसवस्ससतिको जातिया, तिण्णं वेदानं पारगू सनिघण्डुकेटुभानं साक्खरप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं, पदको, वेय्याकरणो, लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो। यावता, भो, ब्राह्मणगहपतिका मिथिलायं पटिवसन्ति, ब्रह्मायु तेसं ब्राह्मणो [R. 142] अग्गमक्खायति—यदिदं मन्तेहि; ब्रह्मायु तेसं ब्राह्मणो अग्गमक्खायति—यदिदं आयुना चेव यससा च। सो भोतो गोतमस्स दस्सनकामो' " ति।

पहुँच कर उनमें से कुछ भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये···और कुछ जाकर चुपचाप बैठ गये।

८. ब्रह्मायु ब्राह्मण ने (भी) सुना—"अरे ! शाक्यपुत्र श्रमण गौतम···मखादेव आम्रवन में विराजमान हैं।" तब ब्रह्मायु ब्राह्मण भी बहुत से शिष्यों के साथ मखादेव आम्रवन के पास पहुँचा। वहाँ उस ब्रह्मायु ब्राह्मण के मन में यह विचार उठा—"मेरे लिये यह उचित नहीं होगा कि पहले से सूचना दिये बिना उनके सामने जाऊँ।" अतः ब्रह्मायु ब्राह्मण ने अपने किसी शिष्य माणवक को बुलाकर कहा—"जाओ माणवक ! जहाँ श्रमण गौतम विराजमान हैं वहाँ पहुँचो। पहुँचकर मेरे कहने से श्रमण गौतम से उनके स्वास्थ्य, नीरोगता एवं कुशल-मङ्गल के विषय में पूछना—'भो गौतम ! ब्रह्मायु ब्राह्मण आप का कुशल-मङ्गल जानना चाहते हैं।' और यह कहना—'भो गौतम ! ब्रह्मायु ब्राह्मण वृद्ध अवस्था प्राप्त, जीवन के किनारे पर पहुँचा हुआ एवं आयु से एक सौ बीस वर्ष का हो चुका है। वह तीनों वेदों में पारङ्गत...महापुरुष-लक्षणशास्त्र का अद्वितीय ज्ञाता है। मिथिला में जितने भी ब्राह्मण

[B. 343] "एवं, भो, ति खो सो माणवको ब्रह्मायुस्स ब्राह्मणस्स पटिस्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो सो माणवको भगवन्तं एतदवोच—"ब्रह्मायु, भो गोतम, ब्राह्मणो भवन्तं गोतमं अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छति; एवं च वदेति—'ब्रह्मायु, भो गोतम, ब्राह्मणो जिण्णो वुड्ढो महल्लको अद्धगतो वयो- [N. 391] अनुप्पत्तो, वीसवस्ससतिको जातिया, तिण्णं वेदानं पारगू सनिघण्डुकेटुभानं साक्खरप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं, पदको, वेय्याकरणो, लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो। यावता, भो, ब्राह्मणगहपतिका मिथिलायं पटिवसन्ति, ब्रह्मायु तेसं ब्राह्मणो अग्गमक्खायति--यदिदं भोगेहि; ब्रह्मायु तेसं ब्राह्मणो अग्गमक्खायति--यदिदं मन्तेहि; ब्रह्मायु तेसं ब्राह्मणो अग्गमक्खायति--यदिदं आयुना चेव यससा च। सो भोतो गोतमस्स दस्सनकामो" ति।

"यस्सदानि, माणव, ब्रह्मायु ब्राह्मणो कालं मञ्ञती" ति।

अथ खो सो माणवको येन ब्रह्मायु ब्राह्मणो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा ब्रह्मायुं ब्राह्मणं एतदवोच—"कतावकासो खोम्हि भवता समणेन गोतमेन। यस्सदानि भवं कालं मञ्जती" ति।

९. अथ खो ब्रह्मायु ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो सा परिसा ब्रह्मायुं ब्राह्मणं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान ओरमिय ओकासम-

---

रहते हैं उनमें वह सर्वश्रेष्ठ है; भोग, मन्त्र (शास्त्र), ज्ञान, आयु और यश में भी सर्वश्रेष्ठ है। वह आप गौतम के दर्शन करना चाहता है'।"

वह माणवक "ठीक है श्रीमन्"—यों ब्रह्मायु ब्राह्मण को उत्तर दे, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचा।···भगवान् से यों निवेदन किया—"भो गौतम! ब्रह्मायु ब्राह्मण···आपके दर्शन करना चाहते हैं।"

"माणवक! ब्रह्मायु ब्राह्मण जैसा उचित समझें, करें।"

तब वह माणवक वापस जहाँ ब्रह्मायु ब्राह्मण था, वहाँ गया। वह उनसे यों बोला—"भगवान् ने आप को दर्शन का अवसर दे दिया है, अब आप जैसा उचित समझें, करें।"

६. तब ब्रह्मायु ब्राह्मण जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचा। वहाँ, भिक्षु-परिषद् ने दूर से ही उस ब्राह्मण को आते देख लिया। देखते ही उस यशस्वी (प्रसिद्ध) ज्ञानी को परिषद् ने सम्मानपूर्वक भगवान् के दर्शनहेतु मार्ग दे दिया। तब

कासि यथा तं ञातस्स यसस्सिनो। अथ खो ब्रह्मायु ब्राह्मणो तं परिसं एतदवोच—"अलं भो! निसीदथ तुम्हे सके आसने। इधाहं समणस्स गोतमस्स सन्तिके निसीदिस्सामी" ति।

अथ खो ब्रह्मायु ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो ब्रह्मायु ब्राह्मणो भगवतो काये द्वत्तिंसमहापुरिस-लक्खणानि, समन्नेसि। अद्दसा खो ब्रह्मायु ब्राह्मणो [B. 344, R. 143] भगवतो काये द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि, येभुय्येन ठपेत्वा द्वे। द्वीसु महापुरिसलक्खणेसु कङ्खति विचिकिच्छति नाधिमुच्चति न सम्पसीदति—कोसोहिते च वत्थगुय्हे, पहूतजिव्हताय च। अथ खो ब्रह्मायु ब्राह्मणो भगवन्तं गाथाहि अज्झभासि—

"ये मे द्वत्तिंसा ति सुता, महापुरिसलक्खणा।
दुवे तेसं न पस्सामि, भोतो कायस्मिं गोतम॥
"कच्चि कोसोहितं भोतो, वत्थगुय्हं नरुत्तम। [N. 392]
नारीसमानसव्हया, कच्चि जिव्हा न दस्सका॥
"कच्चि पहूतजिव्होसि, यथा तं जानियामसे।
निन्नामयेतं पहूतं, कङ्खं विनय नो इसे॥

ब्रह्मायु ब्राह्मण ने उनसे कहा—"अरे भाई! आप लोग बैठे रहें। मैं तो श्रमण गौतम (से कुछ संवाद करने आया हूँ, अतः उन्हीं) के पास जाकर बैठूँगा।"

फिर वह ब्रह्मायु ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर भगवान् से बात-चीत करते हुए उनके स्वास्थ्य व नीरोगता एवं कुशल-मङ्गल के विषय में पूछ कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उसने भगवान् के शरीर में बत्तीस महापुरुष-लक्षण खोजने शुरू किये। खोजते-खोजते, उस ब्राह्मण ने भगवान् के शरीर में दो को छोड़कर बाकी सभी तीस (३०) महापुरुषलक्षण देख लिये। दो के विषय में उसे सन्देह व शङ्का बनी ही रह गयी। उससे वह ऊहापोह में पड़ गया। वे दो लक्षण थे—१. कोष में छिपी मूत्रेन्द्रिय एवं २. दीर्घजिह्वा। तब ब्रह्मायु ब्राह्मण ने गाथाओं के माध्यम से भगवान् से पूछा—

"भो गौतम! जो मैंने विद्वानों से ३२ महापुरुषलक्षण सुने हैं, उनमें से दो आपके शरीर में (प्रत्यक्षतः) दिखायी नहीं देते।

"क्या आपका वस्तिगुह्य (मूत्रेन्द्रिय) नारीन्द्रिय के समान है? क्या आप की जिह्वा भी छोटी है?"

"आप दीर्घजिह्व हैं? हम उसके बारे स्पष्टतः जान सकें अतः, आप उसे थोड़ा बाहर निकालें। इससे हमारा सन्देह भी दूर हो जायगा।

"दिट्ठधम्महितत्थाय, सम्परायसुखाय च।
कतावकासा पुच्छाम, यं किञ्चि अभिपत्थितं" ति ॥

१०. अथ खो भगवतो एतदहोसि--"पस्सति खो मे अयं ब्रह्मायु ब्राह्मणो द्वत्तिसमहापुरिसलक्खणानि, येभुय्येन ठपेत्वा द्वे। द्वीसु महापुरिसलक्खणेसु कङ्खति विचिकिच्छति नाधिमुच्चति न सम्पसीदति--कोसोहिते च वत्थगुय्हे, पहूतजिव्हताय चा" ति। अथ खो भगवा तथारूपं इद्धाभिसङ्खारं अभिसङ्खासि तथा अद्दस ब्रह्मायु ब्राह्मणो भगवतो कोसोहितं वत्थगुय्हं। अथ खो भगवा जिव्हं निन्नामेत्वा उभो पि कण्णसोतानि अनुमसि पटिमसि, उभो पि नासिकसोतानि अनुमसि पटिमसि; केवलं पि नलाटमण्डलं जिव्हाय छादेसि। अथ खो भगवा ब्रह्मायु ब्राह्मणं गाथाहि पच्चभासि--

"ये ते द्वत्तिसा ति सुता, महापुरिसलक्खणा।
सब्बे ते मम कायस्मिं, मा ते कङ्खाहु ब्राह्मण ॥
"अभिञ्ञेय्यं अभिञ्ञातं, भावेतब्बं च भावितं।
पहातब्बं पहीनं मे, तस्मा बुद्धोस्मि ब्राह्मण ॥

"इसके बाद यदि आप मुझे अवसर देंगे तो लौकिक सुख या पारमार्थिक सुख के विषय में भी, जो कुछ मुझे अभीष्ट है, मैं आप से कुछ प्रश्न करूँगा।"

१०. तब भगवान् को (मन में) यह हुआ—"यह ब्राह्मण मेरे शरीर में दो को छोड़कर बाकी सभी (३०) महापुरुषलक्षण देख पा रहा है। इन दो लक्षणों के विषय में इसे शङ्का या सन्देह है कि ये लक्षण मेरे शरीर में हैं या नहीं ? यह इनके विषय में ऊहापोह में पड़ा हुआ है कि इनके वस्तिगुह्य या प्रभूत जिह्वा है या नहीं ?" तब भगवान् ने ऐसा ऋद्धयनुभाव (चमत्कार) किया कि जिसके प्रभाव से उस ब्राह्मण को भगवान् का कोषाच्छादित वस्तिगुह्य स्पष्ट दिखायी दे गया। इसके बाद भगवान् ने अपनी जिह्वामुख से बाहर निकाली और उससे दोनों कानों को, दोनों नासिकास्रोतों को छू दिया। यहाँ तक कि उससे अपने ललाट समग्र छिपा दिया।

फिर भगवान् ने ब्रह्मायु ब्राह्मण को गाथाओं के सहारे यह उपदेश दिया—

"ब्राह्मण ! तुमने जो परम्परा से बत्तीस महापुरुषलक्षण सुने हैं वे सभी मेरे इस शरीर में विद्यमान हैं। इसमें तुम्हें सन्देह नहीं करना चाहिये।

"ब्राह्मण ! मैंने संसार में जो कुछ भी अभिज्ञेय है उसे अभिज्ञात कर लिया है जो कुछ भी भावनीय (साधना करने योग्य) है उसकी साधना कर चुका हूँ। और यहाँ जो कुछ भी प्रहेय (त्याज्य) है उसे प्रहीण कर चुका हूँ। इसीलिये मैं अब 'बुद्ध' कहलाता हूँ।"

"दिट्ठधम्महितत्थाय, सम्परायसुखाय च । [B. 335, R. 144]
कतावकासो पुच्छस्सु, यं किञ्चि अभिपत्थितं" ति ॥

११. अथ खो ब्रह्मायुस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि--"कतावकासो खोम्हि समणेन गोतमेन। किं नु खो अहं समणं गोतमं पुच्छेय्यं--'दिट्ठधम्मिकं वा अत्थं सम्परायिकं वा' " ति। अथ खो ब्रह्मायुस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि—"कुसलो खो अहं दिट्ठधम्मिकानं अत्थानं। अञ्ञे पि मं दिट्ठधम्मिकं अत्थं पुच्छन्ति। यन्नूनाहं समणं गोतमं सम्परायिकं येव अत्थं पुच्छेय्यं" ति। अथ खो ब्रह्मायु ब्राह्मणो भगवन्तं गाथाहि अज्झाभासि--

"कथं खो ब्राह्मणो होति, कथं भवति वेदगू। [N. 393]
तेविज्जो भो कथं होति, सोत्थियो किन्ति वुच्चति ॥
"अरहं भो कथं होति, कथं भवति केवली।
मुनि च भो कथं होति, बुद्धो किन्ति पवुच्चती" ति ॥

१२. अथ खो भगवा ब्रह्मायुं ब्राह्मणं गाथाहि पच्चभासि—
"पुब्बेनिवासं यो वेदि, सग्गापायं च पस्सति।
अथो जातिक्खयं पत्तो, अभिञ्ञा वोसितो मुनि ॥

"तुम्हें जो कुछ इस लोक या परलोक के हित में अभीष्ट हो उसे तुम मुझसे पूछना चाहो तो पूछ लो। मैं तुम्हें अवसर देता हूँ।"

११. तब ब्रह्मायु ब्राह्मण को यह हुआ—"भगवान् श्रमण गौतम ने मुझे जो कुछ भी अभीष्ट पूछने का मौका दे दिया है, तो मैं क्या इनसे इहलोकहितकारक प्रश्न करूँ या परलोकहितकारक ?" तब ब्रह्मायु ब्राह्मण ने मन में यह निश्चय किया कि इस लोक की बातों के विषय में तो मैं स्वयं प्रवीण हूँ। दूसरे लोग भी (मुझे इस विषय में प्रामाणिक समझकर) मुझसे पूछने आते हैं। तो क्यों न मैं इन श्रमण गौतम से परलोकविषय की ही बातें पूछूँ (ताकि मेरा ज्ञानवर्धन हो")।

तब ब्रह्मायु ब्राह्मण ने गाथाओं के माध्यम से भगवान् से प्रश्न किया—

"भो! 'ब्राह्मण' कैसे (किन लक्षणों से) होता है ? 'वेदज्ञ' किसे माना जाय ? वस्तुतः 'त्रैविद्य' कौन कहलाता है ? और 'श्रोत्रिय' किसे माना जाय ?"

"और 'अर्हत्' (ज्ञानी) किसे कहा जा सकता है ? 'केवली' किसे कहते हैं, 'मुनि' कौन होता है ? और 'बुद्ध' कौन कहलाता है ?"

१२. तब भगवान् ने ब्राह्मण के इन प्रश्नों का गाथाओं के माध्यम से ही उत्तर दिया—

"जो पूर्वजन्मों के विषय में जानता है, स्वर्ग-नरक के विषय में जानता है, जो

"चित्तं विसुद्धं जानाति, मुत्तं रागेहि सब्बसो।
पहीनजाति मरणो, ब्रह्मचरियस्स केवली।
पारगू सब्बधम्मानं बुद्धो तादी पवुच्चती" ति ॥

एवं वुत्ते ब्रह्मायु ब्राह्मणो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवतो पादानि मुखेन च परिचुम्बति, पाणीहि च परिसम्बाहति, नामं च सावेति—"ब्रह्मायु अहं, भो गोतम, ब्राह्मणो; ब्रह्मायु अहं, भो गोतम, ब्राह्मणो" ति। अथ खो सा परिसा अच्छरियब्भुचित्तजाता अहोसि—"अच्छरियं वत, भो, अब्भुतं वत, भो! यत्र हि नामायं ब्रह्मायु ब्राह्मणो ञातो यसस्सी एवरूपं परमनिपच्चकारं करिस्सती" ति। अथ खो भगवा ब्रह्मायुं ब्राह्मणं एतदवोच—"अलं ब्राह्मण, उट्ठह निसीद [R. 145] त्वं सके आसने यतो ते मयि चित्तं पसन्नं" ति। अथ खो ब्रह्मायु ब्रह्मायु उट्ठहित्वा सके आसने निसीदि।

३. ब्रह्मायुब्राह्मणस्स अनागामिता

[B. 346] १३. अथ खो भगवा ब्रह्मायुस्स ब्राह्मणस्स अनुपुब्बिं कथं कथेसि, सेय्यथीदं—दानकथं, सीलकथं सग्गकथं; कामानं आदीनवं ओकारं

जन्म-मरण परम्परा का क्षय कर चुका है और अभिज्ञा में तत्पर है वह 'मुनि' कहलाता है।"

"जो रागों से सर्वथा मुक्त, विशुद्ध चित्त को जानता है, जन्म-मरणपरम्परा जिसकी नष्ट हो गयी, ब्रह्मचर्य (साधना) जिसका पूर्ण हो चुका है, वही 'केवली' कहलाता है। समग्र धर्मों के पारङ्गत, तादी (ज्ञानी) को ही 'बुद्ध' कहते हैं।"

(भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, ब्रह्मायु ब्राह्मण आसन से उठ, दुपट्टा एक कन्धे पर कर, भगवान् के श्रीचरणों में अपना सिर रखकर उनके श्रीचरणों को मुख से चूमता हुआ, हाथों से दबाता हुआ, अपना नाम लेता हुआ कहने लगा—'भो गौतम! मैं ब्रह्मायु ब्राह्मण हूँ। भो गौतम! मैं ब्रह्मायु ब्राह्मण हूँ।' तब उस सामने बैठी परिषद् को अत्यन्त अद्भुत आश्चर्य हुआ कि "अरे! लोक में इतना यशस्वी, पण्डित, ब्रह्मायु ब्राह्मण भी भगवान् के श्रीचरणों में इतना विनम्रतापूर्वक लिपटा हुआ है!" तब भगवान् उस ब्राह्मण को यों बोले—"उठो ब्राह्मण! बहुत हुआ, अब तुम अपने आसन पर बैठो, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ।" तब ब्रह्मायु ब्राह्मण उठकर अपने आसन पर बैठ गया।

३. ब्रह्मायु ब्राह्मण की अनागामिता

१३. तब भगवान् ब्रह्मायु ब्राह्मण को आनुपूर्वी कथा, जैसे—दानकथा, शीलकथा, स्वर्गकथा, कामवासनाओं के दुष्परिणाम, अपकार, दोष, निष्कामता का

सङ्किलेसं नेक्खम्मे आनिसंसं पकासेसि। यदा भगवा अञ्ञासि ब्रह्मायुं ब्राह्मणं कल्लचित्तं मुदुचित्तं विनीवरणचित्तं उदग्गचित्तं पसन्नचित्तं, अथ या बुद्धानं सामुक्कंसिका धम्मदेसना तं पकासेसि—दुक्खं, समुदयं, निरोधं, मग्गं। सेय्यथापि नाम सुद्धं वत्थं अपगतकाळकं सम्मदेव [N. 394] रजनं पटिगण्हेय्य, एवमेव ब्रह्मायुस्स ब्राह्मणस्स तस्मिं येव आसने विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि—"यं किञ्चि समुदयधम्मं सब्बं तं निरोधधम्मं" ति।

अथ खो ब्रह्मायु ब्राह्मणो दिट्ठधम्मो पत्तधम्मो विदितधम्मो परियोगाळ्हधम्मो तिण्णविचिकिच्छो विगतकथङ्कथो वेसारज्जप्पत्तो अपरप्पच्चयो सत्थुसासने भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम ! सेय्यथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति—एवमेव भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं ति। अधिवासेतु च मे गोतमो स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना" ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो ब्रह्मायु ब्राह्मणो भगवतो

माहात्म्य का उपदेश किया। जब भगवान् ने समझ लिया कि इस ब्रह्मायु ब्राह्मण का चित्त भव्य, मृदु, (दोषों से) अनाच्छादित, आह्लादित व प्रसन्न हो चुका है, तब उन्होंने उसको, जो बुद्धों की संसार से ऊपर उठाने वाली धर्मदेशना है—दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध, तथा दुःखनिरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग—उसका उपदेश किया। जैसे कालिमारहित श्वेत वस्त्र अन्य किसी भी रंग को सरलता से पकड़ लेता है, वैसे ही उस ब्राह्मण का उसी आसन पर बैठे ही बैठे, 'जो कुछ समुदयधर्मा (उत्पन्न होने वाला) पदार्थ है वह सब निरोधधर्मा (नाशवान्) है'—यह निर्दोष धर्मज्ञानचक्षु खुल गया।

तब उस ब्रह्मायु ब्राह्मण ने दृष्टधर्म, प्राप्तधर्म, विदितधर्म, पर्यवगाढधर्म, संशयरहित, कथोपकथन से दूर, वैशारद्य (निपुणता) प्राप्त एवं शास्ता के शासन में अत्यन्त श्रद्धालु हो, भगवान् से यों कहा—"आश्चर्य है, भो गौतम ! अद्भुत है भो गौतम ! जैसे कोई औंधे को सीधा कर दे...पूर्ववत्...नाना प्रकार धर्म का उपदेश (प्रकाश= समझाना) किया। यह मैं आप गौतम की, धर्म की एवं सङ्घ की शरण में जाता हूँ...। अच्छा हो आप गौतम भिक्षुसङ्घ के साथ कल मेरे घर भोजन का आमन्त्रण स्वीकार कर लें।" भगवान् ने मौन भाव से उस ब्राह्मण का आमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि।

अथ खो ब्रह्मायु ब्राह्मणो तस्सा रत्तिया अच्चयेन सके निवेसने पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा भगवतो कालं आरोचापेसि—"कालो, भो गोतम, निट्ठितं भत्तं" ति।

[R. 146] अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन ब्रह्मायुस्स ब्राह्मणस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि सद्धिं भिक्खुसङ्घेन। अथ खो ब्रह्मायु ब्राह्मणो सत्ताहं बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि सम्पवारेसि। अथ खो भगवा तस्स सत्ताहस्स अच्चयेन विदेहेसु चारिकं पक्कामि।

अथ खो ब्रह्मायु ब्राह्मणो अचिरपक्कन्तस्स भगवतो कालमकासि। अथ [B. 347] खो सम्बहुला भिक्खू येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—"ब्रह्मायु, भन्ते, ब्राह्मणो कालङ्कतो। तस्स का गति, को अभिसम्परायो" ति?

तब वह ब्रह्मायु ब्राह्मण, भगवान् की स्वीकृति जान, आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर चला गया।

तब ब्रह्मायु ब्राह्मण ने, उस रात्रि के बीत जाने पर अपने घर में सुन्दर-सुन्दर रुचिकर खाद्य भोज्य तय्यार कराकर, भगवान् से आकर निवेदन किया—भो गौतम! भोजन तय्यार है, अब आप जैसा उचित समझें।"

तब भगवान्, पूर्वाह्ण समय बिताकर, पात्र-चीवर ले जहाँ ब्रह्मायु ब्राह्मण का घर था, वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भिक्षुसङ्घ के साथ ही बिछे आसन पर विराजे। तब ब्रह्मायु ब्राह्मण ने सप्ताह भर बुद्धप्रधान भिक्षुसङ्घ को सुन्दर-सुन्दर रुचिकर भोजन अपने हाथ से परोस परोस कर सन्तुष्ट तथा सन्तृप्त किया। इसके बाद भगवान् सप्ताह बीत जाने पर, विदेह में अन्यत्र चारिकाहेतु चल दिये।

तब, जब कि भगवान् को चारिका में गये कुछ ही समय बीता था, ब्रह्मायु ब्राह्मण की मृत्यु हो गयी। उस समय (यह सुनकर) कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे भिक्षुओं ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! ब्रह्मायु ब्राह्मण की मृत्यु हो गयी। उसकी आगे क्या गति या क्या अभिसम्पराय पुनर्जन्म होगा?"

"पण्डितो, भिक्खवे, ब्रह्मायु ब्राह्मणो पच्चपादि धम्मस्सानुधम्मं, न च मं धम्माधिकरणं विहेठेसि। ब्रह्मायु, भिक्खवे, ब्राह्मणो पञ्चन्नं [N. 395] ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको होति, तत्थ परिनिब्बायी, अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका" ति।

१४. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति॥

●

"भिक्षुओ! ब्रह्मायु ब्राह्मण पण्डित था, धर्म के अनुसार चलने वाला था। धर्म के विषय में उसने मुझको पीड़ित (परेशान) नहीं किया। भिक्षुओ! वह ब्रह्मायु ब्राह्मण पाँच अवरभागीय संयोजनों के क्षीण होने से अब औपपातिक (देवता) योनि में जन्म ले वहीं निर्वाण प्राप्त करने वाला है, वह इस लोक में वापस लौटकर नहीं आने का!"

भगवान् ने यह कहा। आत्तमना (प्रसन्न) हो भिक्षुओं ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया॥

ब्रह्मायुसुत्त समाप्त॥

●

४२. सेलसुत्तं

१. केणियेन जटिलेन भगवा निमन्तितो

[N. 396] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा अङ्गुत्तरापेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अड्ढतेळसेहि भिक्खुसतेहि येन आपणं नाम अङ्गुत्तरापानं निगमो तदवसरि। अस्सोसि खो केणियो जटिलो— "समणो खलु, भो, गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो अङ्गुत्तरापेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अड्ढतेळसेहि भिक्खुसतेहि आपणं अनुप्पत्तो। तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा ति। सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति। सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं सब्रह्मचरियं पकासेति। साधु खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं होती'" ति।

अथ खो केणियो जटिलो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता [B. 348] सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो केणियं जटिलं भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि। अथ खो केणियो

---

४२. शैलसूत्र

१. केणिय जटिल द्वारा भगवान् निमन्त्रित

१. ऐसा मैंने सुना है कि एक समय भगवान् (बुद्ध) अङ्गुत्तराप देश में साढे बारह सौ भिक्षुओं के साथ चारिका करते हुए, जहाँ आपण नाम का निगम (कस्बा) था वहाँ पहुँचे। तब केणिय नामक जटिल ने सुना—"अरे ! श्रमण गौतम शाक्यपुत्र, शाक्यकुल से प्रव्रजित हो अङ्गुत्तराप देश में साढे बारह सौ भिक्षुओं के साथ चारिका करते हुए आपण में आये हुए हैं। उनके बारे में ये मङ्गल्य कीर्ति शब्द (प्रशंसात्मक वचन) जनता में फैले हुए हैं—'वे भगवान् ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध··· पूर्ववत्···। ऐसे ज्ञानियों का दर्शन अत्यन्त मङ्गलमय होता है।

तब केणिय जटिल जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर भगवान् से कुशल-मङ्गल पूछकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस केणिय जटिल को भगवान् ने धार्मिक कथाओं से सन्दर्शित, समादपित, समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट किया। केणिय जटिल ने उक्त धार्मिक कथा से सन्दृष्ट···सम्प्रहृष्ट हो भगवान् से निवेदन किया—"आप

जटिलो भगवता धम्मिया कथाय सन्दस्सितो समादपितो समुत्तेजितो सम्पहंसितो भगवन्तं एतदवोच—"अधिवासेतु मे भवं गोतमो स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना" ति। एवं वुत्ते, भगवा केणियं जटिलं एतदवोच—"महा खो, केणिय, भिक्खुसङ्घो अड्ढतेळसानि भिक्खुसतानि, त्वं च ब्राह्मणेसु अभिप्पसन्नो" ति। दुतियं पि खो केणियो जटिलो भगवन्तं एतदवोच—"किञ्चापि खो, भो गोतम, महा भिक्खुसङ्घो अड्ढतेळसानि भिक्खुसतानि, अहं च ब्राह्मणेसु अभिप्पसन्नो; अधिवासेतु मे भवं गोतमो स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना" ति। दुतियं पि खो भगवा केणियं [N. 397] जटिलं एतदवोच—"महा खो, केणिय, भिक्खुसङ्घो अड्ढतेळसानि भिक्खुसतानि, त्वं च ब्राह्मणेसु अभिप्पसन्नो" ति। ततियं पि खो केणियो जटिलो भगवन्तं एतदवोच—"किञ्चापि खो, भो गोतम, महा भिक्खुसङ्घो अड्ढतेळसानि भिक्खुसतानि, अहं च ब्राह्मणेसु अभिप्पसन्नो; अधिवासेतु मे भवं गोतमो स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना" ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो केणियो जटिलो भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना येन सको अस्समो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मित्तामच्चे ञातिसालोहिते आमन्तेसि—"सुणन्तु मे, भोन्तो, मित्तामच्चा ञातिसालोहिता; समणो मे गोतमो निमन्तितो स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेन। येन मे

गौतम कल अपने भिक्षुसङ्घ के साथ मेरे आवास पर भोजन करने का आमन्त्रण स्वीकार करें!" ऐसा कहने पर भगवान् ने केणिय जटिल को यह उत्तर दिया—"केणिय! मेरे साथ साढे बारह सौ (१२५०) की बिशाल संख्या वाला भिक्षुसङ्घ भी है। और फिर तूँ तो केवल ब्राह्मणों को ही भोजन कराता है; क्योंकि तूँ उन्हीं से प्रसन्न है, उन्हीं में श्रद्धा रखता है"। केणिय जटिल ने दूसरी बार भी भगवान् से निवेदन किया—"भो गौतम! इससे क्या अन्तर पड़ता है कि आप के साथ इतने अधिक (१२५०) भिक्षु हैं, या मैं ब्राह्मणों के प्रति अधिक श्रद्धालु हूँ। कृपया आप मेरे घर कल का भोजन स्वीकार करें"। दूसरी बार भी भगवान् ने···पूर्ववत्··· श्रद्धा रखता है। फिर तीसरी बार भी केणिय जटिल ने भगवान् से कल के भोजन के लिये अपने घर पर पधारनेहेतु निवेदन किया। तब भगवान् ने मौन भाव से उसे स्वीकार कर लिया। यों केणिय जटिल ने भगवान् की स्वीकृति जान, आसन से उठ, जहाँ उसका अपना आश्रम था वहाँ, गया। जाकर उसने अपने मित्र व सहायकों तथा जातिबिरादरी वालों से यों कहा—"अरे! आप लोग मेरे मित्र, साथी व नातेरिश्तेदार सुनें, कल मैंने अपने आश्रम पर भिक्षुसङ्घ के साथ पूज्य श्रमण गौतम को भोजन के लिये निमन्त्रित किया है। सो आप लोग भी इस कार्य में मेरी शारीरिक

कायवेय्यावटिकं करेय्याथा'' ति। "एवं, भो" ति खो केणियस्स जटिलस्स मित्तामच्चा ञातिसालोहिता केणियस्स जटिलस्स पटिस्सुत्वा अप्पेकच्चे उद्धनानि खणन्ति, अप्पेकच्चे कट्ठानि फालेन्ति, अप्पेकच्चे भाजनानि धोवन्ति, अप्पेकच्चे उदकमणिकं पतिट्ठापेन्ति, अप्पेकच्चे आसनानि पञ्ञापेन्ति। केणियो पन जटिलो सामं येव मण्डलमालं पटियादेति।

२. सेलब्राह्मणस्स भगवति पसादो

२. तेन खो पन समयेन सेलो ब्राह्मणो आपणे पटिवसति तिण्णं वेदानं [B. 349] पारगू सनिघण्डुकेटुभानं साक्खरप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं, पदको, वेय्याकरणो, लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो, तीणि च माणवकसतानि मन्ते वाचेति। तेन खो पन समयेन केणियो जटिलो सेले ब्राह्मणे अभिप्पसन्नो होति। अथ खो सेलो ब्राह्मणो तीहि माणवकसतेहि परिवुतो जङ्घाविहारं अनुचङ्कममानो अनुविचरमानो येन केणियस्स जटिलस्स अस्समो तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो सेलो ब्राह्मणो केणियस्स जटिलस्स अस्समे अप्पेकच्चे उद्धनानि खणन्ते, अप्पेकच्चे कट्ठानि फालेन्ते, अप्पेकच्चे भाजनानि धोवन्ते, अप्पेकच्चे उदकमणिकं पतिट्ठापेन्ते, अप्पेकच्चे आसनानि पञ्ञापेन्ते; केणियं पन जटिलं सामं येव मण्डलमालं पटियादेन्तं। दिस्वान केणियं जटिलं [N. 398] एतदवोच—"किं नु भोतो केणियस्स आवाहो वा भविस्सति

सहयोग करें।" "ठीक है माननीय!" कहकर उस केणिय जटिल के मित्र, साथी व नाते रिश्तेदारों में से कोई चूल्हा खोदने लगे, कोई लकड़ी फाड़ने लगे, कोई बर्तन धोने लगे, कोई जल के घड़े लाने लगे, कोई आसन बिछाने लगे। केणिय जटिल स्वयं वस्त्रमण्डप (=मण्डलमाल) तैयार कराने लगा।

२. शैल ब्राह्मण का भगवान् के प्रति श्रद्धोत्पाद

२. उस समय उसी आपण कस्बे में शैल नामक ब्राह्मण भी रहता था, जो तीनों वेदों में पारङ्गत, निघण्टु-कैटुभसहित व अक्षरप्रभेदसहित इतिहास का जानकार, कवि (पदक) एवं वैयाकरण, लोकायतशास्त्र तथा महापुरुषलक्षणशास्त्र (सामुद्रिक शास्त्र) का पूर्ण ज्ञाता था। वह अपने तीन सौ शिष्यों को वेद पढ़ाता था। उस समय केणिय जटिल भी शैल ब्राह्मण में अत्यन्त श्रद्धालु था। तब शैल ब्राह्मण अपने तीन सौ शिष्यों के साथ पैदल ही चलता हुआ जहाँ केणिय जटिल का आश्रम था वहाँ पहुँचा। वहाँ शैल ब्राह्मण ने केणिय जटिल के आश्रम में किसी को चूल्हा खोदते···स्वयं केणिय जटिल को वस्त्रमण्डप (तम्बू) तय्यार करवाते देखा। देखकर वह केणिय जटिल को यों बोला—"क्या आज आप केणिय के यहाँ कोई

विवाहो वा भविस्सति; महायञ्ञो वा पच्चुपट्ठितो, राजा वा मागधो सेनियो बिम्बिसारो निमन्तितो स्वातनाय सद्धिं बलकायेना" ति ?

"न मे, भो सेल, आवाहो भविस्सति न पि विवाहो भविस्सति, न पि राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो निमन्तितो स्वातनाय सद्धिं बलकायेन; अपि च खो मे महायञ्ञो पच्चुपट्ठितो। अत्थि, भो, समणो गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो अङ्गुत्तरापेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अड्ढतेळसेहि भिक्खुसतेहि आपणं अनुप्पत्तो। तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। सो मे निमन्तितो स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना" ति।

"बुद्धो ति, भो केणिय, वदेसि" ?
"बुद्धो ति, भो सेल, वदामि"।
"बुद्धो ति, भो केणिय, वदेसि" ?
"बुद्धो ति, भो सेल, वदामी" ति।...।

३. अथ खो सेलस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि— "घोसो पि खो एसो दुल्लभो लोकस्मि--यदिदं 'बुद्धो' ति। आगतानि खो पनम्हाकं मन्तेसु द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि, येहि समन्नागतस्स महापुरिसस्स द्वे येव गतियो [B. 350]

आवाह (आमन्त्रण) होगा या विवाह ? या फिर कोई महायज्ञ करने की तय्यारी चल रही है ? या राजा मागध श्रेणिक बिम्बिसार अपने विशाल सैन्यबल सहित कल भोजन के लिये आमन्त्रित हैं ?"

"भो शैल ! मेरे यहाँ न कोई आवाह है, न विवाह ! न सेनासहित राजा मागध श्रेणिक बिम्बिसार को ही कल भोजन के लिये निमन्त्रित किया है। (वस्तुत: बात यह है कि) आजकल अपने इस आपण कस्बे में शाक्यकुल से प्रव्रजित शाक्य (शुद्धोदन) के पुत्र श्रमण गौतम साढे बारह सौ भिक्षुओं के साथ चारिका करते हुए पधारे हैं। उन पूज्य श्रमण गौतम के विषय में···बुद्ध भगवान् हैं। उन श्रमण गौतम को भिक्षुसङ्घ के साथ कल भोजन के लिये मैंने निमन्त्रित कर रखा है।"

"भो केणिय ! तुम उन्हें 'बुद्ध' कह रहे हो ?
"हाँ, शैल ! मैं उन्हें 'बुद्ध' कह रहा हूँ।
"भो केणिय ! (फिर सोच लो) तुम उन्हें 'बुद्ध' कह रहे हो ?"
"हाँ, शैल ! मैं (सोचकर ही) उन्हें 'बुद्ध' कह रहा हूँ।"···।

३. तब शैल ब्राह्मण के मन में यह विचार हुआ--" 'बुद्ध' यह कथनमात्र भी

भवन्ति अनञ्ञा। सचे अगारं अज्झावसति, राजा होति चक्कवत्ती धम्मिको धम्मराजा चातुरन्तो विजितावी जनपदत्थावरियप्पत्तो सत्तरतनसमन्नागतो। तस्सिमानि सत्त रतनानि भवन्ति, सेय्यथीदं—चक्करतनं, हत्थिरतनं, अस्सरतनं, मणिरतनं, इत्थिरतनं, गहपतिरतनं, परिणायकरतनमेव सत्तमं। परोसहस्सं खो पनस्स पुत्ता भवन्ति सूरा वीरङ्गरूपा परसेनप्पमद्दना। सो इमं पठविं सागरपरियन्तं अदण्डेन असत्थेन धम्मेन अभिविजिय अज्झावसति। सचे पन अगारस्मा अनगारियं पब्बजति, अरहं होति सम्मासम्बुद्धो लोके विवट्टच्छदो"।

[N. 399] "कहं पन, भो केणिय, एतरहि सो भवं गोतमो विहरति अरहं सम्मासम्बुद्धो" ति? एवं वुत्ते, केणियो जटिलो दक्खिणं बाहुं पग्गहेत्वा सेलं ब्राह्मणं एतदवोच—"येनेसा, भो सेल, नीलवनराजी" ति।

अथ खो सेलो ब्राह्मणो तीहि माणवकसतेहि सद्धिं येन भगवा तेनुपसङ्कमि। अथ खो सेलो ब्राह्मणो ते माणवके आमन्तेसि--"अप्पसद्दा भोन्तो आगच्छन्तु पदे पदं निक्खिपन्ता; दुरासदा हि ते भगवन्तो सीहा व एकचरा। यदा चाहं, भो, समणेन गोतमेन सद्धिं मन्तेय्यं, मा मे भोन्तो अन्तरन्तरा कथं ओपातेथ। कथापरियोसानं मे भवन्तो आगमेन्तू'' ति।

अथ खो सेलो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि।

लोक में दुर्लभ है। हमारे मन्त्रों में महापुरुषों के ३२ लक्षण बताये हैं, जिनसे युक्त महापुरुष की दो ही गति होती हैं—यदि वह घर में···पूर्ववत्[१]··· सम्यक्सम्बुद्ध हो भवसागर से पार चला जाता है।"

"भो केणिय! इस समय वे पूज्य श्रमण गौतम कहाँ विराजमान हैं?" ऐसा पूछे जाने पर वह केणिय जटिल अपनी दक्षिण बाहु पसारकर शैल ब्राह्मण को बताने लगा—"हे शैल! जहाँ वह नीलवनपंक्ति है।"

तब वह शैल ब्राह्मण अपने तीन सौ शिष्यों के साथ जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा। साथ ही उसने अपने शिष्यों को आदेश दिया—"आप लोग निःशब्द हो जाओ, धीरे-धीरे पैर पर पैर रखते हुए आओ। वे भगवान् सिंह की तरह अकेले विहरण करने वाले और दुर्लभ-से होते हैं। जब मैं उन श्रमण गौतम से कथा-सँल्लाप करता रहूँ तो आप लोग बीच-बीच में कुछ न बोल उठना। अपितु आप लोग मेरे कथन की समाप्ति तक प्रतीक्षा करना।"

तब शैल ब्राह्मण जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ गया। जा कर भगवान् से

---

१. द्र०--पृ० १२०५-६ (ब्रह्मायुसुत्त)

एकमन्तं निसिन्नो खो सेलो ब्राह्मणो भगवतो काये द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि समन्नेसि। अद्दसा खो सेलो ब्राह्मणो भगवतो काये द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि, येभुय्येन ठपेत्वा द्वे। द्वीसु महापुरिसलक्खणेसु कङ्खति विचिकिच्छति नाधिमुच्चति न सम्पसीदति—कोसोहिते च वत्थगुय्हे, पहूतजिव्हताय च। अथ खो भगवतो एतदहोसि—"पस्सति खो मे अयं सेलो ब्राह्मणो द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि, येभुय्येन ठपेत्वा द्वे। द्वीसु महापुरिसलक्खणेसु कङ्खति विचिकिच्छति नाधिमुच्चति न सम्पसीदति—कोसोहिते च वत्थगुय्हे, पहूतजिव्हताय चा" ति। अथ खो भगवा तथारूपं इद्धाभि- [B. 351] सङ्खारं अभिसङ्खासि, यथा अद्दस सेलो ब्राह्मणो भगवतो कोसोहितं वत्थगुय्हं। अथ खो भगवा जिव्हं निन्नामेत्वा उभो पि कण्णसोतानि अनुमसि पटिमसि; उभो पि नासिकसोतानि अनुमसि पटिमसि; केवलं पि नलाटमण्डलं जिव्हाय छादेसि। अथ खो सेलस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि--"समन्नागतो खो समणो गोतमो द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणेहि परिपुण्णेहि, नो अपरिपुण्णेहि; नो च खो नं जानामि बुद्धो वा नो वा। सुतं खो पन मेतं ब्राह्मणानं बुद्धानं महल्लकानं आचरियपाचरियानं भासमानानं—'ये ते भवन्ति अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा ते सके वण्णे भञ्ञमाने अत्तानं पातुकरोन्ती' ति। यन्नूनाहं समणं गोतमं सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवेय्यं" ति।

३. सेलब्राह्मणपब्बज्जा

४. अथ खो सेलो ब्राह्मणो भगवन्तं सम्मुखा सारुप्पाहि [N. 400] गाथाहि अभित्थवि--

---

कुशल-मङ्गल पूछ, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस शैल ब्राह्मण ने भगवान् के शरीर में बत्तीस महापुरुषलक्षण खोजने प्रारम्भ किये। खोजते-खोजते शैल ब्राह्मण ने भगवान् के शरीर में दो को छोड़कर अवशिष्ट सभी महापुरुषलक्षण खोज लिये। दो महापुरुषलक्षणों को लेकर उसे सन्देह-शङ्का बनी ही रह गयी। उनमें से एक थी झिल्ली से ढकी मूत्रेन्द्रिय और दूसरी थी लम्बी जिह्वा। तब भगवान् को यह ध्यान आया—"यह शैल ब्राह्मण मेरे शरीर में बत्तीस महापुरुषलक्षण खोज रहा है,···लम्बी जिह्वा। तब भगवान् ने ऐसा ऋद्ध्यनुभाव···ललाटमण्डल को आवृत कर दिया। तब शैल ब्राह्मण को ऐसा हुआ--"श्रमण गौतम अपरिपूर्ण नहीं, अपितु परिपूर्ण ही हैं, ये बत्तीस महापुरुषलक्षणों से युक्त हैं। लेकिन (अभी भी) यह नहीं कहा जा सकता कि ये 'बुद्ध' हैं या नहीं। बड़े बूढे आचार्य-प्राचार्यों का कहना है कि जो ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध होते हैं वे अपने गुणों की चर्चा चलने पर उन्हें जनता के सामने प्रकाशित करते हैं। क्यों न मैं श्रमण गौतम के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं से स्तुति करूँ!"

"परिपुण्णकायो सुरुचि, सुजातो चारुदस्सनो।
सुवण्णवण्णोसि भगवा, सुसुक्कदाठोसि विरियवा॥ १॥
"नरस्स हि सुजातस्स, ये भवन्ति वियञ्जना।
सब्बे ते तव कायस्मि, महापुरिसलक्खणा॥ २॥
"पसन्ननेत्तो सुमुखो, ब्रह्मा उजु पतापवा।
मज्झे समणसङ्घस्स, आदिच्चो व विरोचसि॥ ३॥
"कल्याणदस्सनो भिक्खु, कञ्चनसन्निभत्तचो।
किं ते समणभावेन, एवं उत्तमवण्णिनो॥ ४॥
"राजा अरहसि भवितुं, चक्कवत्ती रथेसभो।
चातुरन्तो विजितावी, जम्बुसण्डस्स इस्सरो॥ ५॥
"खत्तिया भोगिराजानो, अनुयन्ता भवन्तु ते।
राजाभिराजा मनुजिन्दो, रज्जं कारेहि गोतम"॥ ६॥
[B. 352] "राजाहमस्मि सेला ति, धम्मराजा अनुत्तरो।
धम्मेन चक्कं वत्तेमि, चक्कं अप्पटिवत्तियं"॥ ७॥

---

३. शैल ब्राह्मण की प्रव्रज्या

४. तब शैल ब्राह्मण ने भगवान् के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं से उनकी स्तुति करना प्रारम्भ किया—

"भगवान्! आप परिपूर्णकाय, सुन्दर कान्ति वाले, सुजात, चारुदर्शन एवं सुवर्ण वर्ण वाले हैं, आप सफेद जाड़-दाँत वाले एवं वीर्यवान् हैं॥ १॥

"सुन्दर जन्म वाले पुरुष के शरीर में जो चिह्न होते हैं, वे सभी महापुरुषलक्षण आपके शरीर में यथास्थान दिखायी दे रहे हैं॥ २॥

"आप प्रसन्ननेत्र हैं, सुमुख, अत्यन्त सरल, प्रतापी एवं श्रमणसङ्घ के मध्य आदित्य (सूर्य) की तरह शोभित हो रहे हैं॥ ३॥

"हे भिक्षु! आपका दर्शन मङ्गलमय है, आप की त्वचा सुवर्णवर्ण है। ऐसे उत्तम वर्ण वाले आप में भिक्षु होने मात्र से क्या कमी आ पायी है?॥ ४॥

"आप तो चारों दिगन्त तक राज्य वाले, जम्बुद्वीप के स्वामी, रथियों (योद्धाओं) में श्रेष्ठ चक्रवर्ती राजा हो सकते हो॥ ५॥

"अन्य क्षत्रिय माण्डलिक राजा आप के अनुगामी होंगे। हे गौतम! आप तो राजाधिराज, मानवेन्द्र हैं। आप राज्य करें"॥ ६॥

(भगवान् ने कहा—) "शैल! मैं तो राजा ही हूँ। बल्कि यों कहो कि अनुपम धर्मराज (धर्मपूर्वक राज्य करने वाला) हूँ। मैं न पलटने वाला धर्मानुशासन-चक्र धर्म के साथ चलाता हूँ"॥ ७॥

"सम्बुद्धो पटिजानासि, धम्मराजा अनुत्तरो।
धम्मेन चक्कं वत्तेमि, इति भाससि गोतम ॥ ८ ॥

"को नु सेनापति भोतो, सावको सत्थुरन्वयो।
को ते समनुवत्तेति, धम्मचक्कं पवत्तितं ?" ॥ ९ ॥

"मया पवत्तितं चक्कं, (सेला ति भगवा) धम्मचक्कं अनुत्तरं।
सारिपुत्तो अनुवत्तेति, अनुजातो तथागतं ॥ १० ॥

"अभिञ्ञेय्यं अभिञ्ञातं, भावेतब्बं च भावितं।
पहातब्बं पहीनं मे, तस्मा बुद्धोस्मि ब्राह्मण ॥ ११ ॥

"विनयस्सु मयि कङ्खं, अधिमुच्चस्सु ब्राह्मण। [N. 401]
दुल्लभं दस्सनं होति, सम्बुद्धानं अभिण्हसो ॥ १२ ॥

"येसं वे दुल्लभो लोके, पातुभावो अभिण्हसो।
सोहं ब्राह्मण सम्बुद्धो सल्लकत्तो अनुत्तरो ॥ १३ ॥

"ब्रह्मभूतो अतितुलो, मारसेनप्पमद्दनो।
सब्बामित्ते वसी कत्वा, मोदामि अकुतोभयो" ॥ १४ ॥

(शैल ब्राह्मण ने पूछा--) "आप अपने को अनुपम धर्मराज सम्बुद्ध कह रहे हैं ? भो गौतम ! आप 'धर्मचक्र चला रहा हूँ'--कह रहे हैं" ॥ ८ ॥

"आपका श्रावक सेनापति कौन है ? आप द्वारा चलाये इस चक्र का कौन अनुपालन कर रहा है ?" ॥ ९ ॥

(भगवान् ने कहा--"हे शैल !) मैंने इस चक्र का प्रवर्तन किया है। इसे 'धर्मचक्र' कहा जाता है। सारिपुत्र इसका अनुसञ्चालन कर रहा है। वह तथागत का अनुजात (अनुगामी) (यों कहिये कि वही इस धर्मानुशासन-चक्र का सेनापति) है ॥ १० ॥

"हे ब्राह्मण ! क्योंकि मैंने समग्र ज्ञातव्य को जान लिया, भावनीय भावना (साधना) कर डाली। परित्यागयोग्य का परित्याग कर दिया; अतः मैं 'बुद्ध' हूँ" ॥ ११ ॥

"ब्राह्मण ! मेरे विषय में तुम अपने मन में आये सन्देह को मिटा दो, शङ्का को दूर हटा दो। क्योंकि बार-बार सम्बुद्धों का दर्शन अत्यन्त दुर्लभ होता है" ॥ १२ ॥

"लोक में जिसका बारम्बार प्रादुर्भाव दुर्लभ है, वह मैं रागादि शल्यों को काटने वाला अनुपम 'सम्बुद्ध' हूँ ॥ १३ ॥

"मैं ब्रह्मभाव को प्राप्त, एवं तुलना (=बराबरी) रहित, एवं मार (रागादि शत्रु)-सेनानाशक हूँ। सभी शत्रुओं को वश में कर मैं सर्वत्र निर्भय हो विचरता हूँ" ॥ १४ ॥

"इमं भोन्तो निसामेथ, यथा भासति चक्खुमा।
सल्लकत्तो महावीरो, सीहो व नदती वने ॥ १५ ॥
"ब्राह्मभूतं अतितुलं मारसेनप्पमद्दनं।
को दिस्वा नप्पसीदेय्य, अपि कण्हाभिजातिको ॥ १६ ॥
"यो मं इच्छति अन्वेतु, यो वा निच्छति गच्छतु।
इधाहं पब्बजिस्सामि वरपञ्ञस्स सन्तिके" ॥ १७ ॥
"एवं चे रुच्चति भोतो, सम्मासम्बुद्धसासने।
मयं पि पब्बजिस्साम, वरपञ्ञस्स सन्तिके" ॥ १८ ॥
"ब्राह्मणा तिसता इमे, याचन्ति पञ्जलीकता।
ब्रह्मचरियं चरिस्साम, भगवा तव सन्तिके' " ॥ १९ ॥
"स्वाक्खातं ब्रह्मचरियं (सेला ति भगवा) सन्दिट्ठिकमकालिकं।
[B. 353] यत्थ अमोघा पब्बज्जा, अप्पमत्तस्स सिक्खतो" ति ॥ २० ॥

अलत्थ खो सेलो ब्राह्मणो सपरिसो भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं।

(शैल ब्राह्मण बोला--) "आप लोग सुन रहे हैं ना! जैसा कि ये चक्षुष्मान् (विवेकी) कह रहे हैं। ये रागादि शल्यों के छेदक हैं, महावीर हैं, ये सिंह की तरह निर्भय हो इस लोक में धर्मगर्जन करते हैं ॥ १५ ॥

"इन ब्रह्मभावप्राप्त, अतुलनीय, मारसेनाप्रमर्दक को देखकर कौन सन्तुष्ट नहीं होगा; भले ही वह कितना ही कृष्णाभिजातिक (दुर्गुणों से भरा हुआ) क्यों न हो! ॥ १६ ॥

"जो मेरी इस बात पर श्रद्धा रखता हो, वह मेरे साथ आ जाय; और जो मेरे साथ न आना चाहता हो वह चला जाय। मैं तो इन वरप्रज्ञ बुद्ध के इस धर्म में प्रव्रजित होऊँगा।" ॥ १७ ॥

शिष्य बोले—"श्रीमन्! यदि आप को इन सम्यक्सम्बुद्ध का। धर्म इतना रुचता है तो हम भी आप के साथ इस ही उत्तमप्रज्ञ के धर्म में प्रव्रजित होवेंगे ॥ १८ ॥

"भगवन्! हम ये तीन सौ ब्राह्मण भी करबद्ध हो भगवान् के पास इस धर्म में प्रव्रजित होवेंगे।" ॥ १९ ॥

(भगवान् बोले—) "शैल! यह मेरे द्वारा उपदिष्ट धर्म तो स्वाख्यात (सुन्दरतया व्याख्यात) है। यह प्रत्यक्षफलप्रद (सान्दृष्टिक) व अकालिक (कालान्तर तक फल की प्रतीक्षा नहीं कराने वाला) है। जहाँ ली गयी प्रमादरहित प्रव्रज्या व्यर्थ नहीं जाती" ॥ २० ॥

शैल ब्राह्मण ने परिषद् (तीन सौ शिष्यों) सहित भगवान् से प्रव्रज्या (संन्यास) एवं उपसम्पदा (दीक्षा) ग्रहण की।

५. अथ खो केणियो जटिलो तस्सा रत्तिया अच्चयेन सके अस्समे पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा भगवतो कालं आरोचापेसि--"कालो, भो गोतम, निट्ठितं भत्तं" ति। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन केणियस्स जटिलस्स अस्समो तेनुपसङ्कमि;, उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि सद्धिं भिक्खुसङ्घेन। अथ खो केणियो जटिलो बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि, सम्पवारेसि। अथ खो केणियो जटिलो भगवन्तं भुत्ताविं [N. 402] ओनीतपत्तपाणिं अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो केणियं जटिलं भगवा इमाहि गाथाहि अनुमोदि--

"अग्गिहुत्तमुखा यञ्ञा, सावित्ती छन्दसो मुखं।
राजा मुखं मनुस्सानं, नदीनं सागरो मुखं॥
"नक्खत्तानं मुखं चन्दो, आदिच्चो तपतं मुखं।
पुञ्ञं आकङ्खमानानं, सङ्घो वे यजतं मुखं" ति॥

अथ खो भगवा केणियं जटिलं इमाहि गाथाहि अनुमोदित्वा उट्ठायासना पक्कामि।

४. सपरिसस्स सेलस्स अरहत्तलाभो

६. अथ खो आयस्मा सेलो सपरिसो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी

---

५. तब केणिय जटिल ने, उस रात्रि के बीतने पर, अपने आश्रम में सुन्दर-सुन्दर रुचिकर भोजन तय्यार करवा कर भगवान् को जाकर सूचित कर दिया--"भन्ते! भोजन तय्यार हो गया है, अब आप जैसा उचित समझें।" तब भगवान् पूर्वाह्ण समय बिताकर, पात्र-चीवर ले जहाँ केणिय जटिल का आश्रम था, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर बिछे आसन पर भिक्षुसङ्घ सहित विराजें। तब उस केणिय जटिल ने अपने हाथ से सुन्दर एव रुचिकर भोजन परोसा, उन्हें तृप्त किया। फिर उस केणिय जटिल ने भगवान् को पात्र से हाथ उठाया व भोजन किया जान, एक नीचा आसन ले उस पर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे केणिय जटिल को भगवान् ने इन गाथाओं से सम्बोधित किया--

"यज्ञों में प्रमुख अग्निहोत्र है। सावित्री छन्द वेदों में प्रधान है। मनुष्यों में प्रधान राजा होता है, और सागर नदियों का प्रमुख है।

नक्षत्रों में चन्द्रमा श्रेष्ठ है। तपने वालों में सूर्य श्रेष्ठ है। कामनाओं में पुण्य-कामना श्रेष्ठ है। पूजा करने में सर्वोत्तम (उपाय) सङ्घ (में प्रवेश) है"॥

भगवान् केणिय जटिल को इन उपयुक्त गाथाओं से अनुमोदित कर, आसन से उठकर चल दिये।

४. शिष्यों सहित शैल को अर्हत्त्व-लाभ

६. तब आयुष्मान् शैल परिषत्-सहित एकाकी, प्रमादरहित उद्योगयुक्त, आत्मनिग्रही

पहितत्तो विरहन्तो नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं नापरं इत्थत्ताया' ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो खो पनायस्मा सेलो सपरिसो अरहतं अहोसि।

अथ खो आयस्मा सेलो सपरिसो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकंसं चीवरं कत्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं गाथाहि अज्झभासि—

[B. 354] "यं तं सरणमागम्म, इतो अट्ठमि चक्खुमा।
अनुत्तरेन भगवा, दन्तम्ह तव सासने॥ १॥
"तुवं बुद्धो तुवं सत्था, तुवं माराभिभू मुनि।
तुवं अनुसये छेत्वा, तिण्णो तारेसिमं पजं॥ २॥
"उपधी ते समतिक्कन्ता, आसवा ते पदालिता।
सीहो व अनुपादानो, पहीनभयभेरवो॥ ३॥
"भिक्खवो तिसता इमे, तिट्ठन्ति पञ्जलीकता।
पादे वीर पसारेहि, नागा वन्दन्तु सत्थुनो" ति॥ ४॥

●

हो साधना करते करते कुछ ही समय में—जिसके लिये कुलपुत्र···पूर्ववत्···इसी जन्म में स्वयं जान, साक्षात् प्राप्त कर विहरने लगे। ···यह जान गये। (अन्त में) परिषद् सहित आयुष्मान् शैल अर्हत हो गये।

तब परिषद् सहित आयुष्मान् शैल जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर एक (बाँये) कन्धे पर चीवर कर भगवान् को करबद्ध प्रणाम कर गाथाओं (के माध्यम) से यों निवेदन किया—

"भो चक्षुष्मन्! जो मैं आठ दिन पूर्व आपकी शरण में आया था। भगवन्! आपके धर्मानुशासन में वह मैं सात ही रात्रि (के इतने अल्पकाल) में दान्त हो गया॥ १॥

"आप ही बुद्ध हैं, आप ही शास्ता हैं, आप ही मारविजेता मुनि हैं। आप रागादि अनुशयों का नाश कर, स्वयं उत्तीर्ण हो इस प्रजा को भी तारत हैं॥ २॥

"आप की उपधि (मनोविकार) नष्ट हो चुकी हैं। आपके आस्रव समाप्त हो हो गये। आप भवसागर की भीषणता से रहित, एवं सिंह समान उपादान (=परिग्रह) रहित हैं॥ ३॥

"आपके सामने ये तीन सौ भिक्षु हाथ जोड़े खड़े हैं। हे वीर! अपने श्रीचरण फैलाइये, ताकि ये निष्पाप (नाग=न+आगस्=पाप) भिक्षु शास्ता के श्रीचरणों की वन्दना कर सकें"॥ वन्दना

सेलसुत्त समाप्त॥

●

४३. अस्सलायनसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं [N. 403, R. 147] विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन नानावेरज्जकानं ब्राह्मणानं पञ्चमत्तानि ब्राह्मणसतानि सावत्थियं पटिवसन्ति केनचिदेव करणीयेन। अथ खो तेसं ब्राह्मणानं एतदहोसि—"अयं खो समणो गोतमो चातुवण्णि सुद्धिं पञ्ञापेति। को नु खो पहोति समणेन गोतमेन सद्धिं अस्मिं वचने पटिमन्तेतुं" ति? तेन खो पन समयेन अस्सलायनो नाम माणवो सावत्थियं पटिवसति दहरो, वुत्तसिरो, सोळसवस्सुद्देसिको जातिया, तिण्णं वेदानं पारगू सनिघण्डुकेटुभानं साक्खरप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं, पदको, वेय्याकरणो, लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो। अथ खो तेसं ब्राह्मणानं एतदहोसि—"अयं खो अस्सलायनो माणवो सावत्थियं पटिवसति दहरो, वुत्तसिरो, सोळसवस्सुद्देसिको जातिया, तिण्णं वेदानं पारगू...पे०...अनवयो। सो खो पहोति समणेन गोतमेन सद्धिं अस्मिं वचने पटिमन्तेतुं" ति।

अथ खो ते ब्राह्मणा येन अस्सलायनो माणवो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा अस्सलायनं माणवं एतदवोचुं—"अयं, भो अस्सलायन, समणो [B. 355] गोतमो चातुवण्णि सुद्धिं पञ्ञापेति। एतु भवं अस्सलायनो समणेन गोतमेन सद्धिं अस्मिं वचने पटिमन्तेतू" ति।

---

४३. आश्वलायनसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती नगरी स्थित, अनाथपिण्डक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय अनेक देश-प्रदेशों से किसी कार्यविशेष-हेतु आये पाँच सौ ब्राह्मण श्रावस्ती में ठहरे हुए थे। तब उन ब्राह्मणों को यह विचार उठा—"ये श्रमण गौतम चारों वर्णों की पाप-शुद्धि का उपदेश करते हैं[1]। इस विषय में श्रमण गौतम के साथ बाद करने में कौन समर्थ होगा?" उस समय एक आश्वलायन नामक माणवक (युवक) उसी श्रावस्ती नगरी में रहता था। जो कि युवक, गोल सिर वाला, आयु से सोलह (१६) वर्ष के करीब, तीनों वेदों में पारङ्गत... पूर्ववत्... महापुरुषलक्षण-शास्त्र में प्रवीण था। तब उन ५०० ब्राह्मणों को यह बात ध्यान में आयी--"यह आश्वलायन ब्राह्मण... प्रवीण है। यह श्रमण गौतम के साथ बाद करने में समर्थ है।"

तब वे ब्राह्मण जहाँ वह आश्वलायन ब्राह्मण था, वहाँ पहुँचे। पहुँचकर आश्वलायन ब्राह्मण से यों बोले--"भो आश्वलायन! ये श्रमण गौतम चारों वर्णों की

---

१. द्र०—पीछे मधुर सुत्त, पृ० ११०४

एवं वुत्ते, अस्सलायनो माणवो ते ब्राह्मणे एतदवोच--"समणो खलु भो, गोतमो धम्मवादी; धम्मवादिनो च पन दुप्पटिमन्तिया भवन्ति। नाहं सक्कोमि समणेन गोतमेन सद्धिं अस्मिं वचने पटिमन्तेतुं" ति। दुतियं पि खो ते ब्राह्मणा अस्सलायनं माणवं एतदवोचुं—"अयं, भो अस्सलायन, समणो [R. 148] गोतमो चातुवण्णिं सुद्धिं पञ्ञापेति। एतु भवं अस्सलायनो समणेन गोतमेन सद्धिं अस्मिं वचने पटिमन्तेतुं। चरितं खो पन भोता अस्स- [N. 404] लायनेन परिब्बाजकं" ति। दुतियं पि खो अस्सलायनो माणवो ते ब्राह्मणे एतदवोच--"समणो खलु, भो, गोतमो धम्मवादी; धम्मवादिनो च पन दुप्पटिमन्तिया भवन्ति। नाहं सक्कोमि समणेन गोतमेन सद्धिं अस्मिं वचने पटिमन्तेतुं" ति। ततियं पि खो ते ब्राह्मणा अस्सलायनं माणवं एतदवोचुं—"अयं, भो अस्सलायन, समणो गोतमो चातुवण्णिं सुद्धिं पञ्ञापेति। एतु भवं अस्सलायनो समणेन गोतमेन सद्धिं अस्मिं वचने पटिमन्तेतुं। चरितं खो पन भोता अस्सलायनेन परिब्बाजकं। मा भवं अस्सलायनो अयुद्धपराजितं पराजयी" ति।

एवं वुत्ते, अस्सलायनो माणवो ते ब्राह्मणे एतदवोच—"अद्धा खो अहं भवन्तो न लभामि। समणो खलु, भो, गोतमो धम्मवादी; धम्मवादिनो च पन दुप्पटिमन्तिया भवन्ति। नाहं सक्कोमि समणेन गोतमेन सद्धिं अस्मिं वचने पटिमन्तेतुं ति। अपि चाहं भवन्तानं वचनेन गमिस्सामी" ति।

शुद्धि का उपदेश करते हैं। अच्छा हो, आप आश्वलायन उन श्रमण गौतम के पास जाँय और उनसे इस विषय में वाद करें।"

ऐसा कहने पर, वह आश्वलायन ब्राह्मण उन ब्राह्मणों को यों बोला—"अरे! ये श्रमण गौतम तो अतीव धर्मवादी हैं, और किसी धर्मवादी को वाद में पीछे हटाना बहुत कठिन कार्य है। मैं तो उस श्रमण गौतम के साथ इस विषय पर वाद नहीं खड़ा कर सकता"। दूसरी बार भी उन ब्राह्मणों ने आश्वलायन माणवक आप उस परिब्राजक से वाद करें। दूसरी बार भी आश्वलायन न···। तीसरी बार भी··· आपको उस परिब्राजक से वाद करना चाहिये। यों तुम्हें युद्ध मे बिना गये ही अपनी पराजय स्वीकार नहीं करनी चाहिये।"

(उन ब्राह्मणों द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, आश्वलायन माणवक यों बोला— "मैं आप लोगों को समझा नहीं सकता। श्रमण गौतम धर्मवादी है और धर्मवादी को वाद में परास्त करना बहुत कठिन होता है। फिर भी आप कहते है तो मैं वहाँ चला जाऊँगा।"

१. अस्सलायनस्स जातिवादो निराकतो

२. अथ खो अस्सलायनो माणवो महता ब्राह्मणगणेन सद्धिं येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्त निसिन्नो खो अस्सलायनो माणवो भगवन्तं एतदवोच—"ब्राह्मणा, भो गोतम, एवमाहंसु—'ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीनो अञ्ञो वण्णो; ब्राह्मणो व सुक्को वण्णो, कण्हो अञ्ञो वण्णो; ब्राह्मणा व सुज्झन्ति, नो अब्राह्मणा; ब्राह्मणा व ब्रह्मुनो पुत्ता ओरसा मुखतो जाता ब्रह्मजा ब्रह्मनिम्मिता ब्रह्म- [B. 356] दायादा' ति। इध भवं गोतमो किमाहा" ति ?

'दिस्सन्ति खो पन, अस्सलायन, ब्राह्मणानं ब्राह्मणियो उतुनियो पि गब्भिनियो पि विजायमाना पि पायमाना पि, ते च ब्राह्मणियोनिजा व समाना एवमाहंसु—'ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीनो अञ्ञो वण्णो; ब्राह्मणो व सुक्को वण्णो, कण्हो अञ्ञो वण्णो; ब्राह्मणा व सुज्झन्ति, नो अब्राह्मणा; ब्राह्मणा व ब्रह्मुनो पुत्ता ओरसा मुखतो जाता ब्रह्मजा ब्रह्मनिम्मिता ब्रह्मदायादा' " ति।

"किञ्चापि भवं गोतमो एवमाह; अथ ख्वेत्थ ब्राह्मणा एव- [R.149] मेतं मञ्ञन्ति—'ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीनो अञ्ञो वण्णो [N. 405] ...पे०...ब्रह्मदायादा' " ति।

---

१. आश्वलायन के जातिवाद का निराकरण

२. तब आश्वलायन माणवक बड़े भारी ब्राह्मणसमूह के साथ जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर उसने भगवान् से कुशल-मङ्गल पूछा। पूछकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे आश्वलायन माणवक ने भगवान् से यों निवेदन किया— "भो गौतम ! ब्राह्मण (शास्त्र) यों कहते हैं—'ब्राह्मण वर्ण ही श्रेष्ठ है, अन्य वर्ण हीन हैं। ब्राह्मण वर्ण शुक्ल वर्ण है, अन्य वर्ण कृष्ण हैं। ब्राह्मण वर्ण ही (तप आदि द्वारा) शुद्ध हो सकता है, अब्राह्मण नहीं। ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस पुत्र हैं, उसके मुख से उत्पन्न हुए हैं, अतः वे ब्रह्मज हैं उसके वास्तविक उत्तराधिकारी हैं'। आप गौतम का इस विषय में क्या विचार है" ?

"परन्तु, आश्वलायन ! ब्राह्मणों की स्त्रियाँ भी तो ऋतुमती, गर्भवती, बच्चा पैदा करती तथा उन्हें दूध पिलाती हुई देखी जाती हैं। यों वे ब्राह्मण ब्राह्मणि-योनियों से उत्पन्न होते हुए भी कहते हैं—'ब्राह्मण वर्ण ही श्रेष्ठ है…ब्रह्मा के वास्तविक उत्तराधिकारी हैं।' "

"यद्यपि आप गौतम ऐसा कहते हैं; परन्तु ब्राह्मणों का तो यही कहना है—'ब्राह्मण वर्ण ही श्रेष्ठ है…वे ही ब्रह्मा (सृष्टिकर्ता) के वास्तविक उत्तराधिकारी हैं'।"

३. "तं किं मञ्ञसि, अस्सलायन, सुतं ते--'योनकम्बोजेसु, अञ्ञेसु च पच्चन्तिमेसु जनपदेसु द्वेव वण्णा--अय्यो चेव दासो च; अय्यो हुत्वा दासो होति, दासो हुत्वा अय्यो होती' " ति ?

"एवं, भो, सुतं तं मे—'योनकम्बोजेसु अञ्ञेसु च पच्चन्तिमेसु जनपदेसु द्वेव वण्णा--अय्यो चेव दासो च; अय्यो हुत्वा दासो होति, दासो हुत्वा अय्यो होती' " ति।

"एत्थ, अस्सलायन, ब्राह्मणानं किं बलं को अस्सासो यदेत्थ ब्राह्मणा एवमाहंसु—'ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीनो अञ्ञो वण्णो···पे०···ब्रह्मदायादा' " ति ?

"किञ्चापि भवं गोतमो एवमाह; अथ ख्वेत्थ ब्राह्मणा एवमेतं मञ्ञन्ति--'ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीनो अञ्ञो वण्णो···पे०···ब्रह्मदायादा' " ति।

४. "तं किं मञ्ञसि, अस्सलायन, खत्तियो, व नु खो पाणातिपाती अदिन्नादायी कामेसुमिच्छाचारी मुसावादी पिसुणवाचो फरुसवाचो सम्फप्पलापी अभिज्झालु ब्यापन्नचित्तो मिच्छादिट्ठि कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जेय्य, नो ब्राह्मणो ? वेस्सो व नु खो ...पे०...सुद्दो व नु खो पाणातिपाती अदिन्नादायी कामेसुमिच्छाचारी मुसावादी पिसुणवाचो फरुसवाचो सम्फप्पलापी अभिज्झालु ब्यापन्नचित्तो मिच्छा-

---

३. "तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! क्या तुमने सुना है—'यवन (यूनान) एवं कम्बोज (अफगानिस्तान या ईरान) देश या इसी तरह अन्य (भारतीय) सीमान्त प्रदेशों में दो ही वर्ण होते हैं--आर्य और दास (=गुलाम)। वहाँ भी कोई आर्य हो तो वह दास हो सकता है, या फिर दास हो तो (वह कभी) आर्य हो सकता है' !"

"हाँ, भो ! मैंने भी सुना है कि यवन और कम्बोज देश में और दूसरे भी सीमान्त देशों में···आर्य हो सकता है।"

"तो, आश्वलायन ! ब्राह्मणों को ऐसा क्या विशेष बल या भरोसा (आश्वास) है कि वे ऐसा कहते है--'ब्राह्मण वर्ण ही श्रेष्ठ है···उत्तराधिकारी हैं' ?"

"यद्यपि आप गौतम ऐसा कहते हैं, परन्तु ब्राह्मणों का तो यही कहना है··· उत्तराधिकारी हैं।"

४. "तो क्या मानते हो आश्वलायन ! कि ऐसा क्षत्रिय ही, जो हिंसक हो, चोर हो, व्यभिचारी हो, असत्यवादी हो, चुगलखोर हो, कटुभाषी हो, बकवादी हो, अभिध्यालु एवं व्यापन्नचित्त हो, मिथ्यादृष्टि हो वही इस देहपात के बाद मरणानन्तर अपाय दुर्गतिमय अधःपतन (या नरक में जायगा; इन दुर्गुणों से युक्त ब्राह्मण

दिट्ठि कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जेय्य, नो ब्राह्मणो" ति ?

"नो हिदं, भो गोतम। खत्तियो पि हि, भो गोतम, पाणा- [B. 357] तिपाती अदिन्नादायी कामेसुमिच्छाचारी मुसावादी पिसुणवाचो फरुसवाचो सम्फप्पलापी अभिज्झालु ब्यापन्नचित्तो मिच्छादिट्ठि कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जेय्य। ब्राह्मणो पि हि, भो गोतम... पे०···वेस्सो पि हि, भो गोतम···पे०···सुद्दो पि हि, भो गोतम पे०...सब्बे पि हि, भो गोतम, चत्तारो वण्णा पाणातिपातिनो [N. 406] अदिन्नादायिनो कामेसुमिच्छाचारिनो मुसावादिनो पिसुणवाचा [R. 150] फरुसवाचा सम्फप्पलापिनो अभिज्झालू ब्यापन्नचित्ता मिच्छादिट्ठी कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जेय्युं" ति।

"एत्थ, अस्सलायन, ब्राह्मणानं किं बलं, को अस्सासो यदेत्थ ब्राह्मणा एवमाहंसु––'ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीनो अञ्ञो वण्णो···पे०···ब्रह्मदायादा' " ति।

५. "तं किं मञ्ञसि, अस्सलायन, ब्राह्मणो व नु खो पाणातिपाता पटिविरतो अदिन्नादाना पटिविरतो कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो मुसावादा पटिविरतो पिसुणाय वाचाय पटिविरतो फरुसाय वाचाय पटिविरतो सम्फप्पलापा पटिविरतो अनभिज्झालु अब्यापन्नचित्तो सम्मादिट्ठि कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेय्य, नो खत्तियो, नो वेस्सो, नो सुद्दो" ति ?

नहीं ? वैश्य ही···पूर्ववत् शूद्र ही जो हिंसक···नरक में जायगा, ऐसा ब्राह्मण नहीं ?"

"भो गौतम ! ऐसी बात तो नहीं है। भो गौतम ! क्षत्रिय भी यदि हिंसक··· नरक में उत्पन्न होगा। ब्राह्मण भी यदि हिंसक···नरक में उत्पन्न होगा। वैश्य भी यदि हिंसक···नरक में उत्पन्न होगा। शूद्र भी···नरक में ही उत्पन्न होगा"।

"तो फिर, आश्वलायन ! ब्राह्मणों के पास ऐसा क्या विशेष बल या विश्वास है कि तब भी वे यही कहते हैं––"ब्राह्मण वर्ण ही श्रेष्ठ है, अन्य वर्ण नहीं···ब्रह्मा के उत्तराधिकारी हैं" ?"

"भो गौतम ! यद्यपि आप ऐसा कहते हैं, परन्तु ब्राह्मणों का तो यही··· उत्तराधिकारी हैं।"

५. "तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! ब्राह्मण ही प्राणातिपात, अदत्तादान, व्यभिचारी, असत्यभाषण, चुगलखोरी, कटुवाणी, बकवाद, अभिध्या एवं व्यापाद से विरत हो सम्यग्दृष्टि होता हुआ देहपात के बाद, मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्गलोक में उत्पन्न होता है, न कि क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र ?"

"नो हिदं, भो गोतम ! खत्तियो पि हि, भो गोतम, पाणातिपाता पटिविरतो अदिन्नादाना पटिविरतो कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो मुसावादा पटिविरतो पिसुणाय वाचाय पटिविरतो फरुसाय वाचाय पटिविरतो सम्फप्पलापा पटिविरतो अनभिज्झालु अब्यापन्नचित्तो सम्मादिट्ठि कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेय्य। ब्राह्मणो पि हि, भो गोतम··· पे०···। वेस्सो पि हि, भो गोतम...पे०...। सुद्दो पि हि, भो गोतम··· पे०···। सब्बे पि हि, भो गोतम, चत्तारो वण्णा पाणातिपाता पटिविरता अदिन्नादाना पटिविरता कामेसुमिच्छाचारा पटिविरता मुसावादा पटिविरता पिसुणाय वाचाय पटिविरता फरुसाय वाचाय पटिविरता सम्फप्पलापा पटिविरता अनभिज्झालू अब्यापन्नचित्ता सम्मादिट्ठी कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेय्युं" ति।

[N. 407, B. 358] "एत्थ, अस्सलायन, ब्राह्मणानं किं बलं, को अस्सासो यदेत्थ ब्राह्मणा एवमाहंसु—'ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीनो अञ्ञो वण्णो···पे०···ब्रह्मदायादा'" ति?

[R. 151] "किञ्चापि भवं गोतमो एवमाह; अथ ख्वेत्थ ब्राह्मणा एवमेतं मञ्ञन्ति—'ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीनो अञ्ञो वण्णो···पे०··· ब्रह्मदायादा'" ति।

६. "तं किं मञ्ञसि, अस्सलायन, ब्राह्मणो व नु खो पहोति अस्मिं पदेसे अवेरं अब्याबज्झं मेत्तचित्तं भावेतुं, नो खत्तियो, नो वेस्सो, नो सुद्दो" ति?

"नो हिदं, भो गोतम ! खत्तियो पि हि, भो गोतम, पहोति अस्मिं पदेसे अवेरं अब्याबज्झं मेत्तचित्तं भावेतुं; ब्राह्मणो पि हि, भो गोतम...वेस्सो पि

"ऐसी बात नहीं है, भो गौतम ! ब्राह्मण तो क्या क्षत्रिय भी यदि प्राणातिपात··· व्यापाद से विरत होता हुआ सम्यग्दृष्टि···स्वर्गलोक में ही उत्पन्न होगा। वैश्य भी···शूद्र भी···स्वर्गलोक में ही उत्पन्न होगा।"

"आश्वलायन ! तो फिर ब्राह्मणों के पास ऐसा कौन विशेष बल, या भरोसा है जिसके सहारे ब्राह्मण कहते हैं—'ब्राह्मण ही श्रेष्ठ है···ब्रह्मा के उत्तराधिकारी है ?"

"आप गौतम भले ही ऐसा कहें, परन्तु ब्राह्मण (शास्त्र) तो यही कहते हैं—ब्राह्मण ही श्रेष्ठ हैं···।

६. "तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! क्या ब्राह्मण ही इस जगह वैर, द्वेष से रहित हो मैत्रीचित्त की भावना कर सकता है, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र नहीं ?"

"नहीं, भो गौतम ! क्षत्रिय भी इस जगह वैर···भावना कर सकता है। सभी चारों वर्ण···भावना कर सकते हैं।"

हि, भो गोतम...सुद्दो पि हि, भो गोतम...सब्बे पि हि, भो गोतम, चत्तारो वण्णा पहोन्ति अस्मिं पदेसे अवेरं अब्याबज्झं मेत्तचित्तं भावेतुं'' ति।

"एत्थ, अस्सलायन, ब्राह्मणानं किं बलं, को अस्सासो यदेत्थ ब्राह्मणा एवमाहंसु—'ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीनो अञ्ञो वण्णो···पे०···ब्रह्मदायादा' " ति?

"किञ्चापि भवं गोतमो एवमाह; अथ ख्वेत्थ ब्राह्मणा एवमेतं मञ्ञन्ति—'ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीनो अञ्ञो वण्णो···पे०···ब्रह्मदायादा' " ति।

७. तं किं मञ्ञसि, अस्सलायन, ब्राह्मणो व नु खो पहोति सोत्तिसिनानिं आदाय नदिं गन्त्वा रजोजल्लं पवाहेतुं, नो खत्तियो, नो वेस्सो, नो सुद्दो'' ति?

"नो हिदं, भो गोतम! खत्तियो पि, भो गोतम, पहोति सोत्तिसिनानिं आदाय नदिं गन्त्वा रजोजल्लं पवाहेतुं; ब्राह्मणो पि हि, भो गोतम...वेस्सो पि हि; भो गोतम···सुद्दो पि हि, भो गोतम···सब्बे पि हि, भो गोतम, चत्तारो वण्णा पहोन्ति सोत्तिसिनानिं आदाय नदिं गन्त्वा रजोजल्लं पवाहेतुं'' ति।

"एत्थ, अस्सलायन, ब्राह्मणानं किं बलं, को अस्सासो [N. 408] यदेत्थ ब्राह्मणा एवमाहंसु—'ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीनो अञ्ञो वण्णो··· पे०···ब्रह्मदायादा' " ति?

"किञ्चापि भवं गोतमो एवमाह; अथ ख्वेत्थ ब्राह्मणा एवमेतं मञ्ञन्ति—'ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीनो अञ्ञो वण्णो···पे०···ब्रह्मदायादा' " ति।

८. "तं किं मञ्ञसि, अस्सलायन, इध राजा खत्तियो मुद्धा- [R. 152] वसित्तो नानाजच्चानं पुरिसानं पुरिससतं सन्निपातेय्य— [B. 359]

"तो फिर आश्वलायन! ब्राह्मणों के पास कौन विशेष बल···उत्तराधिकारी है?"

"आप गौतम भले ही ऐसा कहते हैं, पर ब्राह्मण···उत्तराधिकारी हैं।"

७. "तो क्या मानते हो आश्वलायन! ब्राह्मण ही गमछा-तैल-साबुन लेकर नदी पर जा, शरीर का मैल छुडाने में समर्थ है, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र नहीं?"

"नहीं भो गौतम! क्षत्रिय भी गमछा तैल-साबुन ले, नदी पर जा, शरीर का मैल छुडाने में समर्थ है, वैश्य भी···शूद्र भी···समर्थ है।"

"तब फिर आश्वलायन! आप ब्राह्मण कौन विशेष बल···उत्तराधिकारी हैं?"

"आप गौतम भले ही कहें, परन्तु ब्राह्मण तो यही कहते हैं—ब्राह्मण ही··· उत्तराधिकारी हैं।"

८. "तो क्या मानते हो, आश्वलायन! यहाँ कोई मूर्धाभिषिक्त राजा नाना

'आयन्तु भोन्तो ये तत्थ खत्तियकुला ब्राह्मणकुला राजञ्ञकुला उप्पन्ना, साकस्स वा सालस्स वा सळळस्स वा चन्दनस्स वा पदुमकस्स वा उत्तरारणिं आदाय अग्गिं अभिनिब्बत्तेन्तु, तेजो पातुकरोन्तु। आयन्तु पन भोन्तो ये तत्थ चण्डालकुला नेसादकुला वेनकुला रथकारकुला पुक्कुसकुला उप्पन्ना, सापानदोणिया वा सूकरदोणिया वा रजकदोणिया वा एरण्डकट्ठस्स वा उत्तरारणिं आदाय, अग्गिं अभिनिब्बत्तेन्तु, तेजो पातुकरोन्तू' ति। तं किं मञ्ञसि, अस्सलायन, यो एवं नु खो सो खत्तियकुला ब्राह्मणकुला राजञ्ञकुला उप्पन्नेहि साकस्स वा सालस्स वा सळळस्स वा चन्दनस्स वा पदुमकस्स वा उत्तरारणिं आदाय अग्गि अभिनिब्बत्तो, तेजो पातुकतो, सो एव नु स्वास्स अग्गि अच्चिमा चेव वण्णवा च पभस्सरो च, तेन च सक्का अग्गिना अग्गिकरणीयं कातुं; यो पन सो चण्डालकुला नेसादकुला वेनकुला रथकारकुला पुक्कुसकुला उप्पन्नेहि सापानदोणिया वा सूकरदोणिया वा रजकदोणिया वा एरण्डकट्ठस्स वा उत्तरारणिं आदाय अग्गि अभिनिब्बत्तो, तेजो पातुकतो, स्वास्स अग्गि न चेव अच्चिमा न च वण्णवा न च पभस्सरो, न च तेन सक्का अग्गिना अग्गिकरणीयं कातुं" ति?

"नो हिदं भो गोतम! यो पि हि सो, भो गोतम, खत्तियकुला ब्राह्मणकुला राजञ्ञकुला उप्पन्नेहि साकस्स वा सालस्स वा सळळस्स वा चन्दनस्स वा पदुमकस्स वा उत्तरारणिं आदाय अग्गि अभिनिब्बत्तो, तेजो पातुकतो, [N. 409] स्वास्स अग्गि अच्चिमा चेव वण्णवा च पभस्सरो च, तेन च सक्का अग्गिना अग्गिकरणीयं कातुं; यो पि सो चण्डालकुला नेसादकुला वेन-

---

जातियों में से उत्पन्न पुरुषों में सौ पुरुषों को बुलावे, और कहे—'आप लोगों में जो क्षत्रिय कुल या ब्राह्मण कुल या राजन्य कुल में उत्पन्न हुए हैं वे साक, साल, सरल या चन्दन व कमल की लकड़ी (अरणि) लेकर आग बनावें उससे प्रकाश करें। आप में से वे भी आवें जो चण्डालकुल, निषादकुल, वेणुकुल, रथकार-(खाती = बढई)कुल पुल्कस (माली) कुल में उत्पन्न हुए हों, वे कुत्ते के जल पीने की, सूकर के जल पीने की, धोबी की, द्रोणी की, या एरण्ड की लकड़ी से अग्नि जलावें उससे प्रकाश करें। तो यहाँ, आश्वलायन! जो क्षत्रियकुल, या ब्राह्मणकुल···वे साक, साल···अग्नि बनावें तो वह अग्नि या उसका प्रकाश ज्यादा प्रकाशवान् या तेज होगा? या फिर चाण्डालकुल···अग्नि बनावें तो वह या उसका प्रकाश अधिक प्रकाशवान् अथवा तेज नहीं होगा? या उससे अग्नि भी न जलायी जा सकेगी?"

"ऐसी बात नहीं है, भो गौतम! क्षत्रियकुल, ब्राह्मणकुल या राजन्यकुल में उत्पन्न किसी पुरुष द्वारा साक, साल, सरल, कमल, चन्दन की लकड़ी से जलाई अग्नि भी

कुला रथकारकुला पुक्कुसकुला उप्पन्नेहि सापानदोणिया वा सूकरदोणिया वा रजकदोणिया वा एरण्डकट्ठस्स वा उत्तरारणिं आदाय अग्गि अभिनिब्बत्तो, तेजो पातुकतो; स्वास्स अग्गि अच्चिमा चेव वण्णवा च पभस्सरो च, तेन च सक्का अग्गिना अग्गिकरणीयं कातुं। सब्बो पि हि, भो गोतम, अग्गि अच्चिमा चेव वण्णवा च पभस्सरो च, सब्बेन पि [R. 153, B. 360] सक्का अग्गिना अग्गिकरणीयं कातुं" ति ।

"एत्थ, अस्सलायन, ब्राह्मणानं किं बलं, को अस्सासो यदेत्थ ब्राह्मणा एवमाहंसु—'ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीनो अञ्ञो वण्णो; ब्राह्मणो व सुक्को वण्णो, कण्हो अञ्ञो वण्णो; ब्राह्मणा व सुज्झन्ति, नो अब्राह्मणा; ब्राह्मणा व ब्रह्मुनो ओरसा मुखतो जाता ब्रह्मजा ब्रह्मनिम्मिता ब्रह्मदायादा' " ति ?

"किञ्चापि भवं गोतमो एवमाह; अथ ख्वेत्थ ब्राह्मणा एवमेतं मञ्ञन्ति—'ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीनो अञ्ञो वण्णो···पे०···ब्रह्मदायादा' " ति ।

९. "तं किं मञ्ञसि, अस्सलायन, इध खत्तियकुमारो ब्राह्मणकञ्ञाय सद्धिं संवासं कप्पेय्य, तेसं संवासमन्वाय पुत्तो जायेथ; यो सो खत्तियकुमारेन ब्राह्मणकञ्ञाय पुत्तो उप्पन्नो, सिया सो मातु पि सदिसो पितु पि सदिसो, 'खत्तियो' ति पि वत्तब्बो 'ब्राह्मणो' ति पि वत्तब्बो" ति ?

वही प्रकाश करेगी, या उस अग्नि से वही अग्निकार्य होगा जो चण्डालकुल, निषादकुल, वेणकुल, रथकारकुल, पुल्कसकुल में उत्पन्न व्यक्ति द्वारा जलायी गयी अग्नि से प्रकाश होता है, या उससे कोई अन्य अग्निकार्य होता है। सभी अग्नियाँ समान रूप से एक-सा ताप व प्रकाश देती हैं व उनसे सभी प्रकार का अग्निकार्य किया जा सकता है।"

"तब फिर आश्वलायन ! ब्राह्मणों के पास ऐसा क्या विशेष बल···ब्रह्मा के उत्तराधिकारी हैं ?"

"भले ही, माननीय गौतम ऐसा कहें; परन्तु ब्राह्मण तो ऐसा ही कहते हैं—'ब्राह्मण वर्ण ही श्रेष्ठ है···ब्रह्मा के उत्तराधिकारी हैं।"

९. "तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! यहाँ कोई क्षत्रियकुमार ब्राह्मणकन्या के साथ संवास (मैथुन) करे, उनके उस संवास के कारण कोई पुत्र उत्पन्न हो जाय तो वह क्षत्रियकुमार से ब्राह्मणकन्या में उत्पन्न पुत्र माता के भी समान है और पिता के भी समान है, तो उसे 'क्षत्रिय' भी कह सकते हैं, 'ब्राह्मण' भी कह सकते हैं ?"

"यो सो, भो गोतम, खत्तियकुमारेन ब्राह्मणकञ्ञाय पुत्तो उप्पन्नो, सिया सो मातु पि सदिसो पितु पि सदिसो, 'खत्तियो' ति पि वत्तब्बो ब्राह्मणो' ति पि वत्तब्बो" ति।

"तं किं मञ्ञसि, अस्सलायन, इध ब्राह्मणकुमारो खत्तियकञ्ञाय सद्धिं संवासं कप्पेय्य, तेसं संवासमन्वाय पुत्तो जायेथ; यो सो ब्राह्मणकुमारेन खत्तियकञ्ञाय पुत्तो उप्पन्नो, सिया सो मातु पि सदिसो पितु पि सदिसो, 'खत्तियो' ति पि वत्तब्बो 'ब्राह्मणो' ति पि वत्तब्बो" ति ?

[N. 410] "यो सो, भो गोतम, ब्राह्मणकुमारेन खत्तियकञ्ञाय पुत्तो उप्पन्नो, सिया सो मातु पि सदिसो पितु पि सदिसो, 'खत्तियो' ति पि वत्तब्बो 'ब्राह्मणो' ति पि वत्तब्बो" ति।

"तं किं मञ्ञसि, अस्सलायन इध वळवं गद्रभेन सम्पयोजेय्युं, तेसं सम्पयोगमन्वाय किसोरो जायेथ; यो सो वळवाय गद्रभेन किसोरो उप्पन्नो, सिया सो मातु पि सदिसो पितु पि सदिसो, 'अस्सो' ति पि वत्तब्बो 'गद्रभो' ति पि वत्तब्बो" ति ?

[R. 154] "कुण्डं हि सो, भो गोतम, अस्सतरो होति। इदं हिस्स, भो [B. 361] गोतम, नानाकरणं पस्सामि; अमुत्र च पनेसानं न किञ्चि नानाकरणं पस्सामी" ति।

"भो गौतम ! क्षत्रियकुमार का ब्राह्मणकन्या से उत्पन्न पुत्र माता के सदृश भी हो सकता है, पिता के सदृश भी, अतः उसे 'क्षत्रिय' भी कह सकते हैं, 'ब्राह्मण' भी कह सकते हैं।"

"तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! यहाँ कोई ब्राह्मणकुमार के क्षत्रियकन्या के साथ संवास से पुत्र उत्पन्न हो, वह माता के सदृश भी हो सकता है पिता के सदृश भी, तो उसे क्या 'क्षत्रिय' कहा जाय या 'ब्राह्मण' कहा जाय ?"

"भो गौतम ! यहाँ कोई ब्राह्मणकुमार क्षत्रियकन्या के साथ…'क्षत्रिय' भी कह सकते हैं, 'ब्राह्मण' भी कह सकते हैं।"

"तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! यहाँ किसी घोड़ी का किसी गधे के साथ संवास करा दें, उससे उस घोड़ी को सन्तान हो। वह सन्तान माता के सदृश भी हो सकती है, पिता के सदृश भी; तो उसे 'गधा' कहा जाय या 'घोड़ा' ?"

"भो गौतम ! उसे न गधा कहते हैं न घोड़ा। उसे तो एक प्रकार की वर्णसङ्कर जाति का नया नाम ही दिया जाता है—'अश्वतर' (खच्चर)। हाँ, भो गौतम ! यहाँ मैं भेद (विशेषता) भी देखता हूँ, जब कि अन्यत्र (ऊपर के उदाहरणों में) ऐसा कोई भेद नहीं दिखायी देता था।"

"तं किं मञ्ञसि, अस्सलायन, इधास्सु द्वे माणवका भातरो सोदरिया, एको अज्झायको उपनीतो एको अनज्झायको अनुपनीतो; कमेत्थ ब्राह्मणा पठमं भोजेय्युं सद्धे वा थालिपाके वा यञ्ञे वा पाहुने वा" ति ?

"यो सो, भो गोतम, माणवको अज्झायको उपनीतो तमेत्थ ब्राह्मणा पठमं भोजेय्युं सद्धे वा थालिपाके वा यञ्ञे वा पाहुने वा। किं हि, भो गोतम, अनज्झायके अनुपनीते दिन्नं महप्फलं भविस्सती" ति !

"तं किं मञ्ञसि, अस्सलायन, इधास्सु द्वे माणवका भातरो सोदरिया, एको अज्झायको उपनीतो दुस्सीलो पापधम्मो, एको अनज्झायको अनुपनीतो सीलवा कल्याणधम्मो; कमेत्थ ब्राह्मणा पठमं भोजेय्युं सद्धे वा थालिपाके वा यञ्ञे वा पाहुने वा" ति ?

"यो सो, भो गोतम, माणवको अनज्झायको अनुपनीतो सीलवा कल्याणधम्मो तमेत्थ ब्राह्मणा पठमं भोजेय्युं सद्धे वा थालिपाके वा यञ्ञे वा पाहुने वा। किं हि, भो गोतम, दुस्सीले पापधम्मे दिन्नं महप्फलं भविस्सती" ति !

"पुब्बे खो त्वं, अस्सलायन, जातिं अगमासि; जातिं गन्त्वा मन्ते अग-

---

"तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! यहाँ कोई दो सहोदर भाई हों—एक पढ़ा-लिखा एवं गुरु परम्परा से दीक्षाप्राप्त, दूसरा बिना पढा-लिखा व गुरु परम्परा से भी दीक्षा न लिया हुआ। तो बताओ ! ये ब्राह्मण उन दोनों में से श्राद्ध, यज्ञ निमन्त्रण आदि के अवसर पर या अतिथि रूप में किसको पहले भोजन करायेंगे ?"

"भो गौतम ! उनमें जो माणवक पढा-लिखा या गुरु परम्परा से दीक्षाप्राप्त हो उसे ही ब्राह्मण यज्ञ आदि के अवसर पर पहले भोजन करायेंगे। उन्हें अनधीत या अनुपनीत को दान का क्या महाफल होगा !"

"तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! यहाँ कोई दो माणवक सहोदर भाई हों, उनमें से एक पढ़ा-लिखा परम्परागत दीक्षा प्राप्त हो, परन्तु वह दुःशील एवं पापकर्मरत हो; परन्तु दूसरा बिना पढ़ा-लिखा होने पर भी सुशील एवं पुण्यकर्मा हो। तो बताओ, आश्वलायन ! ये ब्राह्मण यज्ञ आदि के अवसर पर किसे पहले भोजन करायेंगे—उस पढे-लिखे दुःशील को या उस विना पढे-लिखे परन्तु सुशील व पुण्यकर्मा को ?"

"भो गौतम ! जो माणवक बिना पढा-लिखा होते हुए भी सुशील व पुण्यकर्मा है उसे ही यज्ञादि के अवसर पर प्रथम भोजन करायेंगे। उस अधीत परन्तु दुःशील को प्रथम भोजन कराने का क्या महाफल होगा !"

"आश्वलायन ! पहले तो तुम जाति को महत्त्व दे रहे थे, फिर मन्त्र को महत्त्व

मासि; मन्ते गन्त्वा तपे अगमासि; तपे गन्त्वा चातुवण्णि सुद्धि पच्चागतो, [N. 411] यमहं पञ्ञपेमी'' ति। एवं वुत्ते, अस्सलायनो माणवो तुण्ही-भूतो मङ्कुभूतो पत्तक्खन्धो अधोमुखो पज्झायन्तो अप्पटिभानो निसीदि।

असितदेवलइसिवत्थु

१०. अथ खो भगवा अस्सलायनं माणवं तुण्हीभूतं मङ्कुभूतं पत्तक्खन्धं अधोमुखं पज्झायन्तं अप्पटिभानं विदित्वा अस्सलायनं माणवं एतदवोच— "भूतपुब्बं, अस्सलायन, सत्तन्नं ब्राह्मणिसीनं अरञ्ञायतने पण्णकुटीसु सम्मन्तानं एवरूपं पापकं दिट्ठिगतं उप्पन्नं होति—'ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीनो [R. 155] अञ्ञो वण्णो...पे०...ब्रह्मदायादा' ति। अस्सोसि खो, अस्स-[B. 362] लायन, असितो देवलो इसि—'सत्तन्नं किर ब्राह्मणिसीनं अरञ्ञायतने पण्णकुटीसु सम्मन्तानं एवरूपं पापकं दिट्ठिगतं उप्पन्नं—ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो...पे०...ब्रह्मदायादा' ति। अथ खो, अस्सलायन, असितो देवलो इसि केसमस्सुं कप्पेत्वा मञ्जिट्ठवण्णानि दुस्सानि निवासेत्वा पटलियो उपाहना आरुहित्वा जातरूपमयं दण्डं गहेत्वा सत्तन्नं ब्राह्मणिसीनं पत्थण्डिले पातुरहोसि। अथ खो, अस्सलायन, असितो देवलो इसि सत्तन्नं ब्राह्मणिसीनं

देने लगे, फिर तप पर आ गये, अब तुम उसी चतुर्वर्णशुद्धि का महत्त्व बखान कर रहे हो जिसका मैं पहले से ही समर्थन करता हुआ आ रहा हूँ।''

भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर यह आश्वलायन माणवक चुप हो गया, मूक बन गया, कन्धे व सिर नीचे कर बैठ गया और वह चिन्तित व निष्प्रभ सा लगने लगा।

२. असितदेवलऋषि-कथा

१०. एतदनन्तर, भगवान् आश्वलायन माणवक को चुप मूक, चिन्तित, निष्प्रभ व कन्धे और सिर नीचा कर बैठे देखकर उसे यों बोले—"आश्वलायन! पूर्वकाल में कभी किसी अरण्य में अपनी पर्णकुटी में बैठे सात ब्राह्मण-ऋषियों को भी यह पापदृष्टि (पापमय विचार) उत्पन्न हुई—'ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है, अन्य वर्ण हीन हैं... ब्रह्मा के उत्तराधिकारी हैं।'

तब आश्वलायन! असित देवल ऋषि ने सुना—'सात ब्राह्मण ऋषियों को यह पापदृष्टि उत्पन्न हुई है...उत्तराधिकारी हैं'। तब, आश्वालायन! असित देवल ऋषि सिर-दाढी मुँड़ाकर, मञ्जीठ के रंग का धुस्सा पहन, मजबूत खड़ाऊँ (पटलिय या अटलिय) पैरों में पहन, चाँदी की छड़ी ले, उन सात ब्राह्मण-ऋषियों के आँगन (पत्थण्डिल) में गये। आश्वलायन! वहाँ वे असित देवल ऋषि उन सातों ब्राह्मण-ऋषियों के आँगन में टहलते हुए यों कहने लगे—'अरे, आप ब्राह्मण-ऋषि

पत्थण्डिले चङ्कममानो एवमाह--'हन्द, को नु खो इमे भवन्तो ब्राह्मणिसयो गता; हन्द, को नु खो इमे भवन्तो ब्राह्मणिसयो गता' ति ? अथ खो, अस्सलायन, सत्तन्नं ब्राह्मणिसीनं एतदहोसि—'को नायं गामण्डलरूपो विय सत्तन्नं ब्राह्मणिसीनं पत्थण्डिले चङ्कममानो एवमाह--हन्द, को नु खो इमे भवन्तो ब्राह्मणिसयो गता, हन्द, को नु खो इमे भवन्तो ब्राह्मणिसयो गता ति ? हन्द, नं अभिसपामा' ति। अथ खो, अस्सलायन, सत्त ब्राह्मणिसयो असितं देवलं इसिं अभिसपिंसु--'भस्मा, वसल, होहि; भस्मा, वसल, होही' ति। यथा यथा खो, अस्सलायन, सत्त ब्राह्मणिसयो असितं देवलं इसिं अभिसपिंसु तथा तथा असितो देवलो इसि अभिरूपतरो चेव होति दस्सनीयतरो च पासादिकतरो च। अथ खो, अस्सलायन, सत्तन्नं ब्राह्मणिसीनं एतदहोसि—'मोघं वत नो तपो, अफलं ब्रह्मचरियं। मयं हि पुब्बे यं अभि- [N. 412] सपाम--भस्मा, वसल, होहि; भस्मा, वसल, होही ति, भस्मा व भवति एकच्चो ! इमं पन मयं यथा यथा अभिसपाम तथा तथा अभिरूपतरो चेव होति दस्सनीयतरो च पासादिकतरो चा' ति !

'न भवन्तानं मोघं तपो, नाफलं ब्रह्मचरियं। इङ्घ भवन्तो, यो मयि मनोपदोसो, तं पजहथा' ति।

कहाँ चले गये ? कहाँ चले गये' ? तब आश्वलायन ! उन सातों ब्राह्मण-ऋषियों को मन में यह हुआ—''कौन यह बैल की तरह चारों ओर घूमता हुआ चिल्ला रहा है—सातों ब्राह्मण ऋषि कहाँ गये, सातों ब्राह्मण-ऋषि कहाँ गये ! क्यों न हम इसे शाप दे डालें !' तब, आश्वलायन ! उन सातों ब्राह्मण-ऋषियों ने उस असित देवल ऋषि को यह शाप दे डाला--'शूद्र ! जा, भस्म हो जा ! शूद्र जा, भस्म हो जा !' परन्तु आश्वलायन ! ज्यों-ज्यों उन सातों ब्राह्मण-ऋषियों ने उस असित देवल ऋषि को शाप दिया, त्यों-त्यों वह असित देवल ऋषि, भस्म होने की तो बात कौन कहे, और अधिक सुन्दर और अधिक दर्शनीय व प्रसन्नमुख होते चले गये। तब आश्वलायन ! उन सातों ब्राह्मण-ऋषियों को यह हुआ--'क्या हमारा तपःप्रभाव क्षीण हो गया है ? क्या हमारी साधना समाप्त हो गयी है ? (क्योंकि) पहले जब हम किसी को शाप देते थे--भस्म हो जा, शूद्र ! भस्म हो जा, तो वह भस्म हो ही जाता था। और इसको ज्यों-ज्यों हम शाप दे रहे हैं त्यों-त्यों यह सुन्दर व कान्तिमय होता जा रहा है' !

(असित देवल ऋषि बोले—) 'आप लोगों का न तपःप्रभाव क्षीण हुआ है, न साधना ही समाप्त हुई है। यहाँ अभी जो आप लोगों को मेरे प्रति मानसिक द्वेष

[R. 156] 'यो भवति मनोपदोसो तं पजहाम ! को नु भवं होती' ति ?

'सुतो नु भवतं--असितो देवलो इसी' ति ?

'एवं, भो'।

'सो ख्वाहं, भो, होमी' ति।

"अथ खो, अस्सलायन, सत्त ब्राह्मणिसयो असितं देवलं इसिं अभिवादेतुं [B. 363] उपक्कमिंसु। अथ खो, अस्सलायन, असितो देवलो इसि सत्त ब्राह्मणिसयो एतदवोच--'सुतं मेतं, भो, सत्तन्नं किरं ब्राह्मणिसीनं अरञ्ञायतने पण्णकुटीसु सम्मन्तानं एवरूपं पापकं दिट्ठिगतं उप्पन्नं—ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीनो अञ्ञो वण्णो; ब्राह्मणो व सुक्को वण्णो; कण्हो अञ्ञो वण्णो; ब्राह्मणा व सुज्झन्ति, नो अब्राह्मणा; ब्राह्मणा व ब्रह्मुनो पुत्ता ओरसा मुखतो जाता ब्रह्मजा ब्रह्मनिम्मिता ब्रह्मदायादा' ति।

'एवं, भो'।

'जानन्ति पन भोन्तो—या जनिका माता ब्राह्मणं येव अगमासि, नो अब्राह्मणं' ति ?

'नो हिदं, भो'।

उत्पन्न हो गया है, उसे आप दूर हटा दीजिए। (तो आपकी वही पूर्ववत् स्थिति हो जायगी।')

'हुं ! आपके प्रति अपना मनोद्वेष हटा दें ! आप कौन होते हैं ?'

'आपने असित देवल ऋषि का नाम सुना है ?'

'हाँ ! सुना तो है।'

'अरे ! मैं वही हूँ।'

'तब, आश्वलायन ! वे सातों ब्राह्मण ऋषि असित देवल ऋषि को प्रणाम करने उसके समीप आये। आश्वलायन ! तब असित देवल ऋषि उन सात ब्राह्मण ऋषियों को यों बोले--'मैंने सुना है कि आप सातों ब्राह्मण ऋषियों को अरण्यस्थित अपनी पर्णकुटियों बैठे बैठे यह पापमय दृष्टि (विचार) उत्पन्न हुई कि ब्राह्मण वर्ण ही श्रेष्ठ है...ब्राह्मण के उत्तराधिकारी हैं ?'

'हाँ, जी ! यह बात तो है।'

'क्या आप को यह निश्चित विश्वास है कि ब्राह्मण को पैदा करने वाली ब्राह्मणी संवास के लिये ब्राह्मण के पास ही गयी थी ?'

'अजी ! ऐसा तो नहीं है।'

'जानन्ति पन भोन्तो—या जनिकामातु माता याव सत्तमा मातुमातामहयुगा ब्राह्मणं येव अगमासि, नो अब्राह्मणं' ति ?

'नो हिदं, भो'।

'जानन्ति पन भोन्तो—यो जनको पिता ब्राह्मणिं येव अगमासि, नो अब्राह्मणिं' ति ?

'नो हिदं, भो। [N. 413]

'जानन्ति पन भोन्तो--यो जनकपितु पिता याव सत्तमा पितुपितामहयुगा ब्राह्मणिं येव अगमासि, नो अब्राह्मणिं' ति ?

'नो हिदं, भो'।

'जानन्ति पन भोन्तो--यथा गब्भस्स अवक्कन्ति होती' ति ?

'जानाम मयं, भो--यथा गब्भस्स अवक्कन्ति होति। इध [R. 157] मातापितरो च सन्निपतिता होन्ति, माता च उतुनी होति, गन्धब्बो च पच्चुपट्ठितो होति; एवं तिण्णं सन्निपाता गब्भस्स अवक्कन्ति होती' ति।

'जानन्ति पन भोन्तो--तग्घ, सो गन्धब्बो खत्तियो वा ब्राह्मणो वा वेस्सो वा सुद्दो वा' ति ?

'क्या आप जानते हैं कि उस ब्राह्मण की माता की सात पीढ़ियों तक की ब्राह्मणियाँ ब्राह्मण के साथ ही संवास कर पुत्रोत्पन्न कर रही हैं, अन्य से तो नहीं ?'

'ऐसी बात भी नहीं है।'

'क्या आप को यह निश्चित ज्ञान है कि इनका जो पिता कहलाने वाला ब्राह्मण है वही संवास के लिये ब्राह्मणी के पास गया होगा, अब्राह्मणी के पास नहीं ?'

'ऐसी बात भी नहीं है !'

'क्या आप जानते हैं कि इसके पिता, पितामह आदि सात पीढी तक के पूर्व पुरुषों ने ब्राह्मणी से संवास करके ही पुत्रोत्पत्ति की है, अब्राह्मणी से नहीं ?'

'ऐसी बात भी नहीं।'

'जानते हैं आप लोग, गर्भ की अवक्रान्ति (स्थिति) कैसे होती है ?'

'हाँ, श्रीमन् ! इतना तो हम जानते हैं कि गर्भ की अवक्रान्ति कैसे होती है। यहाँ माता-पिता सवास करें, माता ऋतुमती हो, गन्धर्व (उत्पादक तत्त्व = वीर्य) उपस्थित हो--इन तीनों के समन्वय पर ही गर्भ की स्थिति बनती है।'

'क्या आप लोग निश्चित रूप से जानते हैं--यहाँ वह उत्पादक तत्त्व (वीर्य) क्षत्रिय का था, ब्राह्मण का था, वैश्य का था या शूद्र का था ?'

'न मयं, भो, जानाम--तग्घ सो गन्धब्बो खत्तियो वा ब्राह्मणो वा वेस्सो वा सुद्दो वा' ति ।

'एवं सन्ते, भो, जानाथ—के तुम्हे होथा' ति ?

[B. 364] 'एवं सन्ते, भो न मयं जानाम--के मयं होमा' ति ।

"ते हि नाम, अस्सलायन, सत्त ब्राह्मणिसयो असितेन देवलेन इसिना सके जातिवादे समनुयुञ्जियमाना समनुग्गाहियमाना समनुभासियमाना न सम्पायिस्सन्ति; किं पन त्वं एतरहि मया सकस्मिं जातिवादे समनुयुञ्जियमानो समनुग्गाहियमानो समनुभासियमानो सम्पायिस्ससि, येसं त्वं साचरियको न पुण्णो दब्बिगाहो" ति ।

एवं वुत्ते, अस्सलायनो माणवो भगवन्तं एतदवोच--"अभिक्कन्तं, भो गोतम···पे०···उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति ।

●

'नहीं, श्रीमन्! ऐसा तो हम निश्चित रूप से नहीं जानते कि वह क्षत्रिय का था···या शूद्र का था।'

'तो क्या अब आप लोग निश्चित रूप से कह सकते हैं कि आप लोग किसके द्वारा पैदा किये गये हैं--क्षत्रिय के द्वारा···या शूद्र के द्वारा? अब तुम क्षत्रिय हो···या शूद्र हो?'

'हाँ, श्रीमन्! तब तो हम अपने बारे में सुनिश्चितरूप से नहीं कह सकते कि हम कौन हैं--क्षत्रिय···या शूद्र!'

"तो, आश्वलायन! जब असित देवल ऋषि द्वारा जातिवाद के प्रश्नों का वे सातों ऋषि भी उत्तर न दे सके तो फिर आज तुम क्या उत्तर दे सकोगे? अपने आचार्यसहित तुम तो उन ऋषियों के (सामने) दर्वीग्राहक (कड़छी उठाने वाले) रसोइये के बराबर भी नहीं हो।"

ऐसा कहने पर वह आश्वलायन ब्राह्मण भगवान् से यों बोला—"आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते!···पूर्ववत्···मुझे आज से जीवनभर अपना शरणागत उपासक (सेवक) समझें॥"

अस्सलायनसुत्त समाप्त ॥

●

४४. घोटमुखसुत्तं

१. आयस्मतो उदेनस्स धम्मदेसना

१. एवं मे सुतं। एकं समयं आयस्मा उदेनो बाराणसियं [N. 414] विहरति खेमियम्बवने। तेन समयेन घोटमुखो ब्राह्मणो बाराणसियं अनुप्पत्तो होति केनचिदेव करणीयेन। अथ खो घोटमुखो ब्राह्मणो जङ्घाविहारं अनुचङ्कममानो अनुविचरमानो येन खेमियम्बवनं तेनुपसङ्कमि। तेन [R. 158] खो पन समयेन आयस्मा उदेनो अब्भोकासे चङ्कमति।

अथ खो घोटमुखो ब्राह्मणो येनायस्मा उदेनो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता उदेनेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा आयस्मन्तं उदेनं चङ्कमन्तं अनुचङ्कममानो एवमाह—"अम्भो समण, 'नत्थि धम्मिको परिब्बाजो'—एवं मे एत्थ होति। तं च खो भवन्तरूपानं वा अदस्सना, यो वा पनेत्थ धम्मो" ति।

एवं वुत्ते, आयस्मा उदेनो चङ्कमा ओरोहित्वा विहारं पविसित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। घोटमुखो पि खो ब्राह्मणो चङ्कमा ओरोहित्वा विहारं पविसित्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितं खो घोटमुखं ब्राह्मणं

---

४४. घोटमुखसूत्र

१. आयुष्मान् उदयन द्वारा धर्मदेशना

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय आयुष्मान् उदयन वाराणसी के खेमीय आम्रवन में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। उस समय कोई घोटमुख नामक ब्राह्मण किसी कार्यविशेष से वाराणसी में आया हुआ था। तब वह घोटमुख (घोड़मुहा) ब्राह्मण पैरों को आराम देने (जङ्घाविहार) के लिये पैदल ही घूमते-घूमते जहाँ खेमीय आम्रवन था, वहाँ गया, जहाँ उस समय आयुष्मान् उदयन खुली जगह में टहल रहे थे।

तब घोटमुख ब्राह्मण जहाँ आयुष्मान् उदयन चङ्क्रमण कर रहे थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर आयुष्मान् उदयन से कुशल-मङ्गल पूछा। कुशल-मङ्गल पूछकर आयुष्मान् के उदयन के पीछे-पीछे टहलते हुए वह घोटमुख यों बोला—"भो श्रमण! मुझे ऐसा लगता है कि अब धार्मिक प्रव्रज्या नाम की कोई चीज नहीं रह गयी! यह बात इसलिये भी सम्भव है कि आप जैसे साधकों के दर्शन अब दुर्लभ-से हो गये हैं। किन्तु जो धर्म (-पालन) इस समय लोक में दिखायी दे रहा है, उसी को देखकर हम अपने विचार बना सकते हैं।"

ऐसा कहने पर, आयुष्मान् उदयन चंक्रमण-मार्ग से उतर कर विहार (साधनाप्रकोष्ठ) में प्रविष्ट हो बिछे आसन पर जा बैठे। घोटमुख ब्राह्मण भी उनके पीछे पीछे

आयस्मा उदेनो एतदवोच--"संविज्जन्ति खो, ब्राह्मण आसनानि। सचे आकङ्खसि, निसीदा" ति।

[B. 365] "एतदेव खो पन मयं भोतो उदेनस्स आगमयमाना न निसीदाम। कथं हि नाम मादिसो पुब्बे अनिमन्तितो आसने निसीदितब्बं मञ्ञेय्या" ति!

अथ खो घोटमुखो ब्राह्मणो अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो घोटमुखो ब्राह्मणो आयस्मन्तं उदेनं एतदवोच--"अम्भो समण, 'नत्थि धम्मिको परिब्बाजको'--एवं मे एत्थ होति। तं च खो भवन्तरूपानं वा अदस्सना, यो वा पनेत्थ धम्मो" ति।

[N. 415] "सचे खो पन मे त्वं, ब्राह्मण, अनुञ्ञेय्यं अनुजानेय्यासि, पटिक्कोसितब्बं च पटिक्कोसेय्यासि; यस्स च पन मे भासितस्स अत्थं न जानेय्यासि, ममं येव तत्थ उत्तरि पटिपुच्छेय्यासि--'इदं, भो उदेन, कथं इमस्स क्वत्थो' ति? एवं कत्वा सिया नो एत्थ कथासल्लापो" ति।

"अनुञ्ञेय्यं ख्वाहं भोतो उदेनस्स अनुजानिस्सामि, पटिक्कोसितब्बं [R. 159] च पटिक्कोसिस्सामि; यस्स च पनाहं भोतो उदेनस्स भासितस्स अत्थं न जानिस्सामि, भवन्तं येव तत्थ उदेनं उत्तरि पटिपुच्छिस्सामि--'इदं, भो उदेन, कथं, इमस्स क्वत्थो' ति? एवं कत्वा होतु नो एत्थ कथासल्लापो" ति।

विहार में प्रविष्ट हो एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े घोटमुख ब्राह्मण को आयुष्मान् उदयन ने कहा--"ब्राह्मण यह आसन है, यदि इच्छा हो तो बैठो।"

"मैं तो आप उदयन की इसी आज्ञा की प्रतीक्षा में था। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि मेरे जैसा आदमी पहले तो बिना बुलाये आ जाय और फिर आज्ञा के बिना ही आसन पर आ बैठे!"

तब घोटमुख ब्राह्मण, कोई नीचा आसन लेकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे घोटमुख ब्राह्मण ने आयुष्मान् उदयन से यों निवेदन किया--"अहो श्रमण! मुझे ऐसा लगता है कि अब...उसी को देखकर हम अपने विचार बना सकते हैं।"

"ब्राह्मण! तुम्हारी हमारी यह बातचीत इस ढंग से होनी चाहिये--'जो मेरी बात तुम्हें स्वीकार्य हो उसे स्वीकार कर लेना, जो खण्डनीय हो उसका खण्डन कर देना; मेरे कहे का कोई तात्पर्य तुम्हें न समझ में आवे तो मुझसे ही पूछ लेना--'भो उदयन! यह कैसे कह दिया? इसका क्या अर्थ है'?"

(घोटमुख बोला--) "इसी तरह हमारी आपकी बात-चीत होगी कि मुझे जो स्वीकार्य होगा उसे स्वीकार कर लूंगा, जो मुझे मन्तव्य नहीं होगा इसे नहीं मानूंगा

चत्तारो पुग्गला

२. "चत्तारोमे, ब्राह्मण, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? इध, ब्राह्मण, एकच्चो पुग्गलो अत्तन्तपो होति अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो। इध पन, ब्राह्मण, एकच्चो पुग्गलो परन्तपो होति परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो। इध पन, ब्राह्मण, एकच्चो पुग्गलो अत्तन्तपो च होति अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो परन्तपो च परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो। इध पन, ब्राह्मण, एकच्चो पुग्गलो नेवत्तन्तपो होति नात्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो, न परन्तपो न परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो। सो अनत्तन्तपो अपरन्तपो दिट्ठेव धम्मे निच्छातो निब्बुतो सीतीभूतो सुखप्पटिसंवेदी ब्रह्मभूतेन अत्तना विहरति। इमेसं, ब्राह्मण, चतुन्नं पुग्गलानं कतमो ते पुग्गलो चित्तं आराधेती" ति?

"य्वायं, भो उदेन, पुग्गलो अत्तन्तपो अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो अयं मे पुग्गलो चित्तं नाराधेति; यो पायं, भो उदेन, पुग्गलो परन्तपो परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो अयं पि मे पुग्गलो चित्तं नाराधेति; यो पायं, भो उदेन, पुग्गलो अत्तन्तपो च अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो [B. 366]

(उसका प्रतिवाद करूँगा)। भो उदयन! और यदि आपके किसी कथन का तात्पर्य मुझे समझ में न आयगा तो उसे यहीं आपसे पूछ लूँगा कि यह आप क्या और कैसे कह रहे है--इसका स्पष्टीकरण कीजिये।"

चार प्रकार के पुद्गल

२. "ब्राह्मण! इस लोक में चार प्रकार के पुद्गल देखे जाते हैं। कौन से चार? (क) ब्राह्मण! यहाँ कोई पुद्गल आत्मन्तप (अपने को सन्ताप देने वाले) कार्यों में लगा रहता है। (ख) कोई परन्तप (दूसरों को सन्ताप देने वाले) कार्यों में लगा रहता है। (ग) कोई आत्मन्तप एवं परन्तप—दोनों ही प्रकार के कार्यों में लगा रहता है। (घ) और कोई आत्मन्तप एवं परन्तप—दोनों ही प्रकार के कार्यों से दूर रहता है। ऐसा यह चतुर्थ प्रकार का पुद्गल सर्वत्र सुखानुभवी, शान्त, शीतलस्वभाव एवं निर्वाण तक पहुँचा हुआ, ब्रह्मभूत (विशुद्ध) आत्मा से साधनारत रहता है। ब्राह्मण! इन चार प्रकार के पुद्गलों में कौन सा पुद्गल तुम्हारे चित्त को आह्लादित करता है?"

"भो उदयन! इनमें जो पहला 'आत्मन्तप' पुद्गल है वह मुझे अच्छा नहीं लगता। न दूसरा 'परन्तप' पुद्गल ही अच्छा लगता है और जो तीसरा 'आत्मन्तप

परन्तपो च परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो अयं पि मे पुग्गलो चित्तं नाराधेति; यो च खो अयं, भो उदेन, पुग्गलो नेवत्तन्तपो नात्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो [N. 416] न परन्तपो न परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो सो अनत्तन्तपो अपरन्तपो दिट्ठेव धम्मे निच्छातो निब्बुतो सीतीभूतो सुखप्पटिसंवेदी ब्रह्मभूतेन अत्तना विहरति अयमेव मे पुग्गलो चित्तं आराधेती" ति।

"कस्मा पन ते, ब्राह्मण, इमे तयो पुग्गला चित्तं नाराधेन्ती" ति?

"य्वायं, भो उदेन, पुग्गलो अत्तन्तपो अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो सो अत्तानं सुखकामं दुक्खपटिकूलं आतापेति परितापेति; इमिना मे अयं [R. 160] पुग्गलो चित्तं नाराधेति। यो पायं, भो उदेन, पुग्गलो परन्तपो परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो सो परं सुखकामं दुक्खप्पटिकूलं आतापेति परितापेति; इमिना मे अयं पुग्गलो चित्तं नाराधेति। यो पायं, भो उदेन, पुग्गलो अत्तन्तपो च अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो परन्तपो च परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो सो अत्तानं च परं च सुखकामं दुक्खपटिकूलं आतापेति परितापेति; इमिना मे अयं पुग्गलो चित्तं नाराधेति। यो च खो अयं, भो उदेन, पुग्गलो नेवत्तन्तपो नात्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो न परन्तपो न परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो, सो अनत्तन्तपो अपरन्तपो दिट्ठेव धम्मे निच्छातो निब्बुतो सीतीभूतो सुखप्पटिसंवेदी ब्रह्मभूतेन अत्तना विहरति, सो अत्तानं च परं च सुखकामं दुक्खपटिकूलं नेव आतापेति न परितापेति; इमिना मे अयं पुग्गलो चित्तं आराधेती" ति।

द्वे परिसा

३. "द्वेमा, ब्राह्मण, परिसा। कतमा द्वे? इध, ब्राह्मण, एकच्चा परिसा

परन्तप' पुद्गल है वह भी अच्छा नहीं लगता। हाँ, भो उदयन! यहाँ जो चतुर्थ प्रकार का 'न आत्मन्तप न परन्तप' पुद्गल है वही मुझे अच्छा लगता है, जो इसी लोक में आत्मसुख-सुखी, शान्त, शीतल स्वभाव एवं निर्वाण तक पहुँचा हुआ, ब्रह्मभूत आत्मा से साधनारत रहता है।'

"ब्राह्मण! तुम्हें ये तीनों (पूर्वोक्त) पुद्गल क्यों नहीं अच्छे लगते?"

"भो उदयन! क्योंकि जो इनमें प्रथम प्रकार का पुद्गल है वह अपने लिये... पूर्ववत्...[1] साधनारत रहता है। इसलिये यह चतुर्थ पुद्गल ही मेरे चित्त को अच्छा लगता है।

दो प्रकार के परिषद्

३. ब्राह्मण! दो प्रकार की परिषद् (समूह) होती हैं। ब्राह्मण! यहाँ एक

---

१. द्र०—पीछे पृ० ६४३-६४४ (कन्दरकसुत्त)।

सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु पुत्तभरियं परियेसति, दासिदासं परियेसति, खेत्तवत्थुं परियेसति, जातरूपरजतं परियेसति। इध पन, ब्राह्मण, एकच्चा परिसा असारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु पुत्तभरियं पहाय, दासिदासं पहाय, खेत-वत्थुं पहाय, जातरूपरजतं पहाय, अगारस्मा अनगारियं पब्बजिता। स्वायं, ब्राह्मण, पुग्गलो नेवत्तन्तपो नात्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो न परन्तपो न पर-परितापनानुयोगमनुयुत्तो। सो अनत्तन्तपो अपरन्तपो [N. 417, B. 367] दिट्ठेव धम्मे निच्छातो निब्बुतो सीतीभूतो सुखप्पटिसंवेदी ब्रह्मभूतेन अत्तना विहरति।

"इध कतमं त्वं, ब्राह्मण, पुग्गलं कतमाय परिसाय बहुलं समनुपस्ससि—या चायं परिसा सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु पुत्तभरियं परियेसति दासिदासं परियेसति खेत्तवत्थुं परियेसति जातरूपरजतं परियेसति, या चायं परिसा असारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु पुत्तभरियं पहाय दासिदासं पहाय खेत्तवत्थुं पहाय जातरूपरजतं पहाय अगारस्मा अनगारियं पब्बजिता" ति?

"य्वायं, भो उदेन, पुग्गलो नेवत्तन्तपो नात्तपरितापनानु- [R. 161] योगमनुयुत्तो न परन्तपो न परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो, सो अनत्तन्तपो अपरन्तपो दिट्ठेव धम्मे निच्छातो निब्बुतो सीतीभूतो सुखप्पटिसंवेदी ब्रह्मभूतेन अत्तना विहरति; इमाहं पुग्गलं यायं परिसा असारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु पुत्तभरियं पहाय दासिदासं पहाय खेत्तवत्थुं पहाय जातरूपरजतं पहाय अगारस्मा अनगारियं पब्बजिता इमिस्स परिसायं बहुलं समनुपस्सामी" ति।

परिषद् (समूह) मणि-कुण्डल में लुब्ध हो अपने बाल बच्चों को पालती-पोसती रहती है, दासी या दासों का संग्रह करती रहती है, खेत (कृषि) के कार्यों में लगी रहती है, सोना-चाँदी इकट्ठा करती रहती है। और दूसरी परिषद् पुत्र-भार्या का, दास-दासी का, खेत-क्यार का, सोना-चाँदी का व्यामोह छोड़ घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाती है।

ब्राह्मण! अभी पीछे जिस 'न आत्मन्तप न परन्तप' पुद्गल का वर्णन किया गया है वह इन दोनों पूर्वोक्त परिषदों में से किस में अधिकता से मिलता है—यह जो पहली···या यह जो दूसरी पुत्र-भार्या को···छोड़ प्रव्रजित हुई है उसमें?

"भो पुद्गल! यह चतुर्थ प्रकार का 'न आतमतप न परन्तप' पुद्गल उस दूसरी प्रकार की परिषद्, जो पुत्र-भार्या···छोड़, प्रव्रजित हुई है, में ही अधिकता से मिलता है।"

"इदानेव खो पन ते, ब्राह्मण, भासितं —'मयं एवं आजानाम--अम्भो समण, नत्थि धम्मिको परिब्बाजो, एवं मे एत्थ होति। तं च खो भवन्तरूपानं वा अदस्सना, यो वा पनेत्थ धम्मो' " ति ?

"अद्धा मेसा, भो उदेन, सानुग्गहा वाचा भासिता। 'अत्थि धम्मिको परिब्बाजो'—एवं मे एत्थ होति। एवं च पन मं भवं उदेनो धारेतु। ये च मे भोता उदेनेन चत्तारो पुग्गला सङ्खित्तेन वुत्ता वित्थारेन अविभत्ता, साधु मे भवं, उदेनो इमे चत्तारो पुग्गले वित्थारेन विभजतु अनुकम्पं उपादाया" ति।

"तेन हि, ब्राह्मण, सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी" ति।

"एवं, भो" ति खो घोटमुखो ब्राह्मणो आयस्मतो उदेनस्स पच्चस्सोसि। आयस्मा उदेनो एतदवोच--

(१) अत्तन्तपो अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो

[N. 418] ४. "कतमो च, ब्राह्मण, पुग्गलो अत्तन्तपो अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो ? इध, ब्राह्मण, एकच्चो पुग्गलो अचेलको होति मुत्ताचारो हत्थापलेखनो नएहिभद्दन्तिको नतिट्ठभद्दन्तिको नाभिहटं न उद्दिस्सकतं न निमन्तनं सादियति। सो न कुम्भिमुखा पटिग्गण्हाति, न कळोपिमुखा

"तो ब्राह्मण ! अभी तो पहले तुम यह कह रहे थे--'भो श्रमण ! मुझे ऐसा लगता है कि अब धार्मिक प्रव्रज्या नहीं रह गयी'''हम अपने विचार बना सकते हैं ?"

"हाँ, भो उदयन ! मैंने पहले (यह) सदोष बात ही कही। अब (आप की बातें सुनने के बाद) ऐसा मुझे लगता है। आप मुझे ऐसा ही समझें। परन्तु आप उदयन ने जिन चार पुद्गलों का संक्षेप से वर्णन किया, उनको विस्तार से नहीं बताया। अच्छा हो, आप मुझ पर कृपा करते हुए, उन चारों का कुछ विस्तार से व्याख्यान करें !"

"तो, ब्राह्मण ! सुनो, ध्यान देकर अपने मन में बैठा लो, मैं तुम्हें बताता हूँ।"

"ठीक है भन्ते !" ऐसा कहकर घोटमुख ब्राह्मण ने आयुष्मान् उदयन को उत्तर दिया। आयुष्मान् उदयन यों बोले--

(१) आत्मन्तप आत्मपरितापनानुयोगानुयुक्त

४. ब्राह्मण ! कौन सा पुद्गल आत्मन्तप होता हुआ अपने को सन्ताप देने वाले कार्यों में लगा रहता है ? यहाँ ब्राह्मण ! कोई पुद्गल अचेलक (=नग्न), मुक्ताचारी (आचार-विचार की परवाह न करने वाला) '''पूर्ववत्[1]'''। वह केवल शाका-

---

१. द्र०—पृ० १६४-१६५ (महासीहनादसुत्त)

पटिग्गण्हाति, न एळकमन्तरं, न दण्डमन्तरं, न मुसलमन्तरं, न द्विन्नं भुञ्जमानानं, न गब्भिनिया, न पायमानाय, न [B. 368, R. 162] पुरिसन्तरगताय, न सङ्कित्तीसु, न यत्थ सा उपट्ठितो होति, न यत्थ मक्खिका सण्डसण्डचारिनी, न मच्छं न मंसं, न सुरं न मेरयं न थुसोदकं पिवति। सो एकागारिको वा होति एकालोपिको, द्वागारिको वा होति द्वालोपिको …पे०…सत्तागारिको वा होति सत्तालोपिको; एकिस्सा पि दत्तिया यापेति, द्वीहि पि दत्तीहि यापेति…पे०…सत्तहि पि दत्तीहि यापेति; एकाहिकं पि आहारं आहारेति, द्वीहिकं पि आहारं आहारेति…पे०…सत्ताहिकं पि आहारं आहारेति—इति एवरूपं अद्धमासिकं परियायभत्तभोजनानुयुत्तो विहरति। सो साकभक्खो वा होति, सामाकभक्खो वा होति, नीवारभक्खो वा होति, दद्दुलभक्खो वा होति, हटभक्खो वा होति, कणभक्खो वा होति, आचामभक्खो वा होति, पिञ्ञाकभक्खो वा होति, तिणभक्खो वा होति, गोमयभक्खो वा होति, वनमूलफलाहारो यापेति पवत्तफलभोजी। सो साणानि पि धारेति, मसाणानि पि धारेति, छवदुस्सानि पि धारेति, पंसुकूलानि पि धारेति, तिरीटानि पि धारेति, अजिनं पि धारेति, अजिनक्खिपं पि धारेति, कुसचीरं पि धारेति, वाकचीरं पि धारेति, फलकचीरं पि धारेति, केसकम्बलं पि धारेति, बाळकम्बलं पि धारेति उलूकपक्खं पि धारेति; केसमस्सुलोचको पि होति केसमस्सुलोचनानुयोगमनुयुत्तो, उब्भट्ठको पि होति आसनपटिक्खित्तो, उक्कुटिको पि होति उक्कुटिकप्पधानमनुयुत्तो, कण्टकापस्सयिको पि होति कण्टकापस्सये सेय्यं कप्पेति; सायततियकं पि उदकोरोहनानुयोगमनुयुत्तो विहरति—इति एवरूपं अनेकविहितं कायस्स आतापनपरितापनानुयोगमनुयुत्तो विहरति। अयं वुच्चति, ब्राह्मण, [N. 419] पुग्गलो अत्तन्तपो अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो।

(२) परन्तपो परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो

५. "कतमो च, ब्राह्मण, पुग्गलो परन्तपो परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो? इध, ब्राह्मण, एकच्चो पुग्गलो ओरब्भिको होति सूकरिको

हारी, नीवारभोजा…पूर्ववत्[1]…। यों शरीर को कष्टदायी आताप-सन्ताप के कार्यों में व्यापृत हो साधना करता है। ब्राह्मण! यह पुद्गल! 'आत्मन्तप' 'आत्मपरितापनानुयोगानुयुक्त' कहलाता है।

(२) परन्तप परपरितापनानुयोगानुयुक्त

५. और ब्राह्मण! कोई पुद्गल दूसरों को कष्ट देने वाला, दूसरों को कष्ट देने

---

१. द्र० पीछे पृ० १६४-१६५ (महासीहनादसुत्त)।

साकुणिको मागविको लुद्दो मच्छघातको चोरो चोरघातको गोघातको बन्धनागरिको—ये वा पनञ्ञे पि केचि कुरूरकम्मन्ता। अयं वुच्चति, ब्राह्मण, पुग्गलो परन्तपो परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो।

(३) अत्तन्तपो च अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो, परन्तपो च परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो

[B. 369] ६. "कतमो च ब्राह्मण, पुग्गलो अत्तन्तपो च अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो, परन्तपो च परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो ? इध ब्राह्मण, एकच्चो पुग्गलो राजा वा होति खत्तियो मुद्धावसित्तो, ब्राह्मणो वा महासालो। सो पुरत्थिमेन नगरस्स नवं सन्थागारं कारापेत्वा केसमस्सुं ओहारेत्वा खराजिनं निवासेत्वा सप्पितेलेन कायं अब्भञ्जित्वा मिगविसाणेन पिट्ठिं कण्डुवमानो नवं सन्थागारं पविसति सद्धिं महेसिया ब्राह्मणेन च पुरोहितेन। सो तत्थ अनन्तरहिताय भूमिया हरितुपलित्ताय सेय्यं कप्पेति। एकिस्साय गाविया सरूपवच्छाय यं एकस्मिं थने खीरं होति तेन राजा यापेति, यं दुतियस्मिं थने खीरं होति तेन महेसी यापेति, यं ततियस्मिं थने खीरं होति तेन ब्राह्मणो पुरोहितो यापेति, यं चतुत्थस्मिं थने खीरं होति तेन अग्गिं जुहति, अवसेसेन वच्छको यापेति। सो एवमाह—'एत्तका उसभा हञ्ञन्तु यञ्ञत्थाय, एत्तका वच्छतरा हञ्ञन्तु यञ्ञत्थाय, एत्तका वच्छतरियो हञ्ञन्तु यञ्ञत्थाय, एत्तका अजा हञ्ञन्तु यञ्ञत्थाय, एत्तका उरब्भा हञ्ञन्तु यञ्ञत्थाय, एत्तका अस्सा हञ्ञन्तु यञ्ञत्थाय, एत्तका रुक्खा छिज्जन्तु यूपत्थाय, एत्तका दब्भा लूयन्तु बरिहिसत्थाया' ति। ये पिस्स ते होन्ति 'दासा' ति वा 'पेस्सा' ति वा 'कम्मकरा' ति वा ते पि दण्डतज्जिता भयतज्जिता अस्सुमुखा रुदमाना परिकम्मानि करोन्ति। अयं

में लगा हुआ रहता है। यहाँ, ब्राह्मण ! कोई पुद्गल अपने कर्तव्य के रूप में क्रूर कर्म, जैसे—भेड़, सूअर, पक्षी, मृग आदि की हत्या, या व्याध, मछुआरे, चौर-लुटेरे आदि के क्रूर कर्म स्वीकार कर लेता है और इन्हीं में अपना मन लगाये रहता है, ब्राह्मण ! यह पुद्गल 'परन्तप' कहलाता है।

(३) आत्मन्तप परन्तप

६. और ब्राह्मण ! कौन-सा पुद्गल स्व और पर—दोनों को कष्ट देने वाला कहलाता है ? ब्राह्मण ! कोई पुद्गल राजा…पूर्ववत्[१]…रोते-कलपते यह कार्य करते हैं। ब्राह्मण ! ऐसा पुद्गल 'आत्मन्तप परन्तप कहलाता है'…।

---

१. द्र० पीछे पृ० ६४७-६४८ (कन्दरकसुत्त)।

[N. 420] वुच्चति, ब्राह्मण, पुग्गलो अत्तन्तपो च अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो, परन्तपो च परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो।

(४) नेवत्तन्तपो नात्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो, न परन्तपो न परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो

७. "कतमो च, ब्राह्मण, पुग्गलो नेवत्तन्तपो नात्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो, न परन्तपो न परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो; सो अनत्तन्तपो अपरन्तपो दिट्ठेव धम्मे निच्छातो निब्बुता सीतीभूतो सुखप्पटिसंवेदी ब्रह्मभूतेन अत्तना विहरति? इध, ब्राह्मण, तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा। सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति। सो [B. 370] धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति। तं धम्मं सुणाति गहपति वा गहपतिपुत्तो वा अञ्ञतरस्मिं वा कुले पच्चाजातो। सो तं धम्मं सुत्वा तथागते सद्धं पटिलभति। सो तेन सद्धापटिलाभेन समन्नागतो इति पटिसञ्चिक्खति—'सम्बाधो घरावासो, रजोपथो अब्भोकासो पब्बज्जा। नयिदं सुकरं अगारं अज्झावसता एकन्तपरिपुण्णं एकन्तपरिसुद्धं सङ्खलिखितं ब्रह्मचरियं चरितुं। यन्नूनाहं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्यं' ति। सो अपरेन समयेन अप्पं वा भोगक्खन्धं पहाय महन्तं वा भोगक्खन्धं पहाय, अप्पं वा ञातिपरिवट्टं पहाय महन्तं वा ञातिपरिवट्टं पहाय, केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजति।

सो एवं पब्बजितो समानो भिक्खूनं सिक्खासाजीवसमापन्नो पाणातिपातं पहाय पाणातिपाता पटिविरतो होति, निहितदण्डो निहितसत्थो लज्जी दयापन्नो सब्बपाणभूतहितानुकम्पी विहरति। अदिन्नादानं पहाय

---

(४) न आत्मन्तप आत्मपरितापनानुयोगानुयुक्त एवं न परन्तप परपरितापनानुयोगानुयुक्त

७. "और ब्राह्मण! कौन सा पुद्गल न स्व और न पर को कष्ट देने वाला कहलाता है...? ब्राह्मण! यहाँ (लोक में) तथागत उत्पन्न होते हैं...पूर्ववत्[1]... काषाय वस्त्र पहन, घर से बेघर हो प्रव्रजित होता है।"

"इस तरह प्रव्रजित हुआ वह भिक्षुओं की शील-शिक्षा एवं जीवनचर्या का

---

१. द्र०—पीछे पृ० ३५४-३५५-३५६ (२७ चूळहत्थिपदोपमसुत्त)।

अदिन्नादाना पटिविरतो होति अदिन्नादायी दिन्नपाटिकङ्खी। अथेनेन सुचि-भूतेन अत्तना विहरति। अब्रह्मचरियं पहाय ब्रह्मचारी होति आराचारी विरतो मेथुना गामधम्मा। मुसावादं पहाय मुसावादा पटिविरतो होति सच्चवादी सच्चसन्धो थेतो पच्चयिको अविसंवादको लोकस्स। पिसुणं वाचं पहाय पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति; इतो सुत्वा न अमुत्र अक्खाता [N. 421] इमेसं भेदाय, अमुत्र वा सुत्वा न इमेसं अक्खाता अमूसं भेदाय। इति भिन्नानं वा सन्धाता सहितानं वा अनुप्पदाता, समग्गारामो समग्गरतो समग्गनन्दी समग्गकरणिं वाचं भासिता होति। फरुसं वाचं पहाय फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति। या सा वाचा नेला कण्णसुखा पेमनीया हदयङ्गमा पोरी बहुजनकन्ता बहुजनमनापा तथारूपिं वाचं [B. 371] भासिता होति। सम्फप्पलापं पहाय सम्फप्पलापा पटिविरतो होति, कालवादी भूतवादी अत्थवादी धम्मवादी विनयवादी, निधानवतिं वाचं भासिता कालेन सापदेसं परियन्तवतिं अत्थसंहितं। सो बीजगाम-भूतगामसमारम्भा पटिविरतो होति। एकभत्तिको होति रत्तूपरतो विरतो विकालभोजना। नच्चगीतवादितविसूकदस्सना पटिविरतो होति। माला-गन्धविलेपनधारणमण्डनविभूसनट्ठाना पटिविरतो होति। उच्चासयनमहा-सयना पटिविरतो होति। जातरूपरजतपटिग्गहणा पटिविरतो होति। आमकधञ्ञपटिग्गहणा पटिविरतो होति। आमकमंसपटिग्गहणा पटिविरतो होति। इत्थिकुमारिकपटिग्गहणा पटिविरतो होति। दासिदासपटिग्गहणा पटिविरतो होति। अजेळकपटिग्गहणा पटिविरतो होति। कुक्कुटसूकर-पटिग्गहणा पटिविरतो होति। हत्थिगवस्सवळवपटिग्गहणा पटिविरतो होति। खेत्तवत्थुपटिग्गहणा पटिविरतो होति। दूतेय्यपहिणगमनानुयोगा पटिविरतो होति। कयविक्कया पटिविरतो होति। तुलाकूटकंसकूटमानकूटा पटिविरतो होति। उक्कोटनवञ्चननिकतिसाचियोगा पटिविरतो होति। छेदनवधबन्धनविपरामोसआलोपसहसाकारा पटिविरतो होति।

"सो सन्तुट्ठो होति कायपरिहारिकेन चीवरेन, कुच्छिपरिहारिकेन पिण्डपातेन। सो येन येनेव पक्कमति समादायेव पक्कमति। सेय्यथापि नाम पक्खी सकुणो येन येनेव डेति सपत्तभारो व डेति; एवमेव भिक्खु सन्तुट्ठो

साहाय्य पाकर···पूर्ववत्[1]···लूटपाट कर ग्राम-नाश आदि दुष्कर्मों से दूर रहता है।

"अपितु वह सन्तुष्ट रहता है शरीर ढकनेमात्र के वस्त्र से और पेट भरने मात्र के भोजन से···पूर्ववत्[1]···आध्यात्मिक शान्ति का आनन्द लेता है।

१. द्र०—पीछे पृ० ३५७(चूळहत्थिपदोपमसुत्त)।

होति कायपरिहारिकेन चीवरेन कुच्छिपरिहारिकेन पिण्डपातेन। सो येन येनेव पक्कमति समादायेव पक्कमति। सो इमिना अरियेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो अज्झत्तं अनवज्जसुखं पटिसंवेदेति।

८. "सो चक्खुना रूपं दिस्वा न निमित्तग्गाही होति [N. 422] नानुब्यञ्जनग्गाही। यत्वाधिकरणमेनं चक्खुन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं तस्स संवराय पटिपज्जति, रक्खति चक्खुन्द्रियं, चक्खुन्द्रिये संवरं आपज्जति। सोतेन सद्दं सुत्वा…पे०…घानेन गन्धं घायित्वा…जिव्हाय रसं सायित्वा…कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा…मनसा धम्मं विञ्ञाय न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही। यत्वाधिकरणमेनं मनिन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं [B. 372] अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं तस्स संवराय पटिपज्जति, रक्खति मनिन्द्रियं, मनिन्द्रिये संवरं आपज्जति। सो इमिना अरियेन इन्द्रियसंवरेन समन्नागतो अज्झत्तं अब्यासेकसुखं पटिसंवेदेति।

"सो अभिक्कन्ते पटिक्कन्ते सम्पजानकारी होति, आलोकिते विलोकिते सम्पजानकारी होति, समिञ्जिते पसारिते सम्पजानकारी होति, सङ्घाटिपत्तचीवरधारणे सम्पजानकारी होति, असिते पीते खायिते सायिते सम्पजानकारी होति, उच्चारपस्सावकम्मे सम्पजानकारी होति, गते ठिते निसिन्ने सुत्ते जागरिते भासिते तुण्हीभावे सम्पजानकारी होति।

"सो इमिना च अरियेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो, इमाय च अरियाय सन्तुट्ठिया समन्नागतो, इमिना च अरियेन इन्द्रियसंवरेन समन्नागतो, इमिना च अरियेन सतिसम्पजञ्ञेन समन्नागतो विवित्तं सेनासनं भजति अरञ्ञं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं। सो पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो निसीदति पल्लङ्कं आभुजित्वा, उजुं कायं पणिधाय, परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। सो अभिज्झं लोके पहाय विगताभिज्झेन चेतसा विहरति, अभिज्झाय चित्तं परिसोधेति; ब्यापादपदोसं पहाय अब्यापन्नचित्तो विहरति सब्बपाणभूतहितानुकम्पी, ब्यापादपदोसा

---

८. "वह चक्षुरिन्द्रिय से रूपों को देखकर भी उसके विशेष…पूर्ववत्[1]…निर्मल सुख का अनुभव करता है।

"वह गमन-आगमन की क्रियाओं में, देखने-सुनने की बातों में…पूर्ववत्[1]…चुप रहना आदि क्रियाओं को समझ-बूझकर करता है।

---

१. द्र०—पीछे पृ० ३५७-३५८।

चित्तं परिसोधेति; थीनमिद्धं पहाय विगतथीनमिद्धो विहरति आलोकसञ्ञी सतो सम्पजानो, थीनमीद्धा चित्तं परिसोधेति; उद्धच्चकुक्कुच्चं पहाय अनुद्धतो विहरति अज्झत्तं वूपसन्तचित्तो, उद्धच्चकुक्कुच्चा चित्तं परिसोधेति; [N. 423] विचिकिच्छं पहाय तिण्णविचिकिच्छो विहरति अकथङ्कथी कुसलेसु धम्मेसु, विचिकिच्छाय चित्तं परिसोधेति।

"सो इमे पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्किलेसे पञ्ञाय दुब्बलीकरणे विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति सतो च सम्पजानो, सुखं च कायेन पटिसंवेदेति, [B. 373] यं तं अरिया आचिक्खन्ति—'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना, पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा, अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति।

९. "सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते पुब्बेनिवासानुस्सतिञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो तिस्सो पि जातियो चतस्सो पि जातियो पञ्च पि जातियो दस पि जातियो वीसं पि जातियो तिंसं पि जातियो चत्तालीसं पि जातियो पञ्ञासं पि जातियो जातिसतं पि जातिसहस्सं पि जातिसतसहस्सं पि, अनेके पि संवट्टकप्पे अनेके पि विवट्टकप्पे अनेके पि संवट्टविवट्टकप्पे—'अमुत्रासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो

"वह इस आर्यजनोचित सदाचारपद्धति एवं इन्द्रियसंयम से बुद्धिपूर्वक कार्य करने के··· पूर्ववत्[1]···अभ्यास करता हुआ स्वचित्त को संशयरहित कर लेता है।

"वह इन पाँच नीवरणों को स्वचित्त से हटाकर चित्त के अवशिष्ट उपक्लेशों को जानकर ··· पूर्ववत् ··· प्रथमध्यान···द्वितीयध्यान···तृतीयध्यान···चतुर्थध्यान तक पहुँचता है।

"यों वह स्वचित्त के पर्यवदात, निर्मल, निर्विकार, मृदु, हल्का···एक जन्म··· पूर्ववत्[1]···पूर्व निवास (जन्म) का अनुस्मरण करता है।

---

१. द्र०—पीछे पृ० ३५९-३६१ (चूलहत्थि०)।

एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो; सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं; तत्रापासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो; सो ततो चुतो इधूपपन्नो' ति। इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति।

"सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते सत्तानं चुतूपपातञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्त- [N. 424] मानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति—'इमे वत भोन्तो सत्ता कायदुच्चरितेन समन्नागता…पे०…अरियानं उपवादका मिच्छादिट्ठिका मिच्छादिट्ठिकम्मसमादाना, ते कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्ना; इमे वा पन भोन्तो सत्ता कायसुचरितेन समन्नागता…पे०… अरियानं अनुपवादका सम्मादिट्ठिका सम्मादिट्ठिकम्मसमादाना, ते कायस्य भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्ना' ति। इति दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति।

"सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे [B. 374] विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते आसवानं खयञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति; 'इमे आसवा' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं आसवसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, अयं आसवनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं आसवनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। तस्स एवं जानतो एवं पस्सतो कामासवा पि चित्तं विमुच्चति, भवासवा पि चित्तं विमुच्चति, अविज्जासवा पि चित्तं विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति।

"यों वह स्वचित्त के परिशुद्ध पर्यवदात हो जाने पर…पूर्ववत्[1]…स्वप्रारब्धकर्मवशीभूत अन्य प्राणियों के विषय में जानकारी पा लेता है।

"यों वह स्वचित्त के परिशुद्ध पर्यवदात हो जाने पर रागादि चित्तमलों के क्षय-

---

१. द्र०—पीछे पृ० ४७-४८ एवं ३६१-३६२।

"अयं वुच्चति, ब्राह्मण, पुग्गलो नेवत्तन्तपो नात्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो, न परन्तपो न परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो। सो अनत्तन्तपो अपरन्तपो दिट्ठेव धम्मे निच्छातो निब्बुतो सीतीभूतो सुखप्पटिसंवेदी ब्रह्मभूतेन अत्तना विहरती" ति।

२. घोटमुखस्स ब्राह्मणस्स सरणगमनं

१०. एवं वुत्ते, घोटमुखो ब्राह्मणो आयस्मन्तं उदेनं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भो उदेन! अभिक्कन्तं, भो उदेन, सेय्यथापि भो उदेन, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं [N. 425] आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति—एवमेवं भोता उदेनेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भवन्तं उदेनं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं उदेनो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति।

"मा खो मं त्वं, ब्राह्मण, सरणं अगमासि। तमेव भगवन्तं सरणं गच्छाहि यमहं सरणं गतो" ति।

"कहं पन, भो उदेन, एतरहि सो भवं गोतमो विहरति अरहं सम्मासम्बुद्धो" ति?

"परिनिब्बुतो खो, ब्राह्मण, एतरहि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो" ति।

ज्ञानहेतु (स्वचित्त को) झुकाता है। तब वह 'यह दुःख है', 'यह दुःखसमुदय है'··· पूर्ववत्···इन बातों को यथातथ रूप से जान लेता है···।

"ब्राह्मण! ऐसा यह पुद्गल 'न आत्मन्तप···न परन्तप···' कहलाता है। यह पुद्गल इसी जन्म में शान्त, सुखी, शीतल स्वभाव, सुखानुभवी एवं ब्रह्मभूत आत्मा से साधनारत रहता है।"

२. घोटमुख ब्राह्मण का शरणगमन

१०. ऐसा कहे जाने पर घोटमुख ब्राह्मण आयुष्मान् उदयन को यों बोला—"आश्चर्य है, भो उदयन! अद्भुत है, भो उदयन! जैसे कोई औंधे को···पूर्ववत्··· आज से आप मुझे जीवन भर अपना शरणागत उपासक समझें।"

"ब्राह्मण! मेरी शरण में आने से तुम्हारा क्या भला होगा! अच्छा हो कि तुम उस भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध की शरण में जाओ, जिनकी शरण में मैं गया हूँ।"

"भो उदयन वे भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध कहाँ विराजमान हैं!"

"ब्राह्मण! अब तो वे भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध परिनिर्वृत हो चुके हैं।"

"सचे पि मयं, भो उदेन, सुणेय्याम तं भवन्तं गोतमं दससु योजनेसु, दस पि मयं योजनानि गच्छेय्याम तं भवन्तं गोतमं दस्सनाय [B. 375] अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं। सचे पि मयं, भो उदेन, सुणेय्याम तं भवन्तं गोतमं वीसतिया योजनेसु···तिंसाय योजनेसु···चत्तारीसाय योजनेसु···पञ्ञासाय योजनेसु, पञ्ञासं पि मयं योजनानि गच्छेय्याम तं भवन्तं गोतमं दस्सनाय अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं। योजनसते चे पि मयं, भो उदेन, सुणेय्याम तं भवन्तं गोतमं, योजनसतं पि मयं गच्छेय्याम तं भवन्तं दस्सनाय [R. 163] अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं।

"यतो च खो, भो उदेन, परिनिब्बुतो सो भवं गोतमो, परिनिब्बुतं पि मयं तं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छाम धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं उदेनो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं। अत्थि च मे, भो उदेन, अङ्गराजा देवसिकं निच्चभिक्खं ददाति, ततो अहं भोतो उदेनस्स एकं निच्चभिक्खं ददामी" ति।

"किं पन ते, ब्राह्मण, अङ्गराजा देवसिकं निच्चभिक्खं ददाती" ति?

"पञ्च, भो उदेन, कहापणसतानी" ति। [N. 426]

"न खो नो, ब्राह्मण, कप्पति जातरूपरजतं पटिग्गहेतुं" ति।

"सचे तं भोतो उदेनस्स न कप्पति, विहारं भोतो उदेनस्स कारापेस्सामी" ति।

"भो उदयन! पहले कभी हम दस योजन दूर से भी सुनते थे कि वे पूज्य गौतम वहाँ विराजमान हैं तो हम दस योजन दूर उनके दर्शन करने चले जाते थे।··· बीस योजन···तीस योजन···चालीस योजन···पचास योजन···सौ योजन से भी सुनते थे कि वे पूज्य गौतम वहाँ विराजमान हैं तो हम सौ योजन तक भी उनके दर्शन करने चले जाते थे।"

"भो उदयन! अब यदि वे पूज्य गौतम परिनिर्वृत हो चुके हैं तो क्या हुआ! हम उन पूज्य गौतम की शरण में जाते हैं, धर्म की···सङ्घ की शरण में जाते हैं। आप उदयन आज से मुझे जीवनपर्यन्त अपना शरणागत उपासक समझते हुए, मुझसे व्यवहार करें। भो उदयन! मुझे अङ्गराज दैनिक नित्यभिक्षा देता है उसमें एक नित्यभिक्षा मैं आपको देता हूँ।"

"ब्राह्मण! अङ्गराज तुम्हें क्या नित्यभिक्षा देता है?"

"भो उदयन! पाँच सौ कार्षापण!"

"ब्राह्मण! सोना-चाँदी का ग्रहण तो हमारे धर्म में विहित (कल्प्य = स्वीकार्य) नहीं है।"

"भो उदयन! यदि आपके धर्म में सोना-चांदी ग्रहण करना कल्प्य नहीं है तो मैं आपके लिये एक विहार (साधनास्थल) बनवाऊँगा।"

"सचे खो मे त्व, ब्राह्मण, विहारं कारापेतुकामो, पाटलिपुत्ते सङ्घस्स उपट्ठानसालं कारापेही" ति।

"इमिनापाहं भोतो उदेनस्स भिय्योसोमत्ताय अत्तमनो अभिरद्धो यं मं भवं उदेनो सङ्घे दाने समादपेति। एसाहं, भो उदेन, एतिस्सा च निच्चभिक्खाय अपराय च निच्चभिक्खाय पाटलिपुत्ते सङ्घस्स उपट्ठानसालं कारापेस्सामी" ति।

अथ खो घोटमुखो ब्राह्मणो एतिस्सा च निच्चभिक्खाय अपराय च निच्चभिक्खाय पाटलिपुत्ते सङ्घस्स उपट्ठानसालं कारापेसि। सा एतरहि 'घोटमुखी' ति वुच्चती ति।

●

"ब्राह्मण! यदि तुम मेरे लिये विहार बनवाना चाहते हो तो पाटलिपुत्र (पटना) में सङ्घ के लिये एक उपस्थानशाला (=सभागृह) बनवा दो।"

"आप उदयन के इस कथन से मैं और भी अधिक सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हुआ कि आप उदयन मुझे सङ्घ को दानहेतु सत्प्रेरणा दे रहे हैं। अतः मैं, भो उदयन! उस नित्यभिक्षा और दूसरी नित्यभिक्षा से पाटलिपुत्र में सङ्घ के लिये उपस्थानशाला बनवाऊँगा।"

तब घोटमुख ब्राह्मण ने इस नित्यभिक्षा एवं दूसरी नित्यभिक्षा से पाटलिपुत्र में सङ्घ के लिये एक उपस्थानशाला बनवायी, जो आज भी 'घोटमुखी' कहलाती है॥

घोटमुखसुत्त समाप्त॥

●

४५. चङ्कीसुत्तं

१. चङ्की ब्राह्मणो भगवन्तमुपसङ्कमि

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कोसलेसु [N. 427, R. 164] चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं येन ओपासादं नाम [B. 376] कोसलानं ब्राह्मणगामो तदवसरि। तत्र सुदं भगवा ओपासादे विहरति उत्तरेन ओपासादं देववने सालवने। तेन खो पन समयेन चङ्की ब्राह्मणो ओपासादं अज्झावसति सत्तुस्सदं सतिणकट्ठोदकं सधञ्ञं राजभोग्गं रञ्ञा पसेनदिना कोसलेन दिन्नं राजदायं ब्रह्मदेय्यं। अस्सोसुं खो ओपासादका ब्राह्मणगहपतिका—"समणो खलु, भो, गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो कोसलेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं ओपासादं अनुप्पत्तो, ओपासादे विहरति उत्तरेन ओपासादं देववने सालवने। तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्म-सारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति। सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति। साधु खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं होती" ति।

---

४५. चङ्कीसूत्र

१. चङ्की ब्राह्मण का भगवान् के पास जाना

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) कौसल देश में विशाल भिक्षुसङ्घ के साथ चारिका करते हुए ओपसाद (अवप्रासाद) नामक कौसल-वासी ब्राह्मणों के ग्राम में पहुँचे। उस ओपसाद ग्राम में पहुँचकर भगवान् उसके उत्तर देववन के शालवन में साधनाहेतु विराजे। उस समय एक चङ्की नामक ब्राह्मण उस जनाकीर्ण, तृण-काष्ठ-उदक-धान्यसम्पन्न, राजभोग्य, राजा प्रसेनजित् कौशल द्वारा प्रदत्त, राजा द्वारा दान में दिया गया, ब्राह्मणों को देने लायक ओपसाद ग्राम का स्वामी (अधिपति) बन कर उसमें वास करता था। ओपसाद ग्राम के निवासी ब्राह्मणों ने कभी सुना--"शाक्यपुत्र श्रमण गौतम, जो कि शाक्यकुल से प्रव्रजित हो कौसल देश में विशाल भिक्षुसङ्घ के साथ चारिका करते हुए ओपसाद ग्राम में पधारे हैं, वे इस समय इस ग्राम के उत्तर तरफ देववन के शालवन में ठहरे हुए हैं। उन भगवान् का सर्वत्र ऐसा यशोगान हो रहा है--'वे भगवान्... पूर्ववत्[१]...। ऐसे ज्ञानियों का दर्शन मङ्गलमय होता है।"

---

१. द्र०—पीछे पृ० ५३७।

२. अथ खो ओपासादका ब्राह्मणगहपतिका ओपासादा निक्खमित्वा सङ्घसङ्घी गणीभूता उत्तरेनमुखा गच्छन्ति येन देववनं सालवनं। तेन खो पन समयेन चङ्की ब्राह्मणो उपरिपासादे दिवासेय्यं उपगतो। अद्दसा खो चङ्की ब्राह्मणो ओपासादके ब्राह्मणगहपतिके ओपासादा निक्खमित्वा सङ्घसङ्घी गणीभूते उत्तरेन मुखं येन देववनं सालवनं तेनुपसङ्कमन्ते। दिस्वा [N. 428] खत्तं आमन्तेसि—"किं नु खो, भो खत्ते, ओपासादका ब्राह्मणगहपतिका ओपासादा निक्खमित्वा सङ्घसङ्घी गणीभूता उत्तरेनमुखा गच्छन्ति येन देववनं सालवनं" ति ?

"अत्थि, भो चङ्की, समणो गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो कोसलेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं ओपासादं अनुप्पत्तो, ओपासादे विहरति उत्तरेन ओपासादं देववने सालवने। तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। तमेते भवन्तं गोतमं दस्सनाय [B. 377] गच्छन्ती" ति।

"तेन हि, भो खत्ते, येन ओपासादका ब्राह्मणगहपतिका तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा ओपासादके ब्राह्मणगहपतिके एवं वदेहि—चङ्की, भो, ब्राह्मणो एवमाह—'आगमेन्तु किर भोन्तो, चङ्की पि ब्राह्मणो समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सती' " ति। "एवं, भो" ति खो सो खत्तो चङ्किस्स ब्राह्मणस्स

---

२. तब ओपसादग्रामवासी झुण्ड के झुण्ड बनाकर, इकट्ठे हो, उत्तर की तरफ देववन के शालवन की ओर जाने लगे। उसी समय वह चङ्की ब्राह्मण दिन में आराम करने हेतु अपने प्रासाद के ऊपरी तल्ले पर जा रहा था। उस समय चङ्की ब्राह्मण ने ओपसादनिवासी ब्राह्मणों को, झुण्ड बनाकर इकट्ठे हो, देववन शालवन की तरफ जाते देखा। उन्हें देखकर उसने अपने क्षत्ता (महामात्य) को पूछा—"महामात्य ! आज ये ओपसादग्रामवासी ब्राह्मण झुण्ड बनाकर इकट्ठे हो ग्राम के उत्तर स्थित देववन शालवन की ओर क्यों जा रहे हैं ?"

"भो चङ्कि ! श्रमण गौतम शाक्यपुत्र…शालवन में विराज रहे हैं। उनके विषय में…बुद्ध भगवान् हैं। उन्हीं माननीय गौतम के दर्शनहेतु ये लोग जा रहे हैं।"

"तो, भो महामात्य ! तुम इन औपासादवासी ब्राह्मणों के पास जाओ, और मेरी ओर से उनसे कहो—'चङ्की ब्राह्मण ने यह कहलाया है कि आप लोग कुछ समय

पटिस्सुत्वा येन ओपासादका ब्राह्मणगहपतिका तेनुपसङ्कमि; [R. 165] उपसङ्कमित्वा ओपासादके ब्राह्मणगहपतिके एतदवोच --"चङ्की, भो, ब्राह्मणो एवमाह--'आगमेन्तु किर भोन्तो, चङ्की पि ब्राह्मणो समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सती' " ति ।

३. तेन खो पन समयेन नानावेरज्जकानं ब्राह्मणानं पञ्चमत्तानि ब्राह्मणसतानि ओपासादे पटिवसन्ति केनचिदेव करणीयेन । अस्सोसुं खो ते ब्राह्मणा--"चङ्की किर ब्राह्मणो समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सती" ति । अथ खो ते ब्राह्मणा येन चङ्की ब्राह्मणो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा चङ्किं ब्राह्मणं एतदवोचुं--"सच्चं किर भवं चङ्की समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सती" ति ?

"एवं खो मे, भो, होति--'अहं समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सामी' " ति ।

"मा भवं चङ्की समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमि । न अरहति भवं चङ्की समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं; समणो त्वेव गोतमो अरहति भवन्तं चङ्किं दस्सनाय उपसङ्कमितुं । भवं हि चङ्की उभतो [N. 429] सुजातो मातितो च पितितो च संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा अक्खित्तो अनुपकुट्ठो जातिवादेन । यं पि भवं चङ्की उभतो सुजातो मातितो च पितितो च संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा अक्खित्तो अनुपकुट्ठो

ठहरें, चङ्की ब्राह्मण भी उन पूज्य श्रमण गौतम के दर्शनहेतु आप लोगों के साथ चलेगा' ।"

"ठीक है" कहकर महामात्य ने उन ब्राह्मणों को चङ्की ब्राह्मण का यह सन्देश दिया--"चङ्की ब्राह्मण ने यह कहलाया है कि... आप लोगों के साथ चलेगा ।"

३. उस समय नाना देश-प्रदेशों से पाँच सौ ब्राह्मण किसी कार्यविशेष से आकर उस ओपसाद ग्राम में ठहरे हुए थे । उन्होंने जब सुना कि चङ्की ब्राह्मण भी भगवान् के दर्शनार्थ देवबन के शालवन में जाने वाला है, तब वे ब्राह्मण जहाँ चङ्की ब्राह्मण था वहाँ गये । जाकर चङ्की ब्राह्मण से यों बोले--"क्या यह सत्य है कि आप चङ्की श्रमण गौतम के दर्शनहेतु जायेंगे ?"

"हाँ भो ! मुझे ऐसा हो रहा है कि मैं भी श्रमण गौतम के दर्शनहेतु जाऊँ ।"

(ब्राह्मण बोले--) "चङ्की जी ! आप श्रमण गौतम के दर्शनहेतु जाँयगे ! यह उचित नहीं है कि आप श्रमण गौतम के दर्शनहेतु जाँय; अच्छा तो यह होगा कि श्रमण गौतम आपसे मिलने यहाँ आवे । क्योंकि (१) आप मातृकुल एवं पितृकुल--

जातिवादेन, इमिनापङ्गेन न अरहति भवं चङ्की समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं; समणो त्वेव गोतमो अरहति भवन्तं चङ्किं दस्सनाय उपसङ्कमितुं। भवं हि चङ्की अड्ढो महद्धनो महाभोगो…पे०… । भवं हि चङ्की तिण्णं वेदानं पारगू सनिघण्डुकेटुभानं साक्खरप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं, पदको, वेय्याकरणो, लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो…पे०… । भवं हि चङ्की अभिरूपो दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो ब्रह्म- [B. 378] वण्णी ब्रह्मवच्छसी अखुद्दावकासो दस्सनाय…पे०… । भवं हि [R. 166] चङ्की सीलवा बुद्धसीली बुद्धसीलेन समन्नागतो…पे०… । भवं हि चङ्की कल्याणवाचो कल्याणवाक्करणो पोरिया वाचाय समन्नागतो विस्सट्ठाय अनेलगळाय अत्थस्स विञ्ञापनिया …पे०… । भवं हि चङ्की बहूनं आचरियपाचरियो, तीणि माणवकसतानि मन्ते वाचेति…पे०… । भवं हि चङ्की रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स सक्कतो गरुकतो मानितो पूजितो अपचितो…पे०… । भवं हि चङ्की ब्राह्मणस्स पोक्खरसातिस्स सक्कतो गरुकतो मानितो पूजितो अपचितो…पे०… । भवं हि चङ्की ओपासादं अज्झावसति सत्तुस्सदं सतिणकट्ठोदकं सधञ्ञं राजभोग्गं रञ्ञा पसेनदिना कोसलेन दिन्नं राजदायं ब्रह्मदेय्यं । यं पि भवं चङ्की ओपासादं अज्झावसति सत्तुस्सदं सतिणकट्ठोदकं सधञ्ञं राजभोग्गं रञ्ञा पसेनदिना कोसलेन दिन्नं राजदायं

दोनों ही तरफ से कुलीन हैं। आप पिता-पितामह-प्रपितामह आदि सात पीढ़ियों तक जातिवाद से अक्षिप्त एवं अनिन्दित हैं। इस कारण, आप चङ्की श्रमण गौतम के दर्शनार्थ जाने के योग्य नहीं हैं। श्रमण गौतम ही आपके दर्शनहेतु यहाँ आवे। (२) आप आढ्य एवं धनवान् हैं, महाभोगसम्पन्न हैं, इस कारण भी… । (३) आप दर्शनीयरूप एवं परम सौन्दर्ययुक्त हैं तथा ब्रह्मवर्चस्वी एवं आपको आदमी एक टक देखता ही रह जाय--ऐसे सुन्दर हैं, इस कारण भी… । (४) आप तीनों वेदों में पारङ्गत है, आप निघण्टु, केटुभ, अक्षरप्रभेद, इतिहास के ज्ञाता, कवि, वैयाकरण, लोकायतशास्त्र एवं महापुरुषलक्षणशास्त्र में प्रवीण हैं, इस कारण भी… । (५) आप शीलवान् हैं, सदाचार में बहुत आगे बढे-चढे हैं, इस कारण भी… । (६) आप मृदुभाषी, कल्याणवाक्, एवं सभ्य वाणी बोलते हैं, इस कारण भी… । (७) आप बहुतों के आचार्य-प्राचार्य हैं, तीन सौ छात्र आपके शिष्य हैं, इसलिये भी… । (८) आप राजा प्रसेनजित् कौसल से सत्कृत, गुरुकृत, मानित, पूजित, प्रशंसित हैं, इस कारण भी… । (९) आप पौष्करसाति ब्राह्मण द्वारा सत्कृत… इसलिये भी…। (१०) आप इस ओपसाद ग्राम के हैं जो जनाकीर्ण, तृण-काष्ठ-धन-धान्य-सम्पन्न, और राजा प्रसेनजित् कौसल द्वारा, ब्राह्मणत्व के कारण, आपको मिला है। इस

ब्रह्मदेय्यं, इमिनापङ्गेन न अरहति भवं चङ्की समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं; समणो त्वेव गोतमो अरहति भवन्तं चङ्किं दस्सनाय उपसङ्कमितुं" ति।

४. एवं वुत्ते, चङ्की ब्राह्मणो ते ब्राह्मणे एतदवोच--"तेन हि, भो, मम पि सुणाथ, यथा मयमेव अरहाम तं समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं; न त्वेव अरहति सो भवं गोतमो अम्हाकं दस्सनाय उपसङ्कमितुं।

"समणो खलु, भो गोतमो उभतो सुजातो मातितो च [N. 430] पितितो च संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा अक्खित्तो अनुपकुट्ठो जातिवादेन। यं पि, भो, समणो गतमो उभतो सुजातो मातितो च पितितो च संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा अक्खित्तो अनुपकुट्ठो जातिवादेन, इमिनापङ्गेन न अरहति सो भवं गोतमो अम्हाकं दस्सनाय उपसङ्कमितुं, अथ खो मयमेव अरहाम तं भवन्तं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं। समणो खलु, भो, गोतमो पहूतं हिरञ्ञसुवण्णं ओहाय पब्बजितो भूमिगतं च वेहासट्ठं च…पे०…। समणो खलु, भो, गोतमो दहरो व समानो युवा सुसुकाळकेसो भद्रेन योब्बनेन समन्नागतो पठमेन वयसा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो…पे०…। समणो खलु, भो, गोतमो अकामकानं मातापितूनं अस्सुमुखानं रुदन्तानं केसमस्सुं [B. 379] ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो

कारण भी आपको श्रमण गौतम के दर्शनहेतु नहीं जाना चाहिये। श्रमण गौतम ही आप के यहाँ आवे तो उचित रहेगा।"

४. ऐसा कहे जाने पर चङ्की ब्राह्मण ने उन ब्राह्मणों को कहा--"आप लोग मेरी बात भी सुनें, जिनसे आपको मेरा यह निर्णय उचित लगेगा कि मुझे ही श्रमण गौतम के दर्शनहेतु देववनस्थ शालवन जाना चाहिये। उन श्रमण गौतम का यहाँ आना शोभा नहीं देगा।

(१) "क्योंकि श्रमण गौतम भी अपने मातृकुल एवं पितृकुल--दोनों ही तरफ से कुलीन (सुजात) हैं वे अपने माता-पिता की सात पीढियों तक जाति के बारे में अक्षिप्त (अनारोपित) एवं अनिन्दित हैं। इस कारण भी मुझे…। (२) श्रमण गौतम अत्यधिक चल अचल सम्पत्ति, सोना-चाँदी छोड़ प्रव्रजित हुए हैं, इस कारण भी…। (३) श्रमण गौतम भद्र यौवन (चढ़ी जवानी) में ही घर से बेघर हो प्रव्रजित हुए हैं, इस कारण भी…। (४) श्रमण गौतम, अपने घर छोड़ने के अनिच्छुक माता-पिता को रोता हुआ छोड़कर, प्रव्रजित हुए हैं, इसलिये

…पे०…। समणो खलु, भो, गोतमो अभिरूपो दस्सनीयो पासादिको परमाय [R. 167] वण्णपोक्खरताय समन्नागतो ब्रह्मवण्णी ब्रह्मवच्छसी अखुद्दावकासो दस्सनाय…पे०…। समणो खलु, भो गोतमो सीलवा अरियसीली कुसलसीली कुसलेन सीलेन समान्नागतो…पे०…। समणो खलु, भो, गोतमो कल्याणवाचो कल्याणवाक्करणो पोरिया वाचाय समन्नागतो विस्सट्ठाय अनेलगळाय अत्थस्स विञ्ञापनिया…पे०…। समणो खलु, भो, गोतमो बहूनं आचरियपाचरियो…पे०…समणो खलु, गोतमो खीणकामरागो विगतचापल्लो …पे०…। समणो खलु, भो, गोतमो कम्मवादी किरियवादी अपापपुरेक्खारो ब्रह्मञ्ञाय पजाय…पे०… समणो खल, भो, गोतमो उच्चा कुला पब्बजितो असम्भिन्ना खत्तियकुला…पे०। समणो खलु, भो, गोतमो अड्ढा कुला पब्बजितो महद्धना महाभोगा…पे०…। समणं खलु, भो, गोतमं तिरोरट्ठा तिरोजनपदा सम्पुच्छितुं आगच्छन्ति…पे०…। समणं खलु, भो, गोतमं अनेकानि देवतासहस्सानि पाणेहि सरणं गतानि…पे०… समणं खलु, भो, गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासबुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति…पे०…समणो खलु, भो, [N. 431] गोतमो द्वत्तिसमहापुरिसलक्खणेहि समन्नागतो…पे०…। समणं खलु, भो, गोतमं राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो सपुत्तदारो पाणेहि सरणं गतो…पे०…। समणं खलु, भो, गोतमं राजा पसेनदि

भी…। (५) श्रमण गौतम का रूप दर्शनीय है, परम सौन्दर्य से युक्त है, वे ऐसे रूपवान् हैं कि देखने वाला उन्हें काफी देर तक एक-टक (अक्षुद्रावकाश) देखता ही रह जाय। इसलिये भी…। (६) श्रमण गौतम कल्याणमयी वाणी बोलते हैं, दूसरों के प्रति सभ्य भाषा का प्रयोग करते हैं, इस कारण भी…। (७) श्रमण गौतम बहुतों के आचार्य-प्रचार्य हैं, इसलिये भी…। (८) श्रमण गौतम क्षीणकामराग, चाञ्चल्यरहित…। (९) श्रमण गौतम कर्मवादी, क्रियावादी, ब्राह्मण्य (पुण्यसञ्चयी) प्रजा से…। (१०) श्रमण गौतम अदीन क्षत्रिय कुल उच्चकुल से प्रव्रजित हुए हैं…। (११) वे महाधनी, महाभोगसम्पन्न कुल से प्रव्रजित…। (१२) श्रमण गौतम को देश के बाहर से प्रदेश के बाहर से लोग पूछने आते हैं…। (१३) अनेक सहस्र देवता जीवनपर्यन्त श्रमण गौतम के शरणागत हुए हैं…। (१४) लोक में श्रमण गौतम की ऐसी कीर्ति-गाथा फैली हुई है—वे भगवान् ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध…। (१५) श्रमण गौतम राजा मागध श्रेणिय बिम्बिसार। (१६)…राजा प्रसेनजित् कौसल…(१७)…ब्राह्मण पौष्कर-

कोसलो सपुत्तदारो पाणेहि सरणं गतो ···पे०···। समणं खलु, भो, गोतमं, ब्राह्मणो पोक्खरसाति सपुत्तदारो पाणेहि सरणं गतो ···पे०··· ।

"समणो खलु, भो गोतमो ओपासादं अनुप्पत्तो ओपासादे विहरति उत्तरेन ओपासादं देववने सालवने। ये खो ते समणा वा ब्राह्मणा वा अम्हाकं गामक्खेत्तं आगच्छन्ति, अतिथी नो ते होन्ति। अतिथी खो पनम्हेहि सक्कातब्बा गरुकातब्बा मानेतब्बा पूजेतब्बा। यं पि समणो गोतमो ओपासादं अनुप्पत्तो ओपासादे विहरति उत्तरेन [B. 380] ओपासादं देववने सालवने, अतिथिम्हाकं समणो गोतमो। अतिथि खो पनम्हेहि सक्कातब्बो गरुकातब्बो मानेतब्बो पूजेतब्बो। [R. 168] इमिना न अरहति सो भवं गोतमो अम्हाकं दस्सनाय उपसङ्कमितुं; अथ खो मयमेव अरहाम तं भवन्तं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं ।

"एत्तके खो अहं, भो, तस्स भोतो गोतमस्स वण्णे परियापुणामि, नो च खो सो भवं गोतमो एत्तकवण्णो; अपरिमाणवण्णो हि सो भवं गोतमो। एकमेकेन पि तेन अङ्गेन समन्नागतो न अरहति, भो, भवं गोतमो अम्हाकं दस्सनाय उपसङ्कमितुं; अथ खो मयमेव अरहाम तं भवन्तं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं ति! तेन हि, भो, सब्बेव मयं समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सामा" ति।

साति, पुत्र व पत्नी सहित, जीवनपर्यन्त श्रमण गौतम के शरणागत हैं, इसलिये भी··· ।

"अरे! श्रमण गौतम औपसाद ग्राम में आये हैं, औपसाद में उत्तर तरफ देववन के शालवन में साधनाहेतु ठहरे हुए हैं। जो भी श्रमण-ब्राह्मण हमारे ग्राम की परिधि में आते हैं वे हमारे 'अतिथि' होते हैं। हमें अतिथियों का सत्कार, गौरव मान-पूजा करनी चाहिये। क्योंकि श्रमण गौतम हमारे औपसाद ग्राम में आये हैं, वे यहाँ आकर देववन शालवन में साधनाहेतु ठहरे हुए हैं, तो वे हमारे अतिथि हुए। और अतिथि का हमें सत्कार, गौरव, मान-पूजा करनी चाहिये। इसलिये भी··· ।

"इतनी बातें तो उन श्रमण गौतम की प्रशंसा में मैं कह रहा हूँ; परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि उनमें इतने ही गुण हैं, इतनी ही अच्छाइयाँ हैं; उनमें अपरिमित गुण हैं। यदि इनमें से एक-एक गुण भी देखा जाय तो इन्हीं के सहारे, उन श्रमण गौतम का हमारे यहाँ आना उचित नहीं है; हमें ही उनके दर्शनहेतु जाना चाहिये। इसलिये यही अच्छा होगा कि हम ही सब मिलकर उन गौतम के दर्शनार्थ चलें'।"

अथ खो चङ्की ब्राह्मणो महता ब्राह्मणगणेन सद्धिं येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि।

२. भारद्वाजपुच्छाविसज्जनं

५. तेन खो पन समयेन भगवा वुद्धेहि वुद्धेहि ब्राह्मणेहि सद्धिं किञ्चि किञ्चि कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा निसिन्नो होति। तेन खो पन समयेन कापटिको नाम माणवो दहरो वुत्तसिरो सोळसवस्सुद्देसिको जातिया, तिण्णं वेदानं पारगू सनिघण्डुकेटुभानं साक्खरप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं, [N. 432] पदको, वेय्याकरणो, लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो तस्सं परिसायं निसिन्नो होति। सो वुद्धानं वुद्धानं ब्राह्मणानं भगवता सद्धिं मन्तयमानानं अन्तरन्तरा कथं ओपातेति। अथ खो भगवता कापटिकं माणवं अपसादेति—"मायस्मा भारद्वाजो वुद्धानं वुद्धानं ब्राह्मणानं मन्तयमानानं अन्तरन्तरा कथं ओपातेतु। कथापरियोसानं आयस्मा भारद्वाजो आगमेतू" ति। एवं वुत्ते, चङ्की ब्राह्मणो भगवन्तं एदवोच—"मा भवं गोतमो कापटिकं माणवं अपसादेसि। कुलपुत्तो च कापटिको माणवो, बहुस्सुतो च कापटिको माणवो, पण्डितो च कापटिको माणवो, कल्याण-

---

तब वह चङ्की ब्राह्मण उस विशाल ब्राह्मणसमूह के साथ भगवान् की सेवा में पहुँचा। पहुँचकर उसने भगवान् से कुशल-मङ्गल पूछा। कुशल-मङ्गल पूछ, एक ओर बैठ गया।

२. भारद्वाज के प्रश्नों का उत्तर

५. उस समय भगवान् बूढे-बूढे ब्राह्मणों के साथ कुछ इधर-उधर की धार्मिक चर्चा कर रहे थे। उस समय कोई कापटिक (या कापथिक) नामक तरुण युवा, गोल सिर वाला, आयु से करीब सोलह वर्ष का, तीनों वेदों का पारङ्गत...उस परिषद् में बैठा था। वह उन बूढे-बूढे ब्राह्मणों के साथ हो रही उस धार्मिक चर्चा के बीच-बीच में टोका-टाकी (विघ्न) कर रहा था। तब भगवान् ने उस कापटिक माणवक को मना किया—"आयुष्मन् भारद्वाज ! बड़े-बूढे ब्राह्मणों के साथ हो रही इस धार्मिक चर्चा में तुम बीच-बीच में न बोलो। आयुष्मन् ! चर्चा पूरी होने दो, फिर तुम भी प्रश्नों द्वारा अपने सन्देह का निराकरण कर लेना। तब तक तुम ठहरो।"

(भगवान् के) ऐसा कहने पर, चङ्की ब्राह्मण ने भगवान् से निवेदन किया—"आप श्रमण गौतम कापटिक माणवक को इस तरह न रोकें। कापटिक माणवक

बाक्करणो च कापटिको माणवो, पहोति च कापटिको माणवो भोता गोतमेन सद्धिं अस्मिं वचने पटिमन्तेतुं" ति ।

अथ खो भगवतो एतदहोसि—"अद्धा खो कापटिकस्स [B. 381] माणवस्स तेविज्जके पावचने कथा भविस्सति । तथा हि [R. 169] नं ब्राह्मणा सम्पुरेक्खरोन्ती" ति । अथ खो कापटिकस्स माणवस्स एतदहोसि--"यदा मे समणो गोतमो चक्खुं उपसंहरिस्सति, अथाहं समणं गोतमं पञ्हं पुच्छिस्सामी" ति । अथ खो भगवा कापटिकस्स चेतसा माणवस्स चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय येन कापटिको माणवो तेन चक्खूनि उपसंहासि ।

(१) इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं

६. अथ खो कापटिकस्स माणवस्स एतदहोसि--"समन्नाहरति खो मं समणो गोतमो । यन्नूनाहं समणं गोतमं पञ्हं पुच्छेय्यं" ति । अथ खो कापटिको माणवो भगवन्तं एतदवोच--"यदिदं, भो गोतम, ब्राह्मणानं पोराणं मन्तपदं इतिहितिहपरम्पराय पिटकसम्पदाय, तत्थ च ब्राह्मणा एकंसेन निट्ठं गच्छन्ति--'इदमेव सच्चं, मोघमञ्ञं' ति । इध भवं गोतमो किमाहा" ति ?

"किं पन, भारद्वाज, अत्थि कोचि ब्राह्मणानं एकब्राह्मणो पि, यो एव-

---

कुलीन है...बहुश्रुत है...सुवक्ता है...पण्डित है...आप गौतम के साथ इस चर्चा में बातचीत कर सकता है" ।

भगवान् को यह विचार हुआ--"अवश्य यह कापटिक माणवक वेदत्रयी के अध्ययन के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता है, तभी ये ब्राह्मण, मुझसे वाद करने के लिये इसे आगे कर रहे हैं ।"

इधर कापटिक माणवक के मन में यह विचार आया—"जब भगवान् मेरी ओर देखेंगे तो मैं इनसे कुछ प्रश्न करूँगा !" तब भगवान् ने, कापटिक माणवक के मन की बात जानकर उसकी ओर देखा ।

(१) यही सत्य है, बाकी सब व्यर्थ (झूठ) है ।

६. तब कापटिक माणवक को यह हुआ—"श्रमण गौतम अब मेरी ओर देख रहे हैं, क्यों न मैं अब इनसे प्रश्न पूछूँ !" तब कापटिक माणवक ने भगवान् से यह पूछा--"भो गौतम ! ब्राह्मणों का यह जो इतिहासपरम्परा से प्राचीन मन्त्र (वेद)-पाठ है जो कि तीन भागों में विभक्त है, उसके विषय में कुछ ब्राह्मण यह निश्चित तौर पर मान बैठे हैं—'यही सत्य है, बाकी सब व्यर्थ है ।" श्रीमन् गौतम ! आपके इस विषय में क्या विचार हैं ?"

"भारद्वाज ! यहाँ ब्राह्मणों में कोई एक भी ऐसा ब्राह्मण है, जो इस मन्त्र-पद

माह--'अहमेतं जानामि, अहमेतं पस्सामि। इदमेव सच्चं, मोघमञ्ञं' " ति?

"नो हिदं, भो गोतम"।

"किं पन, भारद्वाज, अत्थि कोचि ब्राह्मणानं एकाचरियो पि, एकाचरियपाचरियो पि, याव सत्तमा आचरियमहयुगा पि, यो एवमाह--'अहमेतं जानामि, अहमेतं पस्सामि। इदमेव सच्चं, मोघमञ्ञं' " ति?
[N. 433]

"नो हिदं, भो गोतम"।

"किं पन, भारद्वाज, ये पि ते ब्राह्मणानं पुब्बका इसयो मन्तानं कत्तारो मन्तानं पवत्तारो येसमिदं एतरहि ब्राह्मणा पोराणं मन्तपदं गीतं पवुत्तं समिहितं तदनुगायन्ति तदनुभासन्ति भासितमनुभासन्ति वाचितमनुवाचेन्ति, सेय्यथीदं—अट्ठको वामको वामदेवो वेस्सामित्तो यमतग्गि अङ्गीरसो भारद्वाजो वासेट्ठो कस्सपो भगु, ते पि एवमाहंसु—'मयमेतं जानाम, मयमेतं पस्साम। इदमेव सच्चं, मोघमञ्ञं' " ति?

[R. 170] "नो हिदं, भो गोतम"।

"इति किर, भारद्वाज, नत्थि कोचि ब्राह्मणानं एकब्राह्मणो पि यो एवमाह—'अहमेतं जानामि, अहमेतं पस्सामि। इदमेव सच्चं, मोघमञ्ञं' ति; नत्थि कोचि ब्राह्मणानं एकाचरियो पि एकाचरियपाचरियो पि, याव [B. 382] सत्तमा आचरियमहयुगा पि, यो एवमाह--'अहमेतं जानामि, अहमेतं पस्सामि। इदमेव सच्चं, मोघमञ्ञं' ति ये पि ते ब्राह्मणानं पुब्बका

के बारे में यह कह सके--'मैं इसे भलीभाँति जान चुका हूँ, इसका साक्षात्कार कर चुका हूँ। यही सत्य है, बाकी सब झूठ है?"

"भो गौतम! नहीं।"

"क्या, भारद्वाज! है यहाँ ब्राह्मणों का कोई एक भी आचार्य या प्राचार्य अपनी सात पीढी तक, जो यह कह सके--'मैं इसे भलीभाँति जानता हूँ···झूठ है'?"

"नहीं, भो गौतम!"

"तो फिर, भारद्वाज! इन ब्राह्मणों के पूर्वज ऋषि, जो इन मन्त्रों के रचयिता रहे हैं, जो इन मन्त्रों के प्रवक्ता रहे हैं, जिनके बारे में आजकल के ब्राह्मण ढिंढोरा पीटते हैं कि यह सब उन्हीं लोगों का बनाया हुआ है; जैसे--अष्टक, वामदेव, विश्वामित्र, यमदग्नि, अङ्गीरस, भारद्वाज, वसिष्ठ, कश्यप, और भृगु; क्या उन्होंने यह कहा था—'यही सत्य है···।' "

"नहीं, भो गौतम!"

"तो, भारद्वाज! यह सिद्ध हो गया कि ब्राह्मणों में, सात पीढी तक एक भी

इसयो मन्तानं कत्तारो मन्तानं पवत्तारो येसमिदं एतरहि ब्राह्मणा पोराणं मन्तपदं गीतं पवुत्तं समिहितं तदनुगायन्ति तदनुभासन्ति भासितमनुभासन्ति वाचितमनुवाचेन्ति, सेय्यथीदं—अट्ठको वामको वामदेवो वेस्सामित्तो यमतग्गि अङ्गीरसो भारद्वाजो वासेट्ठो कस्सपो भगु, ते पि न एवमाहंसु--'मयमेतं जानाम, मयमेतं पस्साम। इदमेव सच्चं, मोघमञ्ञं' ति।

७. "सेय्यथापि, भारद्वाज, अन्धवेणि परम्परासंसत्ता पुरिमो पि न पस्सति मज्झिमो पि न पस्सति पच्छिमो पि न पस्सति; एवमेव खो, भारद्वाज, अन्धवेणूपमं मञ्ञे ब्राह्मणानं भासितं सम्पज्जति--पुरिमो पि न पस्सति मज्झिमो पि न पस्सति पच्छिमो पि न पस्सति। तं किं मञ्ञसि, भारद्वाज, ननु एवं सन्ते ब्राह्मणानं अमूलिका सद्धा सम्पज्जती" ति?

"न ख्वेत्थ, भो गोतम, ब्राह्मणा सद्धायेव पयिरुपासन्ति, [N. 434] अनुस्सवापेत्थ ब्राह्मणा पयिरुपासन्ती" ति।

"पुब्बेव खो त्वं भारद्वाज, सद्धं अगमासि, अनुस्सवं इदानि वदेसि। पञ्च खो इमे, भारद्वाज, धम्मा दिट्ठेव धम्मे द्विधा विपाका। कतमे पञ्च? सद्धा, रुचि, अनुस्सवो, आकारपरिवितक्को, दिट्ठिनिज्झानक्खन्ति--इमे खो, भारद्वाज, पञ्च धम्मा दिट्ठेव धम्मे द्विधा विपाका। अपि च, भारद्वाज, सुसद्दहितं येव होति, तं च होति रित्तं तुच्छं मुसा; नो चे पि सुसद्दहितं होति, तं च होति भूतं तच्छं अनञ्ञथा। अपि च, भारद्वाज, सुरुचितं येव होति...

आचार्य-प्राचार्य, पूर्वज ऋषि...जो यह कह सके कि 'यही सत्य है...।'"

७. "भारद्वाज! जैसे अन्धों की पंक्ति (कतार) में चलने वालों में न पहला, न अन्तिम, न मध्यम मार्ग देख पाता है, उस अन्धों की पंक्ति की तरह क्या इन ब्राह्मणों का कथन भी वैसा ही नहीं है (इनमें भी किसी को भी मार्ग नहीं सूझता)? इनमें से किसी ने भी नहीं कहा कि हम इसे भलीभाँति जानते हैं, देखते है। तो ऐसा होने पर, इन ब्राह्मणों की उन मन्त्रपदों (वेदों) पर श्रद्धा निर्मूल नहीं हुई क्या?"

"भो गौतम! नहीं, ये ब्राह्मण इन मन्त्रपदों की श्रद्धा से ही उपासना नहीं करते, अपितु इस उपासना में अनुश्रुति भी एक कारण और है।"

"भारद्वाज! पहले तूँ श्रद्धा (निष्ठा) की बात कर रहा था, अब अनुश्रुति को बीच में ले आया। भारद्वाज! ये पाँच धर्म इसी जन्म में दो तरह के फल देने वाले होते हैं। कौन से पाँच? श्रद्धा, रुचि, अनुश्रव, आकारपरिवितर्क, एवं दृष्टि-निध्यायनक्षान्ति। तो भारद्वाज! भलीभाँति श्रद्धा किया गया भी कभी भी रिक्त, तुच्छ, और मृषा (मिथ्या) हो सकता है, दूसरी तरफ भलीभाँति श्रद्धा न किया हुआ

[R. 171] पे०…स्वानुस्सुतं येव होति…पे०…सुपरिवितक्कितं येव होति …पे०…सुनिज्झायितं येव होति, तं च होति रित्तं तुच्छं मुसा; नो चे पि सुनिज्झायितं होति, तं च होति भूतं तच्छं अनञ्ञथा। सच्चमनुरक्खता, भारद्वाज, विञ्ञुना पुरिसेन नालमेत्थ एकंसेन निट्ठं गन्तुं—'इदमेव सच्चं, मोघमञ्ञं'" ति।

(२) कित्तावता सच्चानुरक्खणा होति

८. "कित्तावता पन, भो गोतम, सच्चानुरक्खणा होति, कित्तावता सच्चमनुरक्खति ? सच्चानुरक्खणं मयं भवन्तं गोतमं पुच्छामा" ति ?

"सद्धा चे पि, भारद्वाज, पुरिसस्स होति; 'एवं मे सद्धा' ति—इति वदं सच्चमनुरक्खति, न त्वेव ताव एकंसेन निट्ठं गच्छति—'इदमेव सच्चं, मोघ- [B. 383] मञ्ञं' ति। रुचि चे पि भारद्वाज, पुरिसस्स होति…पे०… अनुस्सवो चे पि, भारद्वाज, पुरिसस्स होति…पे०…आकारपरिवितक्को चे पि, भारद्वाज, पुरिसस्स होति…पे०…दिट्ठिनिज्झानक्खन्ति चे पि, भारद्वाज, पुरिसस्स होति; 'एवं मे दिट्ठिनिज्झानक्खन्ती' ति—इति वदं सच्चमनुरक्खति, न त्वेव ताव एकंसेन निट्ठं गच्छति—'इदमेव सच्चं, मोघमञ्ञं' ति। एत्तावता खो, भारद्वाज, सच्चानुरक्खणा होति, एत्तावता सच्चमनु- [N. 435] रक्खति, एत्तावता च मयं सच्चानुरक्खणं पञ्ञापेम; न त्वेव ताव सच्चानुबोधो होती" ति।

भी कभी यथार्थ, तथ्य और अनन्यथा हो सकता है। सुरुचि किया भी…सुअनुश्रुत किया भी…सुपरिवितर्क किया भी…सुनिध्यायन (अ॰ दृष्टि) किया भी कभी-कभी रिक्त तुच्छ और मृषा हो सकता है, और कभी-कभी सुनिध्यायन न किया भी यथार्थ, तथ्य और अनन्यथा हो सकता है। अतः भारद्वाज ! सत्य की रक्षा करने वाले विज्ञ पुरुष को इन मन्त्रपदों पर एकांशतः (सर्वथा) निष्ठा करना उचित नहीं कि 'यही सत्य है, बाकी मिथ्या है'।"

(२) सत्य की रक्षा कैसे हो सकती है ?

८. "भो गौतम ! सत्यानुरक्षा कैसे होती है ? सत्य का अनुरक्षण कैसे किया जा सकता है ? हम आप गौतम से इस सत्यानुरक्षण के विषय में पूछते हैं ?"

"भारद्वाज ! यदि पुरुष की किसी विषय में श्रद्धा हो तो वह यह कह सकता है—'मेरी इस विषय में श्रद्धा है'; यहाँ उसे उस श्रद्धा के सहारे यह कहना आवश्यक नहीं कि—'यही सर्वथा सत्य है, बाकी सब व्यर्थ है'। भारद्वाज ! यदि किसी पुरुष की रुचि…अनुश्रव…आकार परिवितर्क…दृष्टिनिध्यायनक्षान्ति…। भारद्वाज ! इतने से सत्य की अनुरक्षा की जा सकती है, इससे सत्य अनुरक्षित रह सकता है।

(३) कित्तावता सच्चानुबोधो होति ?

९. एत्तावता, भो गोतम, सच्चानुरक्खणा होति, एत्तावता सच्चमनुरक्खति, एत्तावता च मयं सच्चानुरक्खणं पेक्खाम। कित्तावता पन, भो गोतम, सच्चानुबोधो होति, कित्तावता सच्चमनुबुज्झति ? सच्चानुबोधं मयं भवन्तं गोतमं पुच्छामा" ति ?

"इध, भारद्वाज, भिक्खु अञ्ञतरं गामं वा निगमं वा उपनिस्साय विहरति। तमेनं गहपति वा गहपतिपुत्तो वा उपसङ्कमित्वा तीसु धम्मेसु समन्नेसति--लोभनीयेसु धम्मेसु, दोसनीयेसु धम्मेसु, मोहनीयेसु [R. 172] धम्मेसु। अत्थि नु खो इमस्सायस्मतो तथारूपा लोभनीया धम्मा यथारूपेहि लोभनीयेहि धम्मेहि परियादिन्नचित्तो अजानं वा वदेय्य—जानामी ति, अपस्सं वदेय्य--पस्सामी ति, परं वा तदत्थाय समादपेय्य यं परेसं अस्स दीघरत्तं अहिताय दुक्खाया ति ? तमेनं समन्नेसमानो एवं जानाति--'नत्थि इमस्सायस्मतो तथारूपा लोभनीया धम्मा यथारूपेहि लोभनीयेहि धम्मेहि परियादिन्नचित्तो अजानं वा वदेय्य--जानामी ति, अपस्सं वदेय्य--पस्सामी ति, परं वा तदत्थाय समादपेय्य यं परेसं अस्स दीघरत्तं अहिताय दुक्खाय। तथारूपो खो पनिमस्सायस्मतो कायसमाचारो तथारूपो वचीसमाचरो

हम तो इसी तरह सत्य की अनुरक्षा का प्रतिपादन करते हैं। परन्तु इतने से सत्य का अनुबोध नहीं हो पाता।"

(३) सत्यानुबोध कैसे होता है ?

"भो गौतम ! आप द्वारा बताये सत्यानुरक्षण प्रकार को तो हम समझ गये। परन्तु अभी बात उठी सत्यानुबोध की, तो यह सत्यानुबोध (सत्य का ज्ञान) कैसे होता है ?--कृपया इसे भलीभाँति समझाकर बताइये !"

"भारद्वाज ! यहाँ कोई भिक्षु किसी ग्राम या कस्बे के पास रहकर साधना कर रहा हो। वहाँ कोई गृहपति या गृहपतिपुत्र उस पुरुष की परीक्षा करने जाय कि उस भिक्षु को किसी लोभनीय या किसी द्वेषणीय या फिर किसी मोहनीय धर्म (बात) ने तो नहीं आवृत कर रखा है ! जिसके कारण इसका चित्त लोभनीय धर्मों में आबद्ध हो, न जानी हुई बात को 'जानता हूँ'--ऐसा कह दे, या न देखी हुई बात को 'देखता हूँ'--ऐसा कह दे, या फिर वह दूसरों को ऐसा उपदेश करे कि जिस पर आचरण उसके लिये दीर्घकाल तक अहितकर या असुखकर हो। अन्त में वह गृहपति या गृहपतिपुत्र उस भिक्षु की जाँच करता हुआ यह पा ले कि 'इस भिक्षु में ऐसे कोई लोभनीय धर्म नहीं है कि जिनके कारण...अहितकर या असुखकर हो। इसका

यथा तं अलुद्धस्स। यं खो पन अयमायस्मा धम्मं देसेति, गम्भीरो सो धम्मो [B. 384] दुद्दसो दुरनुबोधो सन्तो पणीतो अतक्कावचरो निपुणो पण्डितवेदनीयो; न सो धम्मो सुदेसियो लुद्धेना' ति।

१०. "यतो नं समन्नेसमानो विसुद्धं लोभनीयेहि धम्मेहि समनुपस्सति ततो नं उत्तरि समन्नेसति दोसनीयेसु धम्मेसु। अत्थि नु खो इमस्सायस्मतो तथारूपा दोसनीया धम्मा यथारूपेहि दोसनीयेहि धम्मेहि परियादिन्नचित्तो अजानं वा वदेय्य—जानामी ति, अपस्सं वा वदेय्य—पस्सामी ति, वा तद- [N. 436] त्थाय समादपेय्य यं परेसं अस्स दीघरत्तं अहिताय दुक्खाया ति ? तमेनं समन्नेसमानो एवं जानाति—'नत्थि खो इमस्सायस्मतो तथारूपा दोसनीया धम्मा यथारूपेहि दोसनीयेहि धम्मेहि परियादिन्नचित्तो अजानं वा वदेय्य—जानामी ति, अपस्सं वा वदेय्य—पस्सामी ति, परं वा तदत्थाय समादपेय्य यं परेसं अस्स दीघरत्तं अहिताय दुक्खाय। तथारूपो खो पनिमस्सायस्मतो कायसमाचारो तथारूपो वचीसमाचारो यथा तं अदुट्ठस्स। यं खो पन आयस्मा धम्मं देसेति, गम्भीरो सो धम्मो दुद्दसो दुरनुबोधो सन्तो पणीतो अतक्कावचरो निपुणो पण्डितवेदनीयो; न सो धम्मो सुदेसियो दुट्ठेना' ति।

११. "यतो नं समन्नेसमानो विसुद्धं दोसनीयेहि धम्मेहि समनुपस्सति, [R. 173] ततो नं उत्तरि समन्नेसति मोहनीयेसु धम्मेसु। अत्थि नु खो इमस्सायस्मतो यथारूपा मोहनीया धम्मा यथारूपेहि मोहनीयेहि धम्मेहि परियादिन्नचित्तो अजानं वा वदेय्य—जानामी ति, अपस्सं वा वदेय्य—पस्सामी ति, परं वा तदत्थाय समादपेय्य यं परेसं अस्स दीघरत्तं अहिताय दुक्खाय ति ? तमेनं समन्नेसमानो एवं जानाति—"नत्थि खो इमस्सायस्मतो

कायिक आचरण, वाणी का व्यवहार ऐसा है जैसे किसी अलोभी का हो। ये आयुष्मान् जिस तरह धर्म का उपदेश कर रहे हैं उस तरह उपदेश करना किसी लोभी पुरुष के लिये बहुत दुष्कर नहीं है क्या; क्योंकि यह धर्म गम्भीर, दुर्बोध, शान्त, प्रणीत (उत्तम) तर्क से अप्राप्य, निपुण एवं पण्डितों द्वारा ही बोध्य है !"

१०. "जब गृहपति खोज करते हुए उस भिक्षु को लोभसम्बन्धी धर्मों से विशुद्ध पाता है तब आगे द्वेषणीय (द्वेष सम्बन्धी) धर्मों के विषय में उसकी परीक्षा करता है—'क्या इस आयुष्मान् में वैसा कोई द्वेषसम्बन्धी धर्म है'''उस धर्म का द्वेषी द्वारा उपदेश करना'''पण्डितों द्वारा ही बोध्य है !

११. "जब परीक्षा करते हुए उसे द्वेष सम्बन्धी धर्मों से मुक्त पाता है तो आगे मोह सम्बन्धी धर्मों के विषय में उसकी जाँच करता है'''पण्डितों द्वारा ही बोध्य है !

तथारूपा मोहनीया धम्मा यथारूपेहि मोहनीयेहि धम्मेहि परियादिन्नचित्तो अजानं वा वदेय्य—जानामी ति, अपस्सं वा वदेय्य—पस्सामी ति, परं वा तदत्थाय समादपेय्य यं परेसं अस्स दीघरत्तं अहिताय दुक्खाय। तथारूपो खो पनिमस्मायस्मतो कायसमाचारो तथारूपो वचीसमाचारो यथा तं अमूळ्हस्स। यं खो पन अयमायस्मा धम्मं देसेति, गम्भीरो सो धम्मो दुद्दसो दुरनुबोधो सन्तो पणीतो अतक्कावचरो निपुणो पण्डितवेदनीयो; [B. 385] न सो धम्मो सुदेसियो मूळ्हेना' ति।

"यतो नं समन्नेसमानो विसुद्धं मोहनीयेहि धम्मेहि समनुपस्सति; अथ तम्हि सद्धं निवेसेति, सद्धाजातो उपसङ्कमति, उपसङ्कमन्तो पयिरुपासति, पयिरुपासन्तो सोतं ओदहति, ओहितसोतो धम्मं सुणाति, सुत्वा धम्मं धारेति, धतानं धम्मानं अत्थं उपपरिक्खति, अत्थं उपपरिक्खतो धम्मा निज्झानं खमन्ति, धम्मनिज्झानक्खन्तिया सति छन्दो जायति, छन्दजातो उस्सहति, उस्सहित्वा तुलेति, तुलयित्वा पदहति, पहितत्तो समानो कायेन चेव परमसच्चं सच्छिकरोति पञ्ञाय च नं अतिविज्झ पस्सति। [N. 437] एत्तावताखो, भारद्वाज, सच्चानुबोधो होति, एत्तावता सच्चमनुबुज्झति, एत्तावता च मयं सच्चानुबोधं पञ्ञापेम; न त्वेव ताव सच्चानुप्पत्ति होती" ति।

(४) कित्तावता सच्चानुप्पत्ति होति

१२. "एत्तावता, भो गोतम, सच्चानुबोधो होति, एत्तावता सच्चमनु-

"जब जाँच करते-करते उसे लोभनीय, द्वेषणीय, मोहनीय धर्मों से मुक्त पाता है, तब उस भिक्षु में उसकी श्रद्धा होती है। वह श्रद्धालु हो उसके पास जाता है। पास जाकर उसकी पर्युपासना (सेवा) करता है। सेवा करके उस के उपदेश में स्वचित्त को एकाग्र करता है। चित्त को एकाग्र कर उसका धर्मोपदेश सुनता है। सुनकर उस धर्म को धारण करता है। धारण किये धर्म की अर्थ-परीक्षा करता है; क्योंकि अर्थपरीक्षित धर्म ही ध्यान करने योग्य बनते हैं। धर्म के ध्यानयोग्य होने से उसमें छन्द (रुचि) उत्पन्न होता है। रुचि से उसमें उत्साह की प्रवृत्ति जाग्रत होती है। उत्साह करते-करते वह उसका उत्थान (तोलन) करता है। तोलन करते-करते अकुशल कर्मों का प्रदहन करता है। प्रदहन करते-करते वह अपने इसी जीवन में परम सत्य का साक्षात्कार कर लेता है। प्रज्ञा से उसे बेध कर देखता है। भारद्वाज ! इतने लम्बे क्रिया-कलाप से सत्यबोध हो पाता है, सत्य तक पहुँचा जा सकता है। परन्तु सत्यानुप्पत्ति (सत्य की प्राप्ति) फिर भी नहीं हो पाती।"

(४) सत्यप्राप्ति (सत्यानुप्पत्ति) कैसे होती है ?

१२. "भो गौतम ! सत्यबोध इतने से होता है, इतने से सत्य का साक्षात्कार

बुज्झति, एत्तावता च मयं सच्चानुबोधं पेक्खाम। कित्तावता पन, भो गोतम, सच्चानुप्पत्ति होति, कित्तावता सच्चमनुपापुणाति ? सच्चानुप्पत्तिं मयं भवन्तं गोतमं पुच्छामा'' ति।

[R. 174] "तेसं येव, भारद्वाज, धम्मानं आसेवना भावना बहुलीकम्मं सच्चानुप्पत्ति होति। एत्तावता खो, भारद्वाज, सच्चानुप्पत्ति होति, एत्तावता सच्चमनुपापुणाति, एत्तावता च मयं सच्चानुप्पत्तिं पञ्ञापेमा" ति।

१३. "एत्तावता, भो गोतम, सच्चानुप्पत्ति होति, एत्तावता सच्चमनुपापुणाति, एत्तावता च मयं सच्चानुप्पत्तिं पेक्खाम। सच्चानुप्पत्तिया पन, भो गोतम, कतमो धम्मो बहुकारो? सच्चानुप्पत्तिया बहुकारं धम्मं मयं भवन्तं गोतमं पुच्छामा'' ति।

"सच्चानुप्पत्तिया खो भारद्वाज, पधानं बहुकारं। नो चेतं पदहेय्य, नयिदं सच्चमनुपापुणेय्य। यस्मा च खो पदहति तस्मा सच्चमनुपापुणाति। तस्मा सच्चानुप्पत्तिया पधानं बहुकारं" ति।

"पधानस्स पन, भो गोतम, कतमो धम्मो बहुकारो ? पधानस्स बहुकारं धम्मं मयं भवन्तं गोतमं पुच्छामा" ति।

[B. 386] पधानस्स खो, भारद्वाज, तुलना बहुकारा। नो चेतं तुलेय्य,

---

किया जा सकता है, इतने से हम भी सत्यानुबोध मानते हैं। परन्तु भो गौतम ! इस सत्य की प्राप्ति कैसे होती है ? कितना करने से सत्य की प्राप्ति हो सकती है— इसी बात को, भो गौतम ! हमें आपसे पूछना है ?"

"भारद्वाज ! उन्हीं (पूर्वोक्त) धर्मों के सेवन से, भावना करने से, उन्हें बढ़ाने से सत्यप्राप्ति होती है। इतने से भारद्वाज ! सत्य की प्राप्ति होती है। सत्य को पाया जा सकता है। इतने से हम सत्यप्राप्ति बताते हैं।"

"इतने से भो गौतम ! सत्यप्राप्ति होती है···हम भी इतने से सत्यप्राप्ति देखते हैं। परन्तु गौतम ! सत्यप्राप्ति का कौन धर्म सबसे अधिक उपकारी (सहायक) होता है !—हम आपसे यह जानना चाहते हैं ?"

"भारद्वाज ! सत्यप्राप्ति का बहूपकारी धर्म 'प्रधान' (प्रदहन या प्रयत्न) है। यदि 'प्रधान' न कर पावे तो सत्य को भी प्राप्त न कर पावे। क्योंकि वह (भिक्षु) 'प्रधान' करता है इसलिये सत्य को भी पा लेता है। अतः सत्यप्राप्ति में प्रधान ही सर्वतोऽधिक सहायक है।"

"भो गौतम ! प्रधान का कौन धर्म परमोपकारी है ···?"

"···भारद्वाज ! प्रधान का उत्थान परमोपकारी है···।"

नयिदं पदहेय्य। यस्मा च खो तुलेति तस्मा पदहति। तस्मा पधानस्स तुलना बहुकारा" ति।

"तुलनाय पन, भो गोतम, कतमो धम्मो बहुकारो? तुलनाय बहुकारं धम्मं मयं भवन्तं गोतमं पुच्छामा" ति।

"तुलनाय खो, भारद्वाज, उस्साहो बहुकारो। नो चेतं उस्सहेय्य, नयिदं तुलेय्य। यस्मा च खो उस्सहति तस्मा तुलेति। तस्मा तुलनाय [N. 438] उत्साहो बहुकारो" ति।

"उत्साहस्स पन, भो गोतम, कतमो धम्मो बहुकारो? उस्साहस्स बहुकारं धम्मं मयं भवन्तं गोतमं पुच्छामा" ति।

"उस्साहस्स खो, भारद्वाज, छन्दो बहुकारो। नो चेतं छन्दो जायेथ, नयिदं उस्सहेय्य। यस्मा च खो छन्दो जायति तस्मा उस्सहति। तस्मा उस्साहस्स छन्दो बहुकारो" ति।

"छन्दस्स पन, भो गोतम, कतमो धम्मो बहुकारो? छन्दस्स [R. 175] बहुकारं धम्मं मयं भवन्तं गोतमं पुच्छामा" ति।

"छन्दस्स खो, भारद्वाज, धम्मनिज्झानक्खन्ति बहुकारा। नो चेते धम्मा निज्झानं खमेय्युं, नयिदं छन्दो जायेथ। यस्मा च खो धम्मा निज्झानं खमन्ति तस्मा छन्दो जायति। तस्मा छन्दस्स धम्मनिज्झानक्खन्ति बहुकारा" ति।

"धम्मनिज्झानक्खन्तिया पन, भो गोतम, कतमो धम्मो बहुकारो? धम्मनिज्झानक्खन्तिया बहुकारं धम्मं मयं भवन्तं गोतमं पुच्छामा" ति।

"धम्मनिज्झानक्खन्तिया खो, भारद्वाज, अत्थूपपरिक्खा बहुकारा। नो

"भो गौतम! उत्थान के लिये कौन धर्म बहूपकारी है···?"

"भारद्वाज! उत्थान का सर्वाधिक सहायक है उत्साह (तुलना)। यदि उत्साह न करे तो प्रधान नहीं कर सकता। क्योंकि वह उत्साह करता है इसलिये प्रधान कर पाता है। अतः उत्साह उत्थान का परमोपकारी है।

"भो गौतम! उत्साह का कौन धर्म परम उपकारक है···?"

"भारद्वाज! उत्साह का छन्द (रुचि) परमोपकारी है···।"

"भो गौतम! छन्द का कौन धर्म बहूपकारक है···?"

"भारद्वाज! छन्द का धर्मनिध्यायनक्षान्ति (अन्तर्दृष्टि) अत्यन्त उपकारक है···।"

"भो गौतम! धर्मनिध्यायनक्षान्ति धर्म का कौन धर्म परम उपकारक है···?"

"भारद्वाज! धर्मनिध्यायनक्षान्ति का सर्वतोऽधिक उपकारक धर्म है अर्थ का उपपरीक्षण।···।"

चेतं अत्थं उपपरिक्खेय्य, नयिदं धम्मा निज्झानं खमेय्युं। यस्मा च खो अत्थं उपपरिक्खति तस्मा धम्मा निज्झानं खमन्ति। तस्मा धम्मनिज्झानक्खन्तिया अत्थूपपरिक्खा बहुकारा" ति।

"अत्थूपपरिक्खाय पन, भो गोतम, कतमो धम्मो बहुकारो? अत्थूपपरिक्खाय बहुकारं धम्मं मयं भवन्तं गोतमं पुच्छामा" ति।

"अत्थूपपरिक्खाय खो, भारद्वाज, धम्मधारणा बहुकारा। नो चेतं धम्मं धारेय्य, नयिद अत्थं उपपरिक्खेय्य। यस्मा च खो धम्मं धारेति तस्मा अत्थं उपपरिक्खति। तस्मा अत्थूपपरिक्खाय धम्मधारणा बहुकारा" ति।

"धम्मधारणाय पन, भो गोतम, कतमो धम्मो बहुकारो? धम्मधारणाय बहुकारं धम्मं मयं भवन्तं गोतमं पुच्छामा" ति।

[N. 439, B. 387] धम्मधारणाय खो, भारद्वाज, धम्मस्सवनं बहुकारं। नो चेतं धम्मं सुणेय्य, नयिदं धम्मं धारेय्य। यस्मा च खो धम्मं सुणाति तस्मा धम्मं धारेति। तस्मा धम्मधारणाय धम्मस्सवनं बहुकारं" ति।

"धम्मस्सवनाय पन, भो गोतम, कतमो धम्मो बहुकारो? धम्मस्सवनस्स बहुकारं धम्मं मयं भवन्तं गोतमं पुच्छामा" ति।

[R. 176] "धम्मस्सवनस्स खो, भारद्वाज, सोतावधानं बहुकारं। नो चेतं सोतं ओदहेय्य, नयिदं धम्मं सुणेय्य। यस्मा च खो सोतं ओदहति तस्मा धम्मं सुणाति। तस्मा धम्मस्सवनस्स सोतावधानं बहुकारं" ति।

"सोतावधानस्स पन, भो गोतम, कतमो धम्मो बहुकारो? सोतावधानस्स बहुकारं धम्मं मयं भवन्तं गोतमं पुच्छामा" ति।

"सोतावधानस्स खो, भारद्वाज, पयिरुपासना बहुकारा। नो चेतं पयि-

"भो गौतम! इस अर्थोपपरीक्षण का सर्वोपकारक धर्म कौन सा है…?"

"भारद्वाज! इस अर्थोपपरीक्षण का बहुशः उपकारक धर्म है—धर्मधारणा।…।"

"भो गौतम! इस धर्मधारणा का सर्वोपकारक धर्म कौन है…?"

"भारद्वाज! इस धर्मधारण का अत्यन्त सहायक है—धर्मश्रवण।… ।"

"और भो गौतम! इस धर्मश्रवण का बहूपकारक धर्म कौन सा है…?"

"भारद्वाज! इस धर्मश्रवण का अत्यन्त सहायक है श्रोत्रेन्द्रिय की अवधानता (एकाग्रता)।… ।"

"और भो गौतम! इस श्रोत्रावधानता का बहूपकारक धर्म कौन है…?"

"हाँ, भारद्वाज! इस श्रोत्रावधानता की अतिशय उपकारक धर्म है (गुरु की) पर्युपासना (सेवा)।…।"

रुपासेय्य, नयिदं सोतं ओदहेय्य। यस्मा च खो पयिरुपासति तस्मा सोतं ओदहति। तस्मा सोतावधानस्स पयिरुपासना बहुकारा" ति।

"पयिरुपासनाय पन, भो गोतम, कतमो धम्मो बहुकारो? पयिरुपासनाय बहुकारं धम्मं मयं भवन्तं गोतमं पुच्छामा" ति।

"पयिरुपासनाय खो, भारद्वाज, उपसङ्कमनं बहुकारं। नो चेतं उपसङ्कमेय्य, नयिदं पयिरुपासेय्य। यस्मा च खो उपसङ्कमति तस्मा पयिरुपासति। तस्मा पयिरुपासनाय उपसङ्कमनं बहुकारं" ति।

"उपसङ्कमनस्स पन, भो गोतम, कतमो धम्मो बहुकारो? उपसङ्कमनस्स बहुकारं धम्मं मय भवन्तं गोतमं पुच्छामा" ति।

"उपसङ्कमनस्स खो, भारद्वाज, सद्धा बहुकारा। नो चेतं सद्धा जायेथ, नयिदं उपसङ्कमेय्य। यस्मा च खो सद्धा जायति तस्मा उपसङ्कमति। तस्मा उपसङ्कमनस्स सद्धा बहुकारा" ति।

३. भारद्वाजसरणगमनं

"सच्चानुरक्खणं मयं भवन्तं गोतमं अपुच्छिम्ह, सच्चानुरक्खणं भवं गोतमो ब्याकासि; तं च पनम्हाकं रुच्चति चेव खमति च तेन चम्ह अत्तमना। सच्चानुबोधं मयं भवन्तं गोतमं अपुच्छिम्ह, सच्चानुबोधं [N. 440] भवं गोतमो ब्याकासि; तं च पनम्हाकं रुच्चति चेव खमति च तेन चम्ह

"भो गौतम! इस पर्युपासना का सर्वतोऽधिक सहायक धर्म कौन होगा?…।"

"हाँ, भारद्वाज! पर्युपासना का सहायक धर्म है—उपसंक्रमण (गुरु के पास जाना)…।"

"और भो गौतम! इस उपसंक्रमण का सबसे अधिक सहायक कौन है जिसके सहारा लेकर गुरु के पास जाया जा सके…?"

"भारद्वाज! इस उपसंक्रमण की सबसे अधिक उपकारिका है—श्रद्धा। यदि श्रद्धा न हो तो उपसंक्रमण भी नहीं हो पायगा। क्योंकि श्रद्धा होती है इसलिये जिज्ञासु का गुरु तक उपसंक्रमण हो जाता है। अतः श्रद्धा धर्म उपसंक्रमण का सर्वश्रेष्ठ सहायक (उपकारी) है।"

३. भारद्वाज का भगवान् की शरण में जाना

"सत्यानुरक्षण के विषय में हमने आप गौतम से पूछा, आप ने उस सत्यानुरक्षण का बहुत ठीक व्याख्यान (स्पष्टीकरण) किया। वह व्याख्यान हमको भी रुचा, पसन्द आया। इससे हमारा चित्त आह्लादित हो गया। सत्यानुबोध के विषय में

अत्तमना। सच्चानुप्पत्तिं मयं भवन्तं गोतमं अपुच्छिम्ह, सच्चानुप्पत्तिं भवं गोतमो ब्याकासि; तं च पनम्हाकं रुच्चति चेव खमति च तेन चम्ह अत्त-
[B. 388] मना। सच्चानुप्पत्तिया बहुकारं धम्मं मयं भवन्तं गोतमं
[R. 177] अपुच्छिम्ह, सच्चानुप्पत्तिया बहुकारं धम्मं भवं गोतमो ब्याकासि; तं च पनम्हाकं रुच्चति चेव खमति च तेन चम्ह अत्तमना। यं यदेव च मयं भवन्तं गोतमं अपुच्छिम्ह तं तदेव भवं गोतमो ब्याकासि; तं च पनम्हाकं रुच्चति चेव खमति च तेन चम्ह अत्तमना। मयं हि, भो गोतम, पुब्बे एवं जानाम—'के च मुण्डका समणका इब्भा कण्हा बन्धुपादापच्चा, के च धम्मस्स अञ्ञातारो' ति! अजनेसि वत मे भवं गोतमो समणेसु समणपेमं, समणेसु समणपसादं, समणेसु समणगारवं। अभिक्कन्तं भो गोतम··· पे०···उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति।

●

हमने आप से पूछा···। सत्यानुप्राप्ति के विषय में हमने आप से···। सत्यानुप्राप्ति में सहायक बहुत से धर्मों के विषय में पूछा, आपने उनका भी बहुत सुन्दर व्याख्यान किया। वह हमको जँचा, पसन्द आया, हमारा मन प्रसन्न हुआ। भो गौतम! कहने का सार यह है कि आपसे हमने जो कुछ भी पूछा, आप ने उसका ठीक-ठीक उत्तर दिया। वह सब कुछ हमारे मन को भाया। भो गौतम! पहले हम यह जानते थे--'कहाँ ये नीच, गये गुजरे, काले, ब्रह्मा के पैर से उत्पन्न (शूद्र), सिर मुँडे श्रमण और कहाँ धर्म के ज्ञाता पण्डितजन!' परन्तु आप ने मेरे हृदय में (ऐसा शास्त्रसम्मत व्याख्यान कर) श्रमणों के प्रति प्रेम और आत्मीयता पैदा कर दी, श्रद्धा एवं सम्मान पैदा कर दिया। आश्चर्य है, भो गौतम! अद्भुत है, भो गौतम! आज से आगे आप मुझे जीवनभर (प्राण रहने तक) अपना शरणागत उपासक समझें"॥

चङ्कीसुत्त समाप्त॥

●

४६. एसुकारीसुत्तं[1]

१. चतस्सो पारिचरिया

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति [N. 441] जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो एसुकारी ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो एसुकारी ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"ब्राह्मणा, भो गोतम, चतस्सो पारिचरिया पञ्ञापेन्ति—ब्राह्मणस्य पारिचरियं पञ्ञापेन्ति, खत्तियस्य पारिचरियं पञ्ञापेन्ति, वेस्सस्स पारिचरियं पञ्ञापेन्ति, सुद्दस्स पारिचरियं पञ्ञापेन्ति। तत्रिदं, भो गोतम, ब्राह्मणा ब्राह्मणस्स पारिचरियं पञ्ञापेन्ति—'ब्राह्मणो वा ब्राह्मणं परिचरेय्य, खत्तियो वा ब्राह्मणं परिचरेय्य, वेस्सो वा ब्राह्मणं परिचरेय्य, सुद्दो वा ब्राह्मणं परिचरेय्या' ति। इदं खो, भो गोतम, ब्राह्मणा ब्राह्मणस्स पारिचरियं पञ्ञापेन्ति। तत्रिदं, भो [R. 178] गोतम, ब्राह्मणा खत्तियस्स पारिचरियं पञ्ञापेन्ति—'खत्तियो वा खत्तियं परिचरेय्य, वेस्सो वा खत्तियं परिचरेय्य, सुद्दो वा खत्तियं परिचरेय्या' ति। इदं खो, भो गोतम, ब्राह्मणा खत्तियस्स पारिचरियं पञ्ञापेन्ति। तत्रिदं, भो गोतम, ब्राह्मणा वेस्सस्स पारिचरियं पञ्ञापेन्ति—'वेस्सो वा वेस्सं परिचरेय्य, सुद्दो वा वेस्सं परिचरेय्या' ति। इदं खो भो गोतम, ब्राह्मणा वेस्सस्स पारिचरियं पञ्ञापेन्ति। तत्रिदं, भो गोतम, ब्राह्मणा सुद्दस्स

---

४६. एसुकारीसूत्र

१. चार प्रकार की परिचर्या

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्तीस्थित, अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। तब एसुकारी ब्राह्मण, जहाँ भगवान् थे वहाँ, पहुँचा। पहुँचकर उसने भगवान् से कुशलक्षेम पूछा। पूछकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे एसुकारी ब्राह्मण ने भगवान् से यों कहा—"भो गौतम! ब्राह्मण चार प्रकार की परिचर्या (सेवा-धर्म) बतलाते हैं—ब्राह्मण की परिचर्या, क्षत्रिय की परिचर्या, वैश्य की परिचर्या, एवं शूद्र की परिचर्या। भो गौतम! वहाँ वे ब्राह्मण उस परिचर्या का व्याख्यान (स्पष्टीकरण) यों करते हैं—'ब्राह्मण ब्राह्मण की परिचर्या करे, या क्षत्रिय ब्राह्मण की…या वैश्य… या शूद्र ब्राह्मण की परिचर्या करे'। इस तरह वे ब्राह्मण की परिचर्या बताते हैं। वहीं वे ब्राह्मण क्षत्रिय की परिचर्या बताते हैं—'क्षत्रिय क्षत्रिय की…या वैश्य क्षत्रिय

---

१. फासुकारीसुत्तन्त—रा० सा० हि० सं०।

[B. 389] पारिचरियं पञ्ञापेन्ति—'सुद्दो व सुद्दं परिचरेय्य। को पनञ्ञो सुद्दं परिचरिस्सती' ति ! इदं खो, भो गोतम, ब्राह्मणा सुद्दस्स पारिचरियं पञ्ञापेन्ति। ब्राह्मणा, भो गोतम, इमा चतस्सो पारिचरिया पञ्ञापेन्ति। इध भवं गोतमो किमाहा" ति ?

२. "किं पन, ब्राह्मण, सब्बो लोको ब्राह्मणानं एतदब्भनुजानाति—'इमा चतस्सो पारिचरिया पञ्ञापेन्तू' " ति

[N. 442] "नो हिदं, भो गोतम"।

"सेय्यथापि, ब्राह्मण, पुरिसो दळिद्दो अस्सको अनाळ्हियो। तस्स अकामस्स बिलं ओलग्गेय्युं—'इदं ते, अम्भो पुरिस, मंसं खादितब्बं, मूलं च अनुप्पदातब्बं' ति। एवमेव खो, ब्राह्मण, ब्राह्मणा अप्पटिञ्ञाय तेसं समणब्राह्मणानं, अथ च पनिमा चतस्सो पारिचरिया पञ्ञापेन्ति।

"नाहं, ब्राह्मण, 'सब्बं परिचरितब्बं' ति वदामि; नाहं, ब्राह्मण, 'सब्बं न परिचरितब्बं' ति वदामि। य हिस्स, ब्राह्मण, परिचरतो पारिचरियाहेतु पापियो अस्स न सेय्यो, नाहं तं 'परिचरितब्बं' ति वदामि; यं च ख्वास्स,

---

की···या शूद्र क्षत्रिय की परिचर्या करे'। इस तरह वे यह क्षत्रियनिमित्तक परिचर्या बताते हैं। वहीं वे, भो गौतम ! वैश्यनिमित्तक परिचर्या बताते हुए कहते हैं--'या तो वैश्य ही वैश्य की···या फिर शूद्र ही वैश्य की परिचर्या करे'। इस तरह वे वैश्यनिमित्तक···। और फिर वे शूद्रनिमित्तक परिचर्या यों बताते हैं--'शूद्र ही शूद्र की परिचर्या करे। दूसरा कोई क्या शूद्र की परिचर्या करेगा !' इस तरह ब्राह्मण लोग ये चार प्रकार की परिचर्या बताते हैं। इस विषय पर, भो गौतम ! आप को क्या कहना है ?"

२. "क्या, ब्राह्मण ! समग्र संसार ब्राह्मणों को इस बात की अनुज्ञा देता है कि वे इन चारों परिचर्याओं का प्रज्ञापन करें ?"

"नहीं, भो गौतम !"

"ब्राह्मण ! जैसे कोई अत्यन्त दरिद्र पुरुष हो, जिसके पास न रुपया-पैसा हो, न कोई जीवनयापन की अन्य सुविधा। उसके न चाहते हुए भी कोई उसके लिये मांस का एक भाग (बिल) लगाकर रख दे और कहे--'अरे पुरुष ! मांस का यह हिस्सा तुम्हारे लिये है, इसका तुम्हें मूल्य चुकाना होगा'; इसी तरह, ब्राह्मण, संसार के अन्य श्रमण-ब्राह्मणों के पूछे बिना ही, वे उन चार प्रकार की परिचर्याओं को (दूसरों के लिये) प्रज्ञापित करते हैं।

"ब्राह्मण ! यहाँ मैं न तो यह कहता हूँ कि सभी परिचर्या के योग्य हैं, और न मैं यह कहता हूँ सभी परिचर्या के लिये अयोग्य हैं। ब्राह्मण ! जिसकी परिचर्या

ब्राह्मण, परिचरतो पारिचरियाहेतु सेय्यो अस्स न पापियो तमहं 'परिचरितब्बं' ति वदामि। खत्तियं चे पि, ब्राह्मण, एवं पुच्छेय्युं--'यं वा ते परिचरतो पारिचरियाहेतु पापियो अस्स न सेय्यो, यं वा ते परिचरतो पारिचरियाहेतु सेय्यो अस्स, न पापियो; कमेत्थ परिचरेय्यासो' [R. 179] ति ? खत्तियो पि हि, ब्राह्मण, सम्मा ब्याकरमानो एवं ब्याकरेय्य—'यं हि मे परिचरतो पारिचरियाहेतु पापियो अस्स न सेय्यो, नाहं तं परिचरेय्यं, यं च खो मे परिचरतो पारिचरियाहेतु सेय्यो अस्स न पापियो तमहं परिचरेय्यं' ति। ब्राह्मणं चे पि, ब्राह्मण···पे०···वेस्सं चे पि, ब्राह्मण···पे०···सुद्दं चे पि, ब्राह्मण, एवं पुच्छेयुं--'यं वा ते परिचरतो पारिचरियाहेतु पापियो अस्स, न सेय्यो, यं वा ते परिचरतो पारिचरियाहेतु सेय्यो, अस्स न पापियो; कमेत्थ परिचरेय्यासी' ति ? सुद्दो पि हि, ब्राह्मण, सम्मा ब्याकरमानो एवं ब्याकरेय्य--'यं हि मे परिचरतो पारिचरियाहेतु पापियो अस्स, न सेय्यो, नाहं तं परिचरेय्यं; यं च खो मे परिचरतो पारिचरियाहेतु सेय्यो अस्स, न पापियो, तमहं परिचरेय्यं' ति।

नाहं ब्राह्मण, 'उच्चाकुलीनता सेय्यंसो' ति वदामि, न पनाहं, ब्राह्मण, 'उच्चाकुलीनता पापियंसो' ति वदामि। नाहं, ब्राह्मण, 'उळार- [B. 390] वण्णता सेय्यंसो' ति वदामि, न पनाहं, ब्राह्मण, 'उळारवण्णता पापियंसो' ति वदामि। नाहं, ब्राह्मण, 'उळारभोगता सेय्यंसो' ति वदामि, न पनाहं ब्राह्मण, 'उळारभोगता पापियंसो' ति वदामि।

करते हुए, परिचर्या के कारण, पाप (अपना अहित) होता हो वह परिचर्या नहीं करनी चाहिये। और जिसकी परिचर्या करते हुए, परिचर्या के कारण श्रेय (अपना हित) होता हो वह परिचर्या करनी चाहिये। ब्राह्मण ! क्षत्रिय को भी यदि यह पूछा जाय—'जिसकी परिचर्या करते हुए, उस परिचर्या के कारण, तुम्हारा अहित होता हो या परिचर्या करते हुए, उस परिचर्या के कारण, तुम्हारा हित ही होता हो अहित न होता हो तो बताओ उन दोनों परिचर्याओं में से कौन-सी परिचर्या करना तुम उचित समझोगे ?' ब्राह्मण ! वह क्षत्रिय भी यदि सच बोलना चाहेगा तो यही कहेगा कि--'जिस परिचर्या···मेरा हित होता हो, अहित नहीं—वही परिचर्या मैं करना चाहूँगा; और जिसके कारण, जिसके करते मेरा अहित हो, वह मैं नहीं करना चाहूँगा'। ब्राह्मण ! ब्राह्मण को भी···वैश्य को भी···शूद्र को भी यदि यह पूछा जाय···वह मैं नहीं करना चाहूँगा।''

"ब्राह्मण ! मैं उच्चकुलीनता को ही एकमात्र श्रेयस्कर नहीं बतलाता; न मैं उदार (उच्च) वर्णता को ही श्रेयस्कर मानता हूँ; और ब्राह्मण ! न मैं उदारभोगों

३. "उच्चाकुलीनो पि हि, ब्राह्मण, इधेकच्चो पाणातिपाती होति, अदि-[N. 443] न्नादायी होति, कामेसुमिच्छाचारी होति, मुसावादी होति, पिसुणवाचो होति, फरुसवाचो होति, सम्फप्पलापी होति, अभिज्झालु होति, ब्यापन्नचित्तो होति, मिच्छादिट्ठि होति। तस्मा 'न उच्चाकुलीनता सेय्यंसो' ति वदामि। उच्चाकुलीनो पि हि, ब्राह्मण, इधेकच्चो पाणातिपाता पटिविरतो होति; अदिन्नादाना पटिविरतो होति, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, मुसावादा पटिविरतो होति, पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति, फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति, सम्फप्पलापा पटिविरतो होति, अनभिज्झालु होति, अब्यापन्नचित्तो होति, सम्मादिट्ठि होति। तस्मा 'न उच्चाकुलीनता पापियंसो' ति वदामि।

४. "उळारवण्णो पि हि, ब्राह्मण···पे०···उळारभोगो पि हि, ब्राह्मण, इधेकच्चो पाणातिपाती होति···पे०···मिच्छादिट्ठि होति। तस्मा 'न उळारभोगता सेय्यंसो' ति वदामि। उळारभोगो पि हि, ब्राह्मण, इधेकच्चो पाणातिपाता पटिविरतो होति···पे०···सम्मादिट्ठि होति। तस्मा 'न उळारभोगता [R. 180] पापियंसो' ति वदामि। नाहं, ब्राह्मण, 'सब्बं परिचरितब्बं' ति वदामि, न पनाहं, ब्राह्मण, 'सब्बं न परिचरितब्बं' ति वदामि। यं

(धन-धान्यसम्पन्नता) को ही एकान्ततः श्रेयस्कर मानता हूँ ! न मैं इन तीनों को एकान्ततः अहितकर ही बताता हूँ।"

३. क्योंकि ब्राह्मण ! यहाँ कोई उच्चकुलीन भी कभी-कभी हिंसारत, चोर, व्यभिचारी, झूठा, चुगलखोर, कटुभाषी, बकवादी, अभिध्यालु (लोभी), व्यापन्नचित्त (द्वेषी) या मिथ्या धारणा वाला हो सकता है; इसलिये मैं 'उच्चकुलीन ही एकान्ततः श्रेयस्कर नहीं होता'—ऐसा कहता हूँ। और उधर कभी-कभी उच्चकुलीन ही हिंसा, चोरी, व्यभिचार, असत्य भाषण, चुगलखोरी कटुभाषण, बकवाद, लोभ, द्वेष या मिथ्या धारणाओं से दूर रहने वाला तथा सम्यग्दृष्टि होता है; इसलिये 'उच्चकुलीन व्यक्ति सर्वथा अहितकर ही होता है'—ऐसा मैं कहता हूँ।

४. "उच्चवर्ण वाला भी, ब्राह्मण !···पूर्ववत्···उच्च भोग (धन-धान्य) वाला कोई पुरुष हिंसक··· मिथ्यादृष्टि होता है; इसलिये 'उच्चभोग वाला ही एकान्ततः श्रेयस्कर है'—ऐसा मैं नहीं मानता। उधर दूसरा उदारभोग पुरुष हिंसा, चोरी··· मिथ्यादृष्टि से दूर रहता हुआ सम्यग्दृष्टि भी हो सकता है इसलिये भी मैं 'उच्चभोग-सम्पन्न पुरुष एकान्ततः अहितकर ही होता है'—ऐसा भी मैं नहीं मानता। अतः मैं, ब्राह्मण ! 'सभी परिचरणीय हैं' या 'सभी अपरिचरणीय हैं'—ऐसा नहीं

हिस्स, ब्राह्मण, परिचरतो पारिचरियाहेतु सद्धा वड्ढति, सीलं वड्ढति, सुतं वड्ढति, चागो वड्ढति, पञ्ञा वड्ढति, तमहं 'परिचरितब्बं' ति वदामि। यं हिस्स, ब्राह्मण, परिचरतो पारिचरियाहेतु न सद्धा वड्ढति, न सीलं वड्ढति, न सुतं वड्ढति, न चागो वड्ढति, न पञ्ञा वड्ढति, नाहं तं 'परिचरितब्बं' ति वदामी" ति।

२. चत्तारि धनानि

५. एवं वुत्ते, एसुकारी ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"ब्राह्मणा, भो गोतम, चत्तारि धनानि पञ्ञापेन्ति—ब्राह्मणस्स सं धनं पञ्ञापेन्ति, खत्तियस्स सं धनं पञ्ञापेन्ति, वेस्सस्स सं धनं पञ्ञापेन्ति, सुद्दस्स [B. 391] सं धनं पञ्ञापेन्ति। तत्रिदं, भो गोतम, ब्राह्मणा ब्राह्मणस्स सं धनं पञ्ञापेन्ति भिक्खाचरियं; भिक्खाचरियं च पन ब्राह्मणो सं धनं अतिमञ्ञमानो अकिच्चकारी होति गोपो व अदिन्नं आदियमानो ति। इदं [N. 444] खो, भो गोतम, ब्राह्मणा ब्राह्मणस्स सं धनं पञ्ञापेन्ति। तत्रिदं, भो गोतम, ब्राह्मणा खत्तियस्स सं धनं पञ्ञापेन्ति धनुकलापं; धनुकलापं च पन खत्तियो सं धनं अतिमञ्ञमानो अकिच्चकारी होति गोपो व अदिन्नं आदियमानो ति। इदं खो, भो गोतम, ब्राह्मणा खत्तियस्स सं धनं पञ्ञापेन्ति। तत्रिदं, भो गोतम, ब्राह्मणा वेस्सस्स सं धनं पञ्ञापेन्ति कसिगोरक्खं; कसिगोरक्खं च पन वेस्सो सं धनं अतिमञ्ञमानो अकिच्चकारी होति गोपो व अदिन्नं आदियमानो ति। इदं खो, भो गोतम, ब्राह्मणा वेस्सस्स

मानता। ब्राह्मण ! जिसकी परिचर्या से परिचर्यानिमित्तक श्रद्धा, शील, धर्मश्रवण, त्याग और प्रज्ञा, आदि गुण बढ़ते हों उसको मैं 'परिचरणीय' मानता हूँ; और जिसकी परिचर्या के कारण उस परिचर्यानिमित्त से न श्रद्धा, न शील, न धर्मश्रवण, न त्याग और न प्रज्ञा बढ़ती है उसे मैं 'परिचरणीय' नहीं मानता।"

२. चार प्रकार के धन

५. ऐसा कहे जाने पर, भगवान् से ब्राह्मण ने यह पूछा—"भो गौतम ! ब्राह्मण लोग चार धन बताते हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र का पृथक् स्वधन बताते हैं। वे कहते हैं---'ब्राह्मण का स्वधन है भिक्षाचर्या। इस भिक्षाचर्या-स्वधन को अतिक्रान्त करने वाला ब्राह्मण अदत्त को लेने वाले ग्वाले की तरह 'अकृत्यकारी' कहलाता है। क्षत्रिय का स्वधन है--धनुष्कलाप (शस्त्रविद्या)। इस धनुष्कलाप स्वधन का अतिक्रमण करने वाला 'अकृत्यकारी'···होता है। इसी तरह ब्राह्मण लोग वैश्य का स्वधन—कृषि एवं गोरक्षा बतलाते हैं। इस कृषि गोरक्षा स्वधन को अतिक्रान्त करने वाला वैश्य···'अकृत्यकारी' होता है। और भो गौतम ! ब्राह्मण लोग शूद्र का

सं धनं पञ्ञापेन्ति । तत्रिदं, भो गोतम, ब्राह्मणा सुद्दस्स सं धनं पञ्ञापेन्ति असितब्याभङ्गिं; असितब्याभङ्गिं च पन सुद्दो सं धनं अतिमञ्ञमानो अकिच्चकारी होति गोपो व अदिन्नं आदियमानो ति । इदं खो, भो गोतम, ब्राह्मणा सुद्दस्स सं धनं पञ्ञापेन्ति । ब्राह्मणा, भो गोतम, इमानि चत्तारि धनानि पञ्ञापेन्ति । इध भवं गोतमो किमाहा" ति ?

६. "किं पन, ब्राह्मण, सब्बो लोको ब्राह्मणानं एतदब्भनुजानाति-- "इमानि चत्तारि धनानि पञ्ञापेन्तू' " ति ?

[R. 181] "नो हिदं, भो गोतम" ।

"सेय्यथापि, ब्राह्मण, पुरिसो दळिद्दो अस्सको अनाळ्हियो । तस्स अकामस्स बिलं ओलग्गेय्युं—'इदं ते, अम्भो पुरिस, मंसं खादितब्बं, मूलं च अनुप्पदातब्बं' ति । एवमेव खो, ब्राह्मण, ब्राह्मणा अप्पटिञ्ञाय तेसं समण-ब्राह्मणानं, अथ च पनिमानि चत्तारि धनानि पञ्ञापेन्ति । अरियं खो अहं, ब्राह्मण, लोकुत्तरं धम्मं पुरिसस्स सं धनं पञ्ञापेमि । पोराणं खो पनस्स मातापेत्तिकं कुलवंसं अनुस्सरतो यत्थ यत्थेव अत्तभावस्स अभिनिब्बत्ति होति तेन तेनेव सङ्ख्यं गच्छति । खत्तियकुले चे अत्तभावस्स अभिनिब्बत्ति होति 'खत्तियो' त्वेव सङ्ख्यं गच्छति; ब्राह्मणकुले चे अत्तभावस्स अभिनिब्बत्ति होति 'ब्राह्मणो' त्वेव सङ्ख्यं गच्छति; वेस्सकुले चे

स्वधन--असितव्याभङ्गि (लकड़ी काटना, ढोना आदि) बतलाते हैं । इस असितव्याभङ्गि स्वधन को अतिक्रान्त करने वाला शूद्र भी अदत्तादान लेने वाले गोप की तरह 'अकृत्यकारी' ही कहलाता है । इस तरह भो गौतम ! ब्राह्मण लोग चार वर्णों के चार 'स्वधन' बताते हैं । इस पर आप क्या कहना चाहते हैं ?"

६. "क्या ब्राह्मण ! सारी दुनियाँ ने इन ब्राह्मणों को यह अधिकार दे दिया है कि वे उन चारों वर्णों के ये चार स्वधन प्रज्ञापित करें ?"

"ऐसा तो नहीं है, भो गौतम !"

"तो फिर ब्राह्मण ! यह बात तो ऐसी ही हुई जैसे कोई अकिञ्चन व निर्धन दरिद्र पुरुष हो, उसके सामने कोई एक मांस का टुकड़ा रख दे, और कहे—'अरे पुरुष ! इसे खा डालो, और इसका मूल्य दे दो ।' इसी तरह, ब्राह्मण ! ये ब्राह्मण, बिना समझदार श्रमण-ब्राह्मणों से पूछे, इन चार धनों का (स्वेच्छया) प्रज्ञापन करते हैं । ब्राह्मण ! मैं तो लोकोत्तर आर्यधर्म को ही पुरुष का स्वधन प्रज्ञापित करता हूँ । ब्राह्मण ! माता-पिता के प्राचीन कुलवंश का अनुस्मरण करते हुए जहाँ इस पुरुष का जन्म होता है, वही उसकी संज्ञा होती है । क्षत्रियकुल में इसके उत्पन्न होने पर इसकी 'क्षत्रिय' संज्ञा होती है; ब्राह्मणकुल में···वैश्यकुल में···शूद्रकुल में

अत्तभावस्स अभिनिब्बत्ति होति 'वेस्सो' त्वेव सङ्खं गच्छति; सुद्दकुले चे अत्तभावस्स अभिनिब्बत्ति होति 'सुद्दो' त्वेव सङ्खं गच्छति। [B. 392] सेय्यथापि ब्राह्मण, यं यदेव पच्चयं पटिच्च अग्गि जलति तेन [N. 445] तेनेव सङ्खं गच्छति। कट्ठं चे पटिच्च अग्गि जलति 'कट्ठग्गि' त्वेव सङ्खं गच्छति; सकलिकं चे पटिच्च अग्गि जलति 'सकलिकग्गि' त्वेव सङ्खं गच्छति; तिणं चे पटिच्च अग्गि जलति 'तिणग्गि' त्वेव सङ्खं गच्छति; गोमयं चे पटिच्च अग्गि जलति 'गोमयग्गि' त्वेव सङ्खं गच्छति। एवमेव खो अहं, ब्राह्मण, अरियं लोकुत्तरं धम्मं पुरिसस्स सं धनं पञ्ञापेमि। पोराणं खो पनस्स मातापेत्तिकं कुलवंसं अनुस्सरतो यत्थ यत्थेव अत्तभावस्स अभिनिब्बत्ति होति तेन तेनेव सङ्खं गच्छति। खत्तियकुले चे अत्तभावस्स अभिनिब्बत्ति होति 'खत्तियो' त्वेव सङ्खं गच्छति; ब्राह्मणकुले चे अत्तभावस्स अभिनिब्बत्ति होति 'ब्राह्मणो' त्वेव सङ्खं गच्छति; वेस्सकुले चे अत्तभावस्स अभिनिब्बत्ति होति 'वेस्सो' त्वेव सङ्खं गच्छति; सुद्दकुले चे अत्तभावस्स अभिनिब्बत्ति होति 'सुद्दो' त्वेव सङ्खं गच्छति।

"खत्तियकुला चे पि, ब्राह्मण, अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति, सो च तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं आगम्म पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति, अब्रह्मचरिया पटिविरतो होति, मुसावादा पटिविरतो होति, पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति, फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति, सम्फप्पलापा पटिविरतो होति, अनभिज्झालु

इसके उत्पन्न होने पर इसकी 'शूद्र' संज्ञा होती है। ब्राह्मण ! जैसे जिस-जिस प्रत्यय (आश्रय) को लेकर अग्नि जलती है लोक में वह उसी नाम से व्यवहृत होती है। यदि वह अग्नि काष्ठ के आश्रय से प्रज्वलित होती है तो वह 'काष्ठाग्नि' कहलाती है, शकलिका (चैली) के आश्रय से जलायी अग्नि 'शकलिकाग्नि'···,तृण के सहारे से···'तृणाग्नि'···, गोमय (गोबर) के सहारे से···'गोमयाग्नि' कहलाती है। इसी तरह ब्राह्मण ! मैं तो आर्य लोकोत्तर धर्म को ही पुरुष का 'स्वधन' मानता हूँ। अतः माता-पिता के प्राचीनकुल-वंश का अनुस्मरण करते हुए इस पुरुष का जहाँ जन्म होता है वही उसकी संज्ञा होती है। क्षत्रियकुल में इसके उत्पन्न होने पर··· पूर्ववत्···शूद्रकुल में इसके उत्पन्न होने पर इसकी 'शूद्र' संज्ञा होती है।

"ब्राह्मण ! यदि कोई क्षत्रिय कुल से, घर से बेघर हो, प्रव्रजित होता है, और बुद्धोपदिष्ट धर्म को स्वीकार कर प्राणातिपात से···चोरी से···व्यभिचार से···झूठ से···चुगलखोरी से···कटु वाणी से···बकवाद से···लोभ से···द्वेष से प्रतिविरत होता है और सम्यग्दृष्टि होता है तो वह न्याय्य (या ज्ञातव्य) कुशल धर्म का

होति, अब्यापन्नचित्तो होति, सम्मादिट्ठि होति, आराधको होति ञायं धम्मं कुसलं।

[R. 182] "ब्राह्मणकुला चे पि, ब्राह्मण, अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति···पे०···सम्मादिट्ठि होति, आराधको होति ञायं धम्मं कुसलं।

"वेस्सकुला चे पि, ब्राह्मण, अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति, सो च तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं आगम्म पाणातिपाता पटिविरतो होति ··पे०···सम्मादिट्ठि होति, आराधको होति ञायं धम्मं कुसलं।

"सुद्दकुला चे पि, ब्राह्मण, अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति, सो च तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं आगम्म पाणातिपाता पटिविरतो होति [N. 446] ···पे०···सम्मादिट्ठि होति, आराधको होति ञायं धम्मं कुसलं।

[B. 393] "तं किं मञ्ञसि, ब्राह्मण, ब्राह्मणो व नु खो पहोति अस्मिं पदेसे अवेरं अब्यापज्झं मेत्तचित्तं भावेतुं, नो खत्तियो नो वेस्सो नो सुद्दो" ति ?

"नो हिदं, भो गोतम ! खत्तियो पि हि, भो गोतम, पहोति अस्मिं पदेसे अवेरं अब्यापज्झं मेत्तचित्तं भावेतुं; ब्राह्मणो पि हि, भो गोतम···वेस्सो पि हि, भो गोतम···सुद्दो पि हि भो गोतम···सब्बे पि हि, भो गोतम, चत्तारो वण्णा पहोन्ति अस्मिं पदेसे अवेरं अब्यापज्झं मेत्तचित्तं भावेतुं" ति।

"एवमेव खो, ब्राह्मण, खत्तियकुला चे पि अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति, सो च तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं आगम्म पाणातिपाता पटिविरतो होति···पे०···सम्मादिट्ठि होति, आराधको होति ञायं धम्मं कुसलं।

आराधन करने वाला है। ब्राह्मण ! यदि कोई ब्राह्मणकुल से···वैश्य कुल से··· शूद्र कुल से···आराधन करने वाला होता है।

"तो क्या मानते हो ब्राह्मण ! यहाँ कोई ब्राह्मण ही वैर एवं व्यापाद (द्वेष) रहित हो मैत्रीचित्त की भावना कर सकता है; क्षत्रिय वैश्य या शूद्र नहीं ?"

"नहीं, भो गौतम ! क्षत्रिय भी इस प्रदेश में बैररहित द्वेषरहित हो मैत्रीचित्त की भावना कर सकता है, वैश्य भी···शूद्र भी···। भो गौतम चारों ही वर्ण यहाँ वैर व द्वेष रहित हो मैत्रीचित्त की भावना करने में समर्थ हैं।"

"इसी तरह, ब्राह्मण ! क्षत्रिय कुल से कोई घर से बेघर हो कर प्रव्रजित हो, तथागतोपदिष्ट धर्म को स्वीकार कर हिंसा से···चोरी से···सम्यग्दृष्टि होता है तो वह न्याय्य कुशल धर्म का आराधन करने वाला होता है।

"ब्राह्मणकुला चे पि, ब्राह्मण···वेस्सकुला चे पि, ब्राह्मण···सुद्दकुला चे पि, ब्राह्मण, अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति, सो च तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं आगम्म पाणातिपाता पटिविरतो होति···पे०···सम्मादिट्ठि होति, आराधको होति ञायं धम्मं कुसलं।

७. "तं किं मञ्ञसि, ब्राह्मण, ब्राह्मणो व नु खो पहोति सोत्तिसिनानिं आदाय नदिं गन्त्वा रजोजल्लं पवाहेतुं, नो खत्तियो नो वेस्सो नो सुद्दो" ति?

"नो हिदं, भो गोतम। खत्तियो पि हि, भो गोतम, पहोति सोत्तिसिनानिं आदाय नदिं गन्त्वा रजोजल्लं पवाहेतुं; ब्राह्मणो पि हि, भो गोतम··· वेस्सो पि हि, भो गोतम···सुद्दो पि हि, भो गोतम···सब्बे [R. 183] पि हि, भो गोतम, चत्तारो वण्णा पहोन्ति सोत्तिसिनानिं आदाय नदिं गन्त्वा रजोजल्लं पवाहेतुं" ति।

"एवमेव खो, ब्राह्मण, खत्तियकुला चे पि अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति, सो च तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं आगम्म पाणातिपाता पटिविरतो होति···पे०···सम्मादिट्ठि होति, आराधको होति [N. 447] ञायं धम्मं कुसलं। ब्राह्मणकुला चे पि···वेस्सकुला चे पि···सुद्दकुला चे पि, ब्राह्मण, अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति, सो च तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं आगम्म पाणातिपाता पटिविरतो होति···पे०···सम्मादिट्ठि होति, आराधको होति ञायं धम्मं कुसलं।

"ब्राह्मण! ब्राह्मणकुल से भी···वैश्यकुल से भी···शूद्रकुल से घर से बेघर हो ···आराधन करने वाला होता है।

७. "तो क्या मानते हो, ब्राह्मण! क्या ब्राह्मण ही साबुन-गमछा लेकर नदी पर जा स्नान करते हुए अपने शरीर का मैल छुड़ा (स्वच्छ हो) सकता है? क्षत्रिय ···वैश्य···शूद्र···नहीं?"

"नहीं, भो गौतम! ऐसी बात तो नहीं; (ब्राह्मण की तरह) क्षत्रिय भी साबुन-गमछा लेकर···वैश्य भी···शूद्र भी साबुन गमछा लेकर नदी पर जा, स्नान करते हुए अपने शरीर का मैल छुड़ा, स्वच्छ हो सकता है। भो गौतम! यों चारों वर्ण ही साबुन···स्वच्छ होने में समर्थ हैं।

"इसी तरह, ब्राह्मण! क्षत्रिय कुल से भी कोई घर से···ब्राह्मणकुल से भी कोई घर से···वैश्य कुल से भी कोई घर से···शूद्रकुल से भी घर से···सम्यग्दृष्टि होता है, वह न्याय्य कुशल धर्मों का आराधक ही होता है।

[B. 394] ८. तं "किं मञ्ञसि, ब्राह्मण, इध राजा खत्तियो मुद्धावसित्तो नानाजच्चानं पुरिसानं पुरिससतं सन्निपातेय्य--'आयन्तु भोन्तो ये तत्थ खत्तियकुला ब्राह्मणकुला राजञ्ञकुला उप्पन्ना साकस्स वा सालस्स वा सलळस्स वा चन्दनस्स वा पदुमकस्स वा उत्तरारणिं आदाय अग्गिं अभिनिब्बत्तेन्तु, तेजो पातुकरोन्तु; आयन्तु पन भोन्तो ये तत्थ चण्डालकुला नेसादकुला वेनकुला रथकारकुला पुक्कुसकुला उप्पन्ना सापानदोणिया वा सूकरदोणिया वा रजकदोणिया वा एरण्डकट्ठस्स वा उत्तरारणिं आदाय अग्गिं अभिनिब्बत्तेन्तु, तेजो पातुकरोन्तू' ति।

"तं किं मञ्ञसि, ब्राह्मण, यो एवं नु खो सो खत्तियकुला ब्राह्मणकुला राजञ्ञकुला उप्पन्नेहि साकस्स वा सालस्स वा सलळस्स वा चन्दनस्स वा पदुमकस्स वा उत्तरारणिं आदाय अग्गि अभिनिब्बत्तो तेजो पातुकतो सो एव नु ख्वास्स अग्गि अच्चिमा चेव वण्णवा च पभस्सरो च, तेन च सक्का अग्गिना अग्गिकरणीयं कातुं; यो पन सो चण्डालकुला नेसादकुला वेनकुला रथकारकुला पुक्कुसकुला उप्पन्नेहि सापानदोणिया वा सूकरदोणिया वा रजकदोणिया वा एरण्डकट्ठस्स वा उत्तरारणिं आदाय अग्गि अभिनिब्बत्तो तेजो पातुकतो स्वास्स अग्गि न चेव अच्चिमा न च वण्णवा न च पभस्सरो न च तेन सक्का अग्गिना अग्गिकरणीयं कातुं" ति ?

"नो हिदं, भो गोतम। यो पि हि सो, भो गोतम, खत्तियकुला ब्राह्मण-
[R. 184] कुला राजञ्ञकुला उप्पन्नेहि साकस्स वा सालस्स वा सळळस्स वा चन्दनस्स वा पदुमकस्स वा उत्तरारणिं आदाय अग्गि अभिनिब्बत्तो तेजो पातुकतो स्वास्स अग्गि अच्चिमा चेव वण्णवा च पभस्सरो च तेन च अग्गिना अग्गिकरणीयं कातुं; यो पि सो चण्डालकुला नेसादकुला वेनकुला
[N. 448] रथकारकुला पुक्कुसकला उप्पन्नेहि सापानदोणिया वा सूकर-

---

८. "तो क्या मानते हो, ब्राह्मण! यहाँ कोई मूर्धाभिषिक्त राजा या कोई क्षत्रिय नाना प्रकार की जातियों में उत्पन्न सौ पुरुषों को बुलावे...पूर्ववत्...अग्नि जलावें, उस से प्रकाश पैदा करें।

"तो क्या मानते हो, ब्राह्मण! उस क्षत्रिय कुल से...ब्राह्मण कुल से उत्पन्न पुरुष द्वारा जलायी गयी अग्नि कुछ तेज प्रकाशवान् होगी और चण्डाल कुल से ...पुल्कस कुल से उत्पन्न व्यक्ति द्वारा कुत्ते की पानी पीने की द्रोणि से...जलायी गयी अग्नि की प्रकाश कुछ कम होगा ?"

"भो गौतम ! ऐसी बात तो नहीं है। उस क्षत्रिय या राजन्य ब्राह्मण कुल से उत्पन्न पुरुष द्वारा या चण्डाल कुल से...पुल्कस कुल से उत्पन्न पुरुष द्वारा शाक...साल

दोणिया वा रजकदोणिया वा एरण्डकट्ठस्स वा उत्तरारणिं आदाय अग्गि अभिनिब्बत्तो तेजो पातुकतो स्वास्स अग्गि अच्चिमा चेव वण्णवा च पभस्सरो च तेन च सक्का अग्गिना अग्गिकरणीयं कातुं। सब्बो पि हि, भो गोतम, अग्गि अच्चिमा चेव वण्णवा च पभस्सरो च, सब्बेन पि सक्का अग्गिना अग्गिकरणीयं कातुं" ति।

"एवमेव खो ब्राह्मण, खत्तियकुला चे पि अगारस्मा अन- [B. 395] गारियं पब्बजितो होति…पे०… सम्मादिट्ठि होति, आराधको होति ञायं धम्मं कुसलं। ब्राह्मणकुला चे पि…वेस्सकुला चे पि…सुद्दकुला चे पि, ब्राह्मण, अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति, सो च तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं आगम्म पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति, अब्रह्मचरिया पटिविरतो होति, मुसावादा पटिविरतो होति, पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति, फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति, सम्फप्पलापा पटिविरतो होति, अनभिज्झालु होति, अब्यापन्नचित्तो होति, सम्मादिट्ठि होति, आराधको होति ञायं धम्मं कुसलं" ति।

एवं वुत्ते, एसुकारी ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच--"अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम…पे०…उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति।

•

…कुत्ते के पानी पीने की द्रोणि की लकड़ी से जलायी गयी लकड़ियों से समान अग्नि ही प्रज्वलित होगी, और प्रकाश भी समान ही करेगी; क्योंकि सभी अग्नियों में समानरूप से जलने व प्रकाश करने की शक्ति है।

"इसी तरह, ब्राह्मण! यदि क्षत्रिय कुल से…धर्मों का आराधक होता है, ब्राह्मण कुल से…वैश्य कुल से…शूद्र कुल से भी यदि घर से…न्याय्य कुशल धर्म का आराधक ही होता है।"

(भगवान् के) ऐसा कहने पर, एसुकारी ब्राह्मण ने भगवान से यों कहा—आश्चर्य है, भो गौतम! आश्चर्य है भो गौतम! जैसे कोई औंधे को सीधा कर दे…पूर्ववत्…आज से जीवन पर्यन्त मुझे आप गौतम अपना अञ्जलिबद्ध शरणागत सेवक स्वीकार करें॥

एसुकारीसुत्त समाप्त॥

•

४७. धनञ्जानिसुत्तं

१. सारिपुत्त-धनञ्जानिब्राह्मणवत्थु

[N. 449] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन आयस्मा सारिपुत्तो दक्खिणागिरिस्मिं चारिकं चरति महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं। अथ खो अञ्ञतरो [R. 185] भिक्खु राजगहे वस्सं वुत्थो येन दक्खिणागिरि येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता सारिपुत्तेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो तं भिक्खुं आयस्मा सारिपुत्तो एतदवोच—"कच्चावुसो, भगवा अरोगो च बलवा चा" ति ?

"अरोगो चावुसो, भगवा बलवा चा" ति।

"कच्चि पनावुसो, भिक्खुसङ्घो अरोगो च बलवा चा" ति ?

"भिक्खुसङ्घो पि, आवुसो, आरोगो च बलवा चा" ति।

"एत्थ, आवुसो, तण्डुलपालिद्वाराय धनञ्जानि नाम ब्राह्मणो अत्थि। [B. 396] कच्चावुसो, धनञ्जानि ब्राह्मणो अरोगो च बलवा चा" ति ?

"धनञ्जानि पि खो, आवुसो, ब्राह्मणो अरोगो च बलवा चा" ति।

"कच्चि पनावुसो, धनञ्जानि ब्राह्मणो अप्पमत्तो" ति ? कुतो पनावुसो,

---

४७. धनञ्जानिसूत्र

१. सारिपुत्र एवं धनञ्जानि ब्राह्मण का संवाद

ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह में वेणुवन स्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र दक्षिणागिरि में विशाल भिक्षुसङ्घ के साथ चारिका कर रहे थे। तब कोई भिक्षु राजगृह में वर्षावास कर, जहाँ दक्षिणागिरि में आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ, गया। जाकर सारिपुत्र से सम्मोदन (कुशल-मङ्गल प्रश्न) कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस भिक्षु से आयुष्मान् सारिपुत्र ने पूछा—

"आयुष्मन्! क्या भगवान् (शरीर से) नीरोग व शक्तिसम्पन्न हैं ?"

"हाँ, आयुष्मन्! भगवान्... शक्तिसम्पन्न हैं।"

"आयुष्मन्! क्या समग्र भिक्षुसङ्घ नीरोग व शक्तिसम्पन्न हैं ?"

"हाँ आयुष्मन्! समग्र भिक्षुसङ्घ भी नीरोग...है।"

"आयुष्मन् वहाँ तण्डुलपालिद्वार ग्राम में एक धनञ्जानि नामक ब्राह्मण है, क्या वह स्वस्थ व नीरोग है ?"

"आयुष्मन्! धनञ्जानि ब्राह्मण भी स्वस्थ व नीरोग है।"

धनञ्जानिस्स ब्राह्मणस्स अप्पमादो ! धनञ्जानि, आवुसो ब्राह्मणो राजानं निस्साय ब्राह्मणगहपतिके विलुम्पति, ब्राह्मणगहपतिके निस्साय राजानं विलुम्पति। या पिस्स भरिया सद्धा सद्धकुला आनीता सा पि कालङ्कता, अञ्ञास्स भरिया अस्सद्धा अस्सद्धकुला आनीता"।

"दुस्सुतं वतावुसो, अस्सुम्हा, दुस्सुतं वतावुसो, अस्सुम्हा; ये मयं धनञ्जानि ब्राह्मणं पमत्तं अस्सुम्हा। अप्पेव नाम मयं कदाचि [N. 450] करहचि धनञ्जानिना ब्राह्मणेन सद्धिं समागच्छेय्याम, अप्पेव नाम सिया कोचिदेव कथासल्लापो" ति !

२. अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो दक्खिणागिरिस्मिं यथाभिरन्तं विहरित्वा येन राजगहं तेन चारिकं पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन राजगहं तदवसरि। तत्र सुदं आयस्मा सारिपुत्तो राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो पुब्बण्हसमयं [R. 186] निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय राजगहं पिण्डाय पाविसि। तेन खो पन समयेन धनञ्जानि ब्राह्मणो बहिनगरे गावो गोट्ठे दुहापेति। अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो राजगहे पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो येन

"आयुष्मन् ! क्या धनञ्जानि ब्राह्मण (अपने क्रियाकर्म में) अप्रमत्त (प्रमाद-रहित) है ?"

आयुष्मन् ! आप कहाँ की बात कर रहे हैं ! धनञ्जानि ब्राह्मण और वह भी अप्रमत्त ! आयुष्मन् ! यह धनञ्जानि ब्राह्मण तो राजा सहारा लेकर गृहस्थ ब्राह्मणों को लूट रहा है, और गृहस्थ ब्राह्मणों का सहारा लेकर राजा को लूटता है। श्रद्धालु-कुल से लाई जो उसकी पहली पत्नी थी वह तो मर गयी। अब वह किसी अश्रद्धालु-कुल से दूसरी कोई कर्कशा औरत ले आया है।"

"अरे आयुष्मन् ! यह तो हमने तुम्हारे मुख से बहुत दुःसमाचार सुना, गलत खबर सुनी कि वह धनञ्जानि ब्राह्मण अपने क्रियाकलापों में अप्रमत्त हो रहे हैं ! क्या ही अच्छा होता कि हम कभी धनञ्जानि ब्राह्मण से मिल पाते और उसे कुछ समझा पाते !"

२. इसके बाद आयुष्मान् सारिपुत्र कभी दक्षिणागिरि में यथेच्छ चारिका कर राजगृह की ओर चल पड़े। उधर क्रमशः चारिका करते हुए वे राजगृह पहुँचे। वहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र वेणुवन के कलन्दकनिवास में ठहरे। तब आयुष्मान् सारिपुत्र पूर्वाह्न समय बिताकर, पात्र-चीवर ले, भिक्षाहेतु राजगृह में प्रविष्ट हुए। उस समय धनञ्जानि ब्राह्मण नगर से बाहर बनी (अपनी) गोशाला (गोष्ठ) में गाएँ दुहवा रहा था। उधर आयुष्मान् सारिपुत्र भी राजगृह में भिक्षाकर्म कर, जहाँ

धनञ्जानि ब्राह्मणो तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो धनञ्जानि ब्राह्मणो आयस्मन्तं सारिपुत्तं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच--"इतो, भो सारिपुत्त, पयो; पीयतं, ताव भत्तस्स कालो भविस्सती" ति।

"अलं, ब्राह्मण। कतं मे अज्ज भत्तकिच्चं। अमुकस्मिं मे रुक्खमूले दिवाविहारो भविस्सति। तत्थ आगच्छेय्यासी" ति। "एवं, भो" ति खो धनञ्जानि ब्राह्मणो आयस्मतो सारिपुत्तस्स पच्चस्सोसि। अथ खो धनञ्जानि ब्राह्मणो पच्छाभत्तं भुत्तपातरासो येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता सारिपुत्तेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो धनञ्जानिं ब्राह्मणं आयस्मा सारिपुत्तो एतदवोच--"कच्चिसि, धनञ्जानि, अप्पमत्तो" ति?

[B. 397] "कुतो, भो सारिपुत्त, अम्हाकं अप्पमादो येसं नो माता पितरो पोसेतब्बा, पुत्तदारो पोसेतब्बो, दासकम्मकरा पोसेतब्बा, मित्तामच्चानं मित्तामच्चकरणीयं कातब्बं, ञातिसालोहितानं ञातिसालोहितकरणीयं कातब्बं, अतिथीनं अतिथिकरणीयं कातब्बं, पुब्बपेतानं पुब्बपेतकरणीयं

धनञ्जानि ब्राह्मण का घर था वहाँ, पहुँचे। धनञ्जानि ब्राह्मण ने आयुष्मान् सारिपुत्र को दूर से ही आते देखा। देखकर वह जहाँ आयुष्मान् आ रहे थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर आयुष्मान् सारिपुत्र का यों बोला—"आओ, भो सारिपुत्र! यह दूध है, इसे पीओ! तब तक भोजन का समय भी हो जायगा।"

"बस, ब्राह्मण! रहने दो। आज तो मैं भिक्षा कर चुका हूँ। हाँ! मैं अमुक वृक्ष के नीचे दिवाविहार के लिये जा रहा हूँ। वहीं तुम (अपना काम निपटाकर) आओ।" "ठीक है, भो!"—यों धनञ्जानि ब्राह्मण ने आयुष्मान् सारिपुत्र को उत्तर दिया। तब धनञ्जानि ब्राह्मण भोजन के बाद (कुछ समय बीतने पर) कुछ जलपान कर जहाँ आयुष्मान् शारिपुत्र थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर उनसे कुशल-बार्ता कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे धनञ्जानि ब्राह्मण को आयुष्मान् सारिपुत्र ने यों पूछा—"धनञ्जानि! तुम अपने कार्यों में अप्रमत्त तो हो?"

"भो सारिपुत्र! हम क्या अप्रमत्त रह पायेंगे जिन्हें माता-पिता को पालना-पोसना पड़ता है; दास-कर्मकरों की सम्हाल रखनी पड़ती है; मित्रों-सहायकों के काम करने पड़ते हैं; नाते-रिश्तेदारों के साथ उनके अनुकूल व्यवहार करना पड़ता है; समय-समय पर अतिथियों की सेवा करनी पड़ती है; यथासमय मृत पितरों के लिये श्राद्धादि कर्म करने पड़ते हैं देवताओं की प्रीति के लिये यज्ञ-यागादि कर्म करने पड़ते

कातब्बं, देवतानं देवताकरणीयं कातब्बं, रञ्ञो राजकरणीयं [N. 451] कातब्बं, अयं पि कायो पीणेतब्बो ब्रूहेतब्बो'' ति !

२. अधम्मचारी निरया न मुच्चति

३. "तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, इधेकच्चो मातापितूनं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, तमेनं अधम्मचरियाविसमचरियाहेतु निरयं निरयपाला उपकड्ढेयुं; लभेय्य नु खो सो 'अहं खो मातापितूनं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अहोसिं, मा मं निरयं निरयपाला' ति, माता- [R. 187] पितरो वा पनस्स लभेय्युं 'एसो खो अम्हाकं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अहोसि, मा नं निरयं निरयपाला' " ति ?

"नो हिदं, भो सारिपुत्त। अथ खो नं विक्कन्दन्तं येव निरये निरयपाला पक्खिपेय्युं" ।

"तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, इधेकच्चो पुत्तदारस्स हेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, तमेनं अधम्मचरियाविसमचरियाहेतु निरयं निरयपाला उपकड्ढेय्युं; लभेय्य नु खो सो 'अहं खो पुत्तदारस्स हेतु अधम्मचारी विसमचारी अहोसिं, मा मं निरयं निरयपाला' ति, पुत्तदारो वा पनस्स लभेय्य 'एसो खो अम्हाकं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अहोसि, मा नं निरयं निरयपाला' " ति ?

हैं; इन सबसे ऊपर जब तब राजा के राज्यकार्यों में भी व्यस्त रहना पड़ता है; फिर अन्त में अपने इस शरीर की भी कुछ साज-सम्हाल रखनी ही होती है !"

२. अधर्माचरण करने वाला नरक से छुटकारा नहीं पाता

३. "तो क्या मानते हो धनञ्जानि ! यहाँ कोई अपने माता-पिता के लिये अधर्मपूर्वक विषम (गलत) आचरण करे तो जब, इस अधर्माचरण के कारण, नरकपाल उसे नरक में डालेंगे तो वह क्या यह कहकर छुटकारा पा सकता है कि 'मैंने तो यह अधर्माचरण अपने माता-पिता को सुख-शान्ति देने के लिये किया है, अतः आप मुझे नरक में न डालें'; या उसके माता-पिता उनसे यह कहेंगे कि 'इसने यह सब अधर्माचरण हमारी सुख-सुविधाहेतु किया है, यह तो निरपराध है; अतः आप इसे नरक में न डालें ?'

"नहीं, भो सारिपुत्र ! ऐसा तो नहीं होता। उसे तो, रोने बिलखने पर भी, वे नरकपाल नरक में ढकेल ही देंगे।"

"तो क्या मानते हो धनञ्जानि ! यहाँ कोई पुरुष अपने दास या कर्मकरों की सुखसमृद्धि के लिये अधर्माचरण…इसे नरक में न डालें !"

"नो हिदं, भो सारिपुत्त। अथ खो नं विक्कन्दन्तं येव निरये निरयपाला पक्खिपेय्युं"।

"तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, इधेकच्चो दासकम्मकरपोरिसस्स हेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, तमेनं अधम्मचरियाविसमचरियाहेतु निरयं निरयपाला उपकड्ढेय्युं; लभेय्य नु खो सो 'अहं खो दासकम्मकरपोरिसस्स हेतु अधम्मचारी विसमचारी अहोसिं, मा मं निरयं निरयपाला' ति, दासकम्मकरपोरिसा वा पनस्स लभेय्युं—'एसो खो अम्हाकं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अहोसि, मा नं निरयं निरयपाला'" ति ?

"नो हिदं, भो सारिपुत्त। अथ खो नं विक्कन्दन्तं येव निरये निरयपाला पक्खिपेय्युं"।

[N. 452] "तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, इधेकच्चो मित्तामच्चानं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, अधम्मचरियाविसमचरियाहेतु निरयं [B. 398] निरयपाला उपकड्ढेय्युं; लभेय्य नु खो सो 'अहं खो मित्तामच्चानं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अहोसिं मा मं निरयं निरयपाला' ति, मित्तामच्चा वा पनस्स लभेय्युं 'एसो खो अम्हाकं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अहोसि, मा नं निरयं निरयपाला'" ति ?

"नो हिदं, भो सारिपुत्त। अथ खो नं विक्कन्दन्तं येव निरये निरयपाला पक्खिपेय्युं"।

"तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि इधेकच्चो ञातिसालोहितानं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, तमेनं अधम्मचरियाविसमचरियाहेतु निरयं निरयपाला उपकड्ढेय्युं; लभेय्य नु खो सो 'अहं खो ञातिसालोहितानं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अहोसिं, मा मं निरयं निरयपाला' ति, ञातिसालोहिता वा पनस्स लभेय्युं 'एसो खो अम्हाकं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अहोसि, मा नं निरयं निरयपाला'" ति ?

"नो हिदं, भो सारिपुत्त। अथ खो नं विक्कन्दन्तं येव निरये निरयपाला पक्खिपेय्युं"।

"नहीं भो! सारिपुत्र ऐसा तो···उसे नरक में ढकेल ही देंगे।"

"तो क्या मानते हो धनञ्जानि! यहाँ कोई पुरुष अपने मित्र या सहायकों की सुख-समृद्धिहेतु अधर्माचरण···इसे नरक में न डालें ?"

"नहीं, भो सारिपुत्र, ऐसा तो···उसे नरक में ढकेल ही देंगे।"

"तो क्या मानते हो, धनञ्जानि! यहाँ कोई पुरुष अपने नाते-रिश्तेदारों के लिये अधर्माचरण···इसे नरक में न डालें ?"

"नहीं, भो सारिपुत्र! ऐसा तो···उसे नरक में ढकेल ही देंगे।"

"तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, इधेकच्चो अतिथीनं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, तमेनं अधम्मचरियाविसमचरियाहेतु निरयं निरयपाला उपकड्ढेय्युं; लभेय्य नु खो सो 'अहं खो अतिथीनं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अहोसिं, मा मं निरयं निरयपाला' ति, अतिथी वा पनस्स लभेय्युं 'एसो खो अम्हाकं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अहोसि, मा नं निरयं निरयपाला' " ति ?

"नो हिदं, भो सारिपुत्त। अथ खो नं विक्कन्दन्तं येव निरये निरयपाला पक्खिपेय्युं"

"तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, इधेकच्चो पुब्बपेतानं हेतु [R. 188] अधम्मचारी विसमचारी अस्स, तमेनं अधम्मचरियाविसमचरियाहेतु निरयं निरयपाला उपकड्ढेय्युं; लभेय्य नु खो सो 'अहं खो पुब्बपेतानं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अहोसिं, मा मं निरयं निरयपाला' ति, पुब्बपेता वा पनस्स लभेय्युं 'एसो खो अम्हाकं हेतु अधम्मचारी विसमचारी [N. 453] अहोसि, मा नं निरयं निरयपाला' " ति ?

"नो हिदं, भो सारिपुत्त। अथ खो नं विक्कन्दन्तं येव निरये निरयपाला पक्खिपेय्युं"।

"तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, इधेकच्चो देवतानं हेतु [B. 399] अधम्मचारी विसमचारी अस्स, तमेनं अधम्मचरियाविसमचरियाहेतु निरयं निरयपाला उपकड्ढेय्युं; लभेय्य नु खो सो 'अहं खो देवतानं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अहोसिं, मा मं निरयं निरयपाला' ति, देवता वा पनस्स लभेय्युं 'एसो खो अम्हाकं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अहोसि, मा नं निरयं निरयपाला' " ति ?

"नो हिदं, भो सरिपुत्त। अथ खो नं विक्कन्दन्तं येव निरये निरयपाला पक्खिपेय्युं"।

"तो क्या मानते हो धनञ्जानि ! यहाँ कोई पुरुष अपने अतिथि या मेहमानों के लिये अधर्माचरण...इसे नरक में न ढकेलें ?"

"नहीं, भो सारिपुत्र ! ऐसा तो...उसे नरक में ढकेल ही देंगे।"

"तो क्या मानते हो, धनञ्जानि ! यहाँ कोई पुरुष अपने पूर्वजों के मृत पितरों की प्रसन्नता के लिये अधर्माचरण...इसे नरक में न ढकेलें !"

"नहीं भो सारिपुत्र ! ऐसा तो...उसे नरक में ढकेल ही देंगे।"

"तो क्या मानते हो, धनञ्जानि ! यहाँ कोई पुरुष अपने इष्ट देवताओं के लिये अधर्माचरण...इसे नरक में न ढकेलें ?"

"नहीं, भो सारिपुत्र ! ऐसा तो...उसे नरक में ढकेल ही देंगे।"

"तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, इधेकच्चो रञ्ञो हेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, तमेनं अधम्मचरियाविसमचरियाहेतु निरयं निरयपाला उपकड्ढेय्युं; लभेय्य नु खो सो 'अहं खो रञ्ञो हेतु अधम्मचारी विसमचारी अहोसिं, मा मं निरयं निरयपाला' ति, राजा वा पनस्स लभेय्य 'एसो खो अम्हाकं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अहोसि, मा नं निरयपाला' " ति ?

"नो हिदं, भो सारिपुत्त। अथ खो नं विक्कन्दन्तं येव निरये निरयपाला पक्खिपेय्युं" ।

"तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, इधेकच्चो कायस्स पीणनाहेतु ब्रूहनाहेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, तमेनं अधम्मचरियाविसमचरियाहेतु निरयं निरयपाला उपकड्ढेय्युं; लभेय्य नु खो सो 'अहं खो कायस्स पीणनाहेतु ब्रूहनाहेतु अधम्मचारी विसमचारी अहोसिं, मा मं निरयं निरयपाला' ति, परे वा पनस्स लभेय्युं 'एसो खो कायस्स पीणनाहेतु ब्रूहनाहेतु अधम्मचारी विसमचारी अहोसि, मा नं निरयं निरयपाला' " ति ?

"नो हिदं, भो सारिपुत्त। अथ खो नं विक्कन्दन्तं येव निरये निरयपाला पक्खिपेय्युं" ।

[N. 454] ४. "तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, यो वा मातापितूनं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, यो वा मातापितूनं हेतु धम्मचारी समचारी अस्स; कतमं सेय्यो" ति ?

"यो हि, भो सारिपुत्त, मातापितूनं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, न तं सेय्यो; यो च खो, भो सारिपुत्त, मातापितूनं हेतु धम्मचारी समचारी

"तो क्या मानते हो, धनञ्जानि ! यहाँ कोई राजा का प्रसन्न करने के लिये अधर्माचरण…इसे नरक में न ढकेलें ?"

"नहीं, भो सारिपुत्र ! ऐसा तो…उसे नरक में ढकेल ही देंगे।"

"तो क्या मानते हो, धनञ्जानि ! यहाँ कोई पुरुष अपनी काया की पुष्टि के लिये अधर्माचरण…नरक में न ढकेलें ?"

"नहीं, भो सारिपुत्र ! ऐसा तो…नरक में ढकेल ही देंगे।"

४. "तो क्या मानते हो धनंजानि ! दो पुरुषों में पहला माता-पिता की सुख-समृद्धि के लिये अधर्माचरण करता है, और दूसरा उनकी सुख-समृद्धि के लिये धर्मपूर्वक आचरण करता है—इन दोनों में कौन अच्छा है ?'

"भो सारिपुत्र ! इन दोनों में जो पहला माता-पिता की सुख-समृद्धि के लिये अधर्माचरण करता है, वह अच्छा नहीं है; अपितु जो उनकी सुख-समृद्धि के लिये

अस्स, तदेवेत्थ सेय्यो। अधम्मचरियाविसमचरियाहि, भो सारिपुत्त, धम्मचरिया समचरिया सेय्या" ति।

३. अधम्मचारि-धम्मचारीसु कतमो सेय्यो ?

५. "अत्थि खो, धनञ्जानि, अञ्ञेसं हेतुका धम्मिका [B. 400] कम्मन्ता, येहि सक्का मातापितरो चेव पोसेतुं, न च पापकम्मं कातुं, पुञ्ञं च पटिपदं पटिपज्जितुं।

"तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, यो वा पुत्तदारस्स हेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, यो वा पुत्तदारस्स हेतु धम्मचारी समचारी अस्स; कतमं सेय्यो" ति ?

"यो हि, भो सारिपुत्त, पुत्तदारस्स हेतु अधम्मचारी [R. 189] विसमचारी अस्स, न तं सेय्यो; यो च खो, भो सारिपुत्त, पुत्तदारस्स हेतु धम्मचारी समचारी अस्स, तदेवेत्थ सेय्यो। अधम्मचरियाविसमचरियाहि, भो सारिपुत्त, धम्मचरिया समचरिया सेय्या" ति।

"अत्थि खो धनञ्जानि, अञ्ञेसं हेतुका धम्मिका कम्मन्ता येहि सक्का पुत्तदारं चेव पोसेतुं, न च पापकम्मं कातुं, पुञ्ञं च पटिपदं पटिपज्जितुं।

"तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, यो वा दासकम्मकरपोरिसस्स हेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, यो वा दासकम्मकरपोरिसस्स हेतु धम्मचारी समचारी अस्स; कतमं सेय्यो" ति ?

धर्माचरणपूर्वक कर्म करता है वही श्रेयस्कर है। भो सारिपुत्र ! (मेरी दृष्टि में) अधर्माचरणपूर्वक गलत कार्य करने से तो धर्मपूर्वक कार्य करना ही श्रेयस्कर है।"

५. "धनंजानि ! दूसरे भी सुफलदायक धार्मिक कृत्य हैं जिनसे माता-पिता का सुखसंवर्धन किया जा सकता है; वे ही श्रेयस्कर हैं। पापकर्म न करना और पुण्यकर्म करना ही श्रेयस्कर है।

"तो क्या मानते हो, धनंजानि ! एक जो स्त्री-पुत्रादि के हेतु अधर्माचरण या गलत काम करे, दूसरा उनके पालन-पोषण के लिये धर्माचरण या सही काम करे—दोनों में कौन श्रेष्ठ है ?"

"भो सारिपुत्र ! जो अपने स्त्री-पुत्रादि के पालन-पोषण के लिये अधर्माचरण करता है, और जो स्त्रीपुत्रादि...धर्माचरण करता है—दोनों में धर्माचारी ही श्रेष्ठ है।"

"धनंजानि ! दूसरे भी सुफलदायक धार्मिक...पुण्य कर्म करना ही श्रेयस्कर है।

"तो क्या मानते हो धनंजानि ! जो अपने दास-कर्मकरों के लिये...कौन श्रेष्ठ है ?"

"यो हि, भो सारिपुत्त, दासकम्मकरपोरिसस्स हेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, न तं सेय्यो; यो च खो, भो सारिपुत्त, दासकम्मकरपोरिसस्स हेतु धम्मचारी समचारी अस्स, तदेवेत्थ सेय्यो। अधम्मचरियाविसमचरियाहि, भो सारिपुत्त, धम्मचरिया समचरिया सेय्या" ति।

[N. 455] "अत्थि खो, धनञ्जानि, अञ्ञेसं हेतुका धम्मिका कम्मन्ता, येहि सक्का दासकम्मकरपोरिसे चेव पोसेतुं, न च पापकम्मं कातुं, पुञ्ञं च पटिपदं पटिपज्जितुं।

"तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, यो वा मित्तामच्चानं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, यो वा मित्तामच्चानं हेतु धम्मचारी समचारी अस्स; कतमं सेय्या" ति ?

"यो हि, भो सारिपुत्त, मित्तामच्चानं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, न तं सेय्यो; यो च खो, भो सारिपुत्त, मित्तामच्चानं हेतु धम्मचारी समचारी अस्स, तदेवेत्थ सेय्यो। अधम्मचरियाविसमचरियाहि, भो सारिपुत्त, धम्मचरिया समचरिया सेय्यो" ति।

"अत्थि खो, धनञ्जानि, अञ्ञेसं हेतुका धम्मिका कम्मन्ता, येहि सक्का मित्तामच्चानं चेव मित्तामच्चकरणीयं कातुं, न च पापकम्मं कातुं, पुञ्ञं च पटिपदं पटिपज्जितुं।

"तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, यो वा ञातिसालोहितानं हेतु अधम्म-
[B. 401] चारी विसमचारी अस्स, यो वा ञातिसालोहितानं हेतु धम्मचारी समचारी अस्स; कतमं सेय्यो" ति ?

[R. 190] "यो हि, भो सारिपुत्त, ञातिसालोहितानं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, न तं सेय्यो; यो च खो, भो सारिपुत्त, ञातिसालोहितानं

"भो सारिपुत्र ! अपने दास-कर्मकरों के लिये...धर्माचारी ही श्रेष्ठ है। भो सारिपुत्र ! अधर्माचरण या गलत (पाप) काम करने से तो सही काम व धर्माचरण करना ही श्रेयस्कर है।"

"धनंजानि ! दूसरे भी सुफलदायक...पुण्य कर्म करना ही श्रेयस्कर है।

"तो क्या मानते हो, धनंजानि ! जो अपने मित्रों व सहायकों के लिये...कौन-सा श्रेयस्कर है ?"

"भो सारिपुत्र ! अपने मित्रों-सहायकों के लिये धर्माचरण ही श्रेयस्कर है।"

"धनंजानि ! दूसरे भी सुफलदायक...पुण्य कर्म करना ही श्रेयस्कर है।

"तो क्या मानते हो, धनंजानि ! जो अपने नाते-रिश्तेदारों के लिये...कौन-सा श्रेयस्कर है ?"

हेतु धम्मचारी समचारी अस्स, तदेवेत्थ सेय्यो। अधम्मचरियाविसमचरियाहि, भो सारिपुत्त, धम्मचरिया समचरिया सेय्या" ति।

"अत्थि खो, धनञ्जानि, अञ्ञेसं हेतुका धम्मिका कम्मन्ता, येहि सक्का ञातिसालोहितानं चेव ञातिसालोहितकरणीयं कातुं, न च पापकम्मं कातुं, पुञ्ञं च पटिपदं पटिपज्जितुं।

"तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, यो वा अतिथीनं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, यो वा अतिथीनं हेतु धम्मचारी समचारी अस्स, कतमं सेय्यो" ति?

"यो हि, भो सारिपुत्त, अतिथीनं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, न तं सेय्यो; यो च खो, भो सारिपुत्त, अतिथीनं हेतु धम्मचारी समचारी अस्स, तदेवेत्थ सेय्यो। अधम्मचरियाविसमचरियाहि, भो सारिपुत्त, धम्मचरिया समचरिया सेय्या" ति।

"अत्थि खो, धनञ्जानि, अञ्ञेसं हेतुका धम्मिका कम्मन्ता, येहि सक्का अतिथीनं चेव अतिथिकरणीयं कातुं, न च पापकम्मं [N. 456] कातुं, पुञ्ञं च पटिपदं पटिपज्जितुं।

"तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, यो वा पुब्बपेतानं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, यो वा पुब्बपेतानं हेतु धम्मचारी समचारी अस्स; कतमं सेय्यो" ति?

"यो हि, भो सारिपुत्त, पुब्बपेतानं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स,

---

"भो सारिपुत्र ! जो अपने नाते-रिश्तेदारों के लिये…धर्माचरण करना ही श्रेयस्कर है।"

"धनंजानि ! लोक में और भी सत्कर्म हैं जिनके सहारे अपने नाते-रिश्तेदारों का पालन-पोषण किया जा सकता है। लोक में पापकर्म न करना और पुण्यकर्म करना ही श्रेयस्कर है।

"तो क्या मानते हो, धनंजानि ! जो अपने अतिथि-मेहमानों के लिये…कौन सा श्रेयस्कर है ?"

"भो सारिपुत्र ! जो अपने अतिथि…धर्माचरण ही श्रेयस्कर है।"

"धनंजानि ! लोक में और भी सत्कर्म हैं जिनके सहारे अपने अतिथियों का… पुण्यकर्म करना ही श्रेयस्कर है।

"तो क्या मानते हो, धनंजानि ! जो अपने पूर्वज पितरों के लिये…कौन सा श्रेयस्कर है ?"

"भो सारिपुत्र ! जो अपने पूर्वज पितरों के लिये…धर्माचरण ही श्रेयस्कर है।"

न तं सेय्यो; यो च खो, भो सारिपुत्त, पुब्बपेतानं हेतु धम्मचारी समचारी अस्स, तदेवेत्थ सेय्यो। अधम्मचरियाविसमचरियाहि, भो सारिपुत्त, धम्मचरिया समचरिया सेय्या" ति।

"अत्थि खो, धनञ्जानि, अञ्ञेसं हेतुका धम्मिका कम्मन्ता, येहि सक्का पुब्बपेतानं चेव पुब्बपेतकरणीयं कातुं, न च पापकम्मं कातुं, पुञ्ञं च पटिपदं पटिपज्जितुं।

"तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, यो वा देवतानं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, यो वा देवतानं हेतु धम्मचारी समचारी अस्स; कतमं सेय्यो" [B. 402] ति ?

"यो हि, भो सारिपुत्त, देवतानं हेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, न तं सेय्यो; यो च खो, भो सारिपुत्त, देवतानं हेतु धम्मचारी समचारी [R. 191] अस्स, तदेवेत्थ सेय्यो। अधम्मचरियाविसमचरियाहि, भो सारिपुत्त, धम्मचरिया समचरिया सेय्या" ति।

"अत्थि खो, धनञ्जानि, अञ्ञेसं हेतुका धम्मिका कम्मन्ता, येहि सक्का देवतानं चेव देवताकरणीयं कातुं, न च पापकम्मं कातुं, पुञ्ञं च पटिपदं पटिपज्जितुं।

"तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, यो वा रञ्ञो हेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, यो वा रञ्ञो हेतु धम्मचारी समचारी अस्स; कतमं सेय्यो" ति ?

"यो हि, भो सारिपुत्त, रञ्ञो हेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, न तं सेय्यो; यो च खो, भो सारिपुत्त, रञ्ञो हेतु धम्मचारी समचारी अस्स, तदेवेत्थ सेय्यो। अधम्मचरियाविसमचरियाहि, भो सारिपुत्त, धम्मचरिया समचरिया सेय्यो" ति।

"धनंजानि ! लोक में और भी सत्कर्म हैं, जिनके सहारे अपने पितरों का··· पुण्यकर्म करना ही श्रेयस्कर है।

"तो क्या मानते हो, धनंजानि ! जो अपने इष्ट देवताओं के लिये···कौन सा श्रेयस्कर है ?"

"भो सारिपुत्र ! जो अपने इष्ट देवताओं के लिये···धर्माचरण ही श्रेयस्कर है।"

"धनंजाति ! लोक में और भी बहुत से सत्कर्म हैं, जिनके सहारे···धर्माचरण करना ही श्रेयस्कर है।"

"तो क्या मानते हो धनंजानि ! अपने राजा के लिये···कौन-सा श्रेयस्कर है।"

"भो सारिपुत्र ! जो अपने राजा के लिये···धर्माचरण ही श्रेयस्कर है।"

"अत्थि खो, धनञ्जानि, अञ्ञेसं हेतुका धम्मिका कम्मन्ता, येहि सक्का रञ्ञो चेव राजकरणीयं कातुं, न च पापकम्मं कातुं, पुञ्ञं च पटिपदं पटिपज्जितुं।

तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, यो वा कायस्स पीणनाहेतु ब्रूहनाहेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, यो वा कायस्स पीणनाहेतु [N. 457] ब्रूहनाहेतु धम्मचारी समचारी अस्स; कतमं सेय्या" ति ?

-'यो हि, भो सारिपुत्त, कायस्स पीणनाहेतु ब्रूहनाहेतु अधम्मचारी विसमचारी अस्स, न तं सेय्यो; यो च खो, भो सारिपुत्त, कायस्स पीणनाहेतु ब्रूहनाहेतु धम्मचारी समचारी अस्स, तदेवेत्थ सेय्यो। अधम्मचरियाविसमचरियाहि, भो सारिपुत्त, धम्मचरिया समचरिया सेय्या" ति।

"अत्थि खो, धनञ्जानि, अञ्ञेसं हेतुका धम्मिका कम्मन्ता, येहि सक्का कायं चेव पीणेतुं ब्रूहेतुं, न च पापकम्मं कातुं, पुञ्ञं च पटिपदं पटिपज्जितुं" ति।

४. ब्रह्मसहब्यताय मग्गो

६. अथ खो धनञ्जानि ब्राह्मणो आयस्मतो सारिपुत्तस्स भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना पक्कामि। अथ खो धनञ्जानि ब्राह्मणो अपरेन समयेन आबाधिको अहोसि दुक्खितो बाळ्हगिलानो। अथ खो धनञ्जानि ब्राह्मणो अञ्ञतरं पुरिसं आमन्तेसि—"एहि त्वं [B. 403] अम्भो पुरिस, येन भगवा तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा मम [R. 192] वचनेन भगवतो पादे सिरसा वन्दाहि—'धनञ्जानि, भन्ते, ब्राह्मणो आबा-

---

"धनजानि ! लोक में और भी बहुत से सत्कर्म हैं जिनके सहारे राजा का··· धर्माचरण करना ही श्रेयस्कर है।"

"तो क्या मानते हो, धनंजानि ! जो अपने शरीर के स्वास्थ्यसंवर्धनहेतु··· कौन-सा श्रेयस्कर है ?"

"भो सारिपुत्र ! जो अपने शरीर के स्वास्थ्य संवर्धन हेतु···धर्माचरण करना ही श्रेयस्कर है।"

तब धनंजानि ब्राह्मण आयुष्मान् सारिपुत्र के भाषण अभिनन्दन-अनुमोदन कर, आसन से उठ (अपने आवास को) चल दिया। तब वह धनंजानि ब्राह्मण दूसरे किसी समय, रोग के कारण बहुत अधिक दुःखी हो गया। तब उस धनंजानि ब्राह्मण ने किसी पुरुष को बुलाया और कहा—"अरे पुरुष ! तुम वहाँ जाओ, जहाँ भगवान् विराजमान हैं। वहाँ जाकर मेरे कहने से भगवान् के श्रीचरणों की वन्दना कर कहना—'भन्ते, धनंजानि ब्राह्मण किसी गम्भीर रोग के कारण अत्यन्त दुःखी

धिको दुक्खितो बाळ्हगिलानो। सो भगवतो पादे सिरसा वन्दती' ति। येन च आयस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा मम वचनेन आयस्मतो सारिपुत्तस्स पादे सिरसा वन्दाहि—'धनञ्जानि, भन्ते, ब्राह्मणो आबाधिको दुक्खितो बाळ्हगिलानो। सो आयस्मतो सारिपुत्तस्स पादे सिरसा वन्दती' ति। एवं च वदेहि—'साधु किर, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो येन धनञ्जानिस्स ब्राह्मणस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमतु अनुकम्पं उपादाया' " ति। "एवं, भो[1] " ति खो सो पुरिसो धनञ्जानिस्स ब्राह्मणस्स पटिस्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो पुरिसो भगवन्तं एतदवोच—'धनञ्जानि, भन्ते, ब्राह्मणो आबाधिको दुक्खितो बाळ्हगिलानो। सो भगवतो पादे सिरसा वन्दती" [N. 458] ति। येन चायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं सारिपुत्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो पुरिसो आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—"धनञ्जानि, भन्ते, ब्राह्मणो आबाधिको दुक्खितो बाळ्हगिलानो। सो आयस्मतो सारिपुत्तस्स पादे सिरसा वन्दति, एवं च वदेति—'साधु किर, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो येन धनञ्जानिस्स ब्राह्मणस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमतु अनुकम्पं उपादाया' " ति। अधिवासेसि खो आयस्मा सारिपुत्तो तुण्हीभावेन।

है। वह भगवान् के श्रीचरणों की वन्दना करता है।' फिर (तुम) आयुष्मान् सारिपुत्र के पास जाकर उनके चरणों में भी वन्दना कर कहना—'भन्ते! धनजानि ब्राह्मण रोग के आक्रमण से अत्यधिक पीड़ित है। आयुष्मन् सारिपुत्र! क्या ही अच्छा हो कि आप एक बार कृपाकर धनंजानि ब्राह्मण के घर आकर उसे देख लें। "ठीक है, श्रीमन्"—उस पुरुष ने धनंजानि ब्राह्मण को यों उत्तर दे, वह जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर वह पुरुष उनसे यों निवेदन करने लगा—'भन्ते! धनंजानि···अत्यधिक परेशान है। उसने आपके श्रीचरणों की वन्दना की है।' फिर वह जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर आयुष्मान् सारिपुत्र को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठा वह पुरुष आयुष्मान् सारिपुत्र से यों बोला—"भन्ते! धनंजानि ब्राह्मण रोग के कारण अत्यधिक दुःखी है, उसने आपके चरणों में प्रणाम कहा है और निवेदन किया है—'अच्छा होता कि आप कृपा करके एक बार मेरे घर आ जाते'।" आयुष्मान् सारिपुत्र ने मौन रहकर उसका निवेदन स्वीकार कर लिया।

---

१. भन्ते—मु० पा०।

७. अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन धनञ्जानिस्स ब्राह्मणस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो आयस्मा सारिपुत्तो धनञ्जानिं ब्राह्मणं एतदवोच—"कच्चि ते, धनञ्जानि, खमनीयं, कच्चि यापनीयं? कच्चि दुक्खा वेदना पटिक्कमन्ति, नो अभिक्कमन्ति? पटिक्कमोसानं पञ्ञायति, नो अभिक्कमो" ति?

"न मे, भो सारिपुत्त, खमनीयं न यापनीयं। बाळ्हा मे दुक्खा वेदना अभिक्कमन्ति, नो पटिक्कमन्ति। अभिक्कमोसानं पञ्ञायति, नो पटिक्कमो। सेय्यथापि, भो सारिपुत्त, बलवा पुरिसो तिण्हेन [R. 193] सिखरेन मुद्धनि अभिमत्थेय्य; एवमेव खो, भो सारिपुत्त, [B. 404] अधिमत्ता वाता मुद्धनि मे ऊहनन्ति। न मे, भो सारिपुत्त, खमनीयं न यापनीयं। बाळ्हा मे दुक्खा वेदना अभिक्कमन्ति, नो पटिक्कमन्ति। अभिक्कमोसानं पञ्ञायति, नो पटिक्कमो। सेय्यथापि, भो सारिपुत्त, बलवा पुरिसो दळ्हेन वरत्तक्खण्डेन सीसे सीसवेठं ददेय्य; एवमेव खो, भो सारिपुत्त, अधिमत्ता सीसे सीसवेदना। न मे, भो सारिपुत्त, खमनीयं न यापनीयं। बाळ्हा मे दुक्खा वेदना अभिक्कमन्ति, नो पटिक्कमन्ति। अभिक्कमोसानं पञ्ञायति, नो पटिक्कमो। सेय्यथापि, भो सारिपुत्त, दक्खो गोघातको वा गोघातकन्तेवासी वा तिण्हेन गोविकन्तनेन कुच्छिं परिकन्तेय्य; एवमेव

---

७. तब (कभी) आयुष्मान् सारिपुत्र भिक्षुवेश पहनकर पात्र-चीवर ले जहाँ धनंजानि ब्राह्मण का आवास था, वहाँ पहुँचे। पहुँचकर [illegible] आसन पर विराजे। तब आयुष्मान् सारिपुत्र धनंजानि ब्राह्मण को यों [illegible] धनंजानि! तुम ठीक तो हो, तुम्हारा समय तो ठीक बीत रहा है? व्याधि का क्षय होना ही लग रहा है? या उसमें कुछ वृद्धि हो रही है?"

"भो सारिपुत्र! मैं ठीक नहीं हूँ। मुझे व्याधि का क्षीण होना नहीं लग रहा है, अपितु व्याधि बढती ही जाती दीखती है। जैसे, भो सारिपुत्र! कोई बलवान् पुरुष तीक्ष्ण मुद्गरशिखर (हथौड़ा) से शिर में चोट मारें; इसी तरह भो सारिपुत्र! मेरे शिर में उठती हुई वायु चोट मार रही हैं। यह मुझसे सहन नहीं हो रही। मेरे शरीर में तीव्र वेदनाएँ बढती हुई तो ज्ञात होती हैं, कम होती नहीं जान पड़तीं। भो सारिपुत्र! जैसे कोई बलबान् पुरुष मजबूत रस्सी से अपने सिर को बाँध दे, तब जो शिर में वेदना होती है; वैसी ही वेदना मेरे शिर में प्रतिक्षण होती रहती है। वह कम होती नहीं मालूम पड़ती। जैसे भो सारिपुत्र! कोई चतुर कसाई (गोघातक) या उसका साथी तीखा छुरा लेकर गाय के पेट को काटे; मेरे पेट में भी ऐसी वेदनाएँ

खो, भो सारिपुत्त, अधिमत्ता वाता कुच्छि परिकन्तन्ति। न मे, भो सारिपुत्त, खमनीयं, न यापनीयं। बाळ्हा मे दुक्खा वेदना अभिक्कमन्ति, नो [N. 459] पटिक्कमन्ति। अभिक्कमोसानं पञ्ञायति, नो पटिक्कमो। सेय्यथापि, भो सारिपुत्त, द्वे बलवन्तो पुरिसा दुब्बलतरं पुरिसं नानाबाहासु गहेत्वा अङ्गारकासुया सन्तापेय्युं सम्परितापेय्युं; एवमेव खो, भो सारिपुत्त, अधिमत्तो कायस्मिं डाहो। न मे, सारिपुत्त, खमनीयं न यापनीयं। बाळ्हा मे दुक्खा वेदना अभिक्कमन्ति, नो पटिक्कमन्ति। अभिक्कमोसानं पञ्ञायति, नो पटिक्कमो" ति।

८. "तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, कतमं सेय्यो—निरयो वा तिरच्छानयोनि वा" ति ?

"निरया, भो सारिपुत्त, तिरच्छानयोनि सेय्यो" ति।

"तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, कतमं सेय्यो—तिरच्छानयोनि वा पेत्तिविसयो वा" ति ?

"तिरच्छानयोनिया, भो सारिपुत्त, पेत्तिविसयो सेय्यो" ति।

"तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, कतमं सेय्यो—पेत्तिविसयो वा मनुस्सा वा" ति ?

"पेत्तिविसया, भो सारिपुत्त, मनुस्सा सेय्या" ति।

"तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, कतमं सेय्यो—मनुस्सा वा [R. 194] चातुमहाराजिका वा देवा" ति ?

बराबर होती रहती हैं। वे बढती ही दिखायी देती हैं, कम होती नहीं मालूम पड़तीं। जैसे, भो सारिपुत्र ! दो बलवान् पुरुष किसी निर्बल पुरुष की दोनों भुजायें पकड़कर, उसे अग्नि के ढेर (राशि) में फेंक दें; उस समय जो दाह होता है उसी तरह भो सारिपुत्र ! मेरे शरीर में अत्यधिक दाह हो रहा है। वह बराबर बढता ही जा रहा है, कम होता नहीं दिखायी देता। यों मुझे अपनी व्याधि का बढना ही अनुभव हो रहा है, उसका कहीं से कम होना समझ में नहीं आता।

८. "तो क्या मानते हो, धनंजानि ! नरक अच्छा (=श्रेय) है या पशु-योनि ?"

"भो सारिपुत्र ! नरक से तो पशुयोनि ही अच्छी है।"

"...तिर्यग्योनि अच्छी है, या प्रेतयोनि (लोक) ?"

"...प्रेतयोनि ही अच्छी है।"

"...प्रेतयोनि अच्छी है, या मनुष्य योनि ?"

"...मनुष्ययोनि...।"

"...मनुष्ययोनि अच्छी है; या चातुर्महाराजिक देवलोक ?"

"मनुस्सेहि, भो सारिपुत्त, चातुमहाराजिका देवा सेय्या" ति।

"तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, कतमं सेय्यो—चातुमहाराजिका वा देवा तावतिंसा वा देवा" ति ?

"चातुमहाराजिकेहि, भो सारिपुत्त, देवेहि तावतिंसा देवा सेय्या" ति।

"तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, कतमं सेय्यो--तावतिंसा वा देवा यामा वा देवा" ति ?

"तावतिंसेहि, भो सारिपुत्त, देवेहि यामा देवा सेय्या" ति। [B. 405]

"तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, कतमं सेय्यो—यामा वा देवा तुसिता वा देवा" ति ?

"यामेहि, भो सारिपुत्त, देवेहि तुसिता देवा सेय्या" ति। [N. 460]

"तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, कतमं सेय्यो—तुसिता वा देवा निम्मानरती वा देवा" ति ?

"तुसितेहि, भो सारिपुत्त, देवेहि निम्मानरती देवा सेय्यो" ति।

"तं किं मञ्ञसि, धनञ्जानि, कतमं सेय्यो—निम्मानरती वा देवा परनिम्मितवसवत्ती वा देवा" ति ?

"निम्मानरतीहि, भो सारिपुत्त, देवेहि परनिम्मितवसवत्ती देवा सेय्यो" ति।

"तं किं मञ्जसि, धनञ्जानि, कतमं सेय्यो परनिम्मितवसवत्ती वा देवा ब्रह्मलोको वा" ति ?

"...चातुर्महाराजिक देवलोक...।"

"...चातुर्महाराजिक देवलोक अच्छा है," त्रायस्त्रिंश...?"

"...त्रायस्त्रिंश देवलोक...।"

"...त्रायस्त्रिंश देवलोक अच्छा है, या याम देवलोक ?"

"...याम देवलोक... ।"

"...याम देवलोक अच्छा है, या तुषित देवलोक ?"

"... तुषित देवलोक... ।"

"...तुषित देवलोक अच्छा है या निर्माणरति देवलोक ?"

"...निर्माणरति देवलोक... ।"

"...निर्माणरति देवलोक अच्छा है या परनिर्मितवशवर्ति देवलोक ?"

"...परनिर्मितवशवर्ति देवलोक... ।"

"...परनिर्मितवशवर्ति देवलोक अच्छा है या ब्रह्मलोक ?"

"'ब्रह्मलोको'—ति भवं सारिपुत्तो आह; 'ब्रह्मलोको'—ति भवं सारिपुत्तो आहा" ति !

अथ खो आयस्मतो सारिपुत्तस्स एतदहोसि—"इमे खो ब्राह्मणा ब्रह्मलोकाधिमुत्ता। यन्नूनाहं धनञ्जानिस्स ब्राह्मणस्स ब्रह्मानं सहब्यताय मग्गं देसेय्यं" ति।

"ब्रह्मानं ते, धनञ्जानि, सहब्यताय मग्गं देसेस्सामि, तं सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी" ति। "एवं, भो" ति खो धनञ्जानि ब्राह्मणो [R. 195] आयस्मतो सारिपुत्तस्स पच्चस्सोसि। आयस्मा सारिपुत्तो एतदवोच—"कतमो च, धनञ्जानि, ब्रह्मानं सहब्यताय मग्गो? इध धनञ्जानि, भिक्खु मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं; इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यापज्झेन फरित्वा विहरति। अयं खो; धनञ्जानि, ब्रह्मानं सहब्यताय मग्गो।

९. "पुन च परं, धनञ्जानि, भिक्खु करुणासहगतेन चेतसा···पे०··· मुदितासहगतेन चेतसा···उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं तथा ततियं, तथा चतुत्थं; इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्प-

---

"आप, सारिपुत्र! ब्रह्मलोक की बात कर रहे हैं! आप सारिपुत्र ब्रह्मलोक की बात कर रहे हैं?"

तब आयुष्मान् सारिपुत्र को यह हुआ—"ये ब्राह्मण लोग ब्रह्मलोक में श्रद्धा रखते हैं, तो क्यों न मैं इस धनंजानि ब्राह्मण को भी ब्रह्मलोकवास का ही मार्ग समझाऊँ!"

"धनंजानि! मैं तुम्हें ब्रह्माओं के सहवास का मार्ग बताता हूँ, तुम ठीक से ध्यान देकर सुनो। मैं कहता हूँ।

"ठीक है, श्रीमन्" कहकर धनंजानि ब्राह्मण ने आयुष्मान् सारिपुत्र को उत्तर दिया। आयुष्मान् सारिपुत्र यों बोले—"अरे धनंजानि! ब्रह्माओं के साथ रहने का कौन सा मार्ग (उपाय) है? यहाँ धनंजानि! कोई भिक्षु मैत्रीसहगतचित्त··· पूर्ववत्[1]···। धनंजानि! यह ब्रह्माओं के साथ रहने का मार्ग है।

९. "फिर धनंजानि! कोई भिक्षु करुणासहगत चित्त से···पूर्ववत्···मुदिता-

---

१. द्र० पीछे पृ० ६९०-९२ (जीवकसुत्त)।

माणेन अवेरेन अब्यापज्झेन फरित्वा विहरति। अयं खो, [N. 461] धनञ्जानि, ब्रह्मानं सहब्यताय मग्गो" ति।

"तेन हि, भो सारिपुत्त, मम वचनेन भगवतो पादे सिरसा वन्दाहि—'धनञ्जानि, भन्ते, ब्राह्मणो आबाधिको दुक्खितो बाळ्ह- [B. 406] गिलानो। सो भगवतो पादे सिरसा वन्दती' " ति।

अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो धनञ्जानिं ब्राह्मणं सति उत्तरिकरणीये हीने ब्रह्मलोके पतिपट्ठापेत्वा उट्ठायासना पक्कामि। अथ खो धनञ्जानि ब्राह्मणो अचिरपक्कन्ते आयस्मन्ते सारिपुत्ते कालमकासि, ब्रह्मलोकं च उपपज्जि।

१०. अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"एसो, भिक्खवे, सारिपुत्तो धनञ्जानिं ब्राह्मणं सति उत्तरिकरणीये हीने ब्रह्मलोके पतिट्ठापेत्वा उट्ठायासना पक्कन्तो" ति। अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा सारिपुत्तो भगवन्तं एतदवोच--"धनञ्जानि, भन्ते ब्राह्मणो आबाधिको दुक्खितो बाळ्हगिलानो। सो भगवतो पादे सिरसा वन्दती" ति।

सहगत चित्त से···उपेक्षासहगत चित्त से···पूर्ववत्···साथ रहने का मार्ग (उपाय) है।"

"तो, भो सारिपुत्र ! मेरी ओर से भगवान् के श्रीचरणों में सिर झुका, वन्दना कर कहियेगा—'भन्ते ! धनंजानि ब्राह्मण तीव्र रोगाक्रान्त होने के कारण अत्यन्त दुःखी है। वह भगवान् के श्रीचरणों में वन्दना करता है'।"

तब आयुष्मान् सारिपुत्र धनंजानि ब्राह्मण को उत्तरिकरणीय (जहाँ पहुँचकर आगे भी कुछ करने को बाकी रह जाता है) के लिये ब्रह्मलोक के प्रति श्रद्धालु बनाकर आसन से उठकर चल दिये। उधर धनंजानि ब्राह्मण, आयुष्मान् सारिपुत्र के चले जाने के कुछ ही देर बाद मर गया और (आगे जाकर) ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ।

तब भगवान् ने भिक्षुओं को बताया—"यह सारिपुत्र धनंजानि ब्राह्मण को उत्तरिकरणीय के हितार्थ अपेक्षाकृत हीन ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित कर आसन से उठ चल दिये।"

तब आयुष्मान् सारिपुत्र जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ गये। जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्र

[R. 196] "किं पन त्वं, सारिपुत्त, धनञ्जानिं ब्राह्मणं सति उत्तरिकरणीये हीने ब्रह्मलोके पतिट्ठापेत्वा उट्ठायासना पक्कन्तो" ति ?

"मय्हं खो, भन्ते, एवं अहोसि—'इमे खो ब्राह्मणा ब्रह्मलोकाधिमुत्ता। यन्नूनाहं धनञ्जानिस्स ब्राह्मणस्स ब्रह्मानं सहब्यताय मग्गं देसेय्यं' " ति ।

"कालङ्कतो च, सारिपुत्त, धनञ्जानि ब्राह्मणो, ब्रह्मलोकं च उपपन्नो" ति ।

●

ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते ! धनंजानि ब्राह्मण ...बहुत अस्वस्थ है, वह भगवान् के श्रीचरणों में शिर से वन्दना करता है ।"

(भगवान् ने पूछा—) "क्या सारिपुत्र ! तूँ धनंजानि ब्राह्मण को उत्तरिकरणीय के हितार्थ भिक्षुओं की दृष्टि से हीन ब्रह्मलोक के प्रति श्रद्धालु बना, आसन से उठ चला आया ?"

"भन्ते ! मुझको ऐसा हुआ—'ये ब्राह्मण ब्रह्मलोक के प्रति श्रद्धालु होते हैं, तो क्यों न मैं इसे ब्रह्मलोक के वास का मार्ग बताऊँ !"

"सारिपुत्र ! वह धनंजानि ब्राह्मण तो मर गया, अब वह यहाँ से जाकर ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ है ।।"

धनञ्जानिसुत्त समाप्त ।।

●

४८. वासेट्ठसुत्तं[1]

१. वासेट्ठ-भारद्वाजानं माणवानं अन्तराकथा

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा इच्छानङ्गले विहरति [N. 462] इच्छानङ्गलवनसण्डे। तेन खो पन समयेन सम्बहुला अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता ब्राह्मणमहासाला इच्छानङ्गले पटिवसन्ति, सेय्यथीदं—चङ्की ब्राह्मणो, तारुक्खो ब्राह्मणो, पोक्खरसाति ब्राह्मणो, जाणुस्सोणि ब्राह्मणो, तोदेय्यो ब्राह्मणो, अञ्ञे च अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता ब्राह्मणमहासाला। अथ खो वासेट्ठ-भारद्वाजानं माणवानं जङ्घाविहारं अनुचङ्कमन्तानं अनुविचरन्तानं अयमन्तराकथा उदपादि—"कथं, भो, ब्राह्मणो होती" ति? [B. 407] भारद्वाजो माणवो एवमाह--"यतो खो, भो, उभतो सुजातो मातितो च पितितो च संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन--एत्तावता खो, भो, ब्राह्मणो होती" ति। वासेट्ठो माणवो एवमाह--"यतो खो, भो, सीलवा च होति वत्तसम्पन्नो च—एत्तावता खो, भो, ब्राह्मणो होति" ति। नेव खो असक्खि भारद्वाजो माणवो वासेट्ठं माणवं सञ्ञापेतुं, न पन असक्खि वासेट्ठो माणवो भारद्वाजं माणवं सञ्ञापेतुं। अथ खो वासेट्ठो माणवो भारद्वाजं माणवं आमन्तेसि--"अयं खो,

---

४८. वाशिष्ठसूत्र

१. वाशिष्ठ एवं भारद्वाज छात्रों का परस्पर संवाद

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) इच्छानङ्गल ग्राम के इच्छानङ्गल-वनप्रदेश में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय, बहुत से प्रसिद्ध, प्रतिष्ठित, धनधान्यसम्पन्न ब्राह्मण उसी इच्छानङ्गल ग्राम में ठहरे हुए थे। जैसे—चङ्की, तारुक्ष, पौष्करसाति, जानुश्रोणि, और तौदेय ! और ऐसे ही अन्य प्रसिद्ध-प्रसिद्ध प्रतिष्ठित धन-धान्यसम्पन्न ब्राह्मण। उस समय वशिष्ठ एवं भरद्वाज के दो शिष्यों में वहाँ टहलते हुए, विचरण करते हुए यह बात उठ खड़ी हुई— "ब्राह्मण कैसे होता है ?" उनमें भारद्वाज माणवक (शिष्य) का यह मानना था—"जो मातृकुल-पितृकुल की सात पीढियों तक दोनों ओर से शुद्धरक्त (शुद्धवीर्य) हो, जो जातिवाद में आक्षेप (कलङ्क) व निन्दा से रहित हो, अनुपकृष्ट हो, वही 'ब्राह्मण' कहलाने योग्य है।" (वही) वाशिष्ठ माणवक का यह मत था—"अरे ! जो शीलवान् है या व्रत-नियम-पालन में सतत सन्नद्ध रहता है वही वस्तुतः ब्राह्मण है"। (परन्तु) न भारद्वाज-शिष्य ही वशिष्ठ के शिष्य को अपनी बात समझा सका और न वशिष्ठ का शिष्य ही भारद्वाज शिष्य को अपने मत के अनुकूल बना सका। तब वसिष्ठ-शिष्य ने भारद्वाज

---

१. यह समग्र सूत्र अविकल रूप से खुद्दकनिकाय के सुत्तनिपात ग्रन्थ में भी पठित है।

भो भारद्वाज, समणो गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो इच्छानङ्गले विहरति इच्छानङ्गलवनसण्डे। तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। आयाम, भो भारद्वाज, येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कमिस्साम; उपसङ्कमित्वा समणं गोतमं एतमत्थं पुच्छिस्साम। यथा नो समणो गोतमो ब्याकरिस्सति तथा नं धारेस्सामा" ति। "एवं, भो" ति खो भारद्वाजो माणवो वासेट्ठस्स माणवस्स पच्चस्सोसि।

२. जातिवादं आरब्भ भगवतो देसना

[N. 463] २. अथ खो वासेट्ठ-भारद्वाजा माणवा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्नो खो वासेट्ठो माणवो भगवन्तं गाथाहि अज्झभासि—

"अनुञ्ञातपटिञ्ञाता, तेविज्जा मयमस्मु भो।
अहं पोक्खरसातिस्स, तारुक्खस्सायं माणवो॥ १॥
"तेविज्जानं यदक्खातं, तत्र केवलिनोस्मसे।
पदकस्मा वेय्याकरणा, जप्पे आचरियसादिसा।
तेसं नो जातिवादस्मिं, विवादो अत्थि गोतम॥ २॥

ने शिष्य के सामने एक प्रस्ताव रखा—"भारद्वाज ! ये शाक्यपुत्र श्रमण गौतम शाक्यकुल से प्रव्रजित हो इसी इच्छानङ्गल के वनप्रदेश में साधनाहेतु विराजमान हैं। उनके बारे में प्रशंसावाक्य जनता में प्रचारित हैं—'वे भगवान् ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध... पूर्ववत्... बुद्ध भगवान् हैं।' आओ, भारद्वाज ! जहाँ श्रमण गौतम विराजमान हैं वहाँ चलें, चलकर श्रमण गौतम से ही इस बात का स्पष्टीकरण करा लिया जाय। जैसा वे कहेंगे, निर्णय करेंगे, उसे ही हम दोनों मान लेंगे।" "ठीक है"—यों कह भारद्वाज माणव ने वशिष्ठ माणव से सहमति प्रकट की।

२. जातिवाद के विषय में भगवान् का निर्णय

२. तब वाशिष्ठ माणव एवं भारद्वाज माणव—दोनों वहाँ गये जहाँ भगवान् विराजमान थे। जाकर, भगवान् के साथ सम्मोदन... बैठ गये। एक ओर बैठे वाशिष्ठ माणव ने भगवान् को गाथाओं के माध्यम से यों निवेदन किया—

"श्रीमन् ! (भन्ते !) हम दोनों लोक में प्रसिद्ध एवं प्रख्यात हैं, तीनों वेदों के ज्ञाता हैं। मैं पौष्करसाति ब्राह्मण का शिष्य हूँ, और यह माणवक तारुक्ष्य का शिष्य है" ॥ १ ॥

तीनों वेदों में जो कुछ भी कहा या लिखा गया है उसके ज्ञान में हम दोनों ही

"जातिया ब्राह्मणो होति, भारद्वाजो इति भासति। [B. 408]
अहं च कम्मुना ब्रूमि, एवं जानाहि चक्खुम ॥ ३ ॥

"ते न सक्कोम ञापेतुं अञ्ञमञ्ञं मयं उभो।
भगवन्तं पुट्ठुमागमा, सम्बुद्धं इति विस्सुतं ॥ ४ ॥

"चन्दं यथा खयातीतं, पेच्च पञ्जलिका जना।
वन्दमाना नमस्सन्ति, एवं लोकस्मिं गोतमं ॥ ५ ॥

"चक्खुं लोके समुप्पन्नं, मयं पुच्छाम गोतमं।
जातिया ब्राह्मणो होति, उदाहु भवति कम्मुना।
अजानतं नो पब्रूहि, यथा जानेमु ब्राह्मणं" ति ॥ ६ ॥

३. "तेसं वो अहं ब्यक्खिस्सं, (वासेट्ठा ति भगवा)
अनुपुब्बं यथातथं।
जातिविभङ्गं पाणानं, अञ्ञमञ्ञा हि जातियो ॥ ७ ॥

अद्वितीय (=केवली) हैं। साथ ही हम साहित्य, व्याकरण, एवं मन्त्र- (वेद-) शास्त्र में भी उसी तरह निपुण हैं जैसे हमारे आचार्य ॥ २ ॥

"भो गौतम ! ऐसे हम दोनों में जातिवाद को लेकर एक विवाद उठ खड़ा हुआ है। यह भारद्वाज यों कहता है कि ब्राह्मण जाति (जन्म) से होता है, और मैं कहता हूँ कि ब्राह्मण जाति से नहीं, कर्म से ही माना जाना चाहिये। भो सूक्ष्म-दर्शिन् ! ऐसा आप हमारा मत ध्यान में रख लें" ॥ ३ ॥

"हम दोनों परस्पर एक दूसरे के मत को समझा नहीं पा रहे हैं, न समझ ही पा रहे हैं। यों, विवाद में उलझ जाने पर हम दोनों, इसका निर्णय कराने के लिये आप की सेवा में आये हैं। आपके बारे में हमने सुना है कि आप प्रत्येक विषय को अच्छी तरह जानते (सम्बुद्ध) हैं ॥ ४ ॥

"आप की इस विशेषता को जानकर ही लोग आपका आदर करते हैं; जैसे अक्षीण (पूर्ण) चन्द्रमा को लोग प्रणाम करते हैं" ॥ ५ ॥

"लोक के चक्षुरूप (मार्गदर्शकरूप) में उत्पन्न आप गौतम से हम पूछते हैं— 'ब्राह्मण जाति (जन्म) से माना जाय, या कर्म से ?' आप हम अज्ञानियों को इस विषय में अपना मन्तव्य बतावें, ताकि हम भी तदनुसार ही 'ब्राह्मण' के विषय में अपना मत स्थिर कर सकें ॥ ६ ॥

३. (भगवान् बोले—"वाशिष्ठ !) मैं तुम्हें इस विषय में क्रमशः यथार्थ बात बतलाता हूँ। (अन्य) प्राणियों की जातियों में तो एक दूसरे में जातिगत भेद है ॥७॥

"तिणरुक्खे पि जानाथ, न चा पि पटिजानरे।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्ञमञ्ञा हि जातियो ॥ ८ ॥

[N. 464] "ततो कीटे पटङ्गे च, याव कुन्थकिपिल्लिके।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्ञमञ्ञा हि जातियो ॥ ९ ॥

"चतुप्पदे पि जानाथ, खुद्दके च महल्लके।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्ञमञ्ञा हि जातियो ॥ १० ॥

"पादुदरे पि जानाथ, उरगे दीघपिट्ठिके।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्ञमञ्ञा हि जातियो ॥ ११ ॥

"ततो मच्छे पि जानाथ, उदके वारिगोचरे।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्ञमञ्ञा हि जातियो ॥ १२ ॥

"ततो पक्खी पि जानाथ, पत्तयाने विहङ्गमे।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्ञमञ्ञा हि जातियो ॥ १३ ॥

"यथा एतासु जातीसु, लिङ्गं जातिमयं पुथु।
एवं नत्थि मनुस्सेसु, लिङ्गं जातिमयं पुथु ॥ ॥ १४ ॥

[B. 409] "न केसेहि न सीसेहि, न कण्णेहि न अक्खीहि।
न मुखेन न नासाय, न ओट्ठेहि भमूहि वा ॥ १५ ॥

"घास और नानाविध वृक्षों में यह जातिगत भेद स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। परन्तु फिर भी वे (ऐसी कोई) प्रतिज्ञा नहीं करते कि हम में जातिनिर्देशक लिङ्ग (निमित्त) है, या हम लोगों की पृथक्-पृथक् जातियाँ हैं" ॥ ८ ॥

"फिर नाना कीट-पतङ्गों में भी, यहाँ तक कि छोटी-मोटी चींटियों में भी यह जाति-भेद स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। परन्तु··· ॥ ६ ॥

"छोटे-बड़े चौपायों (पशुओं) में यह जाति-भेद स्पष्ट··· ॥ १० ॥

"उदर को ही पैर मानकर चलने वाले और लम्बी पीठ वाले सर्पों में जन्मजाति भेद स्पष्ट···है ॥ ११ ॥

"जलचर मछलियों में, जो जल में ही अपना जीवनयापन करती हैं, भी जन्मजात भेद स्पष्ट है··· ॥ १२ ॥

"आकाशचारी एवं पक्षों से ही गमन करने वाले नाना पक्षियों में भी जन्मजात भेद स्पष्ट है··· ॥ १३ ॥

"तो जैसे इन (उपर्युक्त) प्राणियों में पृथक् पृथक् जन्मजात चिह्न दिखायी देते हैं; उस तरह मनुष्यों मे कोई जातिगत भेद नहीं दिखायी देता ॥ १४ ॥

"न केशों (बालों) से, न शिर से, न कानों से, न आँखों से, न मुख से, न नाक से, न होठों से, और न आँख की भौंहों से ॥ १५ ॥

"न गीवाय न अंसेहि, न उदरेन न पिट्ठिया।
न सोणिया न उरसा, न सम्बाधे न मेथुने ॥ १६ ॥

"न हत्थेहि न पादेहि, नङ्गुलीहि नखेहि वा।
न जङ्घाहि न ऊरूहि, न वण्णेन सरेन वा।
लिङ्गं जातिमयं नेव, यथा अञ्ञासु जातिसु ॥ १७ ॥

४. "पच्चत्तं च सरीरेसु मनुस्सेस्वेतं न विज्जति।
वोकारं च मनुस्सेसु, समञ्ञाय पवुच्चति ॥ १८ ॥

"यो हि कोचि मनुस्सेसु, गोरक्खं उपजीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, कस्सको सो न ब्राह्मणो ॥ १९ ॥

"यो हि कोचि मनुस्सेसु, पुथुसिप्पेन जीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, सिप्पिको सो न ब्राह्मणो ॥ २० ॥

"यो हि कोचि मनुस्सेसु, वोहारं उपजीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, वाणिजो सो न ब्राह्मणो ॥ २१ ॥

"न ग्रीवा (गर्दन) से, न कन्धों से, न पेट से, न पीठ से, न श्रोणी (जाँघ) से, न छाती से, न गुप्त स्थान से, न मैथुन से ॥ १६ ॥

"न हाथों से, न पैरों से, न अंगुलियों से, न नखों से, न जङ्घाओं से, न ऊरु से, न वर्ण से, न स्वर से कोई भेद पृथक्-पृथक् दिखायी देने वाले मनुष्यों के शरीर में दिखायी देता है; जैसा कि अन्य प्राणियों के शरीरों में जातिभेदबोधक चिह्न दिखायी देता है ॥ १७ ॥

४. "मनुष्यों के प्रत्येक शरीर में यह भेदबोधक चिह्न नहीं मिलता। मनुष्यों में यह भेद केवल संज्ञापरक है ॥ १८ ॥

"वाशिष्ठ ! जैसे मनुष्यों में कोई गोपालन से अपनी जीविका चलाता हो तो उसे कृषक ही समझना चाहिये, ब्राह्मण नहीं। भले ही वह जन्म से ब्राह्मण ही क्यों न हो ॥ १९ ॥

"मनुष्यों में जो कोई शिल्प से अपनी आजीविका चलाता है, वाशिष्ठ ! उसे शिल्पी समझना चाहिये, ब्राह्मण नहीं ॥ २० ॥

"मनुष्यों में जो कोई व्यापार-व्यवसाय से जीविका चलाता है, वाशिष्ठ ! उसे वणिक् (वैश्य) समझना चाहिये, ब्राह्मण नहीं (भले ही वह जन्मजात ब्राह्मण ही क्यों न हो) ॥ २१ ॥

[N. 465] "यो हि कोचि मनुस्सेसु, परपेस्सेन जीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, पेस्सको सो न ब्राह्मणो ॥ २२ ॥
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, अदिन्नं उपजीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, चोरो एसो न ब्राह्मणो ॥ २३ ॥
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, इस्सत्थं उपजीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, योधाजीवो न ब्राह्मणो ॥ २४ ॥
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, पोरोहिच्चेन जीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, याजको सो न ब्राह्मणो ॥ २५ ॥
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, गामं रट्ठं च भुञ्जति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, राजा एसो न ब्राह्मणो ॥ २६ ॥
[B. 410] "न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि, योनिजं मत्तिसम्भवं[1]।
भोवादि नाम सो होति, सचे होति सकिञ्चनो।
अकिञ्चनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २७ ॥
५. "सब्बसंयोजनं छेत्वा, यो वे न परितस्सति।
सङ्गातिगं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २८ ॥
"छेत्वा नद्धिं वरत्तं च, सन्दानं सहनुक्कमं।
उक्खित्तपलिघं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २९ ॥

"...दूतकर्म (परप्रैष्य) से जीविका चलाता है उसे वासिष्ठ ! प्रैष्य (दूत) समझना चाहिये... ॥ २२ ॥

"...चौर कर्म से...चौर समझना चाहिये... ॥ २३ ॥

"...शस्त्र कर्म से...योद्धा (सिपाही)... ॥ २४ ॥

"...पौरोहित्य से...पुरोहित (याजक)... ॥ २५ ॥

"...ग्राम, राष्ट्र का उपभोग करता है, वासिष्ठ ! उसे राजा समझो, [ब्राह्मण नहीं ॥ २६ ॥

"ब्राह्मणी माता की कोंख से उत्पन्न होने मात्र से मैं किसी को 'ब्राह्मण' नहीं कहता; वह तो भोवादी (ब्राह्मणसदृश व्यवहार करने वाला) है, परिग्रही है। मैं तो अपरिग्रही एवं न लेने वाले (अयाचक) को ही ब्राह्मण मानता हूँ ॥ २७ ॥

५. "जो सभी प्रकार के संयोजनों (भव-बन्धनों) को क्षीणकर, कहीं भी भय नहीं मानता, जो संग एवं आसक्ति से रहित है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ २८ ॥

"जो रस्सीरूपी क्रोध को पगहा, (खूँटा) रूपी तृष्णा को, मुखबन्धन (जाबा) रूपी मिथ्याधारणाओं को नष्ट कर, जूआरूपी अविद्या को फेंक कर 'बुद्ध' हुआ है उसे मैं 'ब्राह्मण' कहता हूँ ॥ २९ ॥

१. यहाँ से ५४ वीं गाथा तक सभी गाथाएँ धम्मपद ग्रन्थ में भी पठित हैं।

"अक्कोसं वधबन्धं च, अदुट्ठो यो तितिक्खति।
खन्तीबलं बलानीकं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ३०॥

"अक्कोधनं वतवन्तं, सीलवन्तं अनुस्सदं।
दन्तं अन्तिमशारीरं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ३१॥

"वारिपोक्खरपत्तेव, आरग्गेरिव सासपो।
यो न लिम्पति कामेसु, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ३२॥

"यो दुक्खस्स पजानाति, इधेव खयमत्तनो।
पन्नभारं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ३३॥

"गम्भीरपञ्ञं मेधाविं, मग्गामग्गस्स कोविदं। [N. 466]
उत्तमत्थमनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ३४॥

"असंसट्ठं गहट्ठेहि, अनागारेहि चूभयं।
अनोकसारिमप्पिच्छं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ३५॥

"निधाय दण्डं भूतेसु, तसेसु थावरेसु च।
यो न हन्ति न घातेति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ३६॥

"अविरुद्धं विरुद्धेसु, अत्तदण्डेसु निब्बुतं।
सादानेसु आनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ३७॥

"जो आक्रोश (निन्दा), हिंसा, बन्धन के विना द्वेष को सह लेता है, क्षमाशील है, क्षमा ही जिसकी सेना व बल है, उसे··· ॥ ३० ॥

"जो क्रोधरहित है, व्रती है, शीलसम्पन्न है, तृष्णारहित है, इन्द्रियनिग्रही है, अन्तिम शरीर धारण करने वाला (इसके बाद जिसका निर्वाण हो जाना) है, उसे··· ॥ ३१ ॥

"जल में लिप्त न होने वाले कमल की तरह, आरे की नोंक पर न टिकने वाले सरसों के दाने की तरह, जो विषयों में अलिप्त रहता है, उसे··· ॥ ३२ ॥

"जिसने इसी जन्म में दुःखक्षय को जान लिया, जो वासनाभार एवं तृष्णा से रहित है उसे··· ॥ ३३ ॥

"जो गम्भीरप्रज्ञ, बुद्धिमान्, मार्गामार्गज्ञ, उत्तम अर्थ को प्राप्त हो, उसे···॥३४॥

"जो गृहस्थ तथा प्रव्रजित—दोनों से अलग है, जो घर से बेघर हो साधनारत है, जो सीमित आवश्यकता (इच्छा) वाला है, उसे··· ॥ ३५ ॥

"जो स्थावर व जङ्गम प्राणियों में दण्ड (विरोध) का त्याग कर किसी को न मारता है, न किसी को मारने की प्रेरणा देता है, उसे··· ॥ ३६ ॥

"जो अपने विरोधियों का भी विरोध नहीं करता, अपने पर लाठी उठाने वालों

"यस्स रागो च दोसो च, मानो मक्खो च ओहितो।
सासपोरिव आरग्गा, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३८ ॥

[B. 411] ६. "अकक्कसं विञ्ञापनिं, गिरं सच्चं उदीरये।
याय नाभिसजे किञ्चि, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३९ ॥

"यो च दीघं व रस्सं वा, अणुं थूलं सुभासुभं।
लोके अदिन्नं नादेति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ४० ॥

" आसा यस्स न विज्जन्ति, अस्मिं लोके परम्हि च।
निरासासं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ४१ ॥

"यस्सालया न विज्जन्ति, अञ्ञाय अकथङ्कथी।
अमतोगधं अनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ४२ ॥

"योध पुञ्ञं च पापं च, उभो सङ्गं उपच्चगा।
असोकं विरजं सुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ४३ ॥

"चन्दं व विमलं सुद्धं, विप्पसन्नं अनाविलं।
नन्दीभवपरिक्खीणं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ४४ ॥

पर भी अपनी ओर से कोई प्रहार नहीं करता, संग्रहयोग्य चीजों पर भी अपरिग्रह-वृत्ति रखता है, उसे··· ॥ ३७ ॥

"जिसमें किसी के प्रति न राग है न द्वेष, न मान है न म्रक्ष (कपटमय गर्व), वे सभी उससे उसी तरह दूर हो चुके हैं जैसे आरे पर से सरसों का दाना छटक जाता है, उसे··· ॥ ३८ ॥

६. "जो अकर्कश (मृदु, मधुर), आदरयुक्त, सत्य वाणी बोलता है, जो किसी को बुरी भी न लगे, उसे··· ॥ ३९ ॥

"जो लोक में बिना दी हुई बड़ी या छोटी, पतली व मोटी कम या ज्यादा कोई चीज ग्रहण (चौरी) नहीं करता, उसे··· ॥ ४० ॥

"जिसे इस लोक या परलोक के विषय में कोई तृष्णा नहीं रहती, जो तृष्णा एवं आसक्ति रहित है, उसे··· ॥ ४१ ॥

"जो निरासक्त है, ज्ञान के कारण सर्वत्र निःसंशय है, अमृत-(निर्वाण-) सुख में डुबकी लगा रहा है, जिसने प्राप्तव्य को पा लिया है, उसे··· ॥ ४२ ॥

"जो पुण्य और पाप--दोनों की आसक्ति त्याग चुका है, जो निःशोक, निर्मल, और शुद्ध है, उसे··· ॥ ४३ ॥

"जो चन्द्रमा की भाँति निर्मल, शुद्ध, स्वच्छ, अनाविल (साफ) है, जिसकी सभी जन्मों की तृष्णा नष्ट हो चुकी है, उसे··· ॥ ४४ ॥

"यो इमं पलिपथं दुग्गं संसारं मोहमच्चगा।
तिण्णो पारङ्गतो झायी, अनेजो अकथङ्कथी।
अनुपादाय निब्बुतो, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ४५॥

"योध कामे पहन्त्वान, अनागारो परिब्बजे। [N. 467]
कामभवपरिक्खीणं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ४६॥

"योध तण्हं पहन्त्वान, अनागारो परिब्बजे।
तण्हाभवपरिक्खीणं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ४७॥

"हित्वा मानुसकं भोगं, दिब्बं भोगं उपच्चगा।
सब्बभोगविसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ४८॥

"हित्वा रतिं च अरतिं, सीतीभूतं निरूपधिं।
सब्बलोकाभिभुं वीरं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ४९॥

"चुतिं यो वेदि सत्तानं, उपपत्तिं च सब्बसो।
असत्तं सुगतं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ५०॥

"यस्स गतिं न जानन्ति, देवा गन्धब्बमानुसा।
खीणासवं अरहन्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ५१॥

"जिसने इस संकटाकीर्ण दुर्गम संसार (जन्म-मरणचक्र) में डालने वाले मोह-रूपी प्रतिगामी मार्ग को त्याग दिया, जो संसार से पार जा चुका, ध्यानी एवं तैरकर उस किनारे जा चुका है, जो निष्पाप, निःसंशय एवं विगततृष्ण हो चुका है, उसे··· ॥ ४५ ॥

"जो काम-विषयों को त्यागकर घर से बेघर हो प्रव्रजित हो चुका है, कामतृष्णा को परिक्षीण कर चुका है, उसे··· ॥ ४६ ॥

"जो यहाँ तृष्णा को त्याग, घर से बेघर हो प्रव्रजित हो चुका है, उस तृष्णारहित को मैं··· ॥ ४७ ॥

"जो दैहिक (मानुषिक) एवं दैविक (लोकोत्तर) तापयोग (दुःखसंयोग) से दूर हो सभी संयोगों से ऊपर उठ चुका है, उसे··· ॥ ४८ ॥

"जो रति (राग) एव अरति (घृणा) को त्याग, शीतल स्वभाव एवं क्लेश-रहित है, जो सर्वलोकविजयी एवं वीर है, उसे··· ॥ ४९ ॥

"जो प्राणियों की मृत्यु एवं जन्म को भली प्रकार जान चुका है, जो सर्वत्र निरासक्त है, सुन्दर गति को प्राप्त हो चुका है और ज्ञानी हो गया है. उसे···॥५०॥

"जिसकी गति (=पहुँच) को देवता गन्धर्व और मनुष्य भी नहीं जानते, जो क्षीणास्रव हो चुका है, और अर्हत् है, उसे··· ॥ ५१ ॥

[B. 412] "यस्स पुरे च पच्छा च, मज्झे च नत्थि किञ्चनं।
अकिञ्चनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ५२ ॥

"उसभं पवरं वीरं, महेसिं विजिताविनं।
अनेजं न्हातकं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ५३ ॥

"पुब्बेनिवासं यो वेदि, सग्गापायं च पस्सति।
अथो जातिक्खयं पत्तो, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ५४ ॥

७. "समञ्ञा हेसा लोकस्मिं, नामगोत्तं पकप्पितं।
सम्मुच्चा समुदागतं, तत्थ तत्थ पकप्पितं ॥ ५५ ॥

"दीघरत्तानुसयितं, दिट्ठिगतमजानतं।
अजानन्ता नो पब्रुन्ति, जातिया होति ब्राह्मणो ॥ ५६ ॥

"न जच्चा ब्राह्मणो होति, न जच्चा होति अब्राह्मणो।
कम्मुना ब्राह्मणो होति, कम्मुना होति अब्राह्मणो ॥ ५७ ॥

[N. 468] "कस्सको कम्मुना होति, सिप्पिको होति कम्मुना।
वाणिजो कम्मुना होति, पेस्सको होति कम्मुना ॥ ५८ ॥

"जिसको आगे (भविष्यत्), पीछे (भूत), या मध्य (वर्तमान) में कोई आसक्ति नहीं है, जो परिग्रहरहित एवं आदानरहित है, उसे··· ॥ ५२ ॥

"जो श्रेष्ठ (ऋषभ) प्रवर (उत्तम), वीर, महर्षि, विजेता, अकम्प्य, स्नातक एवं बुद्ध हो चुका है, उसे··· ॥ ५३ ॥

"जिसने पूर्व जन्म एवं स्वर्ग-नरक के विषय में भलीभाँति जान लिया है, जिसका पुनर्जन्म क्षीण हो गया, जो अभिज्ञापरायण मुनि है, जिसके सभी कर्तव्य समाप्त हो चुके हैं, उसे··· ॥ ५४ ॥

७. "संसार में सभी नाम गोत्र कल्पित हैं, और वे व्यवहारमात्र के लिये हैं। एक-एक के लिये कल्पित ये नाम-गोत्र लोकव्यवहार से ही चले आ रहे हैं ॥ ५५ ॥

अज्ञजनों की मिथ्या धारणा में यह (नाम-गोत्र की कल्पना) दीर्घकाल से घुसी हुई है। इसलिये वे अज्ञ लोग हमें कहते हैं कि ब्राह्मण जन्म से होता है ॥५६॥

(परन्तु सचाई यह है कि) न कोई जन्म से ब्राह्मण होता है, न अब्राह्मण। (मनुष्य में) ब्राह्मणत्व या अब्राह्मणत्व—यह सब कर्म से ही आता है ॥ ५७ ॥

"कोई कृषि कर्म करता है, तो वह 'कृषक' कहलाता है, कोई शिल्प कर्म करता है वह 'शिल्पी' कहलाता है। कोई वाणिज्य (व्यापार) करता है वह 'वणिक्' (व्यापारी) कहलाता है। कोई दूत कर्म करता है वह 'प्रैष्यक' (दूत) कहलाता है ॥ ५८ ॥

"चोरो पि कम्मुना होति, योधाजीवो पि कम्मुना।
याजको कम्मुना होति, राजा पि होति कम्मुना ॥ ५९ ॥
"एवमेतं यथाभूतं, कम्मं पस्सन्ति पण्डिता।
पटिच्चसमुप्पाददसा, कम्मविपाककोविदा ॥ ६० ॥
"कम्मुना वत्तति लोको, कम्मुना वत्तति पजा।
कम्मनिबन्धना सत्ता, रथस्साणी व यायतो ॥ ६१ ॥
"तपेन ब्रह्मचरियेन, संयमेन दमेन च।
एतेन ब्राह्मणो होति, एतं ब्राह्मणमुत्तमं ॥ ६२ ॥
"तीहि विज्जाहि सम्पन्नो, सन्तो खीणपुनब्भवो।
एवं वासेट्ठ जानाहि, ब्रह्मा सक्को विजानतं" ति ॥ ६३ ॥

३. वासेट्ठ-भारद्वाजानं सरणगमनं

[B. 413] ८. एवं वुत्ते, वासेट्ठभारद्वाजमाणवा भगवन्तं एतदवोचुं—

"चौरी करने वाला 'चौर' कहलाता है, शस्त्रादि कर्म वाला 'योद्धा' कहलाता है, याजक (पुरोहित) भी स्वकर्म से ही कहलाता है। राजा भी (अपने ग्राम-नगरादि के स्वामित्वभोगकर्म से ही) 'राजा' कहलाता है ॥ ५९ ॥

"इस तरह 'प्रतीत्यसमुत्पाद' सिद्धान्त के जानने वाले एवं कर्मफल के ज्ञाता पण्डितजन, हेतु से उत्पन्न कर्म को, यथार्थ रूप से इसी प्रकार देखते हैं ॥ ६० ॥

"यह समग्र संसार कर्म से चलता है। यह समग्र प्रजा कर्म से चलती है। चलते हुए रथ का चक्का (पहिया) जैसे आणी (धुरी) से फँसा हुआ सदा चलता रहता है, वैसे ही ये समग्र प्राणी भी कर्म से बँधे अपने काम में लगे रहते हैं ॥ ६१ ॥

"तब ब्रह्मचर्य, संयम एवं इन्द्रियनिग्रह—ये गुण जिसमें हों, वही वास्तविक ब्राह्मण है। उसी को मैं श्रेष्ठ ब्राह्मण मानता हूँ ॥ ६२ ॥

"वाशिष्ठ ! जो तीनों विद्याओं से युक्त हो, शान्तचित्त हो, जन्मपरम्परा जिसकी क्षीण हो चुकी हो, वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है। वही ज्ञानियों में ब्रह्मा व इन्द्र के समान श्रेष्ठ है ॥ ६३ ॥

३. वाशिष्ठ एवं भारद्वाज माणवकों का बुद्ध के प्रति शरणगमन

८. (भगवान् द्वारा) इस प्रकार कहे जाने पर, वाशिष्ठ एवं भारद्वाज माणव-

"अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम! सेय्यथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य--चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति--एवमेवं भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एते मयं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छाम धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासके नो भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गते" ति॥

●

भगवान् से यों निवेदन करने लगे—"आश्चर्य है, भो गौतम!...आप गौतम हमें आज से हममें प्राण रहने तक (जीवनपर्यन्त) अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।"

वासेट्ठसुत्त समाप्त॥

●

४६. सुभसुत्तं

१. गहट्ठपब्बजितकम्मट्ठानेसु विभज्जवादो

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति ति। [N. 469] जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन सुभो माणवो तोदेय्यपुत्तो सावत्थियं पटिवसति अञ्ञतरस्स गहपतिस्स निवेसने केनचिदेव करणीयेन। अथ खो सुभो माणवो तोदेय्यपुत्तो यस्स गहपतिस्स निवेसने पटिवसति तं गहपतिं एतदवोच—"सुतं मेतं, गहपति—'अविवित्ता सावत्थी अरहन्तेही' ति। कं नु ख्वज्ज समणं-ब्राह्मणं वा पयिरुपासेय्यामा" ति ?

"अयं, भन्ते, भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तं, भन्ते, भगवन्तं पयिरुपासस्सू" ति।

अथ खो सुभो माणवो तोदेय्यपुत्तो तस्स गहपतिस्स पटि- [R. 197] स्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सुभो माणवो तोदेय्यपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—"ब्राह्मणा, भो गोतम, एवमाहंसु—'गहट्ठो आराधको होति ञायं धम्मं कुसलं, न पब्बजितो आराधको होति ञायं धम्मं कुसलं' ति। इध भवं गोतमो किमाहा" ति ?

---

४६. शुभसूत्र

१. गृहस्थ एवं प्रव्रजित के कर्मस्थानों का विभागशः औचित्य प्रतिपादन

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्तीस्थित, अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित, जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय तौदेयपुत्र शुभ माणवक श्रावस्ती के किसी गृहस्थ के घर में कोई विशेष कार्य से ठहरा हुआ था। तब (कभी) वह तौदेयपुत्र शुभ माणवक जिस गृहपति के घर से रहता था उससे बोला--"गृहपति ! मैंने सुना है कि 'श्रावस्ती नगरी ज्ञानियों से शून्य नहीं है।' भो ! आज किस श्रमण या ब्राह्मण की पर्युपासना (सत्सङ्ग) की जाय ?"

(गृहपति बोला) "ये पूजनीय भगवान् श्रावस्तीस्थित, अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में विराजमान हैं, तो आज उन्हीं भगवान् की पर्युपासना करो।"

तब वह तौदेयपुत्र शुभ माणवक गृहपति की बात मानकर, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर भगवान् के साथ सम्मोदन किया। सम्मोदन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस तौदेयपुत्र शुभ माणवक ने भगवान् से यों निवेदन किया--"भो गौतम ! ब्राह्मण लोग ऐसा कहते हैं--'गृहस्थ ही न्याय्य कुशल धर्मों की आराधना में समर्थ हैं, परिव्राजक उन न्याय्य कुशल धर्मों की आराधना में उतने समर्थ नहीं।' भो गौतम ! आपका इस विषय में क्या कहना है ?"

२. "विभज्जवादो खो अहमेत्थ, माणव; नाहमेत्थ एकंसवादो। गिहिस्स वाहं, माणव, पब्बजितस्स वा मिच्छापटिपत्तिं न वण्णेमि। गिही वा हि, [B. 414] माणव, पब्बजितो वा मिच्छापटिपन्नो मिच्छापटिपत्ताधिकरणहेतु न आराधको होति ञायं धम्मं कुसलं। गिहिस्स वाहं, माणव, पब्बजितस्स वा सम्मापटिपत्तिं वण्णेमि। गिही वा हि, माणव, पब्बजितो वा सम्मापटिपन्नो सम्मापटिपत्ताधिकरणहेतु आराधको होति ञायं धम्मं कुसलं" ति।

"ब्राह्मणा, भो गोतम, एवमाहंसु—'महट्ठमिदं महाकिच्चं महाधिकरणं [N. 470 महासमारम्भं घरावासकम्मट्ठानं महप्फलं होति; अप्पट्ठमिदं अप्पकिच्चं अप्पाधिकरणं अप्पसमारम्भं पब्बज्जा कम्मट्ठानं अप्पफलं होती' ति। इध भवं गोतमो किमाहा" ति ?

"एत्था पि खो अहं, माणव, विभज्जवादो; नाहमेत्थ एकंसवादो। अत्थि, माणव, कम्मट्ठानं महट्ठं महाकिच्चं महाधिकरणं महासमारम्भं विपज्जमानं अप्पफलं होति; अत्थि, माणव, कम्मट्ठानं महट्ठं महाकिच्चं

---

२. "माणवक! तुम्हारे इस प्रश्न के विषय में विभज्यवादी मैं (विभाग करके अच्छे को अच्छा व बुरे को बुरा कहने वाला) हूँ, न कि एकांशवादी (एक ही लाठी से सबको हाँकने वाला) हूँ। माणवक! मैं गृहस्थ या प्रव्रजित के लिये मिथ्या प्रतिपत्ति (झूठे विश्वास) की प्रशंसा नहीं करता; अपितु माणवक! गृहस्थ के लिये भी तथा प्रव्रजित के लिये भी सम्यक्प्रतिपत्ति (सही विश्वास) की ही प्रशंसा करता हूँ। भले ही वह गृहस्थ हो या प्रव्रजित, मिथ्या प्रतिपत्ति वाला होने पर, इस मिथ्या प्रतिपत्ति के कारण, न्याय्य कुशल धर्मों की आराधना नहीं कर सकता। अपितु सम्यक्प्रतिपत्ति वाला होने पर ही, वह इस सम्यक्प्रतिपत्ति के कारण, न्याय्य कुशल धर्मों की आराधना कर सकता है।"

"भो गौतम! ब्राह्मण ऐसा कहते हैं—'यह गृहस्थ धर्म का कर्मस्थान (कर्म, व्यवहार) महान् अर्थदायी; महान् कार्यसाधक, महान् साधन एवं सम्भार वाला है, इसकी अपेक्षा प्रव्रज्या का कर्मस्थान, अल्प अर्थदायी, अल्प कार्यसाधक, अल्प साधन एवं अल्प सम्भार वाला है'। इस विषय में आपका क्या कहना है ?"

"माणवक! तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर भी मैं विभज्यवाद से ही दूँगा, एकांशवाद से नहीं। माणवक! मैं यह नहीं कहता कि सभी कर्मस्थान महान् अर्थ···महान् फलदायक होते हैं। यहाँ ऐसा भी कर्मस्थान है जो महान् अर्थदायी, महान् कार्यसाधक, महान् साधन एवं सम्भार वाला होने पर भी, पूरा न उतरने पर अल्प फलदायी हो जाता है। और ऐसा भी कोई कर्मस्थान हो सकता है कि जो

महाधिकरणं महासमारम्भं सम्पज्जमानं महप्फलं होति; अत्थि, माणव, कम्मट्ठानं अप्पट्ठं अप्पकिच्चं अप्पाधिकरणं अप्पसमारम्भं विपज्जमानं अप्पफलं होति; अत्थि, माणव, कम्मट्ठानं अप्पट्ठं अप्पकिच्चं अप्पाधिकरणं अप्पसमारम्भं सम्पज्जमानं महप्फलं होति। [R. 198]

"कतमं च, माणव, कम्मट्ठानं महट्ठं महाकिच्चं महाधिकरणं महासमारम्भं विपज्जमानं अप्पफलं होति ? कसि खो, माणव, कम्मट्ठानं महट्ठं महाकिच्चं महाधिकरणं महासमारम्भं विपज्जमानं अप्पफलं होति। कतमं च, माणव, कम्मट्ठानं महट्ठं महाकिच्चं महाधिकरणं महासमारम्भं सम्पज्जमानं महप्फलं होति ? कसि येव खो, माणव, कम्मट्ठानं महट्ठं महाकिच्चं महाधिकरणं महासमारम्भं सम्पज्जमानं महप्फलं होति। कतमं च, माणव, कम्मट्ठानं अप्पट्ठं अप्पकिच्चं अप्पाधिकरणं अप्पसमारम्भं विपज्जमानं अप्पफलं होति ? वणिज्जा खो, माणव, कम्मट्ठानं अप्पट्ठं अप्पकिच्चं अप्पाधिकरणं अप्पसमारम्भं विपज्जमानं अप्पफलं होति। कतमं च माणव, कम्मट्ठानं अप्पट्ठं अप्पकिच्चं अप्पाधिकरणं अप्पसमारम्भं सम्पज्जमानं महप्फलं होति ?

महान् अर्थ एवं कार्य का साधक महान् साधन एवं सम्भार वाला होने पर और ठीक से किये जाने पर महान् फलदायक हो सकता है। और कोई कर्मस्थान अल्प अर्थ एवं कार्य का साधक एवं अल्प साधन व सम्भार वाला होने पर और यदि ठीक से न किया जाय तो वह अल्प फलदायक ही हो सकता है। दूसरी तरफ कोई कर्मस्थान अल्प अर्थ एवं कार्य…परन्तु ठीक से किया जाय तो वह महान् फलप्रद भी हो सकता है।

(१) "माणवक ! कौन सा कर्मस्थान महान् अर्थ एवं कार्य का साधक, विपुल साधन एवं सम्भार वाला होने पर भी, यदि ठीक से न किया जाय तो, अल्पफलदायी होता है ? माणवक ! कृषि कर्मस्थान महान् अर्थ…ठीक से न किया जाय तो अल्प फलदायी होता है। (२) और माणवक कौन सा कर्मस्थान महान् अर्थ… ठीक से किया जाय तो विपुल फलदायी होता है ? माणवक ! वही कृषि कर्म महान् अर्थ…ठीक से किया जाय तो विपुल फलदायी होता है। (३) और माणवक ! कौन सा कर्म अल्प अर्थ…वह भी ठीक से न किया जाय तो अल्प फलदायक होता है ? माणवक ! व्यापार यदि थोड़ी पूँजी, थोड़ा श्रम, थोड़े साधन एवं सम्भार से प्रारम्भ किया जाय और उसमें भी ठीक तरह से पूरा ध्यान न दिया जाय तो वह अल्प फलप्रद ही होता है। (४) और माणवक ! कौन कर्म अल्प अर्थ एवं कार्य…होते हुए भी यदि उसमें पूरा ध्यान दिया जाय तो वह भी विपुल फलप्रद हो सकता है ? वह व्यापार ही थोड़ी पूँजी, थोड़ा श्रम, थोड़े साधन एवं सम्भार

वणिज्जा येव खो, माणव, कम्मट्ठानं अप्पट्ठं अप्पकिच्चं अप्पाधिकरणं अप्पसमारम्भं सम्पज्जमानं महप्फलं होति।

३. "सेय्यथापि, माणव, कसि कम्मट्ठानं महट्ठं महाकिच्चं महाधिकरणं महासमारम्भं विपज्जमानं अप्पफलं होति; एवमेव खो, माणव, घरावास- [B. 415] कम्मट्ठानं महट्ठं महाकिच्चं महाधिकरणं महासमारम्भं विपज्जमानं अप्पफलं होति। सेय्यथापि, माणव, कसि येव कम्मट्ठानं महट्ठं महाकिच्चं महाधिकरणं महासमारम्भं सम्पज्जमानं महप्फलं होति; एवमेव खो, माणव, घरावासकम्मट्ठानं महट्ठं महाकिच्चं महाधिकरणं महासमारम्भं [N. 471] सम्पज्जमानं महप्फलं होति। सेय्यथापि, माणव, वणिज्जा कम्मट्ठानं अप्पट्ठं अप्पकिच्चं अप्पाधिकरणं अप्पसमारम्भं विपज्जमानं अप्पफलं होति; एवमेव खो, माणव, पब्बज्जा कम्मट्ठानं अप्पट्ठं अप्पकिच्चं अप्पाधिकरणं अप्पसमारम्भं विपज्जमानं अप्पफलं होति। सेय्यथापि, माणव, वणिज्जा येव कम्मट्ठानं अप्पट्ठं अप्पकिच्चं अप्पाधिकरणं अप्पसमारम्भं सम्पज्जमानं महप्फलं होति; एवमेव खो, माणव, पब्बज्जा कम्मट्ठानं अप्पट्ठं [R. 199] अप्पकिच्चं अप्पाधिकरणं अप्पसमारम्भं सम्पज्जमानं महप्फलं होती" ति।

होते हुए भी यदि उसमें पूरा ध्यान दिया जाय तो वह विपुल फलदायक हो सकता है।

३. "माणवक! जैसे कृषिकार्य महान् अर्थ...यदि उसे ठीक से सम्पन्न न किया जाय तो वह अल्प फलप्रद होता है; उसी तरह गृहस्थ (गृहावास) धर्म महान् अर्थ... यदि उसे ठीक से सम्पन्न न किया जाय तो वह अल्प फलप्रद ही होता है। और माणवक! जैसे वही कृषिकर्म महान् अर्थ...और उसे (मनोयोगपूर्वक) ठीक से सम्पन्न किया जाय तो वह और भी अधिक फलदायी होता है; इसी तरह माणवक वह गृहस्थ धर्म महान् अर्थ...और उसे मनोयोगपूर्वक सम्पन्न किया जाय तो वह अपेक्षाकृत और भी अधिक शुभ फलप्रद हो सकता है। और माणवक! जैसे व्यापार कर्म थोड़ी पूँजी, थोड़ा श्रम लगाकर प्रारम्भ किया जाय और उसमें भी मन लगाकर पूरा ध्यान न दिया जाय तो वह व्यापार अल्प ही फल (लाभ) देता है; उसी प्रकार माणवक! प्रव्रजित के कृत्य अल्प अर्थ..., उसे भी मनोयोगपूर्वक ठीक से सिद्ध न किया जाय तो वह अन्त में अल्प फलप्रद ही सिद्ध होता है; उसी तरह प्रव्रजित के कृत्य अल्प अर्थ...फिर भी यदि उन्हें मनोयोगपूर्वक ठीक से सम्पन्न किया जाय तो वे अन्त में विपुल शुभ फलप्रद होते हैं।

२. अन्धवेणूपमा ब्राह्मणा

४. "ब्राह्मणा, भो गोतम, पञ्च धम्मे पञ्ञापेन्ति पुञ्ञस्स किरियाय कुसलस्स आराधनाया" ति।

"ये ते, माणव, ब्राह्मणा पञ्च धम्मे पञ्ञापेन्ति पुञ्ञस्स किरियाय, कुसलस्स आराधनाय—सचे ते अगरु, साधु ते पञ्च धम्मे इमस्मिं परिसति भासस्सू" ति।

"न खो मे, भो गोतम, गरु यत्थस्सु भवन्तो वा निसिन्ना भवन्तरूपा वा" ति।

"तेन हि, माणव, भासस्सू" ति।

"सच्चं खो, भो गोतम, ब्राह्मणा पठमं धम्मं पञ्ञापेन्ति पुञ्ञस्स किरियाय, कुसलस्स आराधनाय। तपं खो, भो गोतम, ब्राह्मणा दुतियं धम्मं पञ्ञापेन्ति पुञ्ञस्स किरियाय, कुसलस्स आराधनाय। ब्रह्मचरियं खो, भो गोतम, ब्राह्मणा ततियं धम्मं पञ्ञापेन्ति पुञ्ञस्स किरियाय, कुसलस्स आराधनाय। अज्झेनं खो, भो गोतम, ब्राह्मणा चतुत्थं धम्मं पञ्ञापेन्ति पुञ्ञस्स किरियाय, कुसलस्स आराधनाय। चागं खो, भो गोतम, ब्राह्मणा पञ्चमं धम्मं पञ्ञापेन्ति पुञ्ञस्स किरियाय, कुसलस्स आराधनाय। ब्राह्मणा, भो गोतम, इमे पञ्च धम्मे पञ्ञापेन्ति पुञ्ञस्स किरियाय, कुसलस्स आराधनाया ति। इध भवं गोतमो किमाहा" ति?

---

२. ब्राह्मणों की अन्धों की पंक्ति से तुलना

४. "भो गौतम! ब्राह्मण लोग पुण्य एवं कुशल कर्म करने के लिये पाँच धर्म बताते हैं"।

"माणवक! पुण्य कर्म एवं कुशल कर्म को पूरा करने के लिये ये ब्राह्मण जो पाँच धर्म बताते हैं, वे यदि तुम्हें भारी न हों तो, उन्हें इस परिषद् में स्पष्ट करो"।

"भो गौतम! मुझे उन पाँच धर्मों को इस परिषद् में बताने में कोई सङ्कोच नहीं है, जब कि आप व आप जैसे और (ज्ञानी) भी यहाँ बैठे हों।"

"तो माणवक! उन्हें बताओ।"

"भो गौतम! उन पुण्य व कुशल कर्मों की आराधना हेतु वे ब्राह्मण सत्य यह प्रथम धर्म बतलाते हैं। तप यह दूसरा धर्म, भो गौतम,...बतलाते हैं। भो गौतम! ब्रह्मचर्य यह तीसरा धर्म...बतलाते हैं। भो गौतम! अध्ययन यह चौथा धर्म...। वे त्याग यह पाँचवाँ धर्म उन कुशल व पुण्य कर्मों की आराधना हेतु बतलाते हैं। भो गौतम! वे ब्राह्मण ये पाँच धर्म उन पुण्य व कुशल कर्मों की आराधना की पूर्ति-हेतु बतलाते हैं। भो गौतम! आपका इस विषय मे क्या विचार है?"

[N. 472] ५. "किं पन, माणव, अत्थि कोचि ब्राह्मणानं एकब्राह्मणो पि यो एवमाह—'अहं इमेसं पञ्चन्नं धम्मानं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा विपाकं पवेदेमी' " ति ?

"नो हिदं, भो गोतम" ।

"किं पन, माणव, अत्थि कोचि ब्राह्मणानं एकाचरियो पि एकाचरियपाचरियो पि याव सत्तमा आचरियमहयुगा पि, यो एवमाह—'अहं इमेसं [B. 416] पञ्चन्नं धम्मानं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा विपाकं पवेदेमी' "

"नो हिदं, भो गोतम" ।

[R. 200] "किं पन, माणव, ये पि ते ब्राह्मणानं पुब्बका इसयो मन्तानं कत्तारो मन्तानं पवत्तारो येसमिदं एतरहि ब्राह्मणा पोराणं मन्तपदं गीतं पवुत्तं समिहितं तदनुगायन्ति तदनुभासन्ति भासितमनुभासन्ति वाचितमनुवाचेन्ति, सेय्यथीदं—अट्ठको वामको वामदेवो वेस्सामित्तो यमतग्गि अङ्गीरसो भारद्वाजो वासेट्ठो कस्सपो भगु; ते पि एवमाहंसु—'मयं इमेसं पञ्चन्नं धम्मानं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा विपाकं पवेदेमा' " ति ?

"नो हिदं, भो गोतम" ।

"इति किर, माणव, नत्थि कोचि ब्राह्मणानं एकब्राह्मणो पि यो एवमाह—

---

५. "माणव ! क्या उन ब्राह्मणों में कोई एक भी ऐसा ब्राह्मण है, जो (छाती पर हाथ रखकर) यह कह सके—'मैं इन पाँचों धर्मों को स्वयं जानकर, साक्षात् कर के ही दूसरों को प्रज्ञापन करता हूँ' ?"

"भो गौतम ! ऐसा तो कोई नहीं है।"

"माणव ! क्या उन ब्राह्मणों की सातवीं पीढी तक भी है कोई एक भी आचार्य या प्राचार्य, जो यह कह सके—'मैं इन पाँचों···प्रज्ञापन करता हूँ ?"

"नहीं, भो गौतम !"

"माणव ! और जो उन ब्राह्मणों के पूर्वज ऋषि हुए हैं जिनके विषय में यह कहा जाता है कि वे मन्त्रों के कर्ता थे, मन्त्रों के प्रवक्ता थे, जिन्होंने इन मन्त्रपदों का सङ्गायन किया है, प्रवचन किया है, आधुनिक ब्राह्मण आज भी उनके अनुगामी हैं, उन्हीं के अनुकूल प्रवचन करते हैं, उनका समर्थन करते हैं, उन्हीं के लिखे को जनता के सम्मुख पढते हैं, ये पूर्वज ऋषि हैं; जैसे—अष्टक, वामदेव, वामक, विश्वामित्र, यमदग्नि, आङ्गिरस, भारद्वाज, वशिष्ठ, काश्यप, भृगु; वे भी यह कह सकते हैं—'हम इन पाँचों धर्मों का···प्रज्ञापन करते हैं' ?"

"नहीं भो गौतम !"

"तो फिर, माणव ! वह सिद्ध हो गया कि ब्राह्मणों में एक भी कोई ऐसा ब्राह्मण

"अहं इमेसं पञ्चन्नं धम्मानं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा विपाकं पवेदेमी' ति; नत्थि कोचि ब्राह्मणानं एकाचरियो पि एकाचरियपाचरियो पि याव सत्तमा आचरियमहयुगा पि यो एवमाह—'अहं इमेसं पञ्चन्नं धम्मानं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा विपाकं पवेदेमी' ति; ये पि ते ब्राह्मणानं पुब्बका इसयो···पे०··· ते पि न एवमाहंसु—'मयं इमेसं पञ्चन्नं धम्मानं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा विपाकं पवेदेमा' ति।

"सेय्यथापि, माणव, अन्धवेणि परम्परासंसत्ता पुरिमो पि न पस्सति मज्झिमो पि न पस्सति पच्छिमो पि न पस्सति; एवमेव खो, माणव, अन्धवेणूपमं मञ्ञे ब्राह्मणानं भासितं सम्पज्जति—पुरिमो पि न [N. 473] पस्सति मज्झिमो पि न पस्सति पच्छिमो पि न पस्सती" ति।

३. उत्तरिमनुस्सधम्मानं सच्छिकिरिया

६. एवं वुत्ते, सुभो माणवो तोदेय्यपुत्तो भगवता अन्धवेणूपमेन वुच्चमानो कुपितो अनत्तमनो भगवन्तं येव खुंसेन्तो भगवन्तं येव वम्भेन्तो भगवन्तं येव वदमानो—'समणो गोतमो पापितो भविस्सती' ति भगवन्तं एतदवोच—"ब्राह्मणो, भो गोतम, पोक्खरसाति ओपमञ्ञो सुभगवनिको एवमाह—'एवमेव पनिधेकच्चे समणब्राह्मणा उत्तरिमनुस्सधम्मा अलमरिय- [B. 417] ञाणदस्सनविसेसं पटिजानन्ति। तेसमिदं भासितं हस्सकं येव [R. 201] सम्पज्जति, नामकं येव सम्पज्जति, रित्तकं येव सम्पज्जति, तुच्छकं येव सम्पज्जति। कथं हि नाम मनुस्सभूतो उत्तरिमनुस्सधम्मा अलमरियञाण-

---

नहीं है जो यह कह सके—'मैं इन पाँचों धर्मों का···करता हूँ'; या इन ब्राह्मणों की सातवीं पीढी तक एक भी आचार्य···पूर्वज ऋषि···प्रज्ञापन करते हैं।'

"जैसे, माणव ! अन्धे लोगों की एक दूसरे से जुड़ी हुई पंक्ति में न कोई आगे वाला, न कोई अन्त वाला, न कोई बीच वाला आदमी ही रास्ता देख पाता है; उसी तरह इन ब्राह्मणों का कथन भी उस अन्ध पंक्ति की तरह ही बनता है, जिनमें न पहला न अन्तिम न मध्यम ही उन धर्मों के बारे में कुछ देख पाया है।"

३. लोकोत्तर मनुष्य-गुणों का साक्षात्कार

६. (भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, तौदेयपुत्र शुभ माणव भगवान् द्वारा ब्राह्मणों की अन्धपंक्ति से तुलना किये जाने पर, भगवान् से खीज़ (झुंझला) गया, खुनसा गया, और भगवान् को उलटा-सुलटा बकने लगा—'ये श्रमण गौतम पापी हैं', और उनसे यों बोला—"भो गौतम ! सुभगवननिवासी औपमन्यव पौष्करसादि ब्राह्मण यों कहते हैं--"और इसी तरह कुछ श्रमण-ब्राह्मण अपने में लोकोत्तर गुणों के आर्यजनों द्वारा अनुभूत ज्ञानदर्शनविशेष का दावा करते हैं; उनका यह दावा थोथा,

दस्सनविसेसं ञस्सति वा दक्खति वा सच्छि वा करिस्सती ति—नेतं ठानं विज्जती' " ति ?

"किं पन, माणव, ब्राह्मणो पोक्खरसाति ओपमञ्ञो सुभगवनिको सब्बेसं येव समणब्राह्मणानं चेतसा चेतो परिच्च पजानाती" ति ?

"सकाय पि हि, भो गोतम, पुण्णिकाय दासिया ब्राह्मणो पोक्खरसाति ओपमञ्ञो सुभगवनिको चेतसा चेतो परिच्च न पजानाति, कुतो पन सब्बेसं येव समणब्राह्मणानं चेतसा चेतो परिच्च पजानिस्सती" ति !

"सेय्यथापि, माणव, जच्चन्धो पुरिसो न पस्सेय्य कण्हसुक्कानि रूपानि, न पस्सेय्य नीलकानि रूपानि, न पस्सेय्य पीतकानि रूपानि, न पस्सेय्य लोहितकानि रूपानि, न पस्सेय्य मञ्जिट्ठकानि रूपानि, न पस्सेय्य समविसमं, न पस्सेय्य तारकरूपानि, न पस्सेय्य चन्दिमसुरिये। सो एवं वदेय्य—'नत्थि कण्हसुक्कानि रूपानि, नत्थि कण्हसुक्कानं रूपानं दस्सावी; नत्थि नीलकानि रूपानि, नत्थि नीलकानं रूपानं दस्सावी; नत्थि पीतकानि रूपानि, नत्थि पीतकानं रूपानं दस्सावी; नत्थि लोहितकानि रूपानि, नत्थि [N. 474] लोहितकानं रूपानं दस्सावी; नत्थि मञ्जिट्ठकानि रूपानि, नत्थि मञ्जिट्ठकानं रूपानं दस्सावी; नत्थि समविसमं, नत्थि समविसमस्स दस्सावी; नत्थि तारकरूपानि, नत्थि तारकरूपानं दस्सावी; नत्थि चन्दिम-

---

तुच्छ, व्यर्थ एवं खाली सा ही लगता है; क्योंकि कैसे कोई सामान्य आदमी लोकोत्तर मनुष्य-गुणों को जान सकता है, उनका साक्षात्कार कर सकता है ! यह सम्भव ही नहीं है।"

"तो क्या माणव ! सुभगवननिवासी औपमन्यव पौष्करसादि ब्राह्मण सभी श्रमण-ब्राह्मणों के मन की बात जानता है" ?

"भो गौतम ! वह सुभगवननिवासी औपमन्यव पौष्करसादि ब्राह्मण अपनी पूर्णिका दासी के मन की बात जानने की शक्ति तो रखता ही नहीं, फिर वह समग्र श्रमण-ब्राह्मणों के मन की बात कहाँ से, कैसे जान पायगा !"

"माणव ! जैसे कोई जन्म से अन्धा पुरुष न काला या सफेद रूप (रंग) जाने, न नीले, न पीले, न लाल, न मञ्जीठ रूपों को जाने; न सम-विषम भूमि को देख पावे, न तारों को, न चन्द्र-सूर्य को देख पावे और वह यह कहे—'काले या सफेद कोई रंग नहीं होते, न ऐसे रंगों को देखने वाला है; न नीले···पीले···लाल···न मञ्जीठ रंग होते हैं न उनका कोई देखने वाला है; न सम-विषम भूमि···न तारे··· न चन्द्रमा या सूर्य हैं, न उनको देखने वाला कोई है; क्योंकि मैं इनके बारे में

सुरिया, नत्थि चन्दिमसुरियानं दस्सावी। अहमेतं न जानामि, अहमेतं न पस्सामि; तस्मा तं नत्थी' ति। सम्मा नु खो सो, माणव, वदमानो वदेय्या" ति?

"नो हिदं, भो गोतम। अत्थि कण्हसुक्कानि रूपानि, अत्थि कण्हसुक्कानं रूपानं दस्सावी; अत्थि नीलकानि रूपानि, अत्थि नीलकानं रूपानं दस्सावी; अत्थि पीतकानि रूपानि, अत्थि पीतकानं रूपानं दस्सावी; अत्थि लोहितकानि रूपानि, अत्थि लोहितकानं रूपानं दस्सावी; अत्थि मञ्जिट्ठकानि रूपानि, अत्थि मञ्जिट्ठकानं रूपानं दस्सावी; अत्थि समविसमं, अत्थि समविसमस्स दस्सावी; अत्थि तारकरूपानि, अत्थि तारकरूपानं दस्सावी; [B. 418] अत्थि चन्दिमसुरिया, अत्थि चन्दिमसुरियानं दस्सावी। [R. 202] 'अहमेतं न जानामि, अहमेतं न पस्सामि; तस्मा तं नत्थी' ति; न हि सो, भो गोतम, सम्मा वदमानो वदेय्या" ति।

"एवमेव खो, माणव, ब्राह्मणो पोक्खरसाति ओपमञ्ञो सुभगवनिको अन्धो अचक्खुको। सो वत उत्तरिमनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं ञस्सति वा दक्खति वा सच्छि वा करिस्सती ति—नेतं ठानं विज्जति।

७. "तं किं मञ्ञसि, माणव, ये ते कोसलका ब्राह्मणमहासाला, सेय्यथोदं —चङ्की ब्राह्मणो तारुक्खो ब्राह्मणो पोक्खरसाति ब्राह्मणो जाणुस्सोणि ब्राह्मणो पिता च ते तोदेय्यो, कतमा, नेसं सेय्यो, यं वा ते सम्मुच्चा वाचं भासेय्युं यं वा असम्मुच्चा" ति?

"सम्मुच्चा भो गोतम"।

मैं कुछ नहीं जानता, अतः ये नहीं ही है। भो माणव! क्या वह अन्ध पुरुष ऐसा कहता हुआ ठीक कहता है?"

"नहीं भो गौतम! काले-सफेद रंग हैं, उन्हें देखने वाले देखते भी हैं ··अतः भो गौतम! ऐसा कहता हुआ वह सही बात नहीं कहता।"

"इसी तरह, भो माणव! सुभगवननिवासी औपमन्यव पौष्करसादि ब्राह्मण भी अन्धा है, नेत्रहीन है। यह इन लोकोत्तर गुणों का आर्यजनैकसंवेद्य ज्ञानदर्शन-विशेष का साक्षात्कार कर सकेगा—यह सम्भव नहीं है।"

७. "तो क्या मानते हो, माणव! ये जो कौसलवासी ब्राह्मण महाशाल (उच्च घराने वाले); जैसे—चङ्की ब्राह्मण, तारुक्ष ब्राह्मण, पौष्करसादि ब्राह्मण, जानुश्रोणि ब्राह्मण, या तुम्हारे पिता तौदेय; उनका कौन-सा वचन अच्छा है, वह जो वे लोक-सम्मत बोलें, या वह जो वे लोकविरुद्ध बोलें?"

"लोकसम्मत, भो गौतम!"

"कतमा नेसं सेय्यो, यं वा ते मन्ता वाचं भासेय्युं यं वा अमन्ता" ति ?

"मन्ता, भो गोतम" ।

"कतमा नेसं सेय्यो, यं वा ते पटिसङ्खाय वाचं भासेय्युं यं वा अप्पटिसङ्खाया" ति?

[N. 475] "पटिसङ्खाय भो गोतम" ।

"कतमा नेसं सेय्यो, यं वा ते अत्थसंहितं वाचं भासेय्युं यं वा अनत्थसंहितं" ति ?

"अत्थसंहितं, भो गोतम" ।

"तं किं मञ्ञसि, माणव, यदि एवं सन्ते, ब्राह्मणेन पोक्खरसातिना ओपमञ्ञेन सुभगवनिकेन सम्मुच्चा वाचा भासिता, असमुच्चा" ति ?

"असम्मुच्चा, भो गोतम" ।

"मन्ता वाचा भासिता अमन्ता वा" ति ?

"अमन्ता, भो गोतम" ।

"पटिसङ्खाय वाचा भासिता अप्पटिसङ्खाया" ति ?

"अप्पटिसङ्खाय, भो गोतम" ।

"कौन-सा उनक वचन सही है--यह जो उनका मन्त्रानुसार वचन है, या जो मन्त्र-विरुद्ध ?"

"मन्त्रानुसार, भो गौतम !"

"उनका कौन सा वचन सही होगा—वह जो सोच समझकर बोलें, या जो वे बिना सोचे-समझे बोलें ?

"जो सोच समझकर बोलें।"

"उनका कौन सा वचन सही होगा—वह जो वे सार्थक बोलें या जो वे निरर्थक बोलें !

"सार्थक वचन, भो गौतम !"

"तो क्या मानते हो, माणव ! ऐसा होने पर उस पौष्करसादि ब्राह्मण ने वह (लोकोत्तर गुणों वाली) बात लोकसम्मत कही, या लोकविरुद्ध ?"

"...लोकविरुद्ध, भो गौतम" ।

"...मन्त्रानुसार या मन्त्रविरुद्ध ?"

"...मन्त्रविरुद्ध, भो गौतम ?"

"...सोच-समझकर कहा, या बिना सोचे समझे ?

"...बिना सोचे समझे, भो गौतम !"

"अत्थसंहिता वाचा भासिता अनत्थसंहिता" ति ?
"अनत्थसंहिता, भो गोतम" ।

"पञ्च खो इमे, माणव, नीवरणा। कतमे पञ्च ? कामच्छन्द-[B. 419] नीवरणं, ब्यापादनीवरणं, थीनमिद्धनीवरणं, उद्धच्चकुक्कुच्च- [R. 203] नीवरणं, विचिकिच्छानीवरणं—इमे खो, माणव, पञ्च नीवरणा। इमेहि खो माणव, पञ्चहि नीवरणेहि ब्राह्मणो पोक्खरसाति ओपमञ्ञो सुभगवनिको आवुतो निवुतो ओफुटो परियोनद्धो। सो वत उत्तरिमनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं ञस्सति वा दक्खति वा सच्छि वा करिस्सती ति—नेतं ठानं विज्जति।

८. "पञ्च खो इमे, माणव, कामगुणा। कतमे पञ्च ? चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया, सोतविञ्ञेय्या सद्दा…पे०…घानविञ्ञेय्या गन्धा…जिव्हाविञ्ञेया रसा…कायविञ्ञेय्या फोट्ठब्बा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया—इमे खो, माणव, पञ्च कामगुणा। इमेहि खो, माणव, पञ्चहि कामगुणेहि ब्राह्मणो पोक्खरसाति ओपमञ्ञो सुभगवनिको गथितो मुच्छितो अज्झोपन्नो आदीनवदस्सावी अनिस्सरणपञ्ञो परिभुञ्जति। सो वत उत्तरिमनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं ञस्सति वा दक्खति वा सच्छि वा करिस्सतीति—नेतं ठानं विज्जति।

"…सार्थक बात कही, या निरर्थक ?"
"…निरर्थक, भो गौतम !"

"माणव ! ये पाँच नीवरण हैं। कौन से पाँच ? कामच्छन्द (राग), व्यापाद (द्वेष), स्त्यान-मृद्ध (आलस्य), औद्धत्य-कौकृत्य (उद्धतपन व हिचकिचाहट) और पाँचवाँ विचिकित्सा (संशय); माणव ! ये पाँच नीवरण होते हैं। माणव ! इन इन पाँच नीवरणों से वह सुभगवननिवासी औपमन्यत्र पौष्करसादि चारों ओर से आवृत है, ढंका है, घिरा है, बंधा है, अतः वह क्या इन लोकोत्तर गुणों का ज्ञानदर्शनविशेष जानेगा, साक्षात् करेगा ! यह सम्भव ही नहीं है।

८. "माणव ! ये पाँच कामगुण (कामभोग=विषयभोग) होते हैं। कौन से पाँच ? इष्ट, कान्त, मनाप, प्रिय, कमनीय रञ्जनीय चक्षुर्विज्ञेय रूप,…श्रोत्रविज्ञेय… शब्द,…घ्राणविज्ञेय गन्ध,…जिह्वाविज्ञेय रस…कायविज्ञेय स्पर्शयोग्य विषय…। माणव ! ये पाँच कामगुण होते हैं। माणव ! इन पाँच कामगुणों से वह सुभगवनवासी औपमन्यव पौष्करसादि ब्राह्मण गुँथा हुआ है, मूर्च्छित (बेहोश) है, अध्या-

[B. 96] "एवरूपे खो, भिक्खवे, धम्मविनये यो सत्थरि पसादो सो न सम्मग्गतो अक्खायति; यो धम्मे पसादो सो न सम्मग्गतो अक्खायति; या सीलेसु परिपूरकारिता सा न सम्मग्गता अक्खायति; या सहधम्मिकेसु पियमनापता सा न सम्मग्गता अक्खायति। तं किस्स हेतु? एवं हेतं, [R. 67] भिक्खवे, होति यथा तं दुरक्खाते धम्मविनये दुप्पवेदिते अनिय्यानिके अनुपसमसंवत्तनिके असम्मासम्बुद्धप्पवेदिते।

४. किम्भूतो पसादो सम्मग्गतो

७. "तथागतो च खो, भिक्खवे, अरहं सम्मासम्बुद्धो सब्बुपादानपरिञ्ञावादो पटिजानमानो सम्मा सब्बुपादानपरिञ्ञं पञ्ञपेति—कामुपादानस्स परिञ्ञं पञ्ञपेति, दिट्ठुपादानस्स परिञ्ञं पञ्ञपेति, सीलब्बतुपादानस्स परिञ्ञं पञ्ञपेति, अत्तवादुपादानस्स परिञ्ञं पञ्ञपेति।

"एवरूपे खो, भिक्खवे, धम्मविनये यो सत्थरि पसादो सो सम्मग्गतो अक्खायति; यो धम्मे पसादो सो सम्मग्गतो अक्खायति; या सीलेसु परिपूरकारिता सा सम्मग्गता अक्खायति; या सहधम्मिकेसु पियमनापता सा सम्मग्गता अक्खायति। तं किस्स हेतु? एवं हेतं, भिक्खवे, होति यथा तं स्वाक्खाते धम्मविनये सुप्पवेदिते निय्यानिके उपसमसंवत्तनिके सम्मासम्बुद्धप्पवेदिते।

सो किस कारण? क्योंकि यह ऐसे धर्म-विनय (=मत) के विषय में है, जो कि दुराख्यात (=ठीक से व्याख्यान नहीं किया गया) दुष्प्रवेदित (=ठीक से न जाना गया), अ-नैर्याणिक (=पार न करनेवाला), अनुपशम-सवर्त-निक (=शांति को न प्राप्त कराने वाला), अ-सम्यक्संबुद्ध-प्रवेदित (=यथार्थज्ञानी द्वारा नहीं जाना गया) है।

४. उचित श्रद्धा—७. भिक्षुओ! तथागत अर्हत् सम्यक्संबुद्ध (अपने को) सर्व-उपादान-परिज्ञावादी कहते हुये, ठीक तौर से सभी उपादानों की परिज्ञा को बतलाते हैं—काम-उपादन···; दृष्टि···; शीलव्रत···; (और) आत्मवाद (=आत्मा नित्य है, यह सिद्धान्त)—उपादान की परिज्ञा को बतलाते हैं।

भिक्षुओ! ऐसे धर्म में जो शास्ता के सम्बन्ध में श्रद्धा है, वह सम्यग्गत कही जाती है;···। सो किस हेतु? क्योंकि यह श्रद्धा ऐसे धर्म के विषय में है, (जो कि) स्वाख्यात, सुप्रवेदित, नैर्याणिक, उपसम-संवर्तनिक (और) सम्यक्सम्बुद्ध-प्रवेदित है।

विचारानं वूपसमा दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। अयं पि खो, माणव, पीति अञ्ञत्रेव कामेहि अञ्ञत्र अकुसलेहि धम्मेहि।

९. "ये ते, माणव, ब्राह्मणा पञ्च धम्मे पञ्ञापेन्ति पुञ्ञस्स किरियाय कुसलस्स आराधनाय, कतमेत्थ ब्राह्मणा धम्मं महप्फलतरं पञ्ञापेन्ति पुञ्ञस्स किरियाय कुसलस्स आराधनाया" ति?

"येमे, भो गोतम, ब्राह्मणा पञ्च धम्मे पञ्ञापेन्ति पुञ्ञस्स किरियाय कुसलस्स आराधनाय, चागमेत्थ ब्राह्मणा धम्मं महप्फलतरं पञ्ञापेन्ति पुञ्ञस्स किरियाय कुसलस्स आराधनाया" ति।

४. अनुकम्पजातिका समणा सेट्ठा

१०. "तं किं मञ्ञसि, माणव, इध अञ्ञतरस्स ब्राह्मणस्स महायञ्ञो पच्चुपट्ठितो अस्स। अथ द्वे ब्राह्मणा आगच्छेय्युं—'इत्थन्नामस्स ब्राह्मणस्स महायञ्ञं अनुभविस्सामा' ति। तत्रेकस्स ब्राह्मणस्स एवमस्स—'अहो वत! अहमेव लभेय्यं भत्तग्गे अग्गासनं अग्गोदकं अग्गपिण्डं, न [N. 477] अञ्ञो ब्राह्मणो लभेय्य भत्तग्गे अग्गासनं अग्गोदकं अग्गपिण्डं' ति। ठानं खो पनेतं, माणव, विज्जति यं अञ्ञो ब्राह्मणो लभेय्य भत्तग्गे अग्गासनं अग्गोदकं अग्गपिण्डं, न सो ब्राह्मणो लभेय्य भत्तग्गे अग्गासनं अग्गोदकं

ध्यान को प्राप्त हो विहरता है—माणव! यह प्रीति कामों के विना पापकर्मों के विना उत्पन्न होने वाली कहलाती है। इसी तरह माणव! कोई भिक्षु वितर्क-विचारों के उपशम होने से द्वितीय ध्यान को प्राप्त हो विहरता है—माणव! यह प्रीति कामों के विना...उत्पन्न होने वाली कहलाती है।

९. "माणव! पुण्य के करने व कुशल की आराधना के हेतु ये जो ब्राह्मण (सत्य आदि) पाँच धर्मों का प्रज्ञापन करते हैं, उनमें से किसको वे पुण्य करने तथा कुशल के आराधना के लिये सबसे अधिक फलदायी कहते है?"

"भो गौतम!...जिन पाँच धर्मों का वे ब्राह्मण प्रज्ञापन करते हैं उनमें त्याग धर्म को वे सबसे अधिक फलदायक मानते हैं।

४. अनुकम्पाजातिक श्रमण ही श्रेष्ठ हैं

१०. "तो क्या मानते हो, माणव! यहाँ किसी धनवान् ब्राह्मण के घर एक महायज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ हो। तब वहां कोई दो ब्राह्मण आवें। उन में से एक ब्राह्मण के (मन में) यह हो—'मैं ही इस अनुष्ठान में प्रथम भोजन-पान, प्रथम पिण्ड पाऊँ; यह दूसरा ब्राह्मण प्रथम भोजन, प्रथम पान व प्रथम पिण्ड न पावे'। हो सकता है माणव! कि इनमें दूसरा ही ब्राह्मण प्रथम भोजन...पावे और वह पहला

अग्गपिण्डं। 'अञ्ञो ब्राह्मणो लभति भत्तग्गे अग्गासनं अग्गोदकं अग्गपिडं, [R. 205] नाहं लभामि भत्तग्गे अग्गासनं अग्गोदकं अग्गपिडं' ति—इति सो कुपितो होति अनत्तमनो। इमस्स पन, माणव, ब्राह्मणा किं विपाकं पञ्ञापेन्ती" ति ?

"न ख्वेत्थ, भो गोतम, ब्राह्मणा एवं दानं देन्ति—'इमिना परो कुपितो होतु अनत्तमनो' ति। अथ ख्वेत्थ ब्राह्मणा अनुकम्पाजातिकं येव दानं देन्ती" ति।

"एवं सन्ते, खो, माणव, ब्राह्मणानं इदं छट्ठं पुञ्ञकिरियवत्थु होति—यदिदं अनुकम्पाजातिकं" ति ?

"एवं सन्ते, भो गोतम, ब्राह्मणानं इदं छट्ठं पुञ्ञकिरियवत्थु होति—यदिदं अनुकम्पाजातिकं" ति।

"ये ते, माणव, ब्राह्मणा पञ्च धम्मे पञ्ञापेन्ति पुञ्ञस्स किरियाय कुसलस्स आराधनाय, इमे त्वं पञ्च धम्मे कत्थ बहुलं समनुपस्ससि—गहट्ठेसु वा पब्बजितेसु वा" ति ?

"येमे, भो गोतम, ब्राह्मणा पञ्च धम्मे पञ्ञापेन्ति पुञ्ञस्स किरियाय कुसलस्स आराधनाय, इमाहं पञ्च धम्मे पब्बजितेसु बहुलं [B. 421] समनुपस्सामि, अप्पं गहट्ठेसु। गहट्ठो हि, भो गोतम, महट्ठो महाकिच्चो

ब्राह्मण न पावे। तब पहला ब्राह्मण सोचता है--'अरे ! यहाँ तो प्रथम भोजन…दूसरे ब्राह्मण ने ही पा लिया, मुझे यह सब नहीं मिला।' और वह प्रथम ब्राह्मण इस बात से कुपित हो, अप्रसन्न हो। माणव ! आपके ये ब्राह्मण उनके इस कर्म का क्या विपाक (फल) बतलाते हैं ?"

"भो गौतम ! ब्राह्मण इसलिये ऐसा दान नहीं करते कि उससे दूसरा कुपित व अप्रसन्न हो। अपितु ब्राह्मण तो अनुकम्पा को ध्यान में रख (अनुकम्पाजातिक हो) कर ही दान करते हैं।"

"तब तो माणव ! ब्राह्मणों के लिये यह अनुकम्पाजातिक क्रिया छठी क्रिया-वस्तु हुई ?"

"हाँ भो गौतम !…छठी क्रियावस्तु ही हुई।"

"माणव ! ब्राह्मण ये जो पाँच धर्म पुण्य क्रिया, एवं कुशल कर्मों को आराधना के लिये बतलाते हैं, तो क्या ये पाँचों धर्म गृहस्थों में बहुलता से मिलते हैं या प्रव्रजितों में ?"

"भो गौतम ! ये जो पाँच धर्म…प्रव्रजितों में इनकी बहुलता पायी जाती है, गृहस्थों में तो ये अपेक्षाकृत कम ही पाये जाते हैं। भो गौतम ! गृहस्थ, बड़ी-बड़ी

महाधिकरणो महासमारम्भो, न सततं समितं सच्चवादी होति; पब्बजितो खो पन, भो गोतम, अप्पट्ठो अप्पकिच्चो अप्पाधिकरणो अप्पसमारम्भो, सततं समितं सच्चवादी होति। गहट्ठो हि, भो गोतम, महट्ठो महाकिच्चो महाधिकरणो महासमारम्भो न सततं समितं तपस्सी होति ''ब्रह्मचारी होति'''सज्झायबहुलो होति'''चागबहुलो होति; पब्बजितो खो पन, भो गोतम, अप्पट्ठो अप्पकिच्चो अप्पाधिकरणो अप्पसमारम्भो सततं समितं तपस्सी होति'''ब्रह्मचारी होति'''सज्झायबहुलो होति'''चागबहुलो होति। येमे, भो गोतम, ब्राह्मणा पञ्च धम्मे पञ्ञापेन्ति पुञ्ञस्स [N. 478] किरियाय कुसलस्स आराधनाय, इमाहं पञ्च धम्मे पब्बजितेसु बहुलं समनुपस्सामि अप्पं गहट्ठेसू" ति।

"ये ते, माणव ब्राह्मणा पञ्च धम्मे पञ्ञापेन्ति पुञ्ञस्स किरियाय कुसलस्स आराधनाय चित्तस्साहं एते परिक्खारे वदामि— [R. 206] यदिदं चित्तं अवेरं अब्याबज्झं तस्स भावनाय। इध, माणव, भिक्खु सच्चवादी होति। सो 'सच्चवादीम्ही' ति लभति अत्थवेदं, लभति धम्मवेदं, लभति धम्मूपसंहितं पामोज्जं। यं तं कुसलूपसंहितं पामोज्जं, चित्तस्साहं एतं परिक्खारं वदामि—यदिदं चित्तं अवेरं अब्याबज्झं तस्स भावनाय। इध, माणव, भिक्खु तपस्सी होति'''पे०'''ब्रह्मचारी होति'''पे०'''सज्झायबहुलो होति'''पे०'''चागबहुलो होति। सो 'चागबहुलोम्ही' ति लभति

इच्छाएँ रखता है, बड़े-बड़े काम शुरू कर देता है, उनके लिये बड़े-बड़े साधन जुटाता है, उनकी पूर्तिहेतु बड़ी-बड़ी योजना (ताना-बाना) बनाता है, इन्हीं सबमें फँसकर सदा निरन्तर सत्यवादी नहीं रह पाता। इधर प्रव्रजित न कोई बड़ी-बड़ी इच्छायें पालता है, न कोई व्यावहारिक बड़ा कार्य ही हाथ में लेता है कि जिसकी पूर्तिहेतु उसे बहुत से साधन जुटाने पड़ें, या बड़ी-बड़ी योजना बनानी पड़े अतः उसका उनमें कोई फँसाव नहीं होता, यों उसे सदा निरन्तर सत्य बोलने में कोई परेशानी नहीं होती।'''गृहस्थ'''महासमारम्भ है, वह सदा निरन्तर तपस्वी नहीं हो सकता ब्रह्मचारी नहीं हो सकता'''स्वाध्यायबहुल नहीं हो सकता'' प्रव्रजित अल्पारम्भ होता है अतः वह सदा निरन्तर स्वाध्यायबहुल हो सकता है। पुण्य क्रिया के लिये''' जिन पाँच धर्मों का प्रज्ञापन करते हैं, उन पाँच धर्मों को मैं प्रव्रजितों में ही बहुतायत से पाता हूँ, गृहस्थों में कम।"

"माणव! पुण्य क्रिया एवं कुशल धर्मों की आराधना के लिये ब्राह्मण जिन पाँच धर्मों का प्रज्ञापन करते हैं मैं उन्हें चित्त को वैररहित एवं व्यापादरहित करने के लिये परिष्कार (सहायक सामग्री) मात्र मानता हूँ। माणव! यहाँ कोई

अत्थवेदं, लभति धम्मवेदं, लभति धम्मूपसंहितं पामोज्जं। यं तं कुसलूपसंहितं पामोज्जं, चित्तस्साहं एतं परिक्खारं वदामि—यदिदं चित्तं अवेरं अब्याबज्झं तस्स भावनाय। ये ते, माणव, ब्राह्मणा पञ्च धम्मे पञ्ञापेन्ति पुञ्ञस्स किरियाय कुसलस्स आराधनाय, चित्तस्साहं एते परिक्खारे वदामि —यदिदं चित्तं अवेरं अब्याबज्झं तस्स भावनाया" ति।

५ ब्रह्मानं सहब्यताय मग्गो

११. एवं वुत्ते, सुभो माणवो तोदेय्यपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—"सुतं मेतं, भो गोतम—'समणो ब्रह्मानं सहब्यताय मग्गं जानाती' " ति।

"तं किं मञ्ञसि, माणव, आसन्ने इतो नळकारगामो, नयितो दूरे नळकारगामो" ति?

[B. 422] "एवं, भो, आसन्ने इतो नळकारगामो, नयितो दूरे नळकारगामो" ति।

"तं, किं मञ्ञसि माणव, इधस्स पुरिसो नळकारगामे जातवद्धो; तमेनं नळकारगामतो तावदेव अवसटं नळकारगामस्स मग्गं पुच्छेय्युं; सिया नु खो, [N. 479] माणव, तस्स पुरिसस्स नळकारगामे जातवद्धस्स नळकारगामस्स मग्गं पुट्ठस्स दन्धायितत्तं वा वित्थायितत्तं वा" ति?

सत्यवादी होता है, वह 'मैं सत्यवादी हूँ'—यह सोचकर अर्थज्ञान व धर्मज्ञान पाता है, और धर्मसम्बन्धी प्रमोद को पाता है। इस कुशलोपसंहित (पुण्यमय) प्रामोद्य को मैं वैर या व्यापादरहित चित्त की भावना के लिये परिष्कार कहता हूँ।...ये जो ब्राह्मण पुण्य क्रिया...परिष्कारमात्र मानता हूँ।"

५. ब्रह्माओं के सहवास का मार्ग

११. ऐसा कहे जाने पर, तौदेययुत्र शुभ माणव भगवान् से यों बोला—"भो गौतम! मैंने सुना है कि आप ब्राह्मणों के सहवास (सरूपता) के मार्ग का उपदेश करते हैं?"

"तो क्या मानते हो, माणव! नडकार ग्राम यहाँ से समीप ही है ना? यहाँ से दूर तो नहीं है?"

"हाँ, भो गौतम! नड़कार ग्राम यहाँ से समीप ही है, यहाँ से दूर नहीं है।"

"तो क्या मानते हो, माणव! यहाँ कोई पुरुष जो नड़कार ग्राम में जन्मा हो, बढा हो, वहीं रहता आया हो, उससे कोई अन्य आदमी नड़कार ग्राम का मार्ग पूछे तो माणव! उस नड़कार ग्रामवासी को उस ग्राम का मार्ग पूछे जाने पर कोई द्विविधा या जड़ता (हैरानी) होगी?"

"नो हिदं, भो गोतम ।

"तं किस्स हेतु ?

"अमु हि, भो गोतम, पुरिसो नळकारगामे जातवद्धो । तस्स सब्बानेव नळकारगाकस्स मग्गानि संविदितानी" ति ।

"सिया नु खो, माणव, तस्स पुरिसस्स नळकारगामे जातवद्धस्स नळकारगामस्स मग्गं पुट्ठस्स दन्धायितत्तं वा वित्थायितत्तं वा ति, [R. 207] न त्वेव तथागतस्स ब्रह्मलोकं वा ब्रह्मलोकगामिनिं वा पटिपदं पुट्ठस्स दन्धायितत्तं वा वित्थायितत्तं वा । ब्रह्मानं चाहं, माणव, पजानामि ब्रह्मलोकं च ब्रह्मलोकगामिनिं च पटिपदं; यथापटिपन्नो च ब्रह्मलोकं उपपन्नो तं च पजानामी" ति ।

"सुतं मेतं, भो गोतम—'समणो गोतमो ब्रह्मानं सहब्यताय मग्गं देसेती' ति । साधु मे भवं गोतमो ब्रह्मानं सहब्यताय मग्गं देसेतू" ति ।

"तेन हि, माणव, सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी" ति । "एवं भो" ति खो सुभो माणवो तोदेय्यपुत्तो भगवतो पच्चस्सोसि । भगवा एतदवोच—

१२. "कतमो च, माणव, ब्रह्मानं सहब्यताय मग्गो ? इध, माणव, भिक्खु

"नहीं, भो गौतम !"

"वह क्यों ?"

"भो गौतम ! क्योंकि वह पुरुष नड़कार ग्राम में जन्मा है, बढा है, वहीं रहता आया है, उसे नड़कार ग्राम की ओर जाने-आने के सभी मार्ग अच्छीं तरह ज्ञात हैं ।"

जैसे, माणव ! उस पुरुष को नड़कार ग्राम पैदा होने, बड़े होने के कारण उस ग्राम के सभी मार्ग जाने पहचाने हैं, अतः उसका मार्ग पूछे जाने पर कोई द्विविधा या हैरानी नहीं होती; उसी तरह तथागत को कोई ब्रह्मलोक या उस तरफ जाने का मार्ग पूछे तो तथागत को कोई द्विविधा या हैरानी नहीं होती । क्योंकि, माणव ! मैं ब्रह्मा को भी जानता हूँ और ब्रह्मलोक को भी और उस तक पहुँचने के मार्ग को भी, तथा उस मार्ग से जाकर ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुए को भी अच्छी तरह जानता हूँ ।"

"भो गौतम ! मैंने सुना है कि आप ब्रह्मलोक पहुँचने का मार्ग बताते हैं । अच्छा हो, भो गौतम ! कि आप मुझे ब्रह्मलोक में जाने का मार्ग बतावें ।"

"तो माणव ! सुनो, ठीक से ध्यान दो, बताता हूँ ।"

"ठीक है, भो गौतम"—यह कहकर तौदेयपुत्र शुभ माणव ने भगवान् को उत्तर दिया । तब भगवान् यों बोले—

१२. "माणव ! ब्रह्माओं की सहव्यता (साथ रहना) का मार्ग (उपाय)

मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं तथा ततियं, तथा चतुत्थिं; इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्याबज्झेन फरित्वा विहरति। एवं भाविताय खो, माणव, मेत्ताय चेतोविमुत्तिया यं पमाणकतं कम्मं न तं तत्रावसिस्सति, न तं तत्रावतिट्ठति। सेय्यथापि, माणव, बलवा सङ्खधमो अप्पकसिरेनेव चातुद्दिसा विञ्ञापेय्य; एवमेव खो, [N. 480] माणव···पे०···एवं भाविताय खो, माणव, मेत्ताय चेतोविमुत्तिया यं पमाणकतं कम्मं न तं तत्रावसिस्सति, न तं तत्रावतिट्ठति। अयं पि खो, माणव, ब्रह्मानं सहब्यताय मग्गो।

[B. 423] "पुन च परं माणव, भिक्खु करुणासहगतेन चेतसा···पे० ···मुदितासहगतेन चेतसा···पे०···उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थिं; इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन [R. 208] महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्याबज्झेन फरित्वा विहरति। एवं भाविताय खो, माणव, उपेक्खाय चेतोविमुत्तिया यं पमाणकतं कम्मं न तं तत्रावसिस्सति, न तं तत्रावतिट्ठति। सेय्यथापि, माणव, बलवा सङ्खधमो अप्पकसिरेनेव चातुद्दिसा विञ्ञापेय्य; एवमेव खो, माणव···पे०··· एवं भाविताय खो, माणव, उपेक्खाय चेतोविमुत्तिया यं पमाणकतं कम्मं न तं तत्रावसिस्सति, न तं तत्रावतिट्ठति। अयं पि खो, माणव, ब्रह्मानं सहब्यताय मग्गो" ति।

कौन सा है? यहाँ, माणव! कोई भिक्षु मैत्रीसहगत चित्त से···सारे लोक को पूर्ण कर विहरता है। माणव! इस प्रकार मैत्रीचेतोविमुक्ति (मैत्री भावना) के भावित करने पर जितने प्रमाण में काम किया जाता है, वह वहीं तक नहीं रह जाता, वहीं तक अवस्थित नहीं रहता। जैसे, माणव! बलवान् शङ्ख बजाने वाला थोड़े ही प्रयास से चारों दिशाओं को गुँजा दे; ऐसे ही माणव! मैत्रीचेतोविमुक्ति के साथ जितने प्रमाण में···वहीं तक अवस्थित नहीं रहता। यह भी, माणव! ब्रह्माओं की सहव्यता का मार्ग है।

"और फिर माणव! करुणापूर्ण चित्त से···समग्र लोक को पूर्ण कर विहरण करता है···मुदितापूर्ण चित्त से···उपेक्षापूर्ण चित्त से समग्र लोक को पूर्ण कर विहरता है। माणव! इस प्रकार उपेक्षाचेतोविमुक्ति के भावित कर लेने पर···वहीं तक अवस्थित नहीं रहता, माणव! यह भी ब्रह्माओं की सहव्यता का मार्ग है।

६. सुभस्स माणवस्स सरणगमनं

१३. एवं वुत्ते, माणवो तोदेय्यपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम ! सेय्यथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति—एवमेव भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं। हन्द, च दानि मयं, भो गोतम, गच्छाम; बहुकिच्चा मयं बहुकरणीया" ति।

"यस्सदानि त्वं, माणव, कालं मञ्ञसी" ति।

अथ खो सुभो माणवो तोदेय्यपुत्तो भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि।

तेन खो पन समयेन जाणुस्सोणि ब्राह्मणो सब्बसेतेन [N. 481] वळवाभिरथेन सावत्थिया निय्याति दिवा दिवस्स। अद्दसा खो जाणुस्सोणि ब्राह्मणो सुभं माणवं तोदेय्यपुत्तं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान सुभं माणवं तोदेय्यपुत्तं एतदवोच—"हन्द, कुतो नु भवं भारद्वाजो आगच्छति दिवा दिवस्सा" ति ?

"इतो हि खो अहं, भो, आगच्छामि समणस्स गोतमस्स [B. 424] सन्तिका" ति।

---

६. शुभ माणव का भगवत्-शरणगमन

१३. ऐसा कहे जाने पर, तौदेयपुत्र शुभ माणव भगवान् से यों निवेदन करने लगा—"आश्चर्य है, भो गौतम ! अद्भुत है, भो गौतम ! जैसे···पूर्ववत्···आज से जीवन भर मुझे अपना शरणागत उपासक समझें। भो गौतम ! अब मैं चलूं। मुझे अन्य भी बहुत से कार्य हैं।"

"ठीक है, माणव ! जैसा तूँ उचित समझें।"

तब वह तौदेयपुत्र शुभ माणव भगवान् के भाषण का अभिनन्दन-अनुमोदन कर, आसन से उठ भगवान् को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर चला गया।

उस समय जानुश्रोणि ब्राह्मण भरी दोपहरी में श्वेत घोड़ियों से जुते रथ में बैठ श्रावस्ती से निकला। उस समय जानुश्रोणि ब्राह्मण ने तौदेयपुत्र शुभ माणव को आते हुए दूर से ही देखा। देखकर वह तौदेयपुत्र शुभ माणव को यों बोला—"अरे आप भारद्वाज ! इस भरी दोपहरी में कहाँ से आ रहे हैं ?"

"अजी ! यहीं श्रमण गौतम के पास से आ रहा हूँ।"

"तं किं मञ्ञसि भवं भारद्वाजो समणस्स गोतमस्स पञ्ञावेय्यत्तियं पण्डितो मञ्ञेति" ?

[R. 209] "को चाहं, भो, को च समणस्स गोतमस्स पञ्ञावेय्यत्तियं जानिस्सामि ? सो पि नूनमस्स तादिसो व यो समणस्स गोतमस्स पञ्ञावेय्यत्तियं जानेय्या" ति।

"उळाराय खलु भवं भारद्वाजो समणं गोतमं पसंसाय पसंसती" ति।

"को चाहं, भो, को च समणं गोतमं पसंसिस्सामि पसत्थपसत्थो व सो भवं गोतमो सेट्ठो देवमनुस्सानं। ये चिमं, भो, ब्राह्मणा पञ्च धम्मे पञ्ञापेन्ति पुञ्ञस्स किरियाय कुसलस्स आराधनाय; चित्तस्सेते समणो गोतमो परिक्खारे वदेति—यदिदं चित्तं अवेरं अब्याबज्झं तस्स भावनाया" ति।

एवं वुत्ते जाणुस्सोणि ब्राह्मणो सब्बसेता बळवाभिरथा ओरोहित्वा एकंस उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा उदानं उदानेसि —"लाभा रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स, सुलद्धलाभा रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स यस्स विजिते तथागतो विहरति अरहं सम्मासम्बुद्धो" ति॥

●

"तो आप क्या मानते हो, भारद्वाज! श्रमण गौतम में प्रज्ञाव्यक्तता (समझदारी की बात) के बारे में ? वह तुम्हें पण्डित लगता है ?"

"अजी ! कहाँ मैं, और कहाँ मेरे द्वारा श्रमण गौतम की प्रज्ञाव्यक्तता की जानकारी ! वह तो उन श्रमण गौतम जैसा ही कोई विद्वान् जान पायगा !"

"आज तो तुम, भारद्वाज ! उस श्रमण गौतम के बारे में बड़े प्रशंसात्मक वचन बोल रहे हो !"

"अजी ! कहाँ मैं, और कहाँ श्रमण गौतम की प्रशंसा ! वे तो स्वयं प्रशस्तों में प्रशस्त (प्रशंसाप्राप्त) है। ये जो ब्राह्मण पुण्य क्रिया व कुशल कर्मों के आराधन हेतु (सत्य आदि) पाँच धर्मों का प्रज्ञापन करते हैं उन्हें वे वैर एव व्यापादरहित चित्त की भावना के लिये चित्त का परिष्कार (सहायकसामग्री) मात्र बतलाते हैं।"

ऐसा कहे जाने पर, वह जानुश्रोणि ब्राह्मण सर्वश्वेत घोड़ियों से जुते रथ से उतर कर, अपना उत्तरासङ्ग (दुपट्टा) एक कन्धे पर कर, उधर प्रणाम कर यह हार्दिक उद्गार प्रकट करने लगा—"सौभाग्यशाली हैं राजा प्रसेनजित् कौशल, जिनके राज्य में ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध जैसे महापुरुष साधनाहेतु विहरण कर रहे हैं॥"

सुभसुत्त समाप्त॥

●

५०. सङ्गारवसुत्तं

१. सङ्गारव-धनञ्जानीवत्थु

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कोसलेसु चारिकं चरति [N. 482] महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं। तेन खो पन समयेन धनञ्जानी नाम ब्राह्मणी चञ्चलिकप्पे पटिवसति अभिप्पसन्ना बुद्धे च धम्मे च सङ्घे च। अथ खो धनञ्जानी ब्राह्मणी उपक्खलित्वा तिक्खत्तुं उदानं उदानेसि—

"नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स।
नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स।
नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्सा" ति। [R. 210]

तेन खो पन समयेन सङ्गारवो नाम माणवो चञ्चलिकप्पे पटिवसति तिण्णं वेदानं पारगू सनिघण्डुकेटुभानं साक्खरप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं, पदको, वेय्याकरणो, लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो। [B. 425] अस्सोसि खो सङ्गारवो माणवो धनञ्जानिया ब्राह्मणिया एवं वाच भासमानाय। सुत्वा धनञ्जानिं ब्राह्मणिं एतदवोच—"अवभूता व अयं धनञ्जानी ब्राह्मणी, परभूता व अयं धनञ्जानी ब्राह्मणी, विज्जमानानं तेविज्जानं ब्राह्मणान, अथ च पन तस्स मुण्डकस्स समणकस्स वण्णं भासिस्सती" ति।

"न हि पन त्वं, तात भद्रमुख, तस्स भगवतो सीलपञ्ञाणं जानासि।

---

५०. सङ्गारवसूत्र

१. सङ्गारव-धनञ्जानीसंवाद

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) विशाल भिक्षुसङ्घ के साथ कौसल देश में चारिका कर रहे थे। उस समय धनञ्जानी नाम की कोई ब्राह्मणी चञ्चलिकल्प ग्राम में रहती थी। वह बुद्ध, धर्म एवं सङ्घ के प्रति अतिश्रद्धालु थी। उस समय धनञ्जानी ब्राह्मणी ने अपने आँचल का कोना पकड़ तीन बार ये हृदयोद्गार प्रकट किये—"उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम है, उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम है, उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम है।"

उस समय एक सङ्गारव नामक ब्राह्मण भी उसी चञ्चलिकल्प में रहता था, जो तीनों वेदों का पारङ्गत···महापुरुष-लक्षणशास्त्र में प्रवीण था। उस सङ्गारव ब्राह्मण ने धनञ्जानी ब्राह्मणी द्वारा कहे जाते हुए वे उद्गार सुने। सुनकर उसने धनञ्जानी ब्राह्मणी के बारे में यह कहा—"अरे! यह धनञ्जानी ब्राह्मणी अमङ्गल्य (पापनी) है, यह अपने को नष्ट करने पर तुली हुई है कि यह, हम जैसे त्रैविद्य ब्राह्मणों के रहते, उस श्रमण मुण्डक के प्रति श्रद्धा प्रकट कर रही है! उसकी प्रशंसा कर रही है!"

तब उस सङ्गारव ब्राह्मण से वह धनञ्जानी ब्राह्मणी यों बोली—"भद्रमुख! तुम उन भगवान् के शील एवं प्रज्ञा के विषय में कुछ नहीं जानते—ऐसा मालूम पड़ता

सचे त्वं, तात भद्रमुख, तस्स भगवतो सीलपञ्ञाणं जानेय्यासि, न त्वं, तात भद्रमुख, तं भगवन्तं अक्कोसितब्बं परिभासितब्बं मञ्ञेय्यासी" ति !

"तेन हि, भोति, यदा समणो गोतमो चञ्चलिकप्पं अनुप्पत्तो होति अथ मे आरोचेय्यासी" ति। "एवं, भद्रमुखा" ति खो धनञ्जानी ब्राह्मणी सङ्गारवस्स माणवस्स पच्चस्सोसि।

[N. 483] अथ खो भगवा कोसलेसु अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन चञ्चलिकप्पं तदवसरि। तत्र सुदं भगवा चञ्चलिकप्पे विहरति तोदेय्यानं ब्राह्मणानं अम्बवने। अस्सोसि खो धनञ्जानी ब्राह्मणी—"भगवा किर चञ्चलिकप्पं अनुप्पत्तो, चञ्चलिकप्पे विहरति तोदेय्यानं ब्राह्मणानं अम्बवने" ति। अथ खो धनञ्जानी ब्राह्मणी येन सङ्गारवो माणवो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा सङ्गारवं माणवं एतदवोच—"अयं, तात भद्रमुख, सो भगवा चञ्चलिकप्पं अनुप्पत्तो, चञ्चलिकप्पे विहरति तोदेय्यानं ब्राह्मणानं अम्बवने। यस्स दानि, तात भद्रमुख, कालं मञ्ञसी" ति।

२. "एवं, भो" ति खो सङ्गारवो माणवो धनञ्जानिया ब्राह्मणिया पटिस्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि।

है, यदि तुम उन भगवान् के शील व प्रज्ञा के बारे में कुछ भी जानते तो उन पर ऐसे आरोपों व निन्दात्मक वाक्यों की बौछार न करते।"

"तो श्रीमती जी! जब श्रमण गौतम इस चञ्चलिकल्प में पधारें तो मुझे भी बताना।" तब "ठीक है भद्रमुख!"—यों धनञ्जानी ब्राह्मणी ने उस सङ्गारव ब्राह्मण को उत्तर दिया।

तब कभी भगवान् कौसल प्रदेश में क्रमशः चारिका करते हुए जहाँ चञ्चलिकल्प ग्राम था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् चञ्चलिकल्पवासी तौदेय ब्राह्मणों के आम्रवन में विराजमान हो साधना करने लगे। उसी समय धनञ्जानी ब्राह्मणी ने सुना—"भगवान् निश्चय ही इस चञ्चलिकल्प ग्राम में पधारकर तौदेय ब्राह्मणों के आम्रवन में विराजे हैं।" तब वह धनञ्जानी ब्राह्मणी, जहाँ सङ्गारव माणव था वहाँ पहुँचकर सङ्गारव माणव को यों बोली—"तात भद्रमुख! ये भगवान् अपने इस चञ्चलिकल्प ग्राम में पधार गये हैं। तौदेय ब्राह्मणों के आम्रवन में विराजे हैं। अब तुम, भद्रमुख! जैसा उचित समझो, करो।"

२. "ठीक है श्रीमति!"—सङ्गारव ब्राह्मण उस ब्राह्मणी को यह उत्तर देकर, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर भगवान् के साथ सम्मोदन

सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। [R. 211] एकमन्तं निसिन्नो खो सङ्गारवो माणवो भगवन्तं एतदवोच—"सन्ति खो, भो गोतम, एके समणब्राह्मणा दिट्ठधम्माभिञ्ञावोसानपारमिप्पत्ता आदि-ब्रह्मचरियं पटिजानन्ति। तत्र, भो गोतम, ये ते समणब्राह्मणा [B. 426] दिट्ठधम्माभिञ्ञावोसानपारमिप्पत्ता आदिब्रह्मचरियं पटिजानन्ति, तेसं भवं गोतमो कतमो" ति ?

२. दिट्ठधम्माभिञ्ञावोसानपारमिप्पत्तो भगवा

३. "दिट्ठधम्माभिञ्ञावोसानपारमिप्पत्तानं आदिब्रह्मचरियं पटि-जानन्तानं पि खो अहं, भारद्वाज, वेमत्तं वदामि। सन्ति, भारद्वाज, एके समणब्राह्मणा अनुस्सविका। ते अनुस्सवेन दिट्ठधम्माभिञ्ञावोसानपारमि-प्पत्ता आदिब्रह्मचरियं पटिजानन्ति; सेय्यथापि ब्राह्मणा तेविज्जा। सन्ति पन, भारद्वाज, एके समणब्राह्मणा केवलं सद्धामत्तकेन दिट्ठधम्मा-भिञ्ञावोसानपारमिप्पत्ता आदिब्रह्मचरियं पटिजानन्ति; सेय्यथापि तक्की वीमंसी। सन्ति, भारद्वाज, एके समणब्राह्मणा पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु सामं येव धम्मं अभिञ्ञाय दिट्ठधम्माभिञ्ञावोसानपारमिप्पत्ता आदिब्रह्मचरियं पटिजानन्ति। तत्र, भारद्वाज, ये ते समणब्राह्मणा पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु सामं येव धम्मं अभिञ्ञाय दिट्ठधम्माभिञ्ञावोसान-पारमिप्पत्ता आदिब्रह्मचरियं पटिजानन्ति, तेसाहमस्मि। तदमिनापेतं,

---

(कुशल-मङ्गल-प्रश्न) किया। सम्मोदन कर उसने भगवान् से यों पूछा—"भो गौतम ! यहाँ कुछ ऐसे श्रमण-ब्राह्मण हैं जो कहते हैं कि उन्होंने इसी शरीर से, जान कर साक्षात् कर निर्वाण को प्राप्त हो आदिब्रह्मचर्य (शुद्ध धर्मसाधना) का प्रचार किया है। भो गौतम ! क्या आप भी उन्हीं श्रमण-ब्राह्मणों में कोई एक हैं ?"

२. भगवान् दृष्टधर्माभिज्ञावसानपारमिप्राप्त हैं

३. "भारद्वाज ! मैं उन वैसे ही इसी शरीर में जानकर साक्षात्कर, कर निर्वाण को पाने वाले और इस आदि ब्रह्मचर्य का प्रचार करने वाले, श्रमण-ब्राह्मणों में भी भेद करता हूँ। १. भारद्वाज ! इन श्रमण-ब्राह्मणों में कुछ ऐसे हैं जो आनुश्रविक हैं। वे अनुश्रव (श्रुति) के सहारे दृष्टधर्माभिज्ञावसानपारिमता को प्राप्त हो अपने आदि ब्रह्मचर्य के प्रचार करने का दावा करते हैं; जैसे कि ये त्रैविद्य ब्राह्मण। २. और भारद्वाज ! उनमें कुछ श्रमण-ब्राह्मण ऐसे भी हैं जो श्रद्धा के सहारे दृष्ट··· दावा करते हैं; जैसे—तार्किक व मीमांसक ब्राह्मण। ३. और भारद्वाज ! कुछ···जो पहले न सुने गये धर्मों में से धर्म को स्वयं जानकर दृष्ट···दावा करते हैं। भारद्वाज !

भारद्वाज, परियायेन वेदितब्बं, यथा ये ते समणब्राह्मणा पुब्बे अननुस्सुतेसु [N. 484] धम्मेसु सामं येव धम्मं अभिञ्ञाय दिट्ठधम्माभिञ्ञावोसानपारमिप्पत्ता आदिब्रह्मचरियं पटिजानन्ति, तेसाहमस्मि।

बोधिसत्तचरिया

४. "इध मे, भारद्वाज, पुब्बेव सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो एतदहोसि—'सम्बाधो घरावासो रजापथो, अब्भोकासो पब्बज्जा। नयिदं सुकरं अगारं अज्झावसता एकन्तपरिपुण्णं एकन्तपरिसुद्धं सङ्खलिखितं ब्रह्मचरियं चरितुं। यन्नूनाहं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि [R. 212] अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्यं' ति। सो खो अहं, भारद्वाज, अपरेन समयेन दहरो व समानो सुसुकाळकेसो भद्रेन योब्बनेन समन्नागतो पठमेन वयसा, अकामकानं मातापितूनं अस्सुमुखानं रुदन्तानं, केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिं। सो एवं पब्बजितो समानो किंकुसलगवेसी अनुत्तरं सन्तिवरपदं परियेसमानो येन आळारो कालामो तेनुपसङ्कमिं; उपसङ्कमित्वा आळारं कालामं एतदवोचं—'इच्छामहं, आवुसो कालाम, इमस्मिं धम्मविनये ब्रह्मचरियं चरितुं' ति। एवं वुत्ते, भारद्वाज, आळारो कालामो मं एतदवोच—'विहरतायस्मा। तादिसो अयं धम्मो यत्थ विञ्ञू पुरिसो नचिरस्सेव [B. 427] सकं आचरियकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरेय्या' ति। सो खो अहं, भारद्वाज, नचिरस्सेव खिप्पमेव तं धम्मं परिया-

---

तुम्हें मेरे इस स्पष्टीकरण से जान लेना चाहिये कि मै उन तीसरे प्रकार के श्रमण-ब्राह्मणों में से हूँ जो पहले न सुने गये धर्मों में से धर्म को स्वयं जान'''दावा करते हैं, मैं उनमें से एक हूँ।"

बोधिसत्त्वचरिया

४. "भारद्वाज ! जब मैं बोधिसत्त्व ही था, मुझे बोधि प्राप्त नहीं हुई थी, उस समय मेरे मन में यह विचार आया—'यह घर बसाकर रहना अत्यन्त कष्टप्रद है, मलिन पथ है, इसके विपरीत प्रव्रज्या खुला स्थान है। इस नितान्त परिशुद्ध सर्वथा परिपूर्ण, खरादे शङ्ख तुल्य उज्ज्वल ब्रह्मचर्य का पालन घर में रहकर सुकर नहीं है। क्यों न मैं सिर-दाढ़ी मुँडा, काषाय वस्त्र पहन, घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाऊँ। सो मैं भारद्वाज ! दूसरे समय तरुणावस्था में ही बहुत काले-काले केशों वाला, सुन्दर यौवन के साथ, पहली ही वय (आयु) में, माता-पिता को रोते-कलपते छोड़ घर से बेघर हो प्रव्रजित हो गया। यों मैं प्रव्रजित हो, 'मेरे लिये क्या कुशल होगा'—इसकी खोज में लगा हुआ, अनुपम शान्ति पद (निर्वाण) को ढूँढता, जहाँ अड़ार कालाम

पुणि । सो खो अहं भारद्वाज, तावतकेनेव ओट्ठपहतमत्तेन लपितलापनमत्तेन 'ञाणवादं च वदामि, थेरवादं च जानामि, पस्सामी' ति च पटिजानामि, अहं चेव अञ्ञे च । तस्स मय्हं, भारद्वाज, एतदहोसि—'न खो आळारो कालामो इमं धम्मं केवलं सद्धामत्तकेन सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरामी ति पवेदेति; अद्धा आळारो कालामो इमं धम्मं जानं पस्सं विहरती' ति ।

"अथ ख्वाहं, भारद्वाज, येन आळारो कालामो तेनुपसङ्कमिं; उपसङ्कमित्वा आळारं कालामं एतदवोचं—'कित्तावता नो, आवुसो कालाम, इमं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरामी ति पवेदेसी' ति ? एवं वुत्ते, भारद्वाज, आळारो कालामो आकिञ्चञ्ञायतनं [N 485] पवेदेसि । तस्स मय्हं, भारद्वाज, एतदहोसि—'न खो आळारस्सेव कालामस्स अत्थि सद्धा, मय्हं पत्थि सद्धा; न खो आळारस्सेव कालामस्स अत्थि विरियं ···पे०···सति···समाधि···पञ्ञा, मय्हं पत्थि पञ्ञा । यन्नूनाहं यं धम्मं आळारो कालामो सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरामी ति पवेदेति तस्स धम्मस्स सच्छिकिरियाय पदहेय्यं' ति । सो खो अहं, भारद्वाज, नचिरस्सेव खिप्पमेव तं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासिं। अथ ख्वाहं, भारद्वाज, येन आळारो कालामो तेनुपसङ्कमिं; उपसङ्कमित्वा आळारं कालामं एतदवोच—'एत्तावता नो, आवुसो कालाम, इमं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज पवेदेसी' ति ?

'एत्तावता खो अहं, आवुसो, इमं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज पवेदेमी' ति ।

'अहं पि खो, आवुसो, एत्तावता इमं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरामी' ति ।

"'लाभा नो, आवुसो, सुलद्ध नो, आवुसो, ये मयं आयस्मन्तं तादिसं सब्रह्मचारिं पस्साम । इति याहं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज पवेदेमि तं त्वं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरसि; यं त्वं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरसि तमहं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज पवेदेमि । इति याहं धम्मं जानामि

थे वहाँ गया । जाकर मैं उनसे यों बोला—"आयुष्मन् कालाम ! मैं आपके इस धर्मविनय में ब्रह्मचर्य पालन करना चाहता हूँ···पूर्ववत्[1]···।

---

१. द्र०—पीछे बोधिराजकुमारसुत्त, पृ० १११९-११३४ । (यहां सर्वत्र सम्बोधन में 'राजकुमार' की जगह 'भारद्वाज' शब्द लगाकर पढ़ें ।)

तं त्वं धम्मं जानासि, यं त्वं धम्मं जानासि तमहं धम्मं जानामि। इति [B. 428] यादिसो अहं तादिसो तुवं, यादिसो तुवं तादिसो अहं। एहि दानि, आवुसो, उभो व सन्ता इमं गणं परिहरामा' ति। इति खो, भारद्वाज, आळारो कालामो आचरियो मे समानो अत्तमनो अन्तेवासिं मं समानं अत्तना समसमं ठपेसि, उळाराय च मं पूजाय पूजेसि। तस्स मय्हं, भारद्वाज, एतदहोसि—'नायं धम्मो निब्बिदाय न विरागाय न निरोधाय न उपसमाय न अभिञ्ञाय न सम्बोधाय न निब्बानाय संवत्तति, यावदेव [N. 486] आकिञ्चञ्ञायतनूपपत्तिया' ति। सो खो अहं, भारद्वाज, तं धम्मं अनलङ्करित्वा तस्मा धम्मा निब्बिज्ज अपक्कमिं।

५. "सो खो अहं, भारद्वाज, किंकुसलगवेसी अनुत्तरं सन्तिवरपदं परियेसमानो येन उदको रामपुत्तो तेनुपसङ्कमिं; उपसङ्कमित्वा उदकं रामपुत्तं एतदवोचं—'इच्छामहं, आवुसो, इमस्मिं धम्मविनये ब्रह्मचरियं चरितुं' ति। एवं वुत्ते, भारद्वाज, उदको रामपुत्तो मं एतदवोच—'विहरतायस्मा। तादिसो अयं धम्मो यत्थ विञ्ञू पुरिसो नचिरस्सेव सकं आचरियकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरेय्या' ति। सो खो अहं, भारद्वाज, नचिरस्सेव खिप्पमेव तं धम्मं परियापुणिं। सो खो अहं, भारद्वाज, तावतकेनेव ओट्ठपहतमत्तेन लपितलापनमत्तेन 'ञाणवादं च वदामि, थेरवादं च जानामि, पस्सामी' ति च पटिजानामि, अहं चेव अञ्ञे च। तस्स मय्हं, भारद्वाज, एतदहोसि—'न खो रामो इमं धम्मं केवलं सद्धामत्तकेन सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरामी ति पवेदेसि; अद्धा रामो इमं धम्मं जानं पस्सं विहासी' ति। अथ ख्वाहं, भारद्वाज, येन उदको रामपुत्तो तेनुपसङ्कमिं; उपसङ्कमित्वा उदकं रामपुत्तं एतदवोचं—'कित्तावता नो, आवुसो रामो, इमं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरामी ति पवेदेसी' ति ? एवं वुत्ते, भारद्वाज, उदको रामपुत्तो नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं पवेदेसि। तस्स मय्हं, भारद्वाज, एतदहोसि—'न खो रामस्सेव अहोसि सद्धा, मय्हं पत्थि सद्धा; न खो रामस्सेव अहोसि विरियं…पे०… सति…समाधि…पञ्ञा, मय्हं पत्थि पञ्ञा। यन्नूनाहं यं धम्मं रामो सयं [B. 429] अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरामी ति पवेदेसि तस्स धम्मस्स सच्छिकिरियाय पदहेय्यं' ति। सो खो अहं, भारद्वाज, नचिरस्सेव खिप्पमेव तं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासिं।

"अथ ख्वाहं, भारद्वाज, येन उदको रामपुत्तो तेनुपसङ्कमिं; उपसङ्कमित्वा

उदकं रामपुत्तं एतदवोचं—'एत्तावता नो, आवुसो, रामो इमं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज पवेदेसी' ति ?

'एत्तावता खो, आवुसो, रामो इमं धम्मं सयं अभिञ्ञा [N. 487] सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज पवेदेसी' ति ।

"'अहं पि खो, आवुसो, एत्तावता इमं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरामी' ति ।

" 'लाभा नो, आवुसो, सुलद्धं नो, आवुसो, ये मयं आयस्मन्तं तादिसं सब्रह्मचारिं पस्साम । इति यं धम्मं रामो सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज पवेदेसि तं त्वं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरसि, यं त्वं धम्मं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरसि तं धम्मं रामो सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज पवेदेसि । इति यं धम्मं रामो अभिञ्ञासि तं त्वं धम्मं जानासि, यं त्वं धम्मं जानासि तं धम्मं रामो अभिञ्ञासि । इति यादिसो रामो अहोसि तादिसो तुवं, यादिसो तुवं तादिसो रामो अहोसि । एहि दानि, आवुसो, तुवं इमं गणं परिहरा' ति । इति खो भारद्वाज, उदको रामपुत्तो सब्रह्मचारी मे समानो आचरियट्ठाने मं ठपेसि, उळाराय च मं पूजाय पूजेसि । तस्स मय्हं, भारद्वाज, एतदहोसि—'नायं धम्मो निब्बिदाय न विरागाय न निरोधाय न उपसमाय न अभिञ्ञाय न सम्बोधाय न निब्बानाय संवत्तति, यावदेव नेवसञ्ञानासञ्ञायतनूपपत्तिया' ति । सो खो अहं, भारद्वाज, तं धम्मं अनलङ्करित्वा तस्मा धम्मा निब्बिज्ज अपक्कमिं ।

६. "सो खो अहं, भारद्वाज, किंकुसलगवेसी अनुत्तरं सन्तिवरपदं परियेसमानो मगधेसु अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन उरुवेला सेनानिगमो तदवसरिं । तत्थद्दसं रमणीयं भूमिभागं, पासादिकं च वनसण्डं, नदिं च सन्दन्तिं सेतकं सुपतित्थं रमणीयं, समन्ता च गोचरगामं । तस्स मय्हं, भारद्वाज, एतदहोसि—'रमणीयो वत, भो, भूमिभागो, पासादिको च वनसण्डो, नदी च सन्दति सेतका सुपतित्था रमणीया, समन्ता च गोचरगामो । अलं वतिदं कुलपुत्तस्स पधानत्थिकस्स पधानाया' ति । [B. 430]

तिस्सो अस्सुतपुब्बा उपमा

७. "सो खो अहं, भारद्वाज, तत्थेव निसीदिं—'अलमिदं [N. 488] पधानाया' ति । अपिस्सु मं, भारद्वाज, तिस्सो उपमा पटिभंसु अनच्छरिया पुब्बे अस्सुतपुब्बा ।

"सेय्यथापि, भारद्वाज, अल्लं कट्ठं सस्नेहं उदके निक्खित्तं । अथ पुरिसो

आगच्छेय्य उत्तरारणिं आदाय—'अग्गिं अभिनिब्बत्तेस्सामि, तेजो पातुकरिस्सामी' ति। तं किं मञ्ञसि, भारद्वाज, अपि नु सो पुरिसो अमुं अल्लं कट्ठं सस्नेहं उदके निक्खित्तं उत्तरारणिं आदाय अभिमन्थेन्तो अग्गिं अभिनिब्बत्तेय्य, तेजो पातुकरेय्या" ति ?

"नो हिदं, भो गोतम।"

"तं किस्स हेतु ?"

"अदुं हि, भो गोतम, अल्लं कट्ठं सस्नेहं, तं च पन उदके निक्खित्तं; यावदेव च पन सो पुरिसो किलमथस्स विघातस्स भागी अस्सा" ति।

"एवमेव खो, भारद्वाज, ये हि केचि समणा वा ब्राह्मणा वा कायेन चेव चित्तेन च कामेहि अवूपकट्ठा विहरन्ति, यो च नेसं कामेसु कामच्छन्दो कामस्नेहो काममुच्छा कामपिपासा कामपरिळाहो सो च अज्झत्तं न सुप्पहीनो होति न सुप्पटिप्पस्सद्धो, ओपक्कमिका चे पि ते भोन्तो समणब्राह्मणा दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदयन्ति, अभब्बा व ते ञाणाय दस्सनाय अनुत्तराय सम्बोधाय। नो चे पि ते भोन्तो समणब्राह्मणा ओपक्कमिका दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदयन्ति अभब्बा व ते ञाणाय दस्सनाय अनुत्तराय सम्बोधाय। अयं खो मं, भारद्वाज, पठमा उपमा पटिभासि अनच्छरिया पुब्बे अस्सुतपुब्बा। (१)

"अपरा पि खो मं, भारद्वाज, दुतिया उपमा पटिभासि अनच्छरिया पुब्बे अस्सुतपुब्बा।

"सेय्यथापि, भारद्वाज, अल्लं कट्ठं सस्नेहं आरका उदका थले निक्खित्तं। अथ पुरिसो आगच्छेय्य उत्तरारणिं आदाय--'अग्गिं अभिनिब्बत्तेस्सामि, तेजो पातुकरिस्सामी' ति। तं किं मञ्ञसि, भारद्वाज, अपि नु सो पुरिसो अमुं अल्लं कट्ठं सस्नेहं आरका उदका थले निक्खित्तं उत्तरारणिं आदाय अभिमन्थेन्तो अग्गिं अभिनिब्बत्तेय्य, तेजो पातुकरेय्या" ति ?

[N. 489] "नो हिदं, भो गोतम।

"तं किस्स हेतु ?"

"अदुं हि, भो गोतम, अल्लं कट्ठं सस्नेहं, किञ्चापि आरका उदका थले निक्खित्तं; यावदेव च पन सो पुरिसो किलमथस्स विघातस्स भागी [B. 431] अस्सा" ति।

"एवमेव खो, भारद्वाज, ये हि केचि समणा वा ब्राह्मणा वा कायेन चेव चित्तेन च कामेहि वूपकट्ठा विहरन्ति, यो च नेसं कामेसु कामच्छन्दो कामस्नेहो काममुच्छा कामपिपासा कामपरिळाहो सो च अज्झत्तं न सुप्पहीनो

होति न सुप्पटिप्पस्सद्धो, ओपक्कमिका चे पि ते भोन्तो समणब्राह्मणा दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदयन्ति, अभब्बा व ते ञाणाय दस्सनाय अनुत्तराय सम्बोधाय। नो चे पि ते भोन्तो समणब्राह्मणा ओपक्कमिका दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदयन्ति, अभब्बा व ते ञाणाय दस्सनाय अनुत्तराय सम्बोधाय। अयं खो मं, भारद्वाज, दुतिया उपमा पटिभासि अनच्छरिया पुब्बे अस्सुतपुब्बा। (२)

"अपरा पि खो मं, भारद्वाज, ततिया उपमा पटिभासि अनच्छरिया पुब्बे अस्सुतपुब्बा।

"सेय्यथापि, भारद्वाज, सुक्खं कट्ठं कोळापं आरका उदका थले निक्खित्तं। अथ पुरिसो आगच्छेय्य उत्तरारणिं आदाय—'अग्गिं अभिनिब्बत्तेस्सामि, तेजो पातुकरिस्सामी' ति। तं किं मञ्ञसि, भारद्वाज, अपि नु सो पुरिसो अमुं सुक्खं कट्ठं कोळापं आरका उदका थले निक्खित्तं उत्तरारणिं आदाय अभिमन्थेन्तो अग्गिं अभिनिब्बत्तेय्य, तेजो पातुकरेय्या" ति?

"एवं भो गोतम।"

"तं किस्स हेतु?"

"अदुं हि, भो गोतम, सुक्खं कट्ठं कोळापं, तं च पन आरका उदका थले निक्खित्तं" ति।

"एवमेव खो, भारद्वाज, ये हि केचि समणा वा ब्राह्मणा वा कायेन चेव चित्तेन च कामेहि वूपकट्ठा विहरन्ति, यो च नेसं कामेसु कामच्छन्दो कामस्नेहो कामपुच्छा कामपिपासा कामपरिळाहो सो च अज्झत्तं सुप्पहीनो होति सुप्पटिप्पस्सद्धो, ओपक्कमिका चे पि ते भोन्तो समण- [N. 490] ब्राह्मणा दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदयन्ति, भब्बा व ते ञाणाय दस्सनाय अनुत्तराय सम्बोधाय। नो चे पि ते भोन्तो समणब्राह्मणा ओपक्कमिका दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदयन्ति, भब्बा व ते ञाणाय दस्सनाय अनुत्तराय सम्बोधाय। अयं खो मं, भारद्वाज, ततिया उपमा पटिभासि अनच्छरिया पुब्बे अस्सुतपुब्बा। इमा खो मं, भारद्वाज, तिस्सो उपमा पटिभंसु अनच्छरिया पुब्बे अस्सुतपुब्बा। (३)

८. "तस्स मय्हं, भारद्वाज, एतदहोसि—'यन्नूनाहं दन्तेभि [B. 432] दन्तमाधाय, जिव्हाय तालुं आहच्च, चेतसा चित्तं अभिनिग्गण्हेय्यं अभिनिप्पीळेय्यं अभिसन्तापेय्यं' ति। सो खो अहं, भारद्वाज, दन्तेभि दन्तमाधाय, जिव्हाय तालुं आहच्च, चेतसा चित्तं अभिनिग्गण्हामि अभिनिप्पीळेमि अभिसन्तापेमि। तस्स मय्हं, भारद्वाज, दन्तेभि दन्तमाधाय, जिव्हाय तालुं

आहच्च, चेतसा चित्तं अभिनिग्गण्हतो अभिनिप्पीळयतो अभिसन्तापयतो कच्छेहि सेदा मुच्चन्ति। सेय्यथापि, भारद्वाज, बलवा पुरिसो दुब्बलतरं पुरिसं सीसे वा गहेत्वा खन्धे वा गहेत्वा अभिनिग्गण्हेय्य अभिनिप्पीळेय्य अभिसन्तापेय्य; एवमेव खो, भारद्वाज, दन्तेभि दन्तमाधाय, जिव्हाय तालुं आहच्च, चेतसा चित्तं अभिनिग्गण्हतो अभिनिप्पीळयतो अभिसन्तापयतो कच्छेहि सेदा मुच्चन्ति। आरद्धं खो पन मे, भारद्वाज, विरियं होति असल्लीनं, उपट्ठिता सति असम्मुट्ठा, सारद्धो च पन मे कायो होति अप्पटिप्पस्सद्धो, तेनेव दुक्खप्पधानेन पधानाभितुन्नस्स सतो।

अप्पाणकं झानं

९. "तस्स मय्हं, भारद्वाज, एतदहोसि--'यन्नूनाहं अप्पाणकं येव झानं झायेय्यं' ति। सो खो अहं, भारद्वाज, मुखतो च नासतो च अस्सासपस्सासे उपरुन्धिं। तस्स मय्हं, भारद्वाज, मुखतो च नासतो च अस्सासपस्सासेसु उपरुद्धेसु कण्णसोतेहि वातानं निक्खमन्तानं अधिमत्तो सद्दो होति। सेय्यथापि नाम कम्मारगग्गरिया धममानाय अधिमत्तो सद्दो होति; एवमेव खो मे, भारद्वाज, मुखतो च नासतो च अस्सासपस्सासेसु उपरुद्धेसु कण्ण- [N. 491] सोतेहि वातानं निक्खमन्तानं अधिमत्तो सद्दो होति। आरद्धं खो पन मे, भारद्वाज, विरियं होति असल्लीनं, उपट्ठिता सति असम्मुट्ठा, सारद्धो च पन मे कायो होति अप्पटिप्पस्सद्धो, तेनेव दुक्खप्पधानेन पधानाभितुन्नस्स सतो।

"तस्स मय्हं, भारद्वाज, एतदहोसि--'यन्नूनाहं अप्पाणकं येव झानं झायेय्यं' ति। सो खो अहं, भारद्वाज, मुखतो च नासतो च कण्णतो च अस्सासपस्सासे उपरुन्धिं। तस्स मय्हं, भारद्वाज, मुखतो च नासतो च कण्णतो च अस्सासपस्सासेसु उपरुद्धेसु अधिमत्ता वाता मुद्धनि ऊहनन्ति। सेय्यथापि, [B. 433] भारद्वाज, बलवा पुरिसो, तिण्हेन सिखरेन मुद्धनि अभिमत्थेय्य; एवमेव खो मे, भारद्वाज, मुखतो च नासतो च कण्णतो च अस्सासपस्सासेसु उपरुद्धेसु अधिमत्ता वाता मुद्धनि ऊहनन्ति। आरद्धं खो पन मे, भारद्वाज, विरियं होति असल्लीनं, उपट्ठिता सति असम्मुट्ठा, सारद्धो च पन मे कायो होति अप्पटिप्पस्सद्धो, तेनेव दुक्खप्पधानेन पधानाभितुन्नस्स सतो।

"तस्स मय्हं, भारद्वाज, एतदहोसि--'यन्नूनाहं अप्पाणकं येव झानं झायेय्यं' ति। सो खो अहं भारद्वाज, मुखतो च नासतो च कण्णतो च अस्सासपस्सासे उपरुन्धिं। तस्स मय्हं, भारद्वाज, मुखतो च नासतो च कण्णतो च अस्सापस्सासेसु उपरुद्धेसु अधिमत्ता सीसे सीसवेदना होन्ति।

सेय्यथापि, भारद्वाज, बलवा पुरिसो दळ्हेन वरत्तक्खण्डेन सीसे सीसवेठं ददेय्य; एवमेव खो, भारद्वाज, मुखतो च नासतो च कण्णतो च अस्सासपस्सासेसु उपरुद्धेसु अधिमत्ता सीसे सीसवेदना होन्ति। आरद्धं खो पन मे, भारद्वाज, विरियं होति असल्लीनं, उपट्ठिता सति असम्मुट्ठा, सारद्धो च पन मे कायो होति अप्पटिप्पस्सद्धो, तेनेव दुक्खप्पधानेन पधानाभितुन्नस्स सतो।

"तस्स मय्हं, भारद्वाज, एतदहोसि--'यन्नूनाहं अप्पाणकं येव झानं झायेय्यं' ति। सो खो अहं, भारद्वाज, मुखतो च नासतो च कण्णतो च अस्सासपस्सासे उपरुन्धि। तस्स मय्हं, भारद्वाज, मुखतो च नासतो च कण्णतो च अस्सासपस्सासेसु उपरुद्धेसु अधिमत्ता वाता कुच्छिं परिकन्तन्ति। सेय्यथापि, भारद्वाज, दक्खो गोघातको वा गोघातकन्तेवासी वा तिण्हेन गोविकन्तनेन कुच्छिं परिकन्तेय्य; एवमेव खो मे, भारद्वाज, [N. 492] मुखतो च नासतो च कण्णतो च अस्सासपस्सासेसु उपरुद्धेसु अधिमत्ता वाता कुच्छिं परिकन्तन्ति। आरद्धं खो पन मे, भारद्वाज, विरियं होति असल्लीनं, उपट्ठिता सति असम्मुट्ठा, सारद्धो च पन मे कायो होति अप्पटिप्पस्सद्धो, तेनेव दुक्खप्पधानेन पधानाभितुन्नस्स सतो।

१०. "तस्स मय्हं, भारद्वाज, एतदहोसि--'यन्नूनाहं अप्पाणकं येव झानं झायेय्यं' ति। सो खो अहं, भारद्वाज, मुखतो च नासतो च कण्णतो च अस्सासपस्सासे उपरुन्धि। तस्स मय्हं, भारद्वाज, मुखतो च [B. 434] नासतो च कण्णतो च अस्सासपस्सासेसु उपरुद्धेसु अधिमत्तो कायस्मिं डाहो होति। सेय्यथापि, भारद्वाज, द्वे बलवन्तो पुरिसा दुब्बलतरं पुरिसं नानाबाहासु गहेत्वा अङ्गारकासुया सन्तापेय्युं सम्परितापेय्युं; एवमेव खो मे, भारद्वाज, मुखतो च नासतो च कण्णतो च अस्सासपस्सासेसु उपरुद्धेसु अधिमत्तो कायस्मिं डाहो होति। आरद्धं खो पन मे, भारद्वाज, विरियं होति असल्लीनं, उपट्ठिता सति असम्मुट्ठा, सारद्धो च पन मे कायो होति अप्पटिप्पस्सद्धो, तेनेव दुक्खप्पधानेन पधानाभितुन्नस्स सतो। अपिस्सु मं, भारद्वाज, देवता दिस्वा एवमाहंसु--'कालङ्कतो समणो गोतमो' ति। एकच्चा देवता एवमाहंसु--'न कालङ्कतो समणो गोतमो, अपि च कालङ्करोती' ति। एकच्चा देवता एवमाहंसु--'न कालङ्कतो समणो गोतमो, नापि कालङ्करोति; अरहं समणो गोतमो, विहारो त्वेव सो अरहतो एवरूपो होती' ति।

सब्बसो आहारुपच्छेदो

११. तस्स मय्हं, भारद्वाज, एतदहोसि--'यन्नूनाहं सब्बसो आहारुपच्छे-

दाय पटिपज्जेय्यं' ति । अथ खो मं, भारद्वाज, देवता उपसङ्कमित्वा एतदवोचुं --'मा खो त्वं, मारिस, सब्बसो आहारुपच्छेदाय पटिपज्जि । सचे खो त्वं, मारिस, सब्बसो आहारुपच्छेदाय पटिपज्जिस्ससि तस्स ते मयं दिब्बं ओजं लोमकूपेहि अज्झोहारेस्साम । ताय त्वं यापेस्ससी' ति । तस्स मय्हं, भारद्वाज, एतदहोसि--'अहं चेव खो पन सब्बसो अजज्जितं पटिजानेय्यं, इमा च मे देवता दिब्बं ओजं लोमकूपेहि अज्झोहारेय्युं, ताय चाहं यापेय्यं । तं ममस्स [N. 493] मुसा' ति । सो खो अहं, भारद्वाज, ता देवता पच्चाचिक्खामि 'हलं' ति वदामि ।

"तस्स मय्हं, भारद्वाज, एतदहोसि—'यन्नूनाहं थोकं थोकं आहारं आहारेय्यं पसतं पसतं; यदि वा मुग्गयूसं, यदि वा कुलत्थयूसं, यदि वा कळाययूसं, यदि वा हरेणुकयूसं' ति । सो खो अहं, भारद्वाज, थोकं थोकं आहारं आहारेसिं पसतं पसतं; यदि वा मुग्गयूसं, यदि वा कुलत्थयूसं, यदि वा कळाययूसं, यदि वा हरेणुकयूसं । तस्स मय्हं, भारद्वाज, थोकं थोकं [B. 435] आहारं आहारयतो पसतं पसतं, यदि वा मुग्गयूसं, यदि वा कुलत्थयूसं, यदि वा कळाययूसं, यदि वा हरेणुकयूसं, अधिमत्तकसिमानं पत्तो कायो होति । सेय्यथापि नाम आसीतिकपब्बानि वा काळपब्बानि वा, एवमेवस्सु मे अङ्गपच्चङ्गानि भवन्ति तायेवप्पाहारताय; सेय्यथापि नाम ओट्ठपदं, एवमेवस्सु मे आनिसदं होति तायेवप्पाहारताय; सेय्यथापि नाम वट्टनावली, एवमेवस्सु मे पिट्ठिकण्टको उण्णतावनतो होति तायेवप्पाहारताय; सेय्यथापि नाम जरसालाय गोपनसियो ओलुग्गविलुग्गा भवन्ति, एवमेवस्सु मे फासुळियो ओलुग्गविलुग्गा भवन्ति तायेवप्पाहारताय; सेय्यथापि नाम गम्भीरे उदपाने उदकतारका गम्भीरगता ओक्खायिका दिस्सन्ति, एवमेवस्सु मे अक्खिकूपेसु अक्खितारका गम्भीरगता ओक्खायिका दिस्सन्ति तायेवप्पाहारताय; सेय्यथापि नाम तित्तकालाबु आमकच्छिन्नो वातातपेन सम्फुटितो होति सम्मिलातो, एवमेवस्सु मे सीसच्छवि सम्फुटिता होति सम्मिलाता तायेवप्पाहारताय । सो खो अहं, भारद्वाज, 'उदरच्छविं परिमसिस्सामी' ति पिट्ठिकण्टकं येव परिग्गण्हामि, 'पिट्ठिकण्टकं परिमसिस्सामी' ति उदरच्छविं येव परिग्गण्हामि; यावस्सु मे, भारद्वाज, उदरच्छवि पिट्ठिकण्टकं अल्लीना होति तायेवप्पाहारताय । सो खो अहं, भारद्वाज; 'वच्चं वा मुत्तं वा करिस्सामी' ति तत्थेव अवकुज्जो पपतामि तायेवप्पाहारताय । सो खो अहं, भारद्वाज, इममेव कायं अस्सासेन्तो पाणिना गत्तानि अनुमज्जामि । तस्स मय्हं, भारद्वाज, पाणिना गत्तानि अनुमज्जतो पूतिमूलानि लोमानि

कायस्मा पपतन्ति तायेवप्पाहारताय। अपिस्सु मं, भारद्वाज, मनुस्सा दिस्वा एवमाहंसु—'काळो समणो गोतमो' ति। एकच्चे मनुस्सा दिस्वा एवमाहंसु—'न काळो समणो गोतमो, सामो समणो गोतमो' ति। एकच्चे मनुस्सा एवमाहंसु—'न काळो समणो गोतमो न पि सामो, मङ्गुर- [N. 494] च्छवि समणो गोतमो' ति; यावस्सु मे, भारद्वाज, ताव परिसुद्धो छविवण्णो परियोदातो उपहतो होति तायेवप्पाहारताय।

१२. "तस्स मय्हं, भारद्वाज, एतदहोसि—'ये खो केचि अतीतमद्धानं समणा वा ब्राह्मणा वा ओपक्कमिका दुक्खा तिब्बा खरा कटुका [B. 436] वेदना वेदयिंसु, एतावपरमं, नयितो भिय्यो; ये पि हि केचि अनागतमद्धानं समणा वा ओपक्कमिका दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदयिस्सन्ति, एतावपरमं, नयितो भिय्यो; ये पि हि केचि एतरहि समणा वा ब्राह्मणा वा ओपक्कमिका दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदयन्ति, एतावपरमं, नयितो भिय्यो। न खो पनाहं इमाय कटुकाय दुक्करकारिकाय अधिगच्छामि उत्तरिमनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं। सिया नु खो अञ्ञो मग्गो बोधाया' ति? तस्स मय्हं भारद्वाज, एतदहोसि—'अभिजानामि खो पनाहं पितु सक्कस्स कम्मन्ते सीताय जम्बुच्छायाय निसिन्नो विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरिता। सिया नु खो एसो मग्गो बोधाया' ति? तस्स मय्हं, भारद्वाज, सतानुसारि विञ्ञाणं अहोसि- 'एसेव मग्गो बोधाया' ति। तस्स मय्हं, भारद्वाज, एतदहोसि—'किं नु खो अहं तस्स सुखस्स भायामि यं तं सुखं अञ्ञत्रेव कामेहि अञ्ञत्र अकुसलेहि धम्मेही' ति? तस्स मय्हं, भारद्वाज, एतदहोसि—'न खो अहं तस्स सुखस्स भायामि यं तं सुखं अञ्ञत्रेव कामेहि अञ्ञत्र अकुसलेहि धम्मेही' ति।

१३. "तस्स मय्हं, भारद्वाज, एतदहोसि—'न खो तं सुकरं सुखं अधिगन्तुं एवं अधिमत्तकसिमानं पत्तकायेन। यन्नूनाहं ओळारिकं आहारं आहारेय्यं ओदनकुम्मासं' ति। सो खो अहं, भारद्वाज, ओळारिकं आहारं पञ्चवग्गिया भिक्खू पच्चुपट्ठिता होन्ति—'यं खो समणो गोतमो धम्मं अधिगमिस्सति तं नो आरोचेस्सती' ति। यतो खो अहं, भारद्वाज, ओळारिकं आहारं आहारेसिं ओदनकुम्मासं, अथ मे ते पञ्चवग्गिया [N. 495] भिक्खू निब्बिज्ज पक्कमिंसु—'बाहुल्लिको समणो गोतमो पधानविब्भन्तो आवत्तो बाहुल्लाया' ति।

बोधिलाभो

१४. "सो खो अहं, भारद्वाज, ओळारिकं आहारं आहारेत्वा बलं गहेत्वा विविच्चेव कामेहि···पे०···पठमं झानं उपसम्पज्ज विहासिं। वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं··ततियं झानं···चतुत्थं [B. 437] झानं उपसम्पज्ज विहासिं।

"सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते पुब्बेनिवासानुस्सतिञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेसिं। सो अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरामि, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो···पे०···इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरामि। अयं खो मे, भारद्वाज, रत्तिया पठमे यामे पठमा विज्जा अधिगता, अविज्जा विहता, विज्जा उप्पन्ना; तमो विहतो, आलोको उप्पन्नो; यथा तं अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो। (१)

१५. "सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते सत्तानं चुतूपपातञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेसिं। सो दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सामि चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानामि। अयं खो मे, भारद्वाज, रत्तिया मज्झिमे यामे दुतिया विज्जा अधिगता, अविज्जा विहता, विज्जा उप्पन्ना; तमो विहतो, आलोको उप्पन्नो; यथा तं अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो। (२)

"सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते आसवानं खयञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेसिं। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं अब्भञ्ञासिं, 'अयं दुक्खसमुदयो' ति [N. 496] यथाभूतं अब्भञ्ञासिं, 'अयं दुक्खनिरोधो' ति यथाभूतं अब्भञ्ञासिं, 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं अब्भञ्ञासिं; 'इमे आसवा' ति यथाभूतं अब्भञ्ञासिं, 'अयं आसवसमुदयो' ति यथाभूतं अब्भञ्ञासिं, 'अयं आसवनिरोधो' ति यथाभूतं अब्भञ्ञासिं, 'अयं आसवनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं अब्भञ्ञासिं। तस्स मे एवं जानतो एवं [B. 438] पस्सतो कामासवा पि चित्तं विमुच्चित्थ, भवासवा पि चित्तं विमुच्चित्थ, अविज्जासवा पि चित्तं विमुच्चित्थ। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं अहोसि। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कत करणीयं, नापरं

इत्थत्ताया' ति अब्भञ्ञासिं। अयं खो मे, भारद्वाज, रत्तिया पच्छिमे यामे ततिया विज्जा अधिगता, अविज्जा विहता, विज्जा उप्पन्ना; तमो विहतो आलोको उप्पन्नो; यथा तं अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो" ति। (३)

३. देवानं अत्थिता

१६. एवं वुत्ते, सङ्गारवो माणवो भगवन्तं एतदवोच—"अट्ठितवतं भोतो गोतमस्स पधानं अहोसि, सप्पुरिसवतं भोतो गोतमस्स पधानं अहोसि; यथा तं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स। किं नु खो, भो गोतम, अत्थि देवा" ति?

"ठानसो मेतं भारद्वाज, विदितं यदिदं—अधिदेवा" ति।

"किं नु खो, भो गोतम, अत्थि देवा' ति पुट्ठो समानो 'ठानसो मेतं भारद्वाज, विदितं यदिदं अधिदेवा' ति वदेसि। ननु, भो गोतम, एवं सन्ते तुच्छा मुसा होती" ति?

"'अत्थि देवा' ति, भारद्वाज, पुट्ठो समानो 'अत्थि देवा' [R. 213] ति यो वदेय्य' 'ठानसो मे विदिता' ति यो वदेय्य; अथ ख्वेत्थ विञ्ञुना पुरिसेन एकंसेन निट्ठं गन्तब्बं यदिदं 'अत्थि देवा' " ति।

...भारद्वाज! रात के तीसरे पहर मुझे यह तीसरी विद्या प्राप्त हुई; अविद्या गयी, विद्या आयी। तम नष्ट हुआ, आलोक आ गया।"

३. देवताओं का अस्तित्व

१६. ऐसा कहे जाने पर, सङ्गारव माणव ने भगवान् से यह कहा—"अहो! आप गौतम की ध्यान-तत्परता उत्तम है। आप गौतम की ध्यानतत्परता ही सत्पुरुषों का प्रधान (चित्तविकारों के क्षय के लिए प्रयत्न) है। जैसा कि वह आप ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध का है। क्या भो गौतम, देवता है?"

"भारद्वाज! मुझे कारण (स्थान) सहित विदित है कि देवता हैं।"

"भो गौतम! मैंने पूछा—'क्या देवता हैं?" आपने उसका उत्तर दिया—'भारद्वाज! मुझे कारणसहित विदित है कि देवता हैं'; तो क्या आप का उत्तर तुच्छ (गलत) व मृषा (झूठा) नहीं होता?"

"भारद्वाज! 'देवता है?' इस प्रश्न के किये जाने पर 'देवता हैं'—कोई ऐसा उत्तर दे; या फिर 'कारणसहित मैं उन्हें (देवों को) जानता हूँ'—यह उत्तर दे, विद्वान् श्रोता पुरुष को दोनों ही उत्तरों से जानना चाहिये कि देवताओं का अस्तित्व है।"

"किस्स पन मे भवं गोतमो आदिकेनेव न ब्याकासी" ति ?

"उच्चेन सम्मतं खो एतं, भारद्वाज, लोकस्मि यदिदं—'अत्थि देवा' " ति।

४. सङ्गारवस्स माणवस्स सरणगमनं

[N. 497] १७. एवं वुत्ते, सङ्गारवो माणवो भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं भो गोतम! सेय्यथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती [B. 439] ति—एवमेवं भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥

ब्राह्मणवग्गो निट्ठितो पञ्चमो॥

तस्सुद्दानं

ब्रह्मायु[1] सेल[2]स्सलायनो[3], घोटमुखो[4] च ब्राह्मणो।
एसु[5] चङ्की[6] धनञ्जानि[7], वासेट्ठो[8] सुभ[9]गारवो[10] ति॥

मज्झिमपण्णासकं निट्ठितं॥

●

"भो गौतम! तो फिर प्रारम्भ मे ही आपने मुझसे यह क्यों नहीं कह दिया!"

"भारद्वाज! यह बात तो लोक में अत्यन्त स्पष्टतया विदित है कि देवता हैं।"

४. सङ्गारव माणव का शरणगमन

१७. ऐसा कहने पर सङ्गारव माणव ने भगवान् से यह कहा—"आश्चर्य है, भो गौतम!…जीवनपर्यन्त अपना शरणागत उपासक समझें"।

सङ्गारवसुत्त समाप्त॥

पञ्चम ब्राह्मणवर्ग समाप्त॥

इस वर्ग का उदान

इस वर्ग में दश सूत्रों का व्याख्यान है; जैसे—१. ब्रह्मायु, २. शैल, ३. आश्वलायन, ४. घोटमुख, ५. एषुकारी, ६. चङ्की, ७. धनञ्जानि, ८. वशिष्ठ, ९. शु[illegible] एवं १०. सङ्गारव सूत्र॥

मज्झिमपण्णासक (मध्यमपञ्चाशत्क) समाप्त॥

●